आकर ग्रंथ माला—११

रसलीन ग्रंथावली

सैयद गुलाम नबी 'रसलीन'
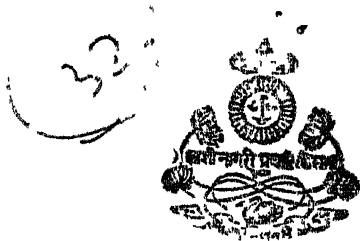
संपादक

सुधाकर पांडेय

प्रकाशक :
नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी

प्रथम संस्करण
सं० २०२६ वि०

मूल्य : पचीस रुपये

मुद्रक :
शंभुनाथ वाजपेयी
नागरी मुद्रण,
वाराणसी

आकर ग्रंथमाला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरकजयंती के अवसर पर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानों का श्रीगणेश करना निश्चित किया था, उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर ग्रंथों के सुसंपादित संस्करणों की पुस्तकमाला प्रकाशित करना भी था। जयंतियों अथवा बड़े बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परंपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक जयंती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य सरकारों और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना में सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यों की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिये सरकारों से आग्रह किया गया था। इनमें से केंद्रीय सरकार ने हिंदी शब्दसागर के संशोधन, परिवर्धन तथा आकर ग्रंथों की एक माला के प्रकाशन में विशेष रुचि दिखलाई और ६-३-५४ को सभा की हीरकजयती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्र प्रसाद ने घोषित किया--मैं आपके निश्चयों का, विशेषकर इन दो (शब्दसागर-संशोधन तथा आकर ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस-बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन के लिये पचीस हजार रुपए की, पाँच वर्षों में पाँच-पाँच हजार करके, सहायता दी जायगी। मैं आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।"

केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने ११-५-५४ को एफ ४-३-५५ एच ४ संख्यक एतत्संबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तों के अनुसार इस माला के लिये संपादक-मंडल का संघटन तथा इसमें प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रंथों का निर्धारण कर लिया गया है। संपादक मंडल तथा ग्रंथसूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यों-ज्यों ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा इतर अध्येताओं के लिये सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है, उसके लिये वह धन्यवादार्ह है।

प्रकाशकीय वक्तव्य

अपनी स्थापना के समय से नागरी लिपि एवं हिंदी साहित्य के उन्नयन एवं विकास के विभिन्न विधायक संकल्पों के साथ ही नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी के युगनिर्माता मूर्धन्य साहित्यस्रष्टाओं की ग्रंथावलियों का प्रकाशन भी आरंभ किया। हिंदी के सुप्रसिद्ध गंभीर शीर्ष विद्वानों का सहयोग इस क्षेत्र में सभा को सतत मिलता रहा। फलतः तुलसी ग्रंथावली, सूरसागर (दो भाग), भूषण ग्रंथावली, भारतेंदु ग्रथावली, रत्नाकर (कवितावली) पृथ्वीराज रासो, बाँकीदास ग्रंथावली, ब्रजनिधि ग्रंथावली और श्रीनिवास-ग्रंथावली आदि का प्रकाशन सभा ने किया।

अपनी हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने इस दिशा में केंद्रीय सरकार की सहायता से योजनाबद्ध रूप से नूतन प्रयत्न आकर ग्रंथमाला के रूप में आरंभ किया। इस ग्रंथमाला में अबतक भिखारीदास ग्रंथावली (दो भाग), मानराजविलास, गंगकवित्त, पद्माकर ग्रथावली, मतिराम ग्रंथावली, मधुमालती-वार्ता, नागरीदास ग्रंथावली (दो खंड) और दादू दयाल ग्रंथावली का प्रकाशन सभा कर चुकी है। इधर धनाभाव के कारण वह कार्य कुछ शिथिल था, किंतु ग्रंथमाला का कार्य चलता रहा। जसवंतसिंह ग्रंथावली यंत्रस्थ है और शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

बोधा ग्रंथावली (सं०—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र) एवं ठाकुर ग्रथावली (सं०—श्री चंद्रशेखर मिश्र) को शीघ्र ही प्रकाशित करने का हमारा संकल्प है। केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग की आर्थिक सहायता से यह संकल्प मूर्त हो रहा है। इसके लिये सभा सरकार के प्रति कृतज्ञ है और हमें विश्वास है कि शीघ्र ही इस दिशा में सभा का स्वप्न पूर्णतः साकार होगा।

इस ग्रंथमाला के ग्यारहवें पुष्प के रूप में रसलीन ग्रंथावली का प्रकाशन हो रहा है। इसका सफल संपादन संपादनकला के मर्मज्ञ पंडित सुधाकर पांडेय ने बड़ी निष्ठा के साथ किया है। इसमे रामपुर स्टेट लाइब्रेरी, ब्रिटिश म्यूजियम और हैदराबाद संग्रहालय की महत्वपूर्ण हस्तलिखित प्रतियां का भी उपयोग किया गया है। ग्रंथ के आरंभ में विद्वान् संपादक ने एक शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका दी है जिससे तद्विषयक ज्ञानार्जन में विशेष सहायता प्राप्त होगी। हमें विश्वास है कि अपने गुणधर्म के अनुरूप यह ग्रंथावली सुधी समाज को रसलीन करने में पूर्णतः समर्थ होगी।

काशी, पुरुषोत्तमी एकादशी
सं० २०२६ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशन मंत्री

संपादकीय

बाकर सुत सैयद गुलामनबी रसलीन की रचनाएँ हिंदी में तीन नामों से मिलती हैं — गुलामनबी, नबी और रसलीन। इस कारण प्राचीन लोगों में से कुछ को यह भ्रम हो गया था कि नबी और रसलीन के दो अलग-अलग व्यक्तित्व हैं। यह भ्रम होना स्वाभाविक था क्योंकि नबी के नाम से कवित और सवैये मिले हैं और रसलीन मूलतः दोहाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। रसलीन के ऊपर प्राचीन समय में बहुत विचार करने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई क्योंकि वे अकाल ही युद्ध भूमि में मध्य आयु में स्वर्गीय हो गए। इनके संबंध में शिवसिंह सरोज में केवल इतना उल्लेख है :

"४० रसलीन कवि सय्यद गुलामनबी बिलग्रामी ॥सं०१७६८ मे उ०॥

'ये कवि अरबी फारसी के आलिम फाजिल और भाषा कविताई में बडे निपुण थे। रस प्रबोध नाम ग्रंथ अलंकार में इनका बनाया हुवा बहुत प्रमाणिक है। इनके कुतुबखाने में ५०० जिल्द भाषा काव्य की थी।'"[1]

वहीं इन्होंने इनकी कविता के उदाहरण स्वरूप एक फुटकर सोरठा भी दिया है—

> पीतम चले कमान, मोकौं गोसा सौंपिके।
> मन करिहौं कुरबान, एक तीर जब पाइहौं॥[2]

इस प्रकार इनके अनुसार रसलीन का एक अलंकार ग्रंथ रसप्रबोध तथा कुछ फुटकर कविताएँ हैं। नबी कवि के प्रसंग में इन्होंने लिखा है कि "इनका नख-सिख अद्भुत है।"

यदि दोनों को एक मान लिया जाय तो रसप्रबोध और नखशिख की बात शिवसिंह सरोज में ही स्पष्ट हो जाती है और रसलीन ने भी अंग-

---

१. शिवसिंह सरोज, नवंबर १८८३ का संस्करण, पृष्ठ ४८६

२. वही, पृष्ठ ३०१

३ वही, पृष्ठ ४४१

दर्पण का दूसरा नाम शिखनख ही रखा है।[1] हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास में ग्रियर्सन महोदय ने नबी कवि के संबंध में केवल इतना ही लिखा है "शृंगार संग्रह में भी एक सुंदर नखशिख के रचयिता[2]" और रसलीन गुलाम नबी के प्रसंग में उनके दो ग्रंथ अंगदर्पण (१६३७) और रसप्रबोध (१७४१ ई०) क्रमशः नखशिख और काव्यशास्त्र के ग्रंथ के रूप में लिखने की बात कही है।[3] सन् लिखने की भूल हो गई है, वास्तव में १६३७ के स्थान पर १७३७ चाहिए।

दिग्विजय भूषण में शिवसिंह के आधार पर नबी कवि के केवल एक ग्रंथ नखशिख का उल्लेख है।[4] रसलीन के संदर्भ में उनके नखशिख-संबंधी दोहों का उल्लेख है। वास्तव मे ये दोनो कवि एक हैं और इन प्राचीन ग्रंथों में ग्रियर्सन ने इनके जिन दो ग्रंथों की चर्चा की वे ही इनके दो ग्रंथ हिंदी जगत् में सबने एक स्वर से स्वीकार किए। यदि दोनों नामों को एक माना गया होता तो इनके स्फुट कवित्त भी बहुत पहले प्रकाश में आ गए होते। इसका कारण यह भी है कि हिंदीवाले यह नहीं मानते थे कि फारसी में भी हिंदी साहित्य का अतुल भंडार भरा पड़ा है और अंग्रेजों की कृपा से हिंदी और फारसी का भेद इतना बढ़ा दिया गया कि अतीत में भी लोग हिंदुओं को हिंदी में तथा मुसलमानों को उर्दू और फारसी में देखने लगे जब कि सत्य यह है कि देवनागरी मे भी उर्दू-फारसी का साहित्य लिखा गया और फारसी लिपि में भी हिंदी का साहित्य, हिंदू और मुसलमान दोनों द्वारा। यदि इस तथ्य की उपेक्षा न की गई होती और अंग्रेजों की दृष्टि को अपनी दृष्टि न मान लिया गया होता तो हिंदी और फारसी-उर्दू सबका भला होता। इस क्षेत्र में काम करनेवालों में मीर गुलाम अली आजाद बिलग्रामी का नाम अत्यंत आदर्श है, जिन्होंने अपने ग्रंथ सर्वे-आजाद में जो 'मतबा दुखानी रिफाहे आम लाहौर दारुस्सलतनत पंजाब' से

---

१. पृष्ठ २८७

२. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, डा० किशोरीलाल गुप्त (सं०), पृ० ३१६

३. वही, पृष्ठ १०४

४. दिग्विजय भूषण, पृष्ठ ५०

१६१३ ई० में प्रकाशित भी हो चुका है। ग्रंथ के उत्तरार्ध भाग में मीर आजाद ने बिलग्राम के आठ हिंदी कवियों का परिचय दिया है और उनकी कविताओं से उदाहरण भी दिए हैं। ये हिंदी साहित्य की दृष्टि से बड़े समर्थ कवि हैं और मीर आजाद के समसामयिक होने के कारण इसमें दिया गया जीवनवृत्त भी अत्यंत प्रामाणिक है। यही रसलीन के जीवनवृत्त का उद्‌घाटन करने का मूलाधार है। यहीं पर यह भी संकेत इसमें दिए गए उदाहरणों से मिलता है कि सरस कवित्त और सवैयों की रचना भी रसलीन ने की थी।

नागरीप्रचारिणी सभा के खोज विवरण में अंगदर्पण की दो प्रतियाँ मिली हैं, जिनका लिपिकाल क्रमशः अज्ञात और संवत् १६३५ (सन् १८७८ ई०) है। रसप्रबोध की जो प्रतियाँ मिली हैं उनकी संख्या पाँच है और लिपिकाल क्रमशः सवत् १८८३, संवत् १६०७, संवत् १६३५, अज्ञात और अज्ञात है। इनका विस्तृत विवरण परिशिष्ट में दिया जा चुका है।

इसके अतिरिक्त दो प्रतियाँ सभा के याज्ञिक और रत्नाकर संग्रहों में मिली है। एक लाल और काली स्याही से लिखी हुई है और उसका लिपिकाल संवत् १८७६ है और दूसरी केवल काली स्याही से लिखी हुई है और इसका लिपिकाल सवत् १६०१ है। दोनों देवनागरी में प्राप्त सबसे पुरानी प्रतिलिपियाँ हैं। अंगदर्पण की एक और प्रति देवनागरी लिपि में डॉ० राम-सुरेश त्रिपाठी के पास सुरक्षित है जो २२ जुलाई सन् १८८४ ई० की है।

फारसी लिपि में रसलीन के ग्रंथों के जो हस्तलेख प्राप्त हुए हैं उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

इंडिया आफिस लाइब्रेरी की प्रति

इंडिया आफिस लाइब्रेरी लंदन में केवल रसप्रबोध की हस्तलिपि है। इसका अंतिम भाग खंडित है। इसमे कुल दोहों की संख्या ६५१ है। इसमें दोहों का क्रम व्यवस्थित नहीं है। इसका लिपिकाल भी अज्ञात है।

रजा पुस्तकालय रामपुर की प्रति

रामपुर की प्रति में रसलीन के तीनों ग्रंथ हैं--अंगदर्पण, रसप्रबोध और मुतफर्रिक कवित्त। इसका लिपिकाल संवत् १८२६ वि० है। प्राप्त प्रतियों में यही सबसे पूर्ण, पुरानी और उपयोगी है। डा० वेदी के अनुसार

गोपालचंद्र जी की प्रतियाँ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनके और रामपुर की प्रतियों के पाठ में कोई विशेष भेद नहीं है।

हैदराबाद की प्रतियाँ

हैदराबाद में तीनों उपलब्ध ग्रंथ विलग-विलग हैं। इनका लिपिकार अमीर हैदर बिलग्रामी है और लिपिकाल संवत् १८२६ है। इसके अतिरिक्त हैदराबाद के आसफिया पुस्तकालय में ही अंगदर्पण की एक और प्रति है जिसका अंतिम भाग खंडित होने के कारण लिपिकाल का पता नहीं चलता।

डा० जैदी की प्रति

डा० जैदी के पास रसप्रबोध की प्रति है जिसमें मूल के साथ फारसी में इसका पद्यानुवाद रसलीन के प्रदौहित्र द्वारा किया गया है। इसमें कुल १०१६ दोहे हैं। यह १२१२ हिजरी की है और अनुवादक के हाथ की ही लिखी हुई है।

ऐसी स्थिति में रसलीन के संपादन का कार्य बड़ा दुरूह था लेकिन उसके लिये रसलीन ने आधार दे दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि रसप्रबोध में कुल ११५४ दोहे हैं। कोई इनकी संख्या १११७ ही बतलाता है। यह भ्रम रसप्रबोध के प्रकाशित संस्करण के कारण उत्पन्न हुआ। भारत जीवन प्रेस काशीवाली प्रति मे केवल १११७ दोहे हैं। नवल किशोर प्रेस और गोपीनाथ-पाठक वाली प्रकाशित प्रतियाँ भी लगभग ऐसी ही हैं। इसलिये यह तो निर्विवाद है कि रसप्रबोध में कुल ११५४ दोहे हैं।

जहाँ तक अंगदर्पण की बात है इसमें १७७ दोहों की चर्चा सर्वे आजाद में की गई है।[२] यही बात मिश्रबंधु विनोद में कही गई है।[३]

अंगदर्पण की पुष्पिका में ३ दोहे हैं। ये मिलाकर सब १८० दोहे होते हैं। इसलिये इसमें १८० दोहे मान लेने चाहिए।

ऐसा लगता है कि रसलीन एक दोहा लिखने के उपरांत, यदि उन्हें

---

१. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, छठा भाग, पृ० ३३८

२. सर्वे आजाद, पृष्ठ ३७२

३. मिश्रबंधु विनोद, पृष्ठ ३०८

उससे संतोष नहीं हुआ है तो उसको ये बराबर माँजते रहे हैं या उसी मेल का नया दोहा लिखते रहे हैं। इसलिये अलग-अलग कृतियों में इस प्रकार के दोहे भी मिले हैं।

रसप्रबोध में ११५४ दोहों की बात स्थिर की गई और पुष्पिका मिलाकर अंगदर्पण में १८० दोहों की बात स्थिर है। रसप्रबोध में २०६ सख्यक दोहे दो हैं।[1] वास्तव में यह भूल है इसलिये यहाँ रसप्रबोध में जो ११५३ दोहे दिये गए है उन्हें ११५४ मानना चाहिए। पृष्ठ ६७ पर ४६१ और ४६४ संख्यक दोहे लगभग एक ही हैं और वे गणना से संबद्ध हैं साथ ही अपने स्थान पर ठीक है इसलिये इनकी गणना अलग-अलग होनी चाहिए।

निम्नांकित संख्यक दोहे रसप्रबोध और अंगदर्पण दोनों में अति सामान्य भेद के साथ है—

रसप्रबोध	अंगदर्पण
१७१	१०६
६४	३८
१७५	१२४
६४८	१२५
७६	१७६
६४३	४५
६४४	१२७
६३८	१७८
७७८	१७७

७७८ संख्यक दोहा रसप्रबोध में ही रहना चाहिए, अंगदर्पण में नहीं क्योंकि वह किसी भी प्रकार अंगदर्पण से संबद्ध नहीं है। वह हाव, भाव और दीप्ति के उदाहरण से संबद्ध है। स्फुट दोहों में से दोहा संख्या १, ११-१४, १६, ४४, ४५ क्रमशः रसप्रबोध के दोहा संख्या ३५, १८१, १८८, ५१५, ५७५ के उपरांत आने चाहिए। शेष दोहों में से अधिकांश रसप्रबोध या अंगदर्पण के किसी न किसी दोहे के परिवर्तित, परिमार्जित या पूर्व रूप हैं। इस प्रकार रसप्रबोध में ११५४ और अंगदर्पण में १८० दोहे ठहरते हैं।

---

१. देखिए पृष्ठ ४३–४४

फारसी लिपि में लिखने में पाठसंबंधी कुछ स्थानों पर एक से अधिक पाठ की संभावना रहती है और वह संभावना तब और बढ़ जाती है जब फारसी लिपि खुशखत न हो। लंदनवाली प्रति कुछ ऐसी ही है। जो कुछ भी हो, रसप्रबोध का संपादन मैंने मूलतः तीन प्रतियों के आधार पर किया है :—

१—सभा की दोरंगी प्रति,
२—सभा की काली स्याही से लिखी प्रति और
३—रामपुर की प्रति

अन्य प्रतियों से भी छूट टूट और पाठभेद लिया गया है जो परिशिष्ट में दे दिया गया है। इन सब प्रतियों के मिलाने से जो अधिक दोहे पाए गए हैं वे भी परिशिष्ट में दे दिए गए हैं, जिनमें से बहुत से रसप्रबोध में दिए गए दोहों के संशोधन या पाठ परिवर्तन मात्र है।

अंगदर्पण में भी तीन प्रतियों का सहारा लिया गया है। पहली प्रति रामपुरवाली है। दूसरी डॉ० रामसुरेश त्रिपाठी-वाली है और तीसरी प्रति भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित प्रति है।

कवित्त मुतफर्रिक की केवल दो ही प्रतियाँ उपलब्ध हैं और दोनों करीब-करीब मिलती जुलती हैं। ये रामपुर और हैदराबाद की प्रतियाँ है। गोपालचंद्र वाली प्रति मैं नहीं देख सका। यह ग्रंथ जनवरी सन् १९६५ में इदारए फिक्रोनजर अलीगढ़ विश्वविद्यालय से डा० जैदी के प्रयास से देवनागरी लिपि में प्रकाशित भी हो चुका है। वास्तव में इसमें पाठभेद नहीं है अपितु फारसी लिपि को पढ़ने का भेद है जिनको यथास्थान पाठभेद के रूप में दे दिया गया है। उपलब्ध सभी प्रतियों में कवित्त, सवैए और लोकगीत आदि मिलाकर कुल ९८ छंद हैं।

कवित्त मुतफरिक के स्तुतिपरक कवित्तों के शीर्षक उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में फारसी भाषा में हैं उन्हें हिंदी में कर दिया गया है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि मीर आजाद की सूचना के अनुसार इनका एक नायिका-विषयक ग्रंथ रेखता में भी है किंतु वह अब उपलब्ध नहीं है।

अलीगढ़ पुस्तकालय में बिहारी सतसई की अमरचंद्रिका टीका की प्रतिलिपि रसलीन ने अपने हाथ से की थी, जिसमें वर्णक्रम से

सतसई के दोहों की अनुक्रमणिका भी है। उस पांडुलिपि से रसलीन की लिखावट की फोटो प्रति डा० बेदी के सौजन्य से यहाँ दी जा रही है।

रसलीन यद्यपि देव नागरीलिपि के ज्ञाता थे तो भी ऐसा लगता है कि अभ्यास होने के कारण फारसी लिपि में ही अपनी रचनाएँ लिखते थे। मिफताहुल हिंद के लेखक वासिल बिलग्रामी के अनुसार रसलीन फारसी लिपि में हिंदी रचनाएँ लिखने के लिये ट, ड और ड़ अक्षरों के लिये तीन बिंदियाँ इन अक्षरों पर बनाते थे। काफ और गाफ के अंतर को स्पष्ट करने के लिये वे काफ को तो उसी प्रकार लिखते थे किंतु गाफ लिखते समय काफ पर एक और लकीर खींचने के स्थान पर उसके मरकज के सिरे को नीचे की ओर मोड़ देते थे जैसा कि नीचे स्पष्ट कर दिया गया है :

ग ट ड ड़

इसमे रसलीन के जीवन और साहित्य के संबंध में एक भूमिका, प्रत्येक ग्रंथ के समाप्त होने पर उसका विषयानुक्रम और छंदानुक्रम दिया गया है। पाठ के साथ शब्दों के अर्थ, और पाठभेद तथा अंत में प्रथानुसार अलंकार-निर्देश, शब्दानुक्रम, नागरीप्रचारिणी सभा का सबद्ध खोज विवरण, महापुरुषों का परिचय, पौराणिक पात्रों, वस्तुओं आदि की अनुक्रमणिका भी दे दी गई है। प्रेस की कृपा से तथा मेरी असावधानी से प्रूफ की बहुत सी गलतियाँ मिल सकती हैं। उसके लिये मै क्षमाप्रार्थी हूँ।

इस ग्रंथ के संपादन में मेरा ध्येय यह रहा है कि रसलीन हिंदी जगत् के संमुख उपस्थित हो जायँ, ताकि उनके गुणों के प्रकाश से साहित्य संपदा की वृद्धि हो और ऐसे श्रेष्ठ कवि के संबंध में विद्वानों के संमुख ऐसी सामग्री उपस्थित कर दी जाय जिसके आधार पर वे पठन पाठन की व्यवस्था आगे बढ़ाएँ और ऐसे अन्य कवियों के साहित्य का भी प्रकाशन गति से हो।

आशा है, हमारा यह उद्देश्य सफल होगा।

———
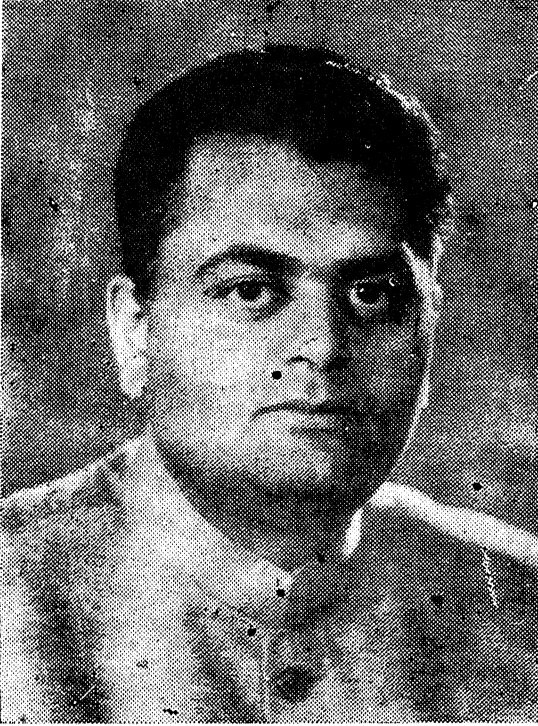
प्रियश्री कृष्णचंद्र पंत को सस्नेह
जिनमें
स्वर्गीय पं० गोविंदवल्लभ पंत को हम मूर्तित देखते हैं
और जिनका
हिंदी, सभा और मुझपर बड़ा उपकार है।

फलक सूची

॥श्रीगणेशायनमः॥ दोहा॥ अलहनामक
विरत पंच प्रधन के सिरताई ॥ औरा जन के मु
कुट ते भूतिसोभा सरसाइ ॥१॥ अ लवबु
ल रिखुनंत नितपावत प्रभुकरतार॥ जगके
सिरजनहार सूरहाता सुबरु सूपार॥२॥ ९
सौ सबनि में सूर रसौन्यारौ सुआपु बनभेश॥ स
बकित भपसबेलस्यो नकाहुओ ॥३॥ स
बकाहू न हिलूहि पम्यौ किन्हो कोटी विचार॥
तब सारी गुनतेधम्यौ अलहनाम संसार॥

गर्विताजो दुषकमलनहुवनलहिपनरू
पुठिगन्नभुन गति यह कीन आपजग
नकोमारिकैहत्या कोहुपकमो मोहि
सिरहीन ४७ सधुरूपगर्विता जोदु
षकमलनहुपतनहिमेररूपसजानतो
भो आननजितकहासरसिज संवसमान
४८ होंनसहोंगीवान अलिनोसोंकहति
निसंक मेरेमुषकों वंदकहिभावनलाल
कलंक ४९ बकोकनितनगर्विता मोपै
गुनकछुवैन हियेमोतेहितषाइ आप
निबारिहूंपिपहिमोंसुरजानिपठाइ ५०
सुषगुनगर्विता ॥ तोपठीनजो छीनकैसो
छिनसोरमलीन गीतंनारकेजोवीनकेक
रेबांधिआधीन ५१ कोवतुराईजोनहै
एककलामेंजोति आजुनलामनकोक
रहीपछुलाकीरीति ५२॥ मानिनील
छना पियतेंकछु अपराधकिपतिपउ
हासजोहोइ ताहिमानिनीकहतसबजे
पंडितकविलोइ ५३ तीनिभोंतिपियसे
सोकरतिमानकोपपरकास मुषपरिके

ਸ੍ਰੀ ਰਾਗ
ਗੁਰੂ ਤੇਗ

دہان اہمک مہلا پہلا

الگیہ نام جہبت دیت یون کرہتی تیاسرائے   جیون راجن اے مکت تیمی ات کو بہاسرسائے

بنکفا بزکیں آہیل یادن پربہبہ کرتار   جاک کو سر جنہا رادر دانا شکہیہ ادیار

ریو سبن ہین ای ادرہار یو رہو جای   باہن تہلکت ہیہے سبہے کاہو لکہو نہ جای

جب کا ہو نہیہ نہ ہیہ گورت ادیہا   تب اکن ہی لے دہرو الگیہ نام سمہنا

لکہہ نیبرت جہیہ کیہو ہر سکت ہی کون   تا بین نام ہی شرمہا چیت کہہ رمئیں مون

نعت مہسا پہلا

رت یو تر سنارون میکہن جاب بہبن دہوں   تواد نہیہ تن کہتی کا جوک نہ کبہون ہو ی

جیکے یادن نہ بہیہ یادن تہین جاسے   تن کو سمرن جو کری سواد یادن ہوی جان

مزی ہو تا جاک شمل پن یا جیہن بہوا اددوت   جیہن تراد بہت بج بی بیج انت پن ہوت

ایسے باندہ دکہ نبیہ ست ہر م کا دور   جا کو کہہ سر لوک جاک جات نرک ملک جیہور

سنہسن جیب لبیہ نبیس یون سے جک ببا ای   تواد نبیہ کا نام تا اد شنت کہے نہ جاسے

تیہ سنت کا یکہی بیلے دیرون سمسیں بج ای   بہن تن کاہت کا ربن دیو نہیہ اسیں جای

بالکہ سعی

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

—०—

देशकाल

हिंदी साहित्य के मध्यकाल का इतिहास इस देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। साहित्य एकांतिक कृति होते हुए भी, अपने देशकाल की चेतना के आलोक से जीवंत एवं प्रभावान होता है। हिंदी साहित्य ही नहीं, विश्व का प्रत्येक जीवंत साहित्य इस तथ्य का साक्षी है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा आदि हमारे साहित्य की अनन्य श्री संपदामय विभूतियाँ इसका प्रमाण हैं। भक्ति एवं संत साहित्य की महान् रचनाओं के उपरात मध्य काल के उत्तरार्ध में हिंदी-साहित्य की धारा जिस देश और काल से प्रवहमान हुई रसलीन उसके एक प्रभोज्वल नक्षत्र हैं। उनके देश काल जीवन की मर्मांत वाणी उनके साहित्य का अमृत है।

भारत में मध्यकाल का प्रारंभ देश में मुस्लिम सत्ता, सभ्यता और संस्कृति के प्रवेश के साथ आरभ होता है। इस सभ्यता और संस्कृति का मूलाधार पश्चिमी मध्येशिया में इस्लाम की छाया में विकसित संस्कृति थी, जो वहाँ के शताब्दियों के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के परिणामस्वरूप मूर्त हुई थी। भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति उनसे सर्वथा भिन्न थी और प्रवर्द्धमान मुस्लिम सभ्यता की अनेक ा उसकी जीवनीशक्ति क्षीण हो गई थी। इसलिये शासन के सामने एक भयकर स्थिति थी। यद्यपि इतिहास में एक से एक महान् मुस्लिम योद्धा और प्रशासक हुए तो भी अकबर के पूर्व तक एक भी ऐसा कुशाग्र राजनीतिज्ञ क्रांतदर्शी मुस्लिम शासक न हुआ जो तात्कालिक सामाजिक स्थिति पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर पाता। यद्यपि अकबर द्वारा स्थापित व्यवस्था देश में सैकड़ों वर्षों तक चलती रही तो भी औरंगजेब के समय तक उस व्यवस्था में

---

१. शासनकाल—सन् १५५६-१६०५ ई०।

घुन लग चुका था और औरंगजेब की मृत्यु के बाद का मुगलों का इतिहास पतन की कहानी का प्रतिपग बढ़ता हुआ चरण है। नादिरशाह के हमले ने (सन् १७३८–'३९ ई०) तो मुगल साम्राज्य की जड़ ही सर्वथा पोली कर दी। योरोपियनों का मन इस घटना से बढ़ना आरम्भ हुआ और अंततोगत्वा प्लासी[1] के मैदान में मुगलों के भाग्य का निपटारा सदा के लिये हो गया। और उसके बाद कुछ ही वर्षों में अंग्रेजों की पूर्ण सत्ता इस देश में स्थापित हो गई।

भारतीय मध्यकालीन समाज में लोकजीवन पर राजा, राय और ठाकुर तथा जागीरदारों का प्रभुत्व था। राजा, राय और ठाकुर ही वंशानुगत संपत्ति के स्वामित्व के अधिकारी थे और इन्हें जमींदार के नाम से संबोधित किया जाता था। दूसरा वर्ग जागीरदार के रूप में था। इन राजाओं (राय और ठाकुर) और जागीरदारों (इक्तिदार) का प्रभुत्व सामाजिक जीवन पर प्रभावशाली रूप से था। इनका जीवन किसानों के अतिरिक्त उत्पादन पर प्रवर्द्धित और जीवित था। इनमें जहाँ प्रथम की स्थिति वंशानुगत थी, वहाँ दूसरे वर्ग की स्थिति सामयिक।[2] तुर्कों के भारत प्रवेश पर भी तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के कारण उनकी स्थिति यथावत् बनी रही और वे जहाँ एक ओर राज्य को कर देते रहे, वहीं दूसरी ओर इन्हें स्थानीय प्रशासकीय कार्यकर्ताओं को प्रशासन में सहायता भी देनी पड़ती थी। इन्हें सैनिक तथा सामयिक सहायता भी शासन की करनी होती थी। ये जमींदार मूलतः शोषण वृत्ति के अवसरवादी शक्ति थे जो कठिनाइयों के समय शासकों की सहायता करने के स्थान पर प्रायः उनके लिये समस्या बन जाते थे और यहाँ तक कि ऐसे समय ये दूसरों की भूमि का अपहरण कर लेते और विपत्ति के समय शासन को कर तक न देते थे। अपनी जमींदारी में स्थित प्रजा के प्रति इनका आचार व्यवहार शोषक का था और नियत तथा वांछित करों के अतिरिक्त उनसे हारी बेगारी तो वे लेते ही थे उनकी संपत्ति और शील पर इच्छानुसार निरंकुशतापूर्वक अधिकार तक जमा लेते थे, पर उनकी सुख सुविधा के लिये वे सामान्यतः कुछ भी न करते थे। इस प्रकार दिनोत्तर निर्धन होनेवाले किसान की भावना, अंतर से शासन के प्रति स्नेह और सहानुभूति की न रह पाती

---

१. प्लासी का युद्ध— सन् १७५७ ई०।

२. पार्टीज एंड पौलिटिक्स एट दी मुगल कोर्ट--डा० सतीश चंद्र

थी। ये जमींदार शासक के स्थाई प्रतिनिधि होते थे और इनके प्रति व्याप्त असंतोष का प्रभाव शासन पर भी पड़ता था।

प्रायः सभी शासकों की छाया मे ये अपने अवसरोचित कार्यों द्वारा बने रहते थे। इनके द्वारा उत्पन्न कुपरिणामों की ओर मुगलों का ध्यान गया और अपनी सत्ता स्थाई करने के लिये उन्होंने अनेक नव यत्न किए।

ये राजा या जमींदार केवल कोरे भूमिपति ही नहीं होते थे, ये अपनी जाति और क्षेत्र के अनेक अर्थों मे नेता भी थे। इसलिये सामान्यतः शासन इनके कार्यों मे हस्तक्षेप करने मे हिचकता था कि कहीं ये कुसमय सत्ता के प्रति घात न कर बैठें। फिर भी मुगलों ने इनकी शक्ति को सीमित करने का यत्न किया। अवसरवादी तथा अविश्वस्त जमींदारों को उन्होंने सपत्तिच्युत कर दिया। उनके स्थान पर नए जमींदार बसाए और बड़ी बड़ी जमींदारियों को उन्होंने खंड खड कर विकेंद्रित कर दिया। इसके साथ ही केवल वर्गविशेष के (राजपूत, जाट, गूजर, अफगान) लोगों को एक क्षेत्र में समूहगत या वर्गगत न रहने देकर उनके बीच बीच मे अन्य वर्गों के लोगों को भी जमींदार बनाया। इस प्रकार जातिगत एका की शक्ति मे उन्होंने जहाँ एक ओर दरार पैदा की, वहीं अनेक प्रकार के आचार व्यवहार के लोगों मे एक साथ रहने की आदत भी उत्पन्न की। इसका परिणाम सास्कृतिक एका के रूप में प्रकट हुआ और षड्यन्त्रगत तत्वों का शनैः शनैः उन्मूलन आरंभ हुआ। साथ ही केवल जमींदारों पर निर्भर न रहकर, प्रान्तों और परगनों के स्तर पर स्वतत्र प्रशासनिक संगठन द्वारा जनता से सीधे सपर्क स्थापित करने का प्रयत्न अकबर ने सफलतापूर्वक आरंभ किया। सरकारी नौकरी का द्वार सबके लिये खोल दिया गया और मनसबदारी प्रथा की स्थापना की गई। इससे जमींदार पूर्व की शक्तिशाली स्थिति मे न रह गए। तो भी मध्यभारत, राजपूताना, पहाड़ी और दक्षिणी क्षेत्रों मे इनकी अजेय स्थिति बनी रही, यद्यपि शक्तिशाली शासन होने के कारण केंद्रीय नीति का वे खुलकर विरोध नहीं कर पाते थे।

समय समय पर ये भूपति लोग धर्म और भाषा को भी अपने स्वार्थसाधन में प्रयुक्त करने मे हिचकते न थे और इनके माध्यम से ये कभी कभी भयकर क्षेत्रीय भावना भी स्वार्थ के लिये पैदा कर दिया करते थे। यद्यपि भक्तों, संतों एवं सूफियों के आंदोलनों से इस दुर्भावना को क्षति पहुँची तो भी तज्जनित वर्गों और संप्रदायों के माध्यम से हिंदू और मुसलमान दोनों से ये अपना स्वार्थसाधन करा ही लेते थे।

अकबर ने प्रशासनिक सुविधा के लिये भाषागत और परंपरागत आधार पर नवीन प्रांतों का गठन किया तथा स्थानीय लोगों को भी प्रशासन में स्थान दिया। इनमें से अधिकांश की रुचि स्थानीय परंपराओं और संस्कृति को विकसित करने की थी, जिसका भविष्य मे दुष्परिणाम यह हुआ कि अपनी परंपरा को श्रेष्ठ और उच्च बनाने के लिये दूसरों की परंपरा और संस्कृति पर ये घातप्रतिघात करने लगे। अकबर का यह मूल ध्येय कि इन सबके सम्मिश्रण से एक सुसंगठित संस्कृति का निर्माण किया जाय, धीरे धीरे विलुप्त होने लगा। इस प्रकार जमींदारों ने जहाँ किसानों और श्रमिकों का शोषण किया, व्यापार के समुचित संरक्षण तथा शांतिमय प्रवर्धन मे बाधा डाल उसकी गति को कुंठित किया, वहीं क्षेत्रीय, वर्गीय, संप्रदायगत भावनाओं को उभाड़कर देश की सांस्कृतिक और भौगोलिक एकता को क्षतविक्षत करने का भी दुष्कर्म किया। किसान और व्यापारी के प्रति भी, जिनकी अतिरिक्त कमाई के शोषण पर उनकी विलासलीला चलती थी, उन्होंने प्रायः सोने के अंडेवाली कहावत ही चरितार्थ की।

जागीरदार जमींदारों के बाद दूसरा वर्ग था जो सरकार के लिये कर उगाहने का कार्य करता था। उसे जागीर की आय से केंद्रीय प्रशासन के लिये अपनी सेना तो रखनी ही पड़ती थी, नियत कर देने के बाद, उसे अपना खर्च भी उससे ही निकालना पड़ता था। जमींदार और इनमे अंतर यह था कि पहले को जहाँ वंशानुक्रम से संपत्ति का उत्तराधिकार मिल जाता था, वहाँ जागीरदार की नियुक्ति सम्राट् की स्वेच्छा पर होती थी और जागीरदार की सेवाएँ स्थानांतरित भी की जा सकती थीं। जागीरदार को भूमि के स्वामित्व पर किसी प्रकार का अधिकार न था। जागीरदार को किसानों से सीधे कर वसूलने का अधिकार मात्र प्राप्त था। केवल कृषि ही नहीं सभी प्रकार के क्षेत्रीय करों के वे संग्रहाधिकारी होते थे। इस प्रकार मूलतः इनकी गणना सम्राट्मुखापेक्षी सेवकों में की जानी चाहिए। मुगलों के समय मे इस नए शक्तिशाली वर्ग का उदय हुआ और प्रारंभ मे इनकी सेवाओं के परिणामस्वरूप किसानों तथा व्यापारियों के हित में सुधार भी हुए तथा शासन को लोकसंपर्क का स्वतंत्र, संगठित, दृढ़ आधार भी मिला। नई नई भूमि पर खेती भी आरंभ हुई। आवश्यकतानुसार किसानों को तकावी भी मिलने लगी तथा दैवी आपदा के समय इन्हें राजकीय सहायता भी प्राप्त होने लगी। धीरे धीरे इस प्रथा में भी

बुराई आरंभ हुई और विलासिता ने कार्यदक्षता का, व्यक्तिगत रागविराग और संबंध ने योग्यता का तथा प्रजाहित की मूल भावना ने व्यक्ति के तात्कालिक स्वार्थ का स्थान लिया। शासन के कोष से स्वयं मालामाल होने का उपाय भी इनके द्वारा आरंभ हुआ और बाद में प्रशासन में वर्गवाद उत्पन्न होने पर अपने पक्ष को शक्तिशाली बनाने के लिये दलपतियों ने इनके दुष्कृत्यों को बढ़ावा भी दिया। जमींदारों और शासन के बीच में अन्य जो प्रशासनिक छोटे मोटे अधिकारी थे, वे भी इन्हीं के रास्ते लगे। फलतः प्रशासनिक एकता के स्थान पर सामाजिक तथा आर्थिक धरातल पर दो वर्गों की स्पष्ट अवतारणा हुई। उत्पादक तथा प्रशासक दो वर्गों में समाज विभक्त हो गया। मूल शोषण किसानों और व्यापारियों का था। उनकी समस्त अतिरिक्त आय का उपयोग वे लोग करने लगे जो मूलतः विलासिता को जीवन का चरम साध्य मान बैठे थे। इसका दुष्परिणाम यह भी हुआ कि समाज में उत्पादक पूँजी का भी निर्माण न हो पाता था। फलतः शाहजहाँ के अंतिम समय से ही शासन को अर्थसंकट का अनुभव करना पड़ गया था। इसलिए इन नए वर्गों की स्थापना का अकबर का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो गया।

समाज के उच्चवर्ग में अमीर, उमराव लोग थे। इनपर समाज के निर्माण का नैतिक भार था। अकबर ने दूरदर्शी विचारक की भाँति उन्हे सुसंगठित रूप देकर स्वकर्तव्य के प्रति जागरूक किया। मनसबदारी प्रथा की जिस वैज्ञानिक दृष्टि से उसने रचना की, वह अपने मे पूर्ण थी तथा उसके द्वारा सम्राट् ने समर्थ लोगों का एक सुसंगठित समाज स्थापित किया। प्रारंभ में ये कुछ अर्थों में स्वतन्त्र थे। किंतु धीरे धीरे ये प्रशासनिक कर्मचारी के रूप मे विकसित हुए। इनकी अपनी एक संहिता थी, जिसके माध्यम से इनका वेतन, अधिकार और पदोन्नति होती थी। धीरे धीरे वंशपरंपरा द्वारा मनसबदारी की उपलब्धि ने योग्यता का तिरस्कार आरंभ किया। यद्यपि यह संगठन जाति और संप्रदाय निरपेक्ष था तो भी शासन मे बाद मे चलकर वर्गविशेष की सत्ता की स्थापना के साथ, योग्यता का बिना ध्यान रखे ही, उस वर्ग से संबद्ध लोगों की उन्नति की जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि अयोग्य लोग मनसबदार होने लगे और जितनी सेना उन्हे अपने पद के अनुरूप रखनी चाहिए, उतनी न रखकर भी, वे उच्चपद के अधिकारी हो जाते थे। ऐसे अयोग्य लोगों का वर्ग समय समय पर शासन में सत्तारूढ़ हो जाता था, फलतः शासन की शक्ति क्षीण होने

लगी। इसलिये प्रारंभ मे जहाँ राजपूत, बुंदेले, जाट, पहाड़ी राजा, ईरानी, तुर्क, उजबेक, अफगान सभी क्षेत्रों के योग्य लोग मनसबदार थे, वहीं धीरे धीरे वर्गविशेष के अयोग्य लोगों की संख्या शासन में बढ़ने लगी और शासनचक्र मे व्यापक दृष्टि का स्थान सकुचित स्वार्थ ने ग्रहण कर भेदमूलक स्थिति उत्पन्न की तथा प्रतिस्पर्द्धापूर्वक जातीय गुणों के विकास की भावना को नष्टकर छलछद्म का प्रभुत्व स्थापित किया। जहाँ पहले देशी और विदेशी तथा कश्मीर से लेकर दक्षिण तक के लोग प्रेम और सद्भावपूर्वक रहते थे, जहाँ अबिसीनिया तुर्की, मिस्र और अरब से लेकर ईरान और तूरान तक के लोग शासन को एक साथ दृढ बनाने का यत्न करते थे, और जहाँ हिंदू और मुसलमान बिना भेदभाव के, अपने धर्म मे अडिग आस्था रखते हुए भी, शासन की सत्ता को सर्वोच्च समझ उसके उन्नयन और विकास के लिये प्राणपन से सचेष्ट रहते थे वहीं इस स्थिति ने देशी और विदेशी की, एक जाति से दूसरे जाति की, एक संप्रदाय से दूसरे सप्रदाय की, यहाँ तक की शिया से सुन्नी तक की, परमविश्वासपात्र राजपूतों की मुगलों से और एक संप्रदाय से दूसरे संप्रदाय के बीच खाईं बना दी, जो दिनोत्तर बढ़ती ही गई। पौरुष से छलछद्म अधिक समर्थ सिद्ध हुआ और राजनीतिक दुश्चक्र ने नैतिकता को तिलांजलि दिला दी। फलतः शासन तंत्र, षड्यंत्र और कुनबापरस्ती का आगार बन गया और सर्वत्र सिक्खों से लेकर मराठों तक, मुगलों से लेकर पठानों तक, बुंदेलों जाटों से लेकर राजपूतों तक, स्वार्थ ने ऐसा बीज बोया कि सारी प्रशासनिक दृढ़ता, राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक सद्भाव देश से कपूर के बास की भाँति उड़ गया और अपने सकुचित क्षेत्र मे सर्वत्र संघर्ष, अविश्वास तथा मिथ्या आचार-व्यवहार ने अपना विघटनात्मक भयकर कुप्रभाव सारे समाज मे फैलाया। ऐसी स्थिति में धर्म भी इतने सबल न रह गए थे कि लोक और समाज की रक्षा कर सकते।

हिंदूधर्म और संस्कृति ने देश को अपने अजेय आत्मिक तत्वों से सूत्रबद्ध कर रखा है किंतु मध्यकाल में उसका रूप भी ओजस्वी न रह गया था। राम और कृष्ण की अवतारणा से जहाँ समाज को त्राण मिला था, विषम तमपूर्ण स्थिति को चेतन दृष्टि मिली थी, वहीं उनका विमल रूप व्यक्तियों ने स्वार्थवश परम कुत्सित बना दिया था। शील, शक्ति, सौंदर्य के आगार मर्यादापुरुषोत्तम राम रसिया बना दिए गए थे। परम सतीसाध्वी सीता विलासलीला रचाने

लगी थीं। योगीश्वर कृष्ण का वह रूप दृष्टि से ओझल हो गया था जिसके बल पर धरा को आसुरी वृत्तियों से मुक्त कराया गया था। वे अब राधा के छलिया प्रेमी के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। राधा के प्रति लोगों की रुचि शक्ति की अधिष्ठात्री के रूप में न रहकर रतिलीला के प्रतीक के रूप मे हो गई।

समाज मे नैतिक मूल्यों को स्थिर रखने तथा उनके माध्यम से लोगों को उत्प्रेरित कर सत् पथ की ओर अग्रसर करने का कार्य समाज मे उन लोगों का होता है, जो स्व को स्वाहा कर, युग को प्रकाश प्रदान करते हैं। ये धर्म के मूल स्तंभ जनसमाज को चेतना प्रदान करने के स्थान पर स्वयं विलास के लीलाचक्र में खो चुके थे। साधना एव तपस्या से इनका नाता रिश्ता नहीं रह गया था। विलासिता द्वारा सुखभोग इनके जीवन का आराध्य हो गया था। धर्मप्राण जनता जो गरीबी और शाषण से त्रस्त थी, इनकी शरण में भी आश्वस्त न हो सकी। पर उनकी विलासिता के समस्त आर्थिक साधनों का भार उसके ही ऊपर पड़ता था। इस प्रकार संप्रदायों, मठों, मंदिरों का सारा व्ययभार उठाकर भी जनता को वहाँ शांति नहीं मिल पाती थी और न किसी प्रकार का पथप्रदर्शन ही उसे वहाँ से प्राप्त था। इस प्रकार राजा से लेकर युग के धर्म के ठीकेदार तक विलासिता के रग में रंजित हो चुके थे और उन्हें अपने समाज, दीन, धर्म, ईमान किसी की चिंता नहीं थी।

ऐसी स्थिति में मानस के सस्कारकर्ता साहित्यकार का उत्तरदायित्व परम गहन हो जाता है। साहित्यकार ही क्यों, संगीत एवं कला के उन्नायकों का भी कृतित्व ऐसी परिस्थिति में समाज को उत्प्रेरित कर सकता है। कला और संगीत सभी युगों में सामान्य जन सुलभ नहीं रहा है। संगीत एक सीमा तक तो प्रत्येक युग मे व्यापक रहा है, किंतु कला धनाकाङ्क्षिणी है और धन पर आधृत तत्व, धनिकों की विभूति के प्रदर्शन की कामना के कारण, उनकी आकांक्षा के गुलाम रहते हैं।

देश में उस युग की कला का रूप स्थापत्य एवं चित्रकला में संरक्षित है और तत्कालीन संगीत के विकास का इतिहास उसकी वस्तुस्थिति का आज भी उद्घाटन करता है।

उस युग की इन सभी कलाओं का विकास राजाओं, सामंतों एवं जागीरदारों के संरक्षण में हुआ जो इनकी विलासितापूर्ण अलंकारी वृत्ति की उद्घोषणा करते हैं। तीनों राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल चित्रशैलियाँ

यत्किंचित अंतर के साथ उन्हीं मूल वृत्तियों का पोषण और संरक्षण करती मिलती हैं जो उस युग के विलास वैभवपूर्ण समाज मे परिव्याप्त थीं। हाँ, कहीं स्थानीय वातावरण के चित्रण के दर्शन अवश्य मिल जायँगे किंतु ये आंचलिक प्रतिवाद भी स्वल्प ही हैं। इन चित्रों मे पौराणिक उपाख्यानों से संबद्ध चित्र, नायक नायिका भेद के चित्र, रागरागिनियों के चित्र तथा व्यक्तियों के चित्र बहुत बड़ी संख्या में मिलेंगे। पौराणिक उपाख्यानों में चित्रकारों का केंद्रबिंदु वे ही उपाख्यान बने जो अलंकार से बोझिल तथा दैहिक आकर्षण से उद्दीप्त हैं। अन्य चित्रों मे भी अलंकरण का बोझ जहाँ सहज सौंदर्य को ढकता हुआ मिलेगा, वहीं चित्रों की भावभंगिमा उद्दाम मादकता से पूर्ण मिलेगी। रागरागिनियों के चित्र भी इन्हीं तत्वों से मडित मिलेंगे। ऋतुचित्रण के चित्र भी इन्हीं भावनाओं से पंकिल हैं। उनमें आकर्षण है, पर सहजता नहीं। उनमें काम की आग है, किंतु कला की ओजस्विता नहीं। उनमें प्रदर्शन का आकर्षण है, किंतु अंतर के आरक्षण की सात्विकता नहीं। उनमे काम का मद और रूपबंकिमता की माधुरी है, पर सतीत्व की शीतल कांति नहीं। उनमें विलास की उद्दाम कामना है, किंतु आनंद का प्रवाह नहीं।

इससे अधिक की आशा भी उस युग में उनसे नहीं की जा सकती थी क्योंकि जिनके संरक्षण में ये कलावंत जीवन पाते थे, उन सबकी दृष्टि दिल्लीश्वर को अपना आराध्य मानती थी। उनकी अनुकृति ही उनके जीवन का चरम साध्य थी। जिस भाँति के रहन सहन, आचार विचार और कला-संरक्षण तथा निर्माण के वे पोषक थे उसी रुचि को विधायक मानकर उन्हीं की अनुकृति पर दिल्ली दरबार से संबद्ध अमीर और मनसबदार कला का स्वरूप अपने यहाँ सामान्यतः गठित करते थे। मुगलदरबार इन सबकी प्रेरणा का केंद्र था। छोटे छोटे सामंत बड़े सामतों की अनुकृति करते थे अर्थात् सर्वत्र कला के क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण, आलंकारिक, परंपरागत, प्रदर्शनपूर्ण तथा कामैषणामय चित्रों का निर्माण होता था। यह क्रम हस्तलेखों और पांडुलिपियों के निर्माण में भी दृष्टिगोचर होता है। धार्मिक चित्रों और भित्ति चित्रों में भी इन्हीं तत्वों का उभार मिलता है और तबतक यह क्रम चलता रहा, जब तक कि इन अमीर उमरावों का, मुगल साम्राज्य का आर्थिक और प्रशासनिक पतन नहीं हो गया।

सगीत के क्षेत्र मे मुगलों के आगमन के पूर्व भारतीय संगीत चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। ध्रुपद जैसे गभीर और विशद शैली का प्रचलन ग्वालियर-नरेश मानसिंह के संरक्षण मे हो चुका था। उसका शास्त्रीय पक्ष और कलापक्ष दोनों ही अपनी गरिमा के शीर्ष पर थे। अकबर के दरबार तक सगीत का मान नहीं गिरने पाया किंतु उसके बाद मुसलमानों का संगीत के क्षेत्र मे व्यापक पैमाने पर प्रवेश आरंभ हुआ। संगीतशास्त्र के क्षेत्र मे पुंडरीक विट्ठल और गायन के क्षेत्र में तानसेन अकबर के दरबार के दो शृंग थे। जहाँगीर[1] के समय तक संगीत की स्थिति यथोचित रूप से जीवत थी और दामोदर पंडित-कृत संगीतदर्पण जैसे गौरवशाली ग्रथ की रचना इस क्षेत्र में मुगलदरबार का एक महत्वपूर्ण योग है। दिनोत्तर संगीत मे अलंकरण और मिश्रण की वृत्ति बढ़ती गई तथा कोमल राग-रागिनियों को विशेष प्रश्रय प्राप्त होता गया। संगीत मे माधुर्य का उपयोग और प्रयोग बढ़ता गया। सामतों के सरक्षण में रहनेवाले कलाकारों का भार इतना बढ़ा कि आर्थिक सकट मुगल साम्राज्य के समुख उपस्थित होने पर औरंगजेब[2] ने संगीत के राजकीय व्यय में कटौती की, यहाँ तक कि एक प्रकार का प्रतिबंध ही संगीत पर लग गया था।[3] नवाबों, अमीर, उमरावों के संरक्षण मे संगीत कला को प्रश्रय मिला और वहाँ उनकी सीमित रुचि के अनुसार ही उनके यहाँ उसका पल्लवन हुआ। यद्यपि राजाओं के भी प्रश्रय में भावभट्ट जैसे उत्कृष्ट संगीतशास्त्रज्ञ तथा रचनाकार इस युग में हुए तो भी सगीत में मौलिक उद्भावनाओं का क्रम समाप्त सा हो गया। सगीत मे भी अलकार युक्त चमत्कारिक प्रयोग और कामोद्दीपक अनुरजन की छिछली वृत्ति ने मूल स्थान प्राप्त किया और दिनोत्तर मुगल साम्राज्य के पतन तक यह वृत्ति बराबर कामुकता से संलिप्त हो जीवित रही तथा सगीत भी विलासिता का एक साधन मात्र था। संगीत आत्मा की चेतना को आनंदविलसित करने का माध्यम न रहकर व्यक्तिरजक कामुक भावभंगिमा से दिनोत्तर पंकिल होता गया।

स्थापत्यकला के क्षेत्र में मुगलों की देन परम गौरवशालिनी है। उपयो-

---

१. शासनकाल—सन् १६०५--१६२७ ई०।

२. शासनकाल--सन् १६५८--१७०७ ई०।

३. औरंगजेब—यदुनाथ सरकार।

गिता, गभीरता, विशदता और व्यापकता आदि मुगल स्थापत्यकला के मूलाधार थे। गरिमा के साथ सहज सतुलित गंभीर प्रभाव तत्कालीन स्थापत्य कला की चेतना के प्राण थे। किंतु अकबर के शासन के सुदृढ़ होते ही अलंकरण और पच्चीकारी ने इस क्षेत्र में अपना स्थान ग्रहण किया और दिनोत्तर इनका प्रभाव बढ़ता गया। इसका सर्वोत्तम दृष्टांत ताजमहल है। शाहजहाँ तक इस स्थापत्य कला में मौलिकता थी किंतु प्रभावाकर्षण और अलंकरण की प्रवृत्ति जहाँगीर के समय से ही उपयोगिता, गंभीरता और सहज भव्यता की अपेक्षा प्रदर्शन, कोमलता और लालित्य की ओर बढ़ती गई। तत्कालीन भवनों में पच्चीकारी तथा विलासपूर्ण भित्तिचित्रों, यहाँ तक कि रत्नालंकरण की वृत्ति का भी दर्शन होता है। साथ ही इसके विकास के लिये अतुल सापत्तिक साधन की भी अपेक्षा होती है। ताजमहल के निर्माण तक इस साधन का प्रयोग हुआ किंतु शाहजहाँ के ही जीवन के अंतिम दिनों मे ही मुगल साम्राज्य की आर्थिक स्थिति ऐसे निर्माणों के लिये सक्षम न रह गई थी। मुगलों की देखादेखी अन्यत्र भी भव्य प्रासादों का निर्माण हुआ किंतु औरंगजेब के बाद इस क्षेत्र मे कोई विशेष उल्लेखनीय कृति संमुख नहीं आई।

इस प्रकार स्थापत्यकला में भी अनुकरण, कोमलता, विलासिता, आलंकारिता तथा प्रदर्शन का आधिक्य इतना हुआ कि उसे उदात्त नहीं माना जा सकता तथा ये निर्माण लोकपरक न होकर व्यक्तिपरक हो उठे; भले ही कुछ मंदिर और मस्जिद इसके अपवाद माने जायँ।

साहित्य का क्षेत्र भी इसी भाँति का ही रहा। हिंदी साहित्य का निर्माण अवधी और ब्रज में मुगल शासन की स्थापना के तत्काल उपरांत हो रहा था और दिनोत्तर उसमे भी उन्ही प्रवृत्तियों का उन्नयन, पल्लवन और विकास हुआ जो कला के अन्य क्षेत्रों मे भी परिव्याप्त थीं।

श्रेष्ठ साहित्यनिर्माण के लिये उन्मुक्त वातावरण साहित्यकार की आधारभूत आवश्यकता है। आश्रय का संकोच इस निर्माणप्रक्रिया में मौलिक रचना के लिये अवरोध उत्पन्न करता है। उस युग में साहित्यकार के लिये उपलब्ध साधन नाना प्रकार के थे। मुगलो की सत्ता की स्थापना के आदिकाल में स्रष्टा सामान्यतः उन्मुक्त था और उसका आश्रयदाता भी उदारमना शासक था या वह लोकाश्रित था। लोकाश्रय के अतिरिक्त संप्रदाय का आश्रय भी सुलभ था।

---

१ शासनकाल सन् १६२७—१६५८ ई०।

लोकाश्रय मे रचित साहित्य सदा से उत्कृष्ट होता चला आया है और मुगलकाल के ही तुलसीदास का 'रामचरित मानस' उसका सर्वोत्कृष्ट प्रमाण हैं। आश्रय की विशिष्टता का प्रभाव रचनाकार की जीवनीशक्ति का निर्माता होता है। इस तथ्य का सारा प्रमाण मध्यकाल का हिंदी साहित्य है।

जिस समय मुगलों की सत्ता स्थापित हुई, उस समय फारसी, तुर्की और अरबी का उनके व्यक्तिगत आचार व्यवहार में जोर था। किंतु बाबर के विजयोत्सव में इब्राहीम लोदी की हार पर किसी हिंदी कवि का यह स्वर गूँज ही उठा—

'नौ सौ ऊपर था बत्तीसा, पानीपत मे भारत दीसा।
अठई रज्जब सुक्करवारा, बाबर जीता बराहीम हारा॥'[1]

और इस महान् तुर्क को 'पानी व रोती' का बोध यहीं हुआ। मुगलों को यह जानते देर न लगी कि यदि इस मुल्क मे अपने शासन को स्थाई करना है तो इस देश की भाषा को जानना, सुनना और समझना होगा। इसलिये हुमायूँ[2] के दरबार मे हिंदी कवियों का संमान आरंभ हुआ। शेख अब्दुल वाहिद बिलग्रामी और गदाई देहलवी जैसे फारसी के कवि हिंदी में भी रचनाएँ करते थे और छेम जैसे हिंदू कवि भी उसके दरबार में थे।[3] हुमायूँ के उपरांत शेरशाह शासक हुआ। वह स्वतः हिंदी का कवि था[4] तथा उसकी मुद्राओं और फरमानों पर नागरी अक्षरों का प्रयोग होता था। शेरशाह के समय मे ही जायसी जैसा अवधी का परम श्रेष्ठ कवि हुआ। वह भले ही सम्राट् का आश्रित नहीं था, तो भी उसने जी खोलकर सम्राट् के गुणों की प्रशसा की है[6] और सम्राट् के औरस असलेमशाह[7] स्वयं हिंदी के (ब्रजभाषा) कवि थे। शेरशाह सूरी की ही भाँति अकबर भी भारतभूमि की संतान था। हिंदी

---

१. मुगलकालीन भारत (बाबर)—सय्यद अतहर अब्बास रिजवी।

२. शासनकाल—सन् १५३०–१५४० तथा १५५६ ई०।

३. शिवसिंह सरोज—नवलकिशोर प्रेस, सप्तम संस्करण, पृ० १०२।

४. शासनकाल—सन् १५४०–१५५५ ई०।

५. उपमान—'फरीद'।

६. जायसी ग्रंथावली, (अखरावट)—रामचंद्र शुक्ल, पृ० ३८६।

७. संगीत राग कल्पद्रुम, खंड १।

कवियों को उसने जो संमान और आश्रय दिया वह किसी भी उसके पूर्ववर्ती मुगल सम्राट् के समय संभव न हो सका और यहाँ तक कि रीझकर नरहरि बंदीजन जैसे कवि की पालकी ही उठा बैठा।[1] अकबर परम निष्णात दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। वह जानता था कि कवि और भाषा का किसी राज्य और प्रशासन में क्या महत्व है। भले ही उसने फारसी को शासन की भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया तो भी उसके नवरत्नों में टोडर, बीरबल, तानसेन, रहीम, सलीम, अबुलफजल सभी हिंदी में भी कविता करते थे[2] और 'नरहरि' बंदीजन के काव्यानुरोध पर उसके द्वारा गोहत्या तक बंद करा देने की बात इतिहास-विदित है।[3] अकबर के दरबार में अधिकाश प्रशासक हिंदी के कवि तो थे ही, वे हिंदी कवियों के उन्मुक्त आश्रयदाता भी थे। उनके हृदय मे गंगा, यमुना और कृष्ण के प्रति भी प्रेम और स्नेह की बात थी। इन्होंने छंदों में विशिष्ट सफल प्रयोग भी किया। इनकी देखा देखी हिंदी काव्य को अमीरों और उमरावों सबके यहाँ संमान मिला और हिंदी कवियों को संमानजनक आश्रय भी।

जहाँगीर की जननी और जन्मभूमि दोनों हिंदी थी। वह हिंदी का रचनाकार[4] तो था ही हिंदी को उसने प्रोत्साहन और प्रश्रय भी दिया। वह हिंदी कवियों को दान और मान दोनों देता था।[5] उसका भ्राता दानियाल भी अहले हिंदी 'ब्रजभाषा' का कवि था। जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ को इस क्षेत्र मे हम और आगे पाते हैं। वह हिंदी का दक्ष कवि था और जन्मजात 'हिंदवी' था। यहाँ तक कि वह तुर्की जानता तक न था।[6] हिंदी के भांडार को वह सपन्न करना चाहता था। उसके समय में सारे मुगल साम्राज्य की लोक एव सपर्क भाषा ब्रज थी। वह हिंदी के साहित्यकारों का कद्रदाँ भी था। पंडितराज जैसी उपाधियों मे वह अपने विद्वानों, संगीतज्ञों और कवियों का संमान करता था। वह हिंदी में पत्राचार भी करता था। आलमगीर औरंगजेब

---

१. असनी के हिंदी कवि।

२. वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तानी—ग्रियर्सन।

३. मिश्रबंधु विनोद।

४. संगीत रागकल्पद्रुम, १। (बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता)

५. जहाँगीरनामा—ना० प्र० सभा।

६. शाहजहाँनामा।

के लिये भी हिंदी हराम न थी अपितु उसकी उपयोगिता के कारण वह उसके उपयोग और प्रयोग का हामी था। यह उपयोगिता लोकमंगल तथा शासन की सुविधा के कारण थी। इसलिये उसके दरबार के फारसीदाँ लोग भी हिंदी और उसकी कविता के प्रति आदर भाव रखते थे।

यद्यपि औरंगजेब का संमान अत्यंत आलकारिक वासना दीप्त करनेवाली रचनाओं को प्राप्त न था, तो भी नीतिविषयक हिंदी कविता के प्रति उसमे समादर भाव था। इसी लिये 'वृंद' जैसे नीतिवान कवि का वह स्वागत और सत्कार करता था। भूषण के बड़े भाई चिंतामणि यदि शाहजहाँ के दरबार की शोभा थे तो भूषण से कभी आलमगीर का भी सबंध था। कालिदास, कृष्ण और सामत जैसे कवि उसके प्रशंसक थे।[२] औरंगजेब हिंदी का कवि था।[3] हिंदी के सुरुचिपूर्ण विद्वानों के प्रति उसे मोह था। उसके अग्रज दाराशिकोह का संस्कृत और हिंदीप्रेम इतिहास की चर्चा का विषय है। उसका पुत्र आजमशाह हिंदी के कवियों का परम भक्त था। आलमगीर के कारण इसके लिये ब्रजभाषा व्याकरण तोहफतुल्फहिंद की रचना हुई। इससे स्पष्ट है कि औरंगजेब भी ब्रजभाषा को उस समय की लोकशिष्ट और काव्य की भाषा मानता था। आजमशाह स्वय हिंदी का कवि था। शाहआलम, बहादुरशाह भी हिंदी के अच्छे कवि थे। ब्रजभाषा या हिंदी से उनका प्रेम था। इनकी भी मातृभाषा हिंदी ही थी। लालकुँवर का चहेता जहाँदारशाह 'मौज' नाम से रचना करता था। सैयद बंधुओं के समय मे भी हिंदी कवियों को पर्याप्त राज्याश्रय मिला।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिंदी या ब्रजभाषा के काव्य को मुगलों का आश्रय प्राप्त था और वे उसे लोकभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित तो मानते ही थे, हिंदी के कवियों को व्यापक सम्मान भी देते थे। इनकी देखादेखी उनके सामत और आश्रित राजा भी यही करते थे। इन कवियों के लिये उस युग मे इस आश्रय के अतिरिक्त जीविका का अन्य कोई साधन न था। यद्यपि इनमे

---

१. संगीत रागकल्पद्रुम।

२. शिवसिंह सरोज।

३. मुलाकाते शिबली।

से अधिकतर गुणाग्राहक थे तो भी आश्रय आश्रयदाता की रुचि के कार्य के लिये आश्रित को स्वतः बाध्य कर देता है। मुगल पुरुषार्थी योद्धा थे, साथ ही साथ कला और निर्माण में नव रुचि रखनेवाले मनस्वी और ओजस्वी शासक भी। युद्ध और संघर्ष का जीवन मनोरंजन, सुख सुविधा और विलास से युद्ध की कटुता मिटाना चाहता है। ऐसी स्थितियों मे कवि उन आश्रयदाताओं का ध्यान रखता था और ललित एवं कलात्मक रचनाओं द्वारा उनका मनोरंजन भी करता था। औरतों के प्रति मुगलों में सम्मान की भावना बड़ी व्यापक थी, इसलिये उनके हरम का विस्तार भी कम व्यापक नहीं था। इसी लिये काम की ओर भी उनकी विशेष रुचि थी। उनके दरबार मे गाए जानेवाले संगीत तथा उनकी स्वयं की रचनाओं से यह स्पष्ट झलकता है कि वासना के प्रति उनमे मोह था। उनमें ही नहीं बल्कि प्रत्येक लड़ने-भिड़नेवाले सैनिक मे यह व्यामोह पाया जाता है। इसलिये कामवासनामयी उद्दाम रचनाएँ उन्हें रुचती थीं और कवि, संगीतज्ञ और चित्रकार भी उनकी रुचि का आदर करता था। ऐसी स्थिति में यह मानने मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि राज्य और अमीरों के आश्रित कवि स्रष्टा न रहकर कलावंत की कोटि के हो गए थे, जो अलंकरण द्वारा चित्ताकर्षण के लिये बारीक कारीगरी करने मे रियाज करते थे। जीवन की सहज सरल अभिव्यक्ति के प्रति वे प्रायः उदासीन मिलते हैं।

इन अमीरउमरावों के अतिरिक्त ब्रजभाषा के कवियों के आश्रयदाता विभिन्न संप्रदायों के मंदिर और मठ आदि थे। वैष्णव माधुर्य भावना में शील, शक्ति और सौंदर्य मे आस्था रखनेवाली रामभक्ति भी सराबोर हो चुकी थी। मंदिरों के महंथ और पुजारी कनक और कामिनी की उपासना से छलिया कृष्ण और रसिक राम को रिझाने का यत्न इसलिये भी कर रहे थे कि इसमें उनका दैहिक तथा भौतीक कल्याण था। मंदिरों और मस्जिदों पर चढ़ी श्रद्धाविलसित संपत्ति का उपभोग और उपयोग वे सामंतों की ही भाँति कर रहे थे; भले ही उनका बानक उनसे कुछ विलग था। सर्वत्र से निराश जनता भगवान् को एक मात्र शरणस्थली और इन मंदिरो तथा मठों को त्राणगृह तथा इनके महंथों को भाग्यविधाता मान उनके चरणों पर अपना पेट काट करके भी रागभोग, पूजा के लिये साधन प्रस्तुत करती थी। पर वहाँ माधुर्य रस भोग की दैहिक धारा में रासलीला के

बहाने रतिरास होता था। ऐसी स्थिति में इनके आश्रय में पलनेवाले कवियों को भी भक्ति की रागिनी में काम की बाँसुरी बजानी पड़ती थी। ब्रजभाषा की मधुरिमा तथा उसकी गीतिपरकता के कारण काम का स्वर उसमे खूब फबता था। प्रबंध की क्षमता का प्रदर्शन ब्रजभाषा के पूरे इतिहास मे नहीं के बराबर मिलता है। यदि कोई प्रबंध काव्य लिखा गया तो उसकी भाषा में निश्चय ही अन्य भाषाओं का संमिश्रण मिलेगा। भाषा के इस माधुर्य ने भी कवियों को इधर इस भाव बंकिमा की ओर मोड़ा।

जहाँ भी जीवन की पूर्णता नहीं होती वहाँ चमत्कार द्वारा आकर्षण उत्पन्न करने का यह यत्न किया जाता है। चकाचौंध भले ही अन्यत्र से ध्यान भंग कर अपनी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर ले, किंतु उसमे ध्यानमग्न करने की क्षमता नहीं; वह शक्ति तो जीवन के सहज कार्य व्यापार मे ही दीख पड़ती है। साहित्य इसका अपवाद नहीं। जिस साहित्य मे जीवन की सहज अभिव्यक्ति होगी, उसमे अलंकार भाव के प्रभाववर्द्धन करने के लिये स्वतः प्रकट हो चमत्कार उत्पन्न करेंगे और कंचन तथा काया दोनों की मौलिक सत्ता संस्थित रखते हुए भी वहाँ अलंकार शरीर को ढक न पायेगा, क्योंकि देही का देह के प्रति आकर्षण हो सकता है, जड़ता के प्रति नहीं, यदि जड़ता देह की दीप्ति को निखार दे सकती है तो मानव प्रकृति उसके सहज आलिंगन की अभिलाषुक होगी। इसलिये सहजता के अभाव मे चमत्कारिक अलंकरण की ओर उस युग का कवि और साहित्यकार चित्रकार तथा संगीतकार की भाँति मुड़ा ही नहीं, उसमे वह डूब भी गया।

शांति और सुव्यवस्था जहाँ समाज के विकास और सुखमंगल का द्वार खोलती है वहीं वह व्यक्ति को पुरुषार्थ और संघर्ष से विरत कर विलासिता की ओर भी उन्मुख करती है। मुगलकालीन समाज मे दो वर्ग स्पष्ट थे; सुख-साधन-संपन्न विलासोन्मुख वर्ग और जीवन के अस्तित्व की रक्षा कर अपना अस्तित्व किसी प्रकार बनाए रखनेवाला निर्धन वर्ग। दूसरे के लिये अन्न ही ब्रह्म था, अन्य किसी बात की चिंता के लिये उसके यहाँ स्थान ही न था। पर इन्हीं के पुरुषार्थ पर जीवित था पहला वर्ग जिसके लिये उस युग मे उपलब्ध समग्र विलासप्रसाधन सुलभ थे। कविता, चित्रकला, स्थापत्य और संगीत सब इसी वर्ग के लिये थे। विलासिता काम की भूखी होती है। काम यौवन से जीवन पाता है। वह देही का धर्म है। उसके धारण और प्रवर्द्धन के लिये उसकी

अनिवार्यता सृष्टि का अनादि सत्य है। जब काम शरीर पर इस सीमा तक अधिकार कर लेता है कि व्यक्ति कामांध हो जाता है तब उसका संबंध जीवन के अन्य तत्वों से भंग हो जाता है। इसका आधिक्य व्यक्ति के पुरुषार्थ को अनर्थकर भी कर देता है और उसे वासनाविजड़ित बना एकांत निकम्मा कर डालता है और अंतिम सीमा इस कामुकता की हविस मात्र रह जाती है। इसलिये सभ्य समाज मे काम का नहीं, कामुकतापूर्ण अंध वासना का प्रवेश वर्जित माना गया है, पर उत्तरमध्य युग मे धीरे धीरे इसका साम्राज्य ऐसा छाया कि शताब्दियों के उपरांत ही उसके धुंध से देश मुक्त हो सका। और तो और तत्कालीन काव्य के मानस का भी वह हृदयहार बन बैठा।

युग का साहित्य और उसकी परंपरा

ब्रजभाषा की उत्पत्ति भले ही शताब्दियों पूर्व की न हो, तथापि जिस प्रदेश की वह एक समय एकच्छत्र जनभाषा थी, उसका पूर्ववर्ती साहित्य संसार के प्राचीनतम साहित्यों में से अन्यतम है। उसके साहित्य की गरिमा विश्व के साहित्य में आज भी अक्षुण्ण है, उसकी प्राचीनता के कारण नहीं, उसके युग धर्म के कारण। उसके मूल में अर्थ, धर्म एवं काम की त्रिवेणी है। यह परंपरा देश के साहित्य को प्रत्येक युग मे प्राप्त रही है। यह स्वयं में इतनी विशद है कि सभी इससे अपने अनुकूल तत्व ग्रहण कर लेते हैं। मध्यकाल के साहित्य ने भी इसके एक पक्ष का उपयोग और प्रयोग किया, क्योंकि उसकी परंपरा भी कम प्राचीन नहीं। इसलिये देश की उस साहित्यिक परंपरा का जो, इस युग का मूलाधार है, दर्शन करना अप्रासंगिक न होगा। किंतु इसे देखने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक होगा कि इस युग में काव्य के विषय क्या थे? यदि उत्तर मध्यकालीन हिंदी साहित्य पर दृष्टिनिक्षेप किया जाय तो पिंगल, अलंकार, शृंगार, नीति, संत, भक्ति और संप्रदाय, चरित, कथा एवं प्रशस्ति काव्य के दर्शन होंगे। राग रागिनी, नाटक, कोशग्रंथ, कामशास्त्र, इतिहास, ज्योतिष, सामुद्रिक, गणित, वैद्यक, शालिहोत्र आदि अन्य विविध विषयों के वाङ्मय का भी दर्शन होगा। शुद्ध साहित्य का जहाँ तक प्रश्न है उसमे काव्य, कथा, कहानी को स्थान दिया जा सकता है जो गद्य, पद्य और चंपू तीनों रूपों में उपलब्ध है किंतु काम, संगीत, नीति आदि का उपयोग भी बराबर साहित्य के लिये किया गया है। यदि काव्य को लिया जाय तो काम,

प्रेम और शृंगार की रचनाएँ ही सर्वाधिक व्यापक पैमाने पर उत्तरमध्य काल मे दीख पड़ेंगी। भक्ति और शृंगार का साहित्य भी प्रायः उनसे मुक्त न दिखेगा। यह शृंगार भी मुख्यतया दरबारी वैभवरंजित विनोद विलसित तो मिलेगा ही, उसमें नख-शिख, नायिकाभेद, ऋतुवर्णन, अष्टयाम आदि विषय व्यापक परिधि में राधा कृष्ण के माध्यम से उपस्थित मिलेंगे। ये रचनाएँ अधिकांश में रस तथा अलंकार सिद्धांतानुरूप दोहा, कवित्त और सवैया छंद मे बद्ध मुक्तक शैली की हैं। अलंकारों मे श्लेष, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि का बाहुल्य मिलेगा। इन कविताओं में विलास की मादकता अतिरंजित रूप में उपस्थित मिलेगी और दरबारी चाटुकारिता (प्रशस्ति) और उक्ति वैचित्र्य का भी अभाव न मिलेगा। इसका आशय यह न माना जाय कि इस युग का सारा काव्य इसी ढाँचे में ढला है। अनेक कवियों की सहज प्रेम की उन्मुक्त कविताएँ भी इस युग मे मिलेंगी। किंतु वे भी भाषा एव शैली आदि की दृष्टि से युग के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं मानी जा सकतीं। इनमें से कुछ ने युगप्रचलित पद्धति पर भी प्रयोग किया है।

यद्यपि ऐसी रचनाएँ संवत् १५९८ से ही लिखी जा रही थीं[1] तो भी संवत् १७०० से संवत् १९०० वि० तक ऐसी रचनाओं का प्राधान्य रहा है। इस युग की अधिकाश रचनाओं में पाडित्य प्रदर्शन की रुचि दीखेगी। उनमें से कुछ कवि तो स्पष्टतः काव्यशास्त्र के लक्षण उपस्थित कर उदाहरण के रूप मे रचनाएँ प्रस्तुत करते हुए मिलेंगे और कुछ केवल काव्यशास्त्र के लक्षणों को आधार बनाकर काव्य प्रस्तुत करते हुए।

कुछ कवि अपने विलग विलग ग्रंथों मे इन सभी रूपों में उपस्थित हैं। दरबारी संस्कृति तथा जीवन पद्धति मे व्यक्ति के स्वतः गरिमास्थापना मे शास्त्रज्ञता सहायक सिद्ध हुई है और इसलिये दरबारों में पंडितों का महत्व चारणों से सदा अधिक रहा है। इसलिये इस गुरुता का लाभ उठाने के लिये भी पाडित्य प्रदर्शन की आवश्यकता तत्कालीन साहित्य एवं कला मे रही है और आज के युग में भी तो अधिकांश लोग अपनी रचनाओं की पाडित्यपूर्ण व्याख्याओं का व्यामोह संवरण नहीं कर पा रहे हैं। यह वृत्ति भी तत्कालीन कवि के साथ ही नहीं, सगीतज्ञ और चित्रकार के साथ भी जुड़ी हुई दीखती है।

१. कृपाराम—हिततरंगिनी।

इसलिये जो कवि शास्त्रज्ञान के प्रदर्शन से विरत रहे हैं, वे भी रचना करते समय शास्त्रज्ञान के प्रति अज्ञता का संकेत नहीं देना चाहते थे। शास्त्र की कुछ मान्यताओं के उल्लेखमात्र से कभी कभी तो इन मुक्तकों की सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक भूमिका भी प्रच्छन्न रूप से प्रस्तुत हो जाती थी। यह व्यामोह भी किसी रचनाकार के लिये कम आकर्षण की बात नहीं है। इसीलिये सहज प्रेम मे डूबे हुए कवियों की उन्मुक्त अनुभूतियों को भी लोगों ने और कभी कभी उन्होंने स्वय भी उसी रंग और ढाँचे मे वर्गीकृत करके ही छोड़ा है।

इस युग के ऐसे साहित्य के संबंध मे नामकरण को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। कोई इसे अलकृत काल[1], कुछ लोग शृंगार काल[2] और कुछ लोग इसे रीति शृगार[3] युग के नाम से संबोधित करते हैं। ये सभी जानेमाने विद्वान् और पंडित हैं तथा अपने पक्ष में प्रबल तर्क भी देते हैं। हिंदी आलोचना के क्षेत्र मे शुक्लजी का मानदंड इतिहास के क्षेत्र मे मेरुदंड की भाँति प्रतिष्ठित है। उन्होंने इसे रीतिकाल[4] की संज्ञा दी है। अलंकारकाल नाम रखने का आग्रह अब मृतप्राय है। शृंगार के आग्रही पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र के ये तर्क इस प्रसंग में विचारणीय हैं। "रीतिकाल" नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि उस काल के अच्छे अच्छे शृंगारी कवियों को छाँट कर पृथक् करना पड़ा। आलम, ठाकुर, घनानंद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमंगभरे कवि किसी रीति ग्रंथकार से काव्योत्कर्ष में कम नहीं; पर 'रीति' की सीमा मे ये न समा सके। रीतिकाल की शृंगारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालों ने भी लक्षित की है, और अलंकृत काल नाम रखनेवालों ने भी। पर रीति या अलंकार शास्त्र की ग्रंथराशि ने एकत्र होकर इन्हीं नामों की ओर उन्हें आकृष्ट किया। फलतः शृंगार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के सबंध मे पीछे छूट गई। बात यहीं तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बड़ी कठिनाई काल के विभाजन की

---

१. मिश्रबंधु विनोद।

२. हिंदी साहित्य का अतीत (भाग २)—विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

३. हिंदी का रीति साहित्य।

४. हिंदी साहित्य का इतिहास।

आ गई, पर गृहीत नामों ने यह मार्ग छेंक रखा। 'अलंकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमें भेद का स्पष्ट केत काई नहीं। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने समस्त काव्यांगों का वर्णन करनेवाले और किसी एक अंग का वर्णन करनेवालों को पृथक् किया है। पर सभी काव्यांगों के विवेचकों ने भी एक एक काव्यांग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे चिंतामणि, दास आदि ने। अतः रीति में उपविभाग का मार्ग संकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखें, अलंकृतकाल और रीतिकाल नाम व्यक्ति के बोधक नहीं प्रतीत होते उन्हें हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की स्पष्ट अपेक्षा जान पड़ती है।'[1]

आचार्य शुक्ल को रीतिकाल के स्पष्ट विभाजन का मार्ग नहीं मिला[2] जिसे प० विश्वनाथजी मिश्र ने उद्घाटित करने के लिये शृंगारकाल की स्पष्ट अपेक्षा का अनुभव किया पर रीतिकाल के सामान्य परिचय के प्रसंग में शुक्लजी स्वय स्पष्ट कर चुके हैं कि 'इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।'[3] रीतिबद्ध रचना के उपविभाग का संगत आधार उन्हें अवश्य नहीं मिला, पर जो ऐसा फर्माते हैं कि उन्होंने इसका मार्ग प्रशस्त कर दिया है, संभवतः अपना मन बहलाने के लिये उनका यह खयाल मात्र है। किसी विवाद में न पड़कर भी यहाँ स्थिति स्पष्ट कर देनी आवश्यक है।

शृंगार की रचनाएँ हर युग में हुई हैं। उस रस के श्रेष्ठ कवि, ऐसे श्रेष्ठ कवि जिनकी तुलना में इस काल का शृंगारपरक काव्य तुलता नहीं जैसे विद्यापति, सूर आदि और भारतेंदु तथा प्रसाद आदि, इस युग की देन नहीं हैं और सारे हिंदी साहित्य को ही आधार बना लिया जाय तो शृंगार का साहित्य सबसे अधिक मिलेगा और प्रत्येक युग में मिलेगा। ऐसी स्थिति में किसी युगविशेष में इसे सीमित करना रसराज का समुचित सम्मान नहीं होगा।

---

१. हिंदी साहित्य का अतीत (भा० २)।

२. हिंदी साहित्य का इतिहास।

३. हिंदी साहित्य का इतिहास।

फिर उपवर्गों की समस्या खड़ी होती है। शुक्लजी ने केवल दो उपवर्ग किए हैं—रीति ग्रंथकार कवि एव अन्य। प्रथम में उन्होंने दो वर्ग किए हैं। एक वे जिन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों प्रस्तुत किए हैं, और दूसरे वे जिन्होंने काव्य के लक्षणों को ध्यान मे रखते हुए रचनाएँ की हैं। पर उपवर्गों के विभाजन की मिश्र जी की प्रक्रिया निम्नाकित है—
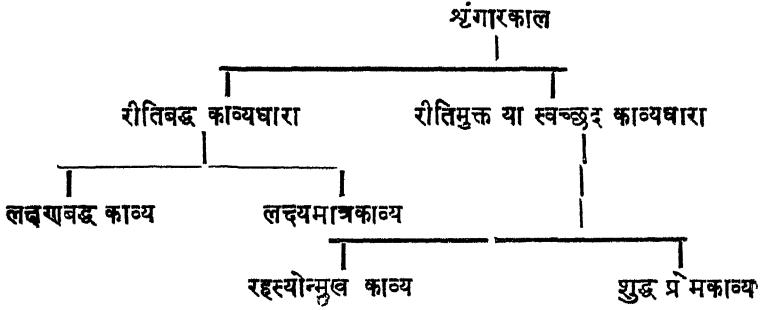
एक उपवर्ग की चर्चा मिश्रजी ने और की है जो ऊपर के वर्गीकरण मे ही समाहित हो जाएगा। वह उपवर्ग रीतिसिद्ध कवि का है। रीति से सहारा लेकर अपनी स्वतंत्र सत्ता चाहनेवाले अर्थात् ऐसे मध्यमार्गी जिन्होंने रीति की सारी परंपरा सिद्ध कर ली हो पर लक्षण ग्रंथ प्रस्तुत न करके स्वतंत्र रीति से बँधी परिपाटी के अनुकूल रचनाएँ की हों। व्यक्तिगत विशेषताओं के स्फुरण के कारण इनकी विशेषताएँ स्पष्ट हैं।[1] मिश्रजी का यह उपवर्ग लक्ष्यमात्र काव्य में ही समाहित कर लिया जाना चाहिए, या उसका भी वर्गीकरण कर उसे व्यापक बना लेना चाहिए। यदि उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण को देखा जाय तो श्रृंगारकाल के प्रत्येक मुख्य वर्गीकरण के साथ रीति शब्द संबद्ध मिलेगा। इसलिये रीति शब्द की व्यापकता यहाँ भी अपना प्रभाव असामान्य रूप में प्रकट करती है। नीति, भक्ति, कथात्मक प्रबन्ध, फुटकर पद्यलेखन, ज्ञानोपदेश, प्रशस्ति तथा गद्य का आख्यान इस वर्गीकरण मे समाहित न होंगे। यद्यपि श्रृंगार शब्द का प्रयोग मिश्रजी ने काव्यशास्त्रीय और व्यावहारिक दोनों अर्थों में ग्रहण कर उसे व्यापकता प्रदान की है तो भी उनका यह वर्गीकरण कोई ऐसा द्वार नहीं खोलता जिससे शुक्लजी द्वारा अनुभूत समस्या का समाधान प्रस्तुत

---

१. हिंदी साहित्य का अतीत।

हो जाय और इस दिशा मे राजमार्ग का निर्माण हो। ऐसी स्थिति मे आवश्यक यह होगा कि यह स्वयं देख लिया जाय कि उस युग में स्वयं रचनाकारों ने अपने काव्य के लिये कौन सी संज्ञा का प्रयोग किया है।

सामान्यत: जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो संस्कृत साहित्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। रीति को काव्य की आत्मा घोषित करनेवाले वामन 'विशिष्ट पद रचना'[1] के रूप मे उपस्थित करते हैं और हिंदी शब्दसागर भी इसी व्याख्या को स्वीकार करता है।[2] इस काव्यांग के वैदर्भी, गौड़ी और पाचाली त्रिवर्ग हैं। जिस अर्थ मे वामन ने इसका प्रयोग किया है, उसी अर्थ मे हिंदी मे इसका प्रयोग मध्यकाल में कवियों ने नहीं किया है। 'कबित बिबेक' की बात तो तुलसीदास भी कर गए हैं[3], किंतु चिंतामणि[4], केशव[5], भूषण[6], मतिराम[7], देव[8], सोमनाथ[9], सूरति[10], दास[11], बेनी[12], पद्माकर[13],

---

१. 'विशिष्टा पदरचना रीतिः।' —काव्यालंकार सूत्रवृत्ति।

२. 'साहित्य में किसी विषय का वर्णन करने में वर्णों की वह योजना जिससे ओज, प्रसाद, माधुर्य आता है।' —पृ० २९५२।

३. रामचरित मानस।

४. 'रीति सुभाषा कवित की बरनत बुध अनुसार।'

५. 'समुझै बाला बालकन हूँ वर्णन पंथ अगाध।'

६. 'सुकबिन हूँ की कछु कृपा, समुझि कबिन को पंथ।'

७. 'सो बिश्रब्ध नवोढ़ यों बरनत कबि रसरीति।'

८. 'अपनी अपनी रीति के काव्य और कबिरीति।'

९. 'छंद रीति समुझै नहीं बिन पिंगल के ज्ञान।'

१०. 'बरनन मनरजन जहाँ रीति अलौकिक होइ।
निपुन कर्म कबि कौ जु तिहि काव्य कहत सब कोइ'।

११. बदौं सुकविन के चरन अरु सुकविन के ग्रंथ।
जाते कछु हौं हूँ लह्यौ, कबिताई कौ पंथ।'
'काव्य की रीति सिखी सुकबीन्ह सों।'
'अरु कछु मुक्तक रीति लखि, कहत एक उल्लास।'

१२. 'या रस अरु नव तरंग में, नवरस रीतिहि देखि।'

१३. 'ताही को रति कहत हैं रस ग्रथन की रीति।'

प्रतापसाहि[1], दूलह[2] आदि सभी ने कवित्त रीति, काव्यरीति, कबिरीति, कबितरीति, छंद रीति, मुक्तकरीति, कवितापंथ, वर्णनपथ, कविपंथ आदि का प्रयोग अपने साहित्य मे किया है। इस प्रकार 'रीति' शब्द का उपयोग और प्रयोग साहित्य की रचना विधा के लिये किया गया है। वह पंथ के पर्यायी रूप मे भी व्यवहृत हुआ है। पथ और रीति को शुक्लजी ने परिपाटी या ढंग के रूप में अंगीकार किया है।[3] यह भी रीति या पंथ का पर्याय ही है। ऐसी स्थिति मे जो लोग रचना विधा के आधार पर नाम रखने के पक्षपाती हैं उनको उस युग के काव्य से भी उसका समर्थन प्राप्त हो जाता है। इसलिये इस शब्द को ऐतिहासिक समर्थन भी प्राप्त है। संस्कृत मे 'रीति' पंथ के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हो चुका है। इसलिये रीति शब्द का प्रयोग जिस व्यापक पैमाने पर उस काल की संज्ञा के लिये हुआ है उसे देखते हुए यह शब्द हिंदी जगत, मे एक विशेष अर्थ के लिये रूढ़ हो गया है। उसका नया नामकरण वह अर्थगरिमा प्रतिष्ठित नहीं कर सकता क्योंकि चलन मे आने के उपरांत जब किसी शब्द का प्रतिमानीकरण हो जाता है तब उससे अभिव्यक्त भाव को दूसरे नए शब्दों मे व्यक्त करनेवाला उसके अर्थविस्तार की सीमा का संकोच कर देता है।

इसलिये काव्य रचना-पद्धति के अर्थ मे व्यवहृत रीति शब्द के आधार पर इस युग का नामकरण अप्रासगिक और अनुपयुक्त न होगा अपितु सर्वथा उपयुक्त ही है। इससे वर्गीकरण में भी सरलता होगी और युग के काव्य की सभी पद्धतियों का वर्गीकरण भी अपेक्षाकृत अधिक सहजता से उपस्थित किया जा सकेगा।

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के वर्गीकरण मे आचार्य शुक्ल के 'अन्य' के स्थान पर रीति-मुक्त या स्वच्छंद काव्यधारा की स्थापना की गई है। रीति से मुक्त काव्य की कल्पना आज के युग मे भी कोई सिद्ध विद्वान् करने के लिये तैयार नहीं है। ऐसी स्थिति मे सुजान पंडित मिश्रजी की स्थापना विशेष महत्व की नहीं है। जिस युग के काव्य के वर्गीकरण की बात है उस युग में

---

१. 'कवित' रीति कछु कहत हौं व्यग अर्थ चितलाय।'

२. 'थोरे क्रम क्रम ते कहत अलंकार कही रीति।'

३. 'हिंदी साहित्य क इतिहास।

ब्रजभाषा प्रवीन, सुंदरता के भेद को जाननेवाले, रीति के पथ मे कोविद कवियों को इस वर्ग मे ला बैठाना रीतिमुक्ता की संज्ञा को स्वयं निस्सार कर देता है। रही स्वच्छंद संज्ञा की बात। काव्य के अंतरंग पक्ष अनुभूति पर विशेष ध्यान देनेवालों को स्वच्छंदता की संज्ञा मिश्रजी ने प्रदान की है। अनुभूति के बिना पद-रचना भले ही की जा सकती हो पर काव्यरचना नहीं। यदि यह बात सही है तो जिन रीतिबद्ध कवियों के काव्य को मिश्रजी कविता मानते हैं, उनमे अनुभूति अपनी उनकी अवश्य ही होगी, भले ही उसका तेज उतना प्रभावान् न हो जितना इनका हो सकता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि इस वर्गीकरण के स्वच्छंद लोगों ने साधन पक्ष पर ध्यान ही न दिया हो। केवल अनुभूति की अभिव्यक्ति ही कविता नहीं है अपितु साधन (बहिरंग) के संयोग से उसकी सृष्टि होती है। ऐसे कवियों ने भी साधन का अच्छी तरह उपयोग और प्रयोग किया है चाहे वह रसखानि हों या घनानद हों। इसलिये अन्य में किया गया वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। रीतिबद्ध छाप का एक कवि कहीं सर्वांगनिरूपक, कहीं एकांगनिरूपक है उसी प्रकार अन्य वर्ग का भी कहीं रीतिबद्ध भी है। इसलिये कवि नहीं काव्य का वर्गीकरण होना चाहिए। एक ही कवि कहीं रीतिबद्ध और कहीं 'अन्य' रूप मे भी मिलेगा। इस दृष्टि से इस युग के काव्य का वर्गीकरण निम्नांकित रूप से करना अनुचित न होगा।
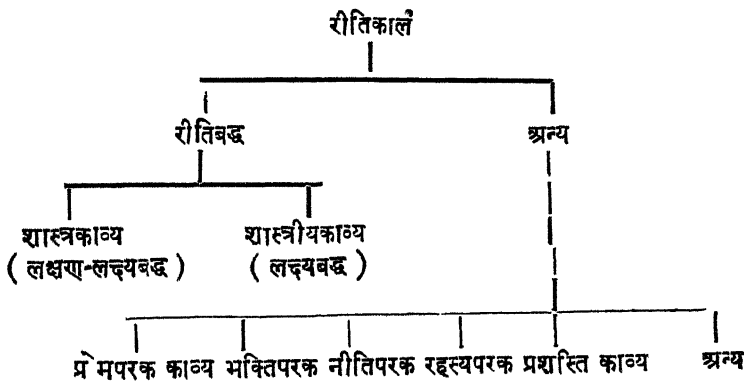
रीतिबद्ध हों या रीतिमुक्त, उस युग के सभी कवियों ने पदसंघटना या पदरचना मे विशेष सावधानी बरतने तथा क्षेत्र विशेष मे विशेष रीति के संयोजन का यत्न किया है। किसी की दृष्टि काव्यांग

के अलंकार पर, किसी की छंद पर, किसी की भाषायोजना पर, किसी की उक्तिवैचित्र्य पर, किसी की रसराज शृंगार के आलंबन नायक नायिका की रचना पर रही है। प्रेम के उन्मुक्त गायक कवि घनानद, आलम, बोधा और ठाकुर भी इस प्रभाव से अपने को सर्वथा मुक्त घोषित कर सकने की स्थिति में नहीं हैं।[1] इसलिये उस युग की व्यापकतर रचनायोजना इस संज्ञा में समाविष्ट हो जाती है। इसलिये इस युग को रीतिकाल के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए।

रीतियुगीन काव्य में शृंगारपरक काव्य की प्रधानता है। रीतिकाव्य का कवि कामशास्त्र के प्रति भी आकृष्ट है। क्योंकि शृंगार के आलंबन नायक और नायिका के संयोजक रति का वह विज्ञान है। काम की मर्यादित उपासना मनुष्य का अनादि धर्म और उसकी सभ्यता का एक आवश्यक अंग है। मनुष्य में उसकी स्वतः उत्पत्ति होती है और वह स्वयं भी रतिक्रिया के सुफल का परिणाम है। कामशास्त्र में नरनारी के रतितत्वों एवं संबंधों का अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। नरनारी का रतिसंबध ही मनुजसृष्टि का प्रवर्तक और उसकी सभ्यता के विकास का परिचायक है। मानवसृष्टि के प्रत्येक क्षेत्र में इसके संबध में विवेचन किया गया है और ज्ञान तथा विवेकपूर्वक देश काल के अनुसार इसके संबंध में अपनी मान्यताएँ स्थापित की गई हैं। साहित्य में इसकी अपनी मान्यता एवं गरिमा है। साहित्य को इसकी दृष्टि से देखनेवालों की दृष्टि मे इसका अक्षुण्ण और अनादि महत्व है। रसराज शृंगार के स्थायीभाव के रूप में रति प्रतिष्ठित है। इसलिये साहित्यशास्त्र के आदि ग्रंथ नाट्यशास्त्र से लेकर आज तक के साहित्यशास्त्र के ग्रथों पर

---

१. ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त बनावै॥
—ठाकुर

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीन औ सुंदरतानि के भेद कौ जानै।
जोग बियोग की रीति मैं कोविद भावना भेद स्वरूप को ठानै।
चाह के रङ्ग मैं भीज्यौ हियो बिछुरे मिलें प्रीतम शांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहे सो घन जी के कवित्त बखानै॥
(घनआनंद के संबंध में)—ब्रजनिधि

कामशास्त्र का प्रभाव सीधे या परोक्षरूप से पड़ा है। यह साहित्य के अध्ययन, मनन और विश्लेषण में अपना प्रभुत्व रखता है। इसलिये कामशास्त्र के अध्ययन के लिये सभ्य समाज मे वय की सीमा का निर्धारण कर दिया गया है, क्योंकि इसका बोध यौवन के साथ होता है। इसलिये रति को रहस्यमय भी रखा गया है और सभ्य समाज में इसे गोपनीयता का अधिकारी माना गया है। काम और रति सार्वकालिक नहीं, क्योंकि काम की शक्ति रति बालधर्म ब्रह्मचर्य की शक्ति के विकास मे बाधक है। इसलिये प्रौढ़ों की ज्ञान-संपदा का यह गुह्य अंश रहा है ताकि बालकों पर या समाज के ऐसे वर्गों पर इसका असमय प्रभाव न पड़े जो इससे नातारिश्ता रखने के अधिकारी नहीं हैं। सभ्य समाज मे रक्तवर्ण की मर्यादा सुरक्षित रखने तथा रूपमाया से मुक्ति के लिये भी इसका ज्ञान इस देश में आवश्यक माना गया है। मनीषियों ने कामशास्त्र के व्यापक वाङ्मय का प्रणयन इस देश मे किया, जिसकी मर्यादा में एतत्संबंधी विश्व का साहित्य अतुलनीय है। कामशास्त्र में रतिरहस्य या रतिशास्त्र का मूलतः अध्ययन किया जाता है। साहित्य में शृंगार का स्थायी भाव भी रति ही है; अतएव सहज ही दोनों का भावयोग इस क्षेत्र में हो उठता है। इसलिये कामशास्त्र से साहित्य तत्त्व ग्रहण करता है। वात्स्यायन का कामसूत्र रतिशास्त्रों का एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ है जिसकी इस देश में अपने क्षेत्र में अनन्य गरिमा है। कामसूत्र में चार प्रकार की—कन्या, भार्या, परदारा और वेश्या—स्त्रियों का वर्णन है।[1] इसी के अंतर्गत पूर्वाचार्यों द्वारा नारी का किया गया वर्गीकरण भी—परपतिगृहीता (परकीया), तृतीया प्रकृति (क्लीबा), विधवा, प्रव्रजिता, गणिकापुत्री, परिचारिका तथा कुलयुवती—अंतर्भुक्त कर लिया गया है। केवल कामशास्त्र में ही नहीं; शृंगाररस के आलंबन विभाव नायिकाभेद के अंतर्गत भी स्त्रियों का वर्गीकरण किया गया है जो कामशास्त्र से प्रभावित है। कामसूत्र के 'कन्याविश्रम्भणम्' नामक अध्याय मे नवोढा को विश्रब्ध करने के साधन भी वर्णित हैं जिनसे प्रकट होता है कि समय का साधन पाकर नवोढ़ा विश्रब्ध नवोढा हो जाती है।[2] साहित्य मे प्रयुक्त कामशास्त्र से प्रगृहीत नायिकाभेद संबंधी इस प्रकार के अनेक दृष्टांत उपस्थित किए जा सकते हैं। 'अग्निपुराण' मे व्यास,

---

१. कामसूत्र, १ । ५ । ४, ५, २७, २२, २३, २४, २४, २६ ।

२. कामसूत्र, ३ । २ ।

'शृंगार तिलक' में भोजराज और 'रसतरंगिणी' में भानुमिश्र, जो नायिकाभेद के विशिष्ट संस्कृत आचार्य हैं, वात्स्यायन के कामसूत्र से स्पष्ट प्रभावित हैं। वात्स्यायन का कामसूत्र नायिकाभेद के प्रसंग मे दूती प्रकरण के लिये काव्यशास्त्र के आचार्यो का पथप्रदर्शक रहा है। वात्स्यायन के कामशास्त्र के अतिरिक्त कक्कोक विरचित रतिरहस्य, रसिककृत अनंगरग, पंचशायक तथा हरिहर की शृंगारदीपिका ने काव्यशास्त्र पर अपनी छाप लगाई है। इन ग्रथों में 'रतिरहस्य' का प्रभाव कामसूत्र के उपरांत सर्वाधिक प्रगाढ़ रहा है। इस ग्रंथ मे पूर्ववर्ती आचार्य नंदिकेश्वर द्वारा रूप, प्रकृति एव वासना के आधार पर वर्गीकृत पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी, चार प्रकार की नायिकाओं का वर्गीकरण उपस्थित किया गया है।[1] कामशास्त्र के इस वर्गीकरण को काव्यशास्त्र में आदरपूर्वक ग्रहण किया गया। हिंदी और संस्कृत दोनों के साहित्यशास्त्रों मे यह वर्गीकरण है, भले ही व्यापक रूप से इसने स्थान न बनाया हो।

साहित्य एवं कामशास्त्र में सुरक्षित तथा लोकजीवन मे प्रतिष्ठित शृंगार के स्थायी भाव रति के रहस्य की यह परंपरा समय समय पर साहित्य में फूली फली और श्रीमय हुई तथा भावी साहित्य के लिये इसने प्रेरणास्रोत के रूप में योगदान दिया। साहित्य मे शृंगार रसराज के रूप में प्रतिष्ठित है। काम और रसराज का यह सनातन सबंध प्रत्येक युग के साहित्य में काल और देश की सीमा लाँघकर सुरक्षित है। इसलिये परंपरा से प्राप्त शृंगार की गरिमा का परिज्ञान, जो रीतिकालीन हिंदी साहित्य का मूलाधार था, यहीं कर लेना आवश्यक है।

भारतीय साहित्य मे रस की महत्ता अनादिकाल से चली आ रही है। यह भरत के नाट्यशास्त्र से भी अधिक प्राचीन है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे 'द्रुहिण' को[2] इसका आविष्कारक माना है। शब्द भी हिंदी शब्दसागर में रस की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"रसनेंद्रिय का संवेदन या ज्ञान...साहित्य में वह आनंदात्मक चित्तवृत्ति या अनुभव जो विभाव, अनुभाव और सचारी से युक्त किसी स्थायी भाव के व्यंजित होने से उत्पन्न होता है।

---

१. रसमंजरी, पृष्ठ ६।

२. 'एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना।'—नाट्यशास्त्र।

विशेष—हमारे यहाँ के आचार्यो मे इस विषय मे बहुत मतभेद है कि रस किसमे और कैसे अभिव्यक्त होता है। कुछ लोगों का मत है कि स्थायी भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से उन लोगों में होती है, जिनके कार्यों का अभिनय किया जाता है (जैसे—राम, कृष्ण, हरिश्चंद्र आदि) और गौण रूप से अभिनय करनेवाले नटों में होती है। अतः इन्हीं मे ये लोग रस की स्थिति मानते हैं। ऐसे आचार्यों का मत है कि अभिनय देखनेवालों या काव्य पढ़नेवालों के साथ रस का कोई संबंध नहीं है। इसके विपरीत अधिक लोगों का यह मत है कि अभिनय देखनेवालों तथा काव्य पढ़नेवालों में ही रस की अभिव्यक्ति होती है।

ऐसे लोगों का कथन है कि मनुष्य के अंतःकरण मे भाव पहले से ही विद्यमान रहते हैं, और काव्य पढने अथवा नाटक देखने के समय वही भाव उद्दीप्त होकर रस का रूप धारण कर लेते हैं। यही मत ठीक माना जाता है तात्पर्य यह है कि पाठकों या दर्शकों को काव्यों अथवा अभिनयों से जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है, साहित्यशास्त्र के अनुसार वही रस कहलाता है।

हमारे यहाँ रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन नौ स्थायी भावों के अनुसार नौ रस माने गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं;—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शात। दृश्यकाव्य के आचार्य शात को रस नहीं मानते, वे कहते हैं कि यह तो मन की स्वाभाविक भावशून्य अवस्था है। निर्वेद मन का कोई स्वतंत्र विकार नहीं है। अतः वे रसों की सख्या आठ ही मानते हैं। और कुछ लोग इन नौ रसों के सिवा एक और दसवाँ रस 'वात्सल्य' भी मानते हैं।"[1]

संस्कृत साहित्य मे रससिद्धात का विवेचन और विस्तार अत्यंत व्यापक है और रस को काव्य की आत्मा माननेवालों की कमी कभी भी भारतीय साहित्य मे नहीं रही है। हिंदी हो या सस्कृत या अन्य कोई भारतीय भाषा, सर्वत्र रस साहित्य के सनातन मानदंड के रूप मे प्रतिष्ठित मिलेगा। साहित्य में रसों की संख्या नौ मानी गई है यद्यपि उसे यथावश्यकता बढ़ाने का क्रम कुंठित नहीं हुआ है। किंतु इन नव रसों के भीतर ही रीतिसाहित्य रचना की समस्त लीला क्रीड़ा करती है।

---

१. हिंदी शब्दसागर, पृ० २९०७, २९०८।

रीतिकाल का व्यापक साहित्य शृंगार में अंतर्भुक्त है। जहाँ आचार्य भरत ने इसे 'यत्किञ्चिल्लोके शुचिमेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणोपमीयते' माना है वहीं पद्माकर का कथन है कि 'नवरस में शृंगार रस सिरे कहत सब कोइ।'[1] अग्निपुराण में इसकी उत्पत्ति परब्रह्मजन्य अहंकार से उद्भूत ममता के रूपांतर से बताई गई है और इसे आदि रस भी घोषित किया गया है। संस्कृत साहित्य में शृंगार के भीतर ही नवों रसों की स्थिति मानी गई है।[2]

शृंगार शब्द शृंग तथा आर दो शब्दों के योग से बना है, जिसका अर्थ कामवृद्धि की उपलब्धि है। काम की प्राप्ति जीवन के चेतन एवं यौवन का मूल धर्म है। शृंगार इसे धारण करता है। इस शृंगार का स्थायी भाव रति है, जो सृष्टि के प्रवर्धन का मूल आधार भी है। नरनारी सृष्टि की विधायिका रति अनंग की वामा है। सृष्टिवृद्धि का यह आदि, सनातन और एकमात्र मूल कारण है। ऐसी महिमामयी को भारतीय लोकजीवन में देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है और गृहस्थ के परमधर्म कुलवृद्धि के अधिष्ठाता देव के रूप मे काम भी वंदनीय और पूज्य है। काम का संबंध जीवन के उस प्रदेश से है जहाँ मानव को यौवन का बोध होता है। यह वृत्ति सभी देश और काल में मनुष्य की संगिनी रही है और प्रत्येक देश के साहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान रह अपनी सार्वभौम सत्ता का संकेत देती चलती है। जीवन मानस की भूमि पर संवलित साहित्य की मूल चेतना की अनुभूति में भी इस सत्ता की सस्थिति उसकी सनातन शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है। रीतिकाल के पूर्वरचित भारतीय साहित्य में भी इसकी महिमा अपनी ओजस्विता के साथ प्रतिष्ठित है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के साहित्य में शृंगार रस विलसित मुक्तक अक्षुण्ण एवं अप्रतिस्पर्धी गौरव के साथ संस्थित हैं।

---

१. पद्माकर ग्रंथावली।

२. शृंगार वीर करुणाद्भुत हास्य रौद्र,
वीभत्स वत्सल भयानक शांत नाम्नः।
आम्नासिषुर्दश रसान् सुधियो वयंतु,
शृंगारमेव रसनाद्रसमामनाम ॥ —भोजराज (शृंगार प्रकाश)

रीतिकाल का साहित्य जहाँ रसविश्लेषण की ओर उन्मुख होता है वहाँ वह गभीरता के अंतस्तल को स्पर्श मात्र करता है। मीमांसा की दृष्टि से इस युग के काव्यशास्त्र का विवेचन दारिद्र्यपूर्ण है तथा प्रायः किसी गंभीर, मौलिक और नवीन प्रभोज्वल उद्भावना का सामान्यतः भी कहीं दर्शन नहीं होता। इस युग का रसविवेचन रससबधी पूर्व साहित्यशास्त्र की धूमिल छाया मात्र है। जहाँ भी रीतिकाल मे रस चर्चा हुई है, वहाँ मूलतः शृंगार रस का विस्तार मात्र दीखेगा। अन्य रसों के लक्षण, उदाहरण और उसके स्थायी भावों की चर्चा मात्र है, प्राधान्य सर्वत्र शृंगार का ही मिलेगा। उसके आलबन विभाव, नायिका और नायक के भेद तथा तत्संबंधी अन्य प्रकरणों का व्यापक विस्तार वहाँ अवश्य मिलेगा। इसलिये रीति साहित्य के रसविवेचन प्रसंग की सारी गरिमा शृंगार की महिमा में सिमटी है। रसराज शृगार के संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के मुक्तकों का प्रभाव, भाव एवं रचनाविधा के संबध में, रीतिकाल के साहित्य में उपस्थित उदाहरणों में या शास्त्रीय काव्य मे बराबर स्पष्ट दीखेगा। इसलिये उसका संक्षिप्त दर्शन यहाँ आवश्यक है।

हिंदी में शृंगारिक रीतिकालीन रचनाओं के पूर्व संस्कृत में नीतिपरक, स्तोत्र तथा शृंगार तीनों प्रकार के मुक्तकों की रचना बड़े व्यापक पैमाने पर हो चुकी थी। संस्कृत में पतंजलि से बहुत पहले से ही ऐसे मुक्तकों का स्रोत आरंभ होता है, 'शृंगार तिलक' इस परपरा का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है। घटकर्पर द्वारा इसी नाम से रचित एक अन्य मुक्तक भी अति प्रसिद्ध है। 'शृंगार शतक' भी इस क्षेत्र की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें शृंगार का सहज निरूपण हुआ है। वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रभावित 'अमरुक शतक' शृंगारी मुक्तकों की परंपरा की रचनाओं में रस का रत्नाकर काम के प्रगल्भ भावतरंगों के माध्यम से छलकता है। अमरुक ने सस्कृत के शृंगारी मुक्तकों को नई भगिमा और ऐसी दिशा दी जिससे भारत का मुक्तक शृंगार साहित्य निरंतर चेतना ग्रहण करता रहा है। कवियों की तो बात ही क्या विकटनितंबा, विज्जका, शीलाभट्टारिका जैसी कवयित्रियाँ भी इस रचना से प्रभावित हुईं। 'अमरुक शतक' के बाद 'चौरपंचाशिका' की रचनाओं ने भारतीय शृगार के मुक्तक साहित्य को प्रभावित किया है। इस परंपरा का चरम उत्कर्ष १२वीं शताब्दी मे जयदेव के 'गीतगोविंद' मे मिलता है। इस क्रांतदर्शी रसविलसित रचना को, मुक्तक होते हुए भी इसकी महिमा के कारण, महाकाव्य का

सम्मान विद्वानों ने दिया है। कृष्ण और राधा के माध्यम से श्रृंगाररस रंजित भावों की मौलिक तथा कल्पनाप्रवण, सरस परंपरागत उद्भावना जयदेव के साहित्य को भारत को देन है। गोवर्धनकृत 'आर्या सप्तशती' को रचना भी लगभग गीतगोविंद की ही समसामयिक है। हिंदी का मुक्तक तथा रीतिकालीन श्रृंगारिक साहित्य इन रचनाओं से प्रभावित है तथा उसकी प्रेरणा से प्रफुल्ल एक महत्वपूर्ण स्तवक है।

यह तो संस्कृत साहित्य की बात हुई। प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्यिक मुक्तकों ने भी श्रृंगारिक मुक्तकों को तथा रीतिकालीन मुक्तकों को प्रभावित किया है। प्राकृत मे नीति और श्रृंगार के मुक्तकों का बाहुल्य है, जिनमे श्रृंगारिक मुक्तक अपनी रसात्मकता के कारण विशेष विख्यात है। प्राकृत के मुक्तकों मे 'गाथा सप्तशती' तथा 'वज्जालग्ग' अपने भावप्रवण साहित्यिक गुणधर्म के कारण परम गौरवशाली हैं। 'गाथा सप्तशती' के मुक्तकों की श्रृंगार भावना सहृदयों का सदा से कंठहार रही है। 'गाथा सप्तशती' श्रृंगारी मुक्तकों का एक श्रेष्ठ रससौरभपूर्ण स्तवक है। इसने तत्कालीन लोकसाहित्य मे लोकजीवन मे व्याप्त, विलसित, मादक चित्रखंडों का संग्रह कर साहित्यिक धरातल पर लोक-श्रृंगार को अभिव्यक्ति दी है। इसलिये यह लोक और सभ्य दोनों साहित्य का संगम है। इस रचना की श्रेष्ठता का आख्यान केवल इस तथ्य से हो जाता है कि संस्कृत की 'आर्या सप्तशती' ने भी हाल की इस 'गाथा सप्तशती' से प्रेरणा ग्रहण की और संस्कृत साहित्यशास्त्र के श्रेष्ठ ग्रंथों में श्रृंगार रस के उदाहरण के रूप में हाल की 'सप्तशती' के मुक्तक श्रृंगार के दृष्टांत बने। संस्कृत साहित्य के श्रृंगारी मुक्तकों की परंपरा को इसने प्रभावित तो किया ही, हिंदी-साहित्य की इस धारा पर इसका सीधे या संस्कृत के माध्यम से स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अपभ्रंश साहित्य में भी प्रणय और शौर्य के मुक्तक पर्याप्त संख्या मे उपलब्ध हैं। अपनी नूतन और जीवंत अभिव्यंजना के कारण इनमे अपूर्व सजीवता है। कालिदास के समय से ही ये प्रणय मुक्तक मिलने लगते हैं। इनमे विप्रलंभ श्रृंगार का मार्मिक और जीवंत चित्रखंड है। हेमचंद्र के व्याकरण मे दृष्टांत के रूप में अपभ्रंश के दोहे उद्धृत हैं जो श्रृंगार रस के अत्यंत श्रेष्ठ रत्न हैं। इन दोहों में लोकजीवन मे व्याप्त सहज प्रणय को ललित झाँकी है। लोकगीतों की परंपरा में रचित इन रचनाओं में गुजरात और राजस्थान के

ओजस्वी, मादक सौंदर्य के सहज चित्ताकर्षक रूप की जीवंत अवतारणा है जो जनजीवन की होते हुए काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी अनुपम है। प्रबंध चिंतामणि' में 'मुंज' के श्रृंगारी दोहे भी अत्यंत भावप्रवण और मदरंजित हैं। संस्कृत एव प्राकृत की काव्यविधाओं में निष्णात अद्दहमान (=अब्दुर्रहमान) का संदेशरासक भी श्रृंगार गीतिकाव्य की परंपरा मे एक नया चरण है। 'मेघदूत' की भाँति के इस गीतिकाव्य में रतिरंजित श्रृंगार अनुपम ढग से उपस्थित है। यह अपभ्रंश की अपने क्षेत्र की एक महिमामयी रचना है। इसने भी हिंदी के रीति साहित्य को प्रभावित किया है।

१५ वीं शताब्दी के शिवभक्त विद्यापति की अनुपम मागधी पदावलियों में राधाकृष्ण की प्रेमलीला के मधुर, मार्मिक और श्रृंगारी पक्ष की सूक्ष्म व्यंजना हुई है। यद्यपि इन श्रृंगारपरक पदों पर जयदेव का स्पष्ट प्रभाव है तो भी श्रृंगार के आलंबन एवं उद्दीपन विभाव का जैसा विस्तृत, मार्मिक, जीवंत एवं सूक्ष्म तथा सजीव वर्णन विद्यापति ने किया है वह अबतक अपनी रसप्रवणता, ध्वन्यात्मकता, आलंकारिकता एव सूक्ष्मनिरीक्षण की ओजस्विता से उद्दीप्त होने के कारण साहित्य एवं लोकजीवन दोनों में अनन्य भावसंपदा के रूप मे सर्वदा से प्रतिष्ठित रहता चला आ रहा है। विद्यापति के पूर्व ही १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में खुसरो ने बोलचाल की भाषा में अत्यंत भावात्मक श्रृंगाररंजित मुक्तक प्रस्तुत किए जो सहृदयों के आकर्षण के केंद्र हैं।

केवल मुक्तकों में ही श्रृंगार की रागिनी का स्वर रंजित नहीं हुआ अपितु हिंदी के वीरगाथा काव्य में भी इसका दर्शन हुआ। भले ही इन रचनाओं में वीर रस की प्रधानता हो किंतु इनमें श्रृंगार का भी अपना स्पष्ट रंग है। कीर्तिलता, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, जयचंद प्रकाश, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो इन सबमें इस तत्व का दर्शन होता है। वीर काव्य मे अवस्थित श्रृंगार के इस पक्ष ने भी रीतिकाल के साहित्य को प्रभावित किया है।

इससे यह स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती रचनाओं की श्रृंगारिक परंपरा रीतियुगीन साहित्य को अजस्र एव अनन्य निधि के रूप में प्राप्त थी। उस युग के लोकजीवन की भी अपनी कुछ विशेषताएँ और सीमाएँ थीं। उस युग मे राजसत्ता के संबध मे चर्चा भी प्राणघाती संकट की सूत्रधारिणी बन जाया करती थी। इसलिये उससे प्रायः वे सभी लोग संन्यास ले बैठते थे जो केवल साहस

मात्र को ही जीवन का नियामक नहीं मानते थे। ऐसे राजसत्ता से विरक्त लोगों में समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व के गुरुगहन कर्तव्य के प्रति जागरूक एवं सक्रिय रहनेवाले लोग भी अनेक थे। ऐसे समाजसेवियों का आधार धर्म बना। हिंदू मुसलमान दोनों वर्गों में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने लोक को राजसत्ता निरपेक्ष कल्याणमयी धर्मसत्ता का बोध कराया जो नवीन तो थी ही, युग की आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता से भी संवलित थी। यद्यपि धर्म की इस नई स्वच्छंद सत्ता का बोध करानेवाले कट्टर रूढ़िग्रस्त धर्मांधता के विरोधी थे, तो भी धर्म के सहज प्राण तत्व से ये अवगत थे। युग की आवश्यकता का ध्यान रख तत्कालीन समाज की स्थिति और परिस्थिति के अनुसार इन्होंने जीवन की प्यासी धरती पर अनुराग की भावसरिता बहाने का यत्न किया। मुसलमानों में प्रेमविह्वल सूफी संत और हिंदुओं में प्रेम-माधुर्य मे पगे वैष्णव भक्तों ने राजत्रस्त युगजीवन को सहज मनुष्यता का पाठ पढ़ाया। प्रेमसत्ता की तुलना में राजसत्ता की लघुता का बोध लोक को इन्होंने कराया और युग मानस को तृप्तिपूर्ण मधुर सरसता का अजस्र सहज जीवनदान नीरसता के मरु में किया। सहज तथा त्रासमुक्त होते हुए भी उनकी यह देन अमित आनंद की निर्झरिणी थी। इसलिये समाज का चेतन वर्ग उनका उपकृत हो अनुगामी बना। सत्ता के लिये बीभत्स एवं कोलाहलमय भयकर होड़ के मध्य शान्ति का यह सहज निर्भय पथ आनंद का प्रदाता था। इसलिये इनके माध्यम से जीवन को नया आकर्षण मिला और दृष्टि को नूतन ज्योति। इन प्रेम पंथों की आलोकमयी छाया मे साहित्यकार ने अपनी सृष्टिरचना आरंभ की। प्रेम सबका मूल मंत्र बना। जिन सूफी मुस्लिम कवियों ने इस मर्म की अभिव्यक्ति को अपना धर्म समझा उनमे हिंदी की लोकभाषा अवधी को माध्यम बनानेवाले कुतुबन, मंझन और जायसी विशेष रूप से हिंदी प्रदेश या मध्य देश के आदर के पात्र हैं। इनके साहित्य के प्रेमतरु के तले भावी पीढ़ी के रचनाकारों ने भी छाया का बोध किया और प्रेरणा ग्रहण की।

मध्य देश ही क्या उस समय तो सारे देश में ही प्रेम की लहर अछूत जीवन को रसप्लावित करने लगी थी। तमिल मे आलवार भक्त, बंगाल में सहजिया और बाउल वैष्णव, गुजरात में नरसी भगत, राजस्थान में मीरा और मध्य देश में मथुरा, वृंदावन को राधाकृष्ण की लीला की केंद्रभूमि

बना। उसके प्रवर्द्धन के लिये नाना वैष्णव संप्रदाय देश में मधुरिप प्रेम का प्रसार करने लगे। इन सबसे सभी प्रभावित हुए। क्योंकि इनके संकल्प मे युग की आकांक्षापूर्ति का निर्भय, सहज तत्व था जो तत्कालीन मनुष्य की ग्राहिता एवं बोधमयता के धरातल पर तो था ही, पहले से व्याप्त घोर बाह्याडंबर से भी मुक्त था। इसलिये प्रेम की सहजता ने सबको अपना आलंबन बना लिया था। अतएव सप्रदाय मे दीक्षित और संप्रदायमुक्त दोनों वर्ग प्रेमप्लावित हो उसके उपासक बने। इन प्रेमभाव के प्रतीक राधा कृष्ण थे। मध्ययुगीन कला एव सस्कृति का प्रत्येक क्षेत्र—स्थापत्य, चित्र, संगीत एवं काव्य—की चेतना के ये प्राण हैं। इन सबके भी आराध्य एवं भावाभिव्यक्ति के आलबन रसरंजित परम प्रेमी राधाकृष्ण थे। कवि ने उनके सुंदर, मधुर, शृंगारविलसित प्रेमस्वरूप को ग्रहण किया जो कालोत्तर विकसित होता हुआ प्रणयलीला की मधुचर्या तक पहुँच गया। रीतिकाल के प्रायः अधिकांश साहित्य में यह प्रणयलीला है।

इस प्रणयलीला के आराध्य राधा और कृष्ण अपने प्रणयी रूप मे सर्वप्रथम हाल की 'गाथासप्तशती' मे प्रकट होते हैं। प्रथम से छठी शताब्दी के बीच की इस रचना में व्याप्त उनकी प्रणयलीला के अतिरिक्त पहाड़पुर के मदिर में खुदी राधाकृष्ण की मूर्तियाँ, ८ वीं शताब्दी के 'वेणीसंहार' नाटक के नादी में केलिकुपिता राधा की उपस्थिति, १० वीं शती मे मुंज के ताम्रपत्र मे अंकित लेख मे राधा का प्रालेख तथा उसी समय की रचना 'ध्वन्यालोक' में दृष्टांतस्वरूप प्रस्तुत राधा सबधी पद, १२ वीं शती के हेमचंद्र के व्याकरण मे दृष्टांत के लिये संकलित दोहों मे उनकी प्रणयलीला का आख्यान और उसी समय की रचना जयदेव के गीतगोविंद में राधाकृष्ण की केलिकलामय रूपपरक उपस्थापना मिलती है। इस प्रकार १२ वीं शताब्दी के पूर्व ही जहाँ प्रेमरूपा भक्ति के आलंबन भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधा उनकी शक्ति के रूप मे उपस्थित मिलेगी वहीं दूसरी ओर उनका शृंगार के आलंबन विभाव सामान्य नायक और नायिका का भी स्वरूप उपस्थित मिलेगा। यह दूसरा रूप ही रीति साहित्य की मूल चेतना का उत्स है। इस रूप का क्रम-विकास देखना अप्रासंगिक न होगा।

साहित्य में प्रगृहीत राधाकृष्ण का रूप प्रकृतिप्रेमी आभीर सभ्यता का देश को जीवत उपहार है। ऊँच नीच, जाति पाँत और संप्रदाय से मुक्त

मानस से उच्छ्वसित उन्मुक्त प्रेम इस जाति की मूल विशेषता थी। उन्मुक्त नृत्य और संगीत इनकी विशेषता थी और नृत्य के समय गाए जानेवाले रास राधा-कृष्ण की प्रणयलीला से सराबोर शृंगार गीत हैं। भारत की मूल प्राचीन जाति मे आभीरों के मेल से इनकी संस्कृति के इस रसात्मक जीवत पक्ष से भारतीय जीवन का भावात्मक योग हुआ। इनके शृंगाररंजित लोकगीतों ने अपनी जीवनी शक्ति के कारण भारतीय साहित्य के मर्म को प्रभावित किया। धर्म ने भी इसे अंगीकार कर लिया और राधाकृष्ण की प्रणयलीला को आध्यात्मिक अर्थगरिमा से मंडित कर दिया गया। परंपरा और परिस्थिति ने भी साथ दिया। इसलिये राधा एवं कृष्ण के इस रूप को आध्यात्मिक बानक में सजाने मे साहित्यकार को अवरोध का सामना न करना पड़ा। यद्यपि कृष्ण नाम से देश का परिचय महाभारत के समय से ही था तो भी उनके इस नए रूप रंग, साज-सज्जा का बोध उस युग को अत्यंत मधुर लगा।

महाभारत में वासुदेव कृष्ण हैं, तैत्तिरीयारण्यक में वे विष्णु के पर्याय मात्र। सात्वत संप्रदाय के वासुदेव आराध्य थे। बालगंगाधर तिलक की मान्यता के अनुसार वैष्णव धर्म यदुकुल में प्रचलित होकर सात्वत मत के नाम से प्रचलित हुआ। कीथ की इस मान्यता का कि वासुदेव एवं कृष्ण के अलग अलग व्यक्तित्व का विभेद प्रमाणित करना असंभव है, समर्थन श्रीहेमचंद्र राय चौधरी भी करते हैं पर मैक्समूलर, मैकडोनल, हापकिंस, भंडारकर आदि विद्वान् विष्णु और कृष्ण की अलग अलग सत्ता के समर्थक हैं। जो भी हो 'मेघदूत' मे गोपवेषधारी विष्णु की उपस्थिति इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि आभीरों के रसराज कृष्ण एवं वासुदेव धर्म के उपदेष्टा कृष्ण छठी शताब्दी के पूर्व ही शृंगार एवं भक्ति दोनों क्षेत्रों मे अपनी संयुक्त सत्ता स्थापित कर चुके थे। भागवत तथा उसके परवर्ती पुराणों में कृष्ण की गोपलीला का वर्णन है। इसे भी इस तथ्य के प्रमाण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। वासुदेव के इस रूप में आभीरों के कृष्ण के रूप की सहज समन्विति है।

साहित्य में राधा का जो रूप ग्रहण किया गया वह कृष्ण की अपेक्षा अल्प वय का है। राधा को विशाखा नक्षत्र के पर्यायी होने के कारण कुछ विद्वान् इन्हें वेद में भी उपस्थित पाते हैं क्योंकि ज्योतिर्विद् गर्ग ने सूर्य के स्थानीय प्रतिनिधि के रूप में, सर्वप्रथम कृष्ण का उल्लेख किया है और तारिकाओं के रूप में गोपियों का। वेद मे राधा विशाखा की पर्यायी है और

कार्तिक पूर्णिमा को सूर्य और विशाखा का अदृश्य मिलन संयोग होता है तथा उस दिन तारिकाएँ सूर्य के चारों ओर मंडलाकार अवस्थित रहती हैं। इसलिये सूर्य के प्रतिनिधि कृष्ण और विशाखा की पर्यायी राधा का संयोग कार्तिक पूर्णिमा को होता है। यह ज्योतिष तत्व कविकल्पना का सहारा पाकर रूपक का रूप ग्रहणकर लोक मे विकसित अन्य कविकल्पनाओं की भाँति जीवन के सहज सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित हो गया और कालांतर मे धर्मतत्व के रूप मे भी ग्राह्य हो गया। इसलिये इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ी तथा राधाकृष्ण की लीला जीवन में सहज सत्य के रूप मे लोक में प्रतिष्ठा की अधिकारिणी हुई। यह रूपकत्व हो या जो कुछ भी हो, 'भागवत' मे 'राधा' नहीं है। उसके दशम स्कंध मे कृष्ण की एक विशेष कृपापात्र गोपी का उल्लेख मात्र है। 'पद्मपुराण' तथा जिन अन्य पुराणों मे राधा की चर्चा है, उनकी प्रामाणिकता सर्वथा संदिग्ध है। जो राधा को सांख्य की प्रकृति मानते हैं, उन विचारकों की मान्यता भी एकांगी है। इसीलिये यह मानना ही अधिक उचित है कि अनेक तत्वों के योग से राधा के इस रूप का संयोग कृष्ण से हुआ है। इस संबंध में डा० शशिभूषण दासगुप्त का यह मत है कि—'इतिहास की दृष्टि से राधा का संबंध आभीर जाति से है। धर्ममत में उनका ग्रहण साहित्य से हुआ है। धर्ममत में गृहीत हो जाने पर ही राधा का तत्व रूप धीरे-धीरे विकास पाता गया।...१२वीं शताब्दी के विष्णुशक्ति के बारे में जो कुछ भी पूर्व विश्वास, चिंतन और मत है, उस उर्वर भूमि पर मानों उस अत्यंत विचित्र मधुर राधा का बीज रोपा गया था। उस बीज ने पुरानी भूमि से जीवन संग्रह करके अपने को नए धर्म, नित्य सौंदर्य और माधुर्य में अभिव्यक्त कर गौड़ीय वैष्णवों में पूर्ण विकास लाभ किया[1]।'

धर्म का आश्रय पा विद्यापति के पश्चात् राधाकृष्ण का तत्व साहित्य में नए आर्जव का अधिकारी बना। साहित्य और वैष्णव संप्रदायो मे राधाकृष्ण इतने घुलमिल गए और एक दूसरे के रंग मे इतने रंग गए कि उनके सांप्रदायिक और साहित्यिक रूप मे विभाजन की सीधी रेखा खींचना असंभव है। इस संयोग का कारण यह भी है कि अपने मत के प्रचार के अभिलाषी संप्रदायों के पास उस युग मे प्रचार के लिये संगीततत्वपूरित पदों के द्वारा मतप्रसार के साधन के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभावशाली

१. श्रीराधा का क्रम विकास पृ०, १०० ।

साधन भी न था। इसलिये संप्रदाय के उपदेष्टाओं और प्रवर्तकों के लिये भी उस युग मे काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। अतएव इस युग मे काव्य एव धर्म का योग हुआ तथा प्रबुद्ध लोगों द्वारा काव्य को परम प्रतिष्ठित पद दिया गया। अन्य कलाएँ काव्य के पूरक रूप मे स्वीकार की गईं। इसलिये संगीत और काव्य दोनो ने राधाकृष्ण के इस रूप का विस्तार और प्रसार किया। इस प्रकार साहित्य और धर्म दोनो की परंपरा से रीतिकालीन साहित्य लाभान्वित हुआ।

रीतिकालीन काव्य मे रस के प्रसंग मे नायक-नायिका भेद का व्यापक विस्तार है। यह विस्तार रसराज शृंगार के आलंबन विभाव के रूप में राधाकृष्ण के माध्यम से फूला, फला और पल्लवित हुआ। रीतिकाल के साहित्य मे मौलिक चिंतन का अभाव है, किंतु उसके मूल तत्वों का उत्स संस्कृत साहित्य के शास्त्रग्रंथों मे है। इसलिये नायिकाभेद की परपरा का ज्ञान भी प्राप्त कर लेना अप्रासंगिक न होगा। संस्कृत साहित्य के शास्त्र ग्रंथों मे आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के २४, २५ और ३४ वे अध्याय मे नायक-नायिका-भेद से सबद्ध सामग्री है।

यद्यपि दृश्यकाव्य के समग्र पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालनेवाले इस ग्रंथ मे अभिनेयता के परिनिवेश मे नायक नायिका के विषय में संक्षिप्त वर्णन एवं विवेचन है, तो भी कामशास्त्र की दृष्टि से इस विषय की चर्चा का सर्वथा अभाव उसमें नहीं है। अभिनय की दृष्टि से काम के औचित्य की मर्यादा का संयोजन भी उसमे किया गया है। इस ग्रंथ मे भरत मुनि ने— जातीय शील, सामाजिक आचार व्यवहार, नायक के साथ नायिका के संयोग एवं वियोग की अवस्था, नायक के प्रति अनुराग के अनुसार नायिका के गुण, नायिका की प्रकृति, वयक्रम से विकासशील कामशीला एवं अतःपुर में रहनेवाली नारियों के आधार पर कुल आठ प्रकार से नायिका का भेद किया है। इन्हे यहाँ देखना अप्रासगिक न होगा।

[क] जातिगत शील के अनुसार—देवताशीला, असुरशीला, गंधर्वशीला, नागशीला, पक्षीशीला, पिशाचशीला, यक्षशीला, व्यालशीला, नरशीला, वानरशीला, हस्तिशीला, मृगशीला, मीनशीला, उष्ट्रशीला, मकरशीला,

वनशीला, सूकरशीला, वाजीशीला, महिषाशीला, अजाशीला एवं गोशीला, ये २१ भेद लौकिक एवं अलौकिक जातियों के शील के आधार पर हैं[1]।

[ख] सामाजिक आचार व्यवहार के अनुसार—बाह्या (कुलीना), आभ्यंतरा (सामान्या या वेश्या), बाह्याभ्यन्तरा (कृतशौचाः—वृत्ति छोड़कर पवित्रतापूर्वक अपने नायक के साथ रहनेवाली वेश्या), जिसके कुलजा और कन्यका दो और प्रभेद हैं। इस प्रकार इसके तीन भेद हुए और दो प्रभेद। कुल पाँच प्रकार की नायिकाएँ सामाजिक आचार व्यवहार के आधार पर इस वर्ग में बताई गई हैं[2]।

[ग] प्रेम की अवस्था (संयोग एवं वियोग) के अनुसार—वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, खंडिता, विप्रलब्धिका, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका, ये आठ भेद संयोग और वियोग के आधार पर नायिका की अवस्था के अनुसार किए गए हैं।[3]

[घ] नायक के प्रति अनुराग के अनुसार—मदनातुरा, अनुरक्ता तथा विरक्ता, ये तीन भेद नायिका में नायक के प्रति उत्पन्न कामानुराग के आधार पर किए गए हैं[4]।

[ङ] प्रकृति के अनुसार—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा—ये नारी के तीन भेद उसकी प्रकृति के अनुसार किए गए हैं[5]।

[च] गुण के अनुसार—दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका, ये चार भेद नायिका के गुण धर्म के अनुसार किए गए हैं[6]।

[छ] यौवन वय विकास-क्रम के अनुसार—प्रथम यौवना, द्वितीय यौवना, तृतीय यौवना, चतुर्थ यौवना—ये चार भेद यौवन के वय-विकास-क्रम के अनुसार किए गए हैं[7]।

---

१ नाट्यशास्त्र—२४।२१२, २१३, २१४, २१५।
२. नाट्यशास्त्र—२४।१४२, १४३, १४४, १४५।
३. नाट्यशास्त्र—२४।२०३, २०४।
४. नाट्यशास्त्र—२५।१९, २०, २१, २२।
५. नाट्यशास्त्र—२५।२३, २४, २५।
६. नाट्यशास्त्र—२४।७।
७. नाट्यशास्त्र—२५।२६, २७।

[ज] अन्तःपुर की रमणियों के अनुसार महादेवी, देवी, स्वामिनी, स्थापिता, भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकीया, नर्तिका, अनुचारिका, संचारिका, परिचारिका, प्रेषणचारिका, महत्तरी, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा तथा आयुक्तिका, ये १७ भेद उन रमणियों के हैं जो राजप्रासाद में रहती थीं[1]।

विविध आधारों पर किये गये थे भेद इस तथ्य के प्रतीक हैं कि नाटक मे साहित्यिक रसवत्ता एवं अभिनय की रसात्मक दृश्यवत्ता की दृष्टि से साहित्य में प्रयुक्त सभी प्रकार की नायिकाओं का बाह्य तथा आभ्यतर दोनों रूपों से नाट्यशास्त्र मे वर्णन किया गया है।

आचार्य भरत के बाद आचार्य रुद्रभट्ट ने (नवीं शती) नायिकाभेद, 'शृंगारतिलक' मे निम्नलिखित रूप मे उपस्थित किया है :—

नायिकाभेद—स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के प्रभेद—मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा। मुग्धा के प्रभेद—नवयौवना, नव अनगरहस्या तथा लज्जाप्रायरति। मध्या के प्रभेद—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। प्रगल्भा के प्रभेद—धीरा, अधीरा, धीराधीरा।

अवस्था के अनुसार नायिकाएँ—स्वाधीनपतिका, उत्का, वासकसज्जा, अभिसंधिता, विप्रलब्धा, खंडिता, अभिसारिका एवं प्रोषितपतिका। इन्होंने इन सबके तीन तीन प्रभेद—उत्तमा, मध्यमा और अधमा के नाम से किए हैं।[2]

इसी शताब्दी में रुद्रट[3] ने 'काव्यालकार' मे भी लगभग उपरोक्त प्रकार से ही नायिकाभेद का निरूपण किया है।

नायिका के तीन भेद—आत्मीया, परकीया, वेश्या।

---

१. नाट्यशास्त्र—२४।२६, ३०, ३१।

२. रसमंजरी, पृ० ३।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पोद्दार, पृष्ठ ११५।
अनेक विद्वान यह भी मानते हैं कि रुद्रट रुद्रभट्ट के पूर्ववर्ती हैं और उनसे रुद्रभट्ट प्रभावित भी हैं। कुछ यह भी मानते हैं कि दोनों एक ही हैं।
(दे०, संस्कृत आलोचना का इतिहास और काव्यप्रकाश (ज्ञानमंडल) की भूमिका।)

आत्मीया के प्रभेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। मध्या एवं प्रगल्भा के प्रभेदः—ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा। ज्येष्ठा एवं कनिष्ठा का मानानुसार प्रभेद—धीरा, अधीरा और मध्या। आत्मीया के अन्य प्रभेद—: स्वाधीनपतिका, प्रोषितपतिका।

परकीया के प्रभेद—कन्या तथा अन्योढ़ा।

आत्मीया, परकीया और वेश्या के दो दूसरे भेदों—अभिसारिका एवं खंडिता का भी इन्होंने वर्णन किया है।

अवस्थानुसार अष्ट नायिकाएँ, स्वाधीनपतिका आदि का भी इन्होंने वर्णन किया है[1]।

दशरूपककार धनजय ने [१० वीं शताब्दी] नायिका का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया है—

नायिका के भेद—१. स्वकीया मुग्धा (४ प्रकार), मध्या, प्रगल्भा। मुग्धा के प्रभेद—वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा, मृदुकोपा। मध्या तथा प्रगल्भा—ज्येष्ठा, कनिष्ठा।

२—परकीया पहले के भेदों के अनुसार है।

२—सामान्या—पूर्ववर्णित भेदों के अनुसार।[2]

भोजराज (११ वीं शती) ने 'सरस्वती कठाभरण' एवं 'शृगारप्रकाश' मे अपने समय किए गए नायक-नायिका-भेदों का अत्यंत विस्तृत सपादन एव संकलन किया है।

उनके अनुसार नायिका के चार भेद—स्वकीया, परकीया, पुनर्भू और सामान्या। पुनर्भू वात्स्यायन के कामसूत्र से ग्रहण की गई है।

स्वकीया एवं परकीया के प्रभेदः—उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा, ऊढ़ा, अनूढ़ा, धीरा, अधीरा, मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा।

पुनर्भू के प्रभेद—अक्षता, क्षता, यातायाता, यायावरा। सामान्या के प्रभेद—ऊढ़ा, अनूढ़ा, स्वयंवरा, स्वैरिणी एवं वेश्या। वेश्या के भेद—गणिका,

---

१. काव्यालंकार—१२।५, १७, १८, २१, २३, २६, २७, २८, २६, ३०, ४१।

२. रसमंजरी, पृष्ठ ३।

विलासिनी तथा रूपाजीवा । नायिका के अन्य भेद—उदता, उदात्ता, शांता और ललिता ।[1]

शारदातनय (१२ वीं शती) ने भी भरत से भोजराज तक की सामग्री का उपयोग 'भावप्रकाश' मे किया है ।

विश्वनाथ ने (१४ वीं शती) नायिकाभेद का आनुषंगिक रूप मे स्पष्ट वर्णन किया है। इन्होंने स्वकीया मुग्धा के पॉच (प्रथमावतीर्ण यौवना, प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, रति मे वामा, मान में मृदु, समधिक लज्जावती), स्वकीया मध्या के चार (विचित्रसुरता प्ररूढ़स्मरयौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीडिता) एवं प्रगल्भा स्वकीया के छह (स्मरान्धा, गाढतारुण्या, समस्तरतिकोविदा, भावोन्नता, स्वल्पव्रीडा तथा आक्राता) नए भेद किए हैं ।[2]

हिंदी के रीतिकाव्य के नायक-नायिका-भेद को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाला भानुमिश्र (१४ वीं शताब्दी) का ग्रंथ 'रसमजरी' है, जिसमे स्वतंत्र रूप से नायक-नायिका-भेद को एक ग्र थ का विषय बनाया गया है । वह नायिका का निम्नलिखित भेद प्रस्तुत करता है :—

नायिका के भेद—स्वीया, परकीया और सामान्या ।

१. स्वीया—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा । मुग्धा—अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना । मुग्धा क्रमशः विश्रब्धता के अनुसार नवोढा एवं विश्रब्धनवोढ़ा बन जाती है । मध्या—नवोढ़ा होते हुए भी अतिप्रश्रय से वही अतिविश्रब्धनवोढ़ा भी हो सकती है । प्रगल्भा—रतिप्रीतिमती, आनदसंमोहवती । मान के अनुसार मध्या और प्रगल्भा के भेद—धीरा, अधीरा एवं धीराधीरा । मध्या प्रगल्भा के धीरादिक छह भेद । ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेद पतिस्नेह के आधार पर होते हैं ।

२. परकीया—परोढ़ा, कन्यका, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना एवं मुदिता आदि नायिकाएँ परकीया मे अतभु क्त होती हैं ।

३ सामान्या—इनका भेदोपभेद रसमंजरी मे नहीं है इसलिये इसमे वह एक प्रकार की ही मानी गई है ।

---

१. दे० रसमंजरी, भूमिका भाग, श्रृंगारप्रकाश डा० राघवन् (१९६३) संस्कृत साहित्य का इतिहास तथा हिंदी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य—डा० सत्यदेव चौधरी ।

२. दे० साहित्यदर्पण—३ । २९-८७ ।

ये सभी नायिकाएँ मुग्धा को छोड़कर तीन प्रकार की होती हैं। ये अन्यसंभोगदुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता और मानवती मे वर्गीकृत की जाती हैं। गर्विता, प्रेमगर्विता और सौदर्यगर्विता। मानवती—लघुमानवती, मध्यमानवती और गुरुमानवती होती हैं।

इस प्रकार स्वीया १३, परकीया २, सामान्या १, तीनों मिलकर १६ प्रकार की नायिकाएँ भानुदत्त ने रचीं। अवस्थाभेद के कारण प्रत्येक के आठ प्रकार होते हैं:—प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका तथा अभिसारिका। इस प्रकार ये सब (१६ × ८) १२८ प्रकार की हुईं। ये उत्तमा मध्यमा एवं अधमा भेद के अनुसार (१२८ × ३)=३८४ प्रकार की हुईं। दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या भेदों के अनुसार ये (३८४ × ३)=११५२ भेदों मे विभाजित होती है। प्रवत्स्यत्पतिका की चर्चा भी इन्होंने की है।[१]

रूप गोस्वामी ने अपने ग्रंथ 'उज्ज्वल नीलमणि' मे स्वकीया की अपेक्षा परकीया को अधिक महत्व दिया है। चैतन्य द्वारा प्रवर्द्धित गौड़ीय वैष्णवों मे गोपियों की कृष्ण के प्रति की गई अटूट श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक रतिभाव की उपासना नैसर्गिक और आदर्श मानी गई। इसलिये मधुर रस की सृष्टि उन्होंने की और श्रीकृष्णविषयक रति को उन्होंने मधुर रस का स्थायी भाव माना तथा परकीया को स्वकीया से श्रेष्ठ ठहराया।[२]

इस प्रकार रीतिकालीन नायिकाभेद के साहित्य को परंपरा का सबल आधार प्राप्त था। इस रीतिकाल के ऐसे कवियों को जिन्होंने रसचर्चा के प्रसंग मे विस्तारपूर्वक नायिका भेद का लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत किया है, उन्हें शास्त्र कवियों के रसनिरूपक परंपरा के उपभेद के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। रस के विशद एवं गंभीर विवेचक की दृष्टि से इनका महत्व नहीं किंतु रस के एक उपांग को प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनका महत्व है। रस के सभी अंगों की तथा साहित्यशास्त्र के अन्य तत्वों एवं सिद्धांतों के गुण धर्म का

---

१. रसमंजरी, पृष्ठ, ५-८। नागरीप्रचारिणी सभा पत्रिका, अंक, २, ३, ४, वर्ष ६४, संस्कृत में नायिकाभेद तथा रसिकजीवनम्-पं० करुणापति त्रिपाठी।

२. दि पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट आव बंगाल—डॉ० मनींद्रमोहन बोस, सन् १९३०, पृ० १६-१७।

विवेचन कर रस की गरिमा की स्थापना करना इनका ध्येय नहीं था। काव्य के माध्यम से कलावंत की भाँति सहृदय की रंजना करनामात्र इनका मूल ध्येय था। इसके साथ ही इनका ध्येय काव्य द्वारा अपने गुरुत्व की स्थापना और पांडित्यप्रदर्शन द्वारा अपनी ज्ञानगरिमा का बोध सहृदय को करा कर अपनी शिक्षा और महिमा का आतंक जमाना भी था। विश्वनाथ की भाँति की गंभीरता का तो प्रश्न ही नहीं उठता, भानुमिश्र और अकबरशाह को आधार मानकर शास्त्रकवियों ने ग्रंथनिर्माण किए। इनमे भी तीन प्रकार के कवि हुए। एक तो वे जिन्होंने सभी रसों का निरूपण किया, जैसे—बलभद्र, केशव, तोष, शुकदेव, देव, श्रीपति, भिखारी, रसलीन, रघुनाथ, उदयनाथ, पद्माकर, बेनी, करन और ग्वाल। दूसरे ऐसे रसनिरूपक शास्त्र कवि हुए जिन्होंने केवल शृंगार तक ही अपनी गतिविधि सीमित रखी। इनमें मोहन, सुंदर, मतिराम, मंडन, शुकदेव, देव, आजम, सोमनाथ, उदयनाथ, भिखारी दास, देवकीनंदन, लालकवि, यशवतसिंह आदि हैं। तीसरे वर्ग में ऐसे कवि आते हैं जिन्होंने केवल नायिकाभेद के ही ग्रंथ लिखे। इनमे कृपाराम, सूरदास, रहीम, नंददास, चिंतामणि, देव, यशोदानदन आदि प्रमुख हैं। इन शास्त्र-कवियों को रसपरंपरा के उपभेद के भीतर अंतर्निहित करना चाहिए।

एक वर्ग इन शास्त्रकवियों मे ऐसे कवियों का है जो अप्पयदीक्षित और जयदेव को आधार मानकर अलंकार का निरूपण करता है। यद्यपि भामह, दंडी एवं उद्भट जैसी व्यापकता इनमें नहीं है और न यह क्षमता ही है कि वे अलकार के अंतर्गत अन्य काव्यांगों को अंतर्भुक्त कर सकें तो भी ऐसे अलंकारनिरूपक शास्त्रकवियों के उपभेद मे इन्हे रखा जा सकता है। ऐसे कवियों में केशवदास, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, सूरति मिश्र, श्रीपति, याकूब, भूपति, रघुनाथ, दूलह, रतन, बेनी, मान, पद्माकर, ग्वाल आदि की गणना की जा सकती है।

तीसरे उपवर्ग के अंतर्गत ऐसे विविधाग निरूपण करने वाले शास्त्रकवि आते हैं जिन्होंने रस के विविध अगों का लक्षण और परिचय प्रस्तुत किया है। वे साहित्य के ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, रस और रीति इन पाँचों वादों से न तो गंभीरतापूर्वक परिचित थे, न जिन्होंने मम्मट और विश्वनाथ के साहित्य का अत्यंत सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन ही किया था। इनपर मूलतः मम्मट और विश्वनाथ का ऋण तो है, पर इनकी ज्ञान सीमा अत्यंत संकुचित है।

सर्वांगनिरूपक शास्त्रकवियों मे केशव, चिंतामणि, कुलपति, देव, सूरति मिश्र, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारी दास, जगतसिंह, प्रतापसाहि और ग्वाल आदि की गणना की जा सकती है

पिंगल ग्रथों की भी रचना केशव,चिंतामणि, मतिराम, देव, भुजग, सोम-नाथ, रामसहाय दास, अयोध्याप्रसाद वाजपेयी आदि ने की।

इस युग के शास्त्रकवि के अतिरिक्त रीति को आधार बनाकर काव्य करने वाले कवियों की एक श्रेणी और है, जिन्हें काव्यकवि माना जाय, लक्ष-कवि माना जाय या शास्त्रकवि माना जाय पर इनका भी ज्ञान अपनी रचना के लिये नायिकाभेद, अलंकार, रस, रीति और ध्वनि का था। रीति से इतर या मुक्त कहे जानेवाले घनानद, आलम, ठाकुर और बोधा भी इन सस्कृत साहित्य के आचार्यों के ग्रथों के परिचय से सर्वथा मुक्त नहीं। यद्यपि भावपर-कता की दृष्टि से इनकी विलग महत्ता है।

जीवन मे सदाचारमात्र की प्रतिष्ठा के पक्षपाती, नैतिकतामात्र के दर्शन के अभ्यासी सत दृष्टिवालों को रीतियुग का काव्य अत्यंत हीन एवं मानवीय अधोगति का आगार लगता है और असांस्कृतिक तथा अश्लील भी। संतत्व एवं नैतिकता की प्रतिष्ठामात्र ही जीवन नहीं है और न साहित्य केवल नीति एवं दर्शन का वाङ्मय। वह अनुभूति की रसात्मक अभिव्यक्ति है जिसका अपना दर्शन है और जिसकी अपनी नैतिकता है। वह नैतिकता और दर्शन व्यक्ति और कालपरक है। साहित्यकार का दर्शन उसके अनुभव के परीक्षण के आधार पर अनुभूति की अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रस्फुटित होता है और उसकी नैतिकत का आधार भी यहीं से जीवत है। साहित्यकार का दर्शन दर्शनशास्त्र नहीं और न उसकी नैतिकता आचार संहिता है। उसकी निजी नैतिकता एवं उसका दर्शन लोक मे साहित्यकार द्वारा नाना प्रकार के भोगों के अनुभव का परिणाम होता है। उस युग का दर्शन पहले किया जा चुका है। श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों के लिये उस समाज में स्थान का संकोच था। युगजीवन की मूलचेतना भौतिक सुखभोग की थी। उसी के लिये सभी यत्नशील थे। यहाँ तक कि अर्द्धनग्न तथा अर्द्धक्षुधित समुदाय का भी आदर्श उसी सुखवैभव का भोग था, जिसे राजा और सामंत तथा समाज मे उच्च समझा जानेवाला वर्ग अंगीकार किए हुए था। सामंती नागर वातावरण मे उद्भूत और प्रणीत उस युग का रीति-साहित्य केवल दरबार की शोभा बनकर नहीं रह गया, वह जनता तक पहुँचा

और उसे दरबारी जीवन मे जो स्नेह प्राप्त हुआ उससे कम लोकजीवन में न मिला। अनेक कवियों की रचनाएँ तो इतनी लोकप्रिय हुईं जितनी लोकप्रियता बाद की श्रेष्ठ कही जानेवाली रचनाओं को भी न मिली। इसके मूल कारण पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उस युग का कवि जन सामान्य से दूर रहकर भी उसके मानस से दूर न था। यद्यपि राजप्रासादों के प्राचीरों के घेरे मे कवि की वाणी मुखरित होती थी तो भी जनता की आकांक्षा और स्वप्न का स्वर उसमें होने के कारण वह उसे प्रिय लगती थी। इसलिये भावों का सामाजीकरण करने में उस युग के कवि की रचनाएँ समर्थ सिद्ध हुईं। इतना ही नहीं, सामंती वैभव के आह्लाद मे प्रस्फुटित उसकी अभिव्यक्ति का स्वर भौतिक धरातल पर न सही, मानसिक स्तर पर जनसामान्य को उस वैभव का आस्वाद कराने में समर्थ सिद्ध हुआ। उस युग के काव्य की यह गुणगरिमा लोक के स्नेह का आधार बनी। श्लीलता और अश्लीलता का मानदंड व्यक्ति, समाज एवं कालसापेक्ष है। सिद्धांत में वेष्ठित कर सेक्स का जितना असामाजिक नग्न प्रदर्शन उच्चसाहित्य के स्रष्टा बननेवाले अनेक जन आज कर रहे हैं उतनी बीभत्सता रीतिकाव्य की कामलीला में नहीं है। ऐसी स्थिति में रीतिकाल के साहित्य को सर्वथा अवांछित मानने का आग्रह केवल दुराग्रह या भावावेश मात्र है।

रीतियुग की भाषा शुद्ध टकसाली ब्रजभाषा नहीं है और इस भाषा का भक्तिकाल मे जैसा विकास हो रहा था उसे देखते हुए रीति साहित्य की भाषा अधिक प्रबुद्ध भी नहीं है। ब्रजभाषा पर केवल देशी भाषाओं का ही प्रभाव नहीं राजभाषाओं और सबल देशी रजवाड़ों की बोलियों का भी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार रीतियुग की ब्रजभाषा मे जहाँ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश से शब्द गृहीत हुए, वहीं मुगलों की राजभाषा फारसी और धर्म-भाषा अरबी के शब्द भी इसमें मिले और बुंदेलखंडी, अवधी और पूर्वी बोलियों के शब्द भी धड़ल्ले से प्रगृहीत हुए। इस प्रकार जहाँ ब्रजभाषा को व्यापक शब्दभंडार इस भाषा के व्यापक प्रसार के कारण प्राप्त हुआ, वहीं भाषा के प्रतिमानीकरण की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया। इस युग के कवियों ने अनुप्रास, चमत्कार और ध्वनि प्रदर्शन के लिये शब्दों को तोड़ने मरोड़ने मे भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई, इसलिये भी भाषा का प्रतिमानीकरण न हो सका।

रीतिकालीन साहित्य का यह सामान्य परिचय इस बात का साक्षी है कि रीतिकाल मे जहाँ एकरसता तथा भावव्यजना की एक प्रकार की विधागत उदासी है, वहीं शृगार और ऐसा शृंगार भी है जो बिना किसी हिचकिचाहट के सहज मानवीय महत्व का परिचायक है। रहस्यानंद या ब्रह्मानद से रसानद की ओर उन्मुख होना कम महत्व की बात इस दृष्टि से नहीं है कि हिंदी साहित्य मे बाद मे जो मानवीय स्वर लोकजीवन मे व्याप्त हो समस्त राग विरागों को लेकर साहित्य मे मुखरित हुआ उसका कामात्मक उत्स यहाँ आरंभ होता है। भले ही जीवन की तथा प्रवृत्ति के विविध रूपों एवं अंगों की विविधता इस युग के साहित्य मे न मिले तो भी जिस एक अंग विशेष के विषय मे इस युग मे सृष्टि की गई है, उसमे एक श्रेष्ठ शिखर तक उस युग के कवि पहुँचे हैं। इसमे सदेह के लिये स्थान भी नहीं है। बारीक कारीगरी के इस युग में काव्य में भी वही सामंती वृत्ति-प्रवृत्ति और बारीकी है जो तत्कालीन युग का प्रतीक है।

गुलाब नबी 'रसलीन' का जीवन

औरंगजेब और शिवाजी अपने समय मे देश की ऐसी महान् शक्तियाँ थीं जिन पर न केवल सारे समाज का ध्यान था अपितु उनके कृतित्व पर लोक को आशा भी था। इन महान व्यक्तियों का तिरोधान क्रमशः सन् १७०७ ई० और १६८० ई० को हुआ। इनके अभाव मे देश नेतृत्वहीन हो गया। यद्यपि औरंगजेब के तिरोधान होने के उपरात मराठों का उत्कर्ष हुआ, तो भी शिवाजी के बाद देश के वे आलोक विंदु न बन सके। रसलीन जिस क्षेत्र के थे आजन्म उस पर मुगलो का या उनके सूबेदारो का प्रभाव रहा। रसलीन के जीवन काल मे मुगलों के बहादुर शाह (१७०७ ई०-१७१२ ई०), जहाँदार शाह (१७१२-१७१३ ई०), फर्रुखसियर (१७१३-१७१६ ई०), मुहम्मदशाह (१७१६-१७४८ ई०), अहमदशाह (१७४८-१७५० ई०) पाँच बादशाह गद्दीनशीन हुए। ये अपने बल बूते या शक्ति पर दिल्ली के सम्राट् नहीं हुए थे अपितु दरबारियों एवं आश्रित अमीर उमराओं, सेनापतियों,

सरदारों, सामंतों और सूबेदारों की कृपा, कूटनीति तथा स्वार्थ के वश इन्होंने सम्राट् का पद प्राप्त किया था इसलिये प्रायः वे किसी न किसी रूप में स्वयं अपने आश्रितों के आश्रित थे और उनके इंगित पर प्रायः उन्हें चलना ही पड़ता था। सम्राटों के शासकवर्ग में केवल एक दल या वर्ग नहीं था अपितु नाना वर्ग और दल थे जिनका न तो कोई आदर्श था, न कोई लोक मंगल का विधान, अपितु वे सब के सब स्वार्थ से अनुरंजित थे। इसलिये वे परस्पर एक दूसरे के अभ्युदय को फूटी आँख भी देखना नहीं चाहते थे। स्वार्थानुप्रेरित वे वर्ग या दल गृहविग्रह नीति से लेकर शत्रुस्नेह नीति तक का उपयोग या प्रयोग पद पद पर करते थे और उसी आधार पर अपना जाल बिछाते थे। फलतः शासन से नैतिक निष्ठा समाप्त हो गई थी। किसी शासक का ऐसा अखंड मौलिक और नैतिक व्यक्तित्व भी नहीं था जिस पर जनता को रंचक आशा हो।

शाहजहाँ के समय ही आर्थिक दृष्टि से मुगल साम्राज्य सत्वहीन होने लगा था और औरंगजेब के बाद तो वह तत्वहीन भी हो गया था। ऐसी स्थिति में सूबेदार स्वतंत्र हो अपनी राज्यसत्ता की स्वतंत्र स्थापना करने लगे थे और सर्वत्र व्याप्त अविश्वास के वातावरण में सम्राट् निम्न कोटि की विलासिता और भोग में आत्मसंमान को आहुति दे प्रतारणा सहकर भी अपना जीवन काट देना चाहते थे।

जब विपत्ति आती है तो आपदा का तूफान चतुर्दिक रहता है। इस काल में जहाँ अंतर्विद्रोह सत्ता और संपत्ति के लिये नित्य की साधारण घटना हो गई थी वहीं शक्ति एवं सत्वहीनता के कारण विदेशियों के लिये आक्रमण और लूट का द्वार भी खुल गया था। नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के क्रमशः सन् १७३९ ई० एवं १७४८ ई० के हमलों, कत्लेआमों तथा लूट ने मुगल साम्राज्य को पंगु बना दिया और देश तबाह हो गया। मुहम्मदशाह के नाम से २८ सितंबर सन् १७१९ ई० को एक अनुभवहीन राजकुमार रौशन अख्तर दिल्ली के तख्त पर बैठा और २६ अप्रैल १७४८ ई० को वह गत हुआ। सैयद बंधुओं की कृपा से उसे यह पद प्राप्त हुआ इसलिए वह उनकी कठपुतली था। रसलीन के जीवन का अधिकांश इसी सम्राट् के कार्यकाल में बीता। इतिहास इसे मुहम्मदशाह रँगीला के नाम से संबोधित करता है। इस रंगीन मिजाज शासक ने सारा राजकाज मंत्रियों

के हाथ में सौंप दिया और अपना समय निकृष्ट भोग विलास में व्यतीत करनेवाला यह ऐसा निकम्मा शासक हुआ जिसके राज्यकाल मे प्रतापी मुगल सेना का अनुशासन एवं चरित्र गिरा तथा मुगलों की सारी प्रतिष्ठा जाती रही। साम्राज्य की सीमा भी अत्यत संकुचित हो गई। क्योंकि दक्षिण के छह सूबे तथा उड़ीसा, बंगाल, बिहार स्वतत्र हो गए। मालवा, गुजरात तथा बुंदेलखंड पर मराठों का आधिपत्य स्थापित हो गया। राजपूताना पर दिल्ली की सत्ता समाप्त हो गई और यूरोपियन व्यापारियों के मन में भारत मे अपना साम्राज्य स्थापित करने का सकल्प जगा।

अवध प्रदेश मे रसलीन की जन्मभूमि थी। इसका नाम अवध रामराज्य के नाम पर ही पड़ा था। मुहम्मदशाह रँगीला ने सैयद मुहम्मद अमी नामक एक सौदागर से प्रसन्न होकर ३ नवबर सन् १७२० ई० मे उसे आगरा का सूबेदार बनाया। वह सआदत खाँ 'बुरहानुलमुल्क' नाम से प्रसिद्ध था। कुछ समय बाद सन् १७२२ ई० से आगरा अवध की सूबेदारी में शामिल कर अवध सूबा बनाया गया और सआदत खाँ सन् १७३९ तक सूबेदार रहा। उसे दिल्ली सम्राट् से नवाब वजीर का खिताब भी मिला था। उसने सन् १७३९ ई० मे दिल्ली में आत्महत्या कर ली और इसका पुत्र नवाब अलमंसूर खाँ सफदरजंग सूबेदार नियुक्त हुआ और १७५६ ई० तक अपने पद पर बना रहा। सन् १७२२ ई० से ही अवध पर नाम मात्र का मुगल सम्राट् का आधिपत्य रह गया था क्योंकि सआदत खाँ नाममात्र को दिल्ली के अधीन था। वह प्रायः स्वतंत्र राज्य की स्थापना ही कर बैठा था। नादिरशाह के हमले के उपरांत उसने राज खुल जाने के भय से ही आत्महत्या की थी। उसके पुत्र सफदरजंग का प्रभाव और प्रभुत्व उससे कम न था। रसलीन का संबंध और कार्यकाल अवध के इन दो नवाबों के समय का है। अवध उस समय भारत का उद्यान था और कर्नल स्लिम[1] तथा मेजर बर्ड[2] इसे हिंदुस्तान का चमन मानते थे। आकर्षण वाले स्थानों में अवध भी था। रसलीन की यह जन्मभूमि उस समय सक्रांति की क्रीड़ा भूमि बन गई थी। दिल्ली की गृहनीति में अवध के सूबेदार या नवाब की महत्वपूर्ण भूमिका सदाअत खाँ ने स्थापित की और दिनोंदिन नवाब का मुगल

१. जर्नी थ्रू दी किंगडम आफ औंड इन १८४९-५०।
२. इंक्वाइरीज आर दी इक्सप्लाइटेशन आफ आवंड औंड बाइ दी ईस्ट इंडिया कंपनी।

साम्राज्य के सूत्र संचालन मे योगदान बढ़ता ही गया। सफदरजग की भूमिका इस क्षेत्र मे विशेष महत्व की थी। रुहेले और जाट अपना आधिपत्य बढ़ा रहे थे और मराठे भी यथा अवसर अपना मोर्चा खड़ा करते रहते थे। मुंशी नवल राय भी समय का लाभ उठाने वाले कम बड़े योधा न थे। फलतः दिल्ली और वाराणसी के बीच की भूमि आतक और रणक्षेत्र के रूप में परिणित हो गई थी, विशेष कर इसके मध्य का भाग। इसके मध्य भाग मे ही दिल्ली और वाराणसी के रास्ते पर हरदोई के अतर्गत श्रो नगर (बिलग्राम) भी पड़ता था। बिलग्राम रसलीन की जन्मभूमि थ'। मध्यकाल की विद्या का यह महान् केंद्र आए दिन फौजो के चरण चाप से धूल धूसरित होनेवाले क्षेत्र मैं था इसलिये उस हलचल मे इस स्थान का जीवन असामान्य था। ऐसी असामान्य स्थिति मे जीना ही एक बहुत बड़ी बात है और जीवित रहकर स्वाभिमानपूर्वक बिना किसी आश्रय के लिखते रहना तो और बड़ी बात। जहाँ एक एक दिन मे अधिकार बदलते रहते हों वहाँ पुरुषार्थी ही जी सकता है पराश्रयी नहीं। ऐसे समय मे भी ऐसे प्रदेशों मे स्वाभिमानी साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने स्वाभिमानपूर्वक जीवन यापन के लिये उस युग का स्वतंत्र आश्रय सैनिक रूप मे ग्रहण किया और अपनी आस्था की अभिव्यक्ति साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं के माध्यम से किया। रसलीन ऐसे ही लोगों मे थे।

यद्यपि मुगल कालीन भारत आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी था तो भी शिक्षा, कला और साहित्य के अभ्युदय के लिये शाहजहाँ के उपरात सम्राटाश्रय एवं सामंताश्रय को युग की परिस्थितियों के कारण अवकाश ही नहीं था। यद्यपि सरकार की ओर से कुछ पुरान विद्यालय अवश्य चलाए जाते रहे जिनमें विविध भाषाओं साहित्य, ज्योतिर्विज्ञान, चिकित्सा तथा धर्म और संप्रदाय आदि की पढ़ाई तो होती थी तो भी इस पुरातन देश मे गाँव गाँव में पंडितों और मौलवियों की अपनी स्वतत्र पाठशालाएँ थी जहाँ भाषा व्याकरण साहित्य आदि की शिक्षा की स्वतंत्र व्यवस्था स्वय पडित या मौलवी करते थे। वे कहीं कहीं मंदिरों और मस्जिदों से भी संबद्ध थे। सर्वत्र लोग ऐसी पाठशालाओं एवं मकतबों को धन दान करना अपना कर्तव्य समझते थे। इन विद्यालयों मे पठन पाठन की निःशुल्क व्यवस्था वहाँ का आचार्य तो करता ही था यथावश्यकता वह विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क आवास तथा भोजन की भी व्यवस्था विद्यालय की ओर से करता था। यद्यपि उस युग मे उपाधि

एवं सनद का वितरण नहीं होता था, तो भी स्थान या विद्यालय अथवा आचार्य का नाम ही शिक्षा की गरिमा का बोध जनसामान्य को करा देता था। १७ वीं शताब्दी तक शिक्षा और साहित्य का यह आदोलन गाँव गाँव तक जन आदोलन के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। मुगलों के समय मे संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, हिंदी (ब्रज), इतिहास आदि के एक साथ अध्ययन, अध्यापन और लेखन के लिये ऐसे जिस एक नए स्थान ने देश में ख्याति अर्जित कर ली थी, वह स्थान बिलग्राम था। यहाँ हिंदू मुसलमान सबके सब शिक्षा के प्रेमी थे और साथ साथ अरबी, फारसी, संस्कृत, हिंदी और संगीत सबका अध्ययन करने मे प्रसन्नता का अनुभव करते थे। इनमे धार्मिक तथा सांप्रदायिक सहिष्णुता भी थी। पौरुष मे विश्वास रखनेवाले यहाँ के लोग तलवार के धनी होते थे। इस स्थान के सभी वर्गों के लोग अपने नाम के साथ बिलग्राम लगाने में गौरव का अनुभव करते थे। मूलतः फारसी, संस्कृत और हिंदी के अध्ययन एवं रचना केंद्र के रूप मे देश विदेश मे बिलग्राम की प्रतिष्ठा थी, तो भी सन् १७२२ ई० से मुहम्मदशाह 'रँगीला' के दरबार में दक्खिनी के श्रेष्ठ कवि 'वली' के प्रवेश से यह रेखता का भी केंद्र बन गया था। बिलग्राम में कँड़े के लोग रहते थे जिनमें विद्या, सहिष्णुता एवं पुरुषार्थ के प्रति प्रेम कूट कूटकर भरा था। यहाँ के लोग बहुभाषाविद्, विनयी, सबका संमान करने वाले, रण कौशल में माहिर तथा जाँगरदार होते हुए भी कला और संगीत के रसिक उपासक हुआ करते थे।

बिलग्राम कोई सहज सामान्य गाँव नहीं अपितु उसका ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्व भी है। श्रीमद्भागवत पुराण मे आख्यान है कि बलराम ने नैमिषारण्य के ऋषियों के सुख शाति हेतु 'बिल्व' नामक उत्पाती राक्षस का यहीं वध किया था इसलिये इसका नाम बिलग्राम पड़ गया था। फिर इतिहास में इसकी चर्चा नहीं मिलती। नवीं और दशवीं शताब्दी मे गायकवाड़ राजा श्रीराम ने इस पर अपना अधिकार कर लिया और इसका नाम श्रीनगर रखा।[1] यद्यपि कुछ लोग ऐसा मानते है कि सैयद सालार (१०३२ ई० के

---

१. हरदोई गजेटियर : डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ दी युनाइटेड प्राविंसेज आफ आगरा एंड अवध, एच० आर० नेविल्ल, आई० सी० एस० द्वारा संग्रहीत एवं संपादित।

लगभग) कन्नौज से बिलग्राम होता हुआ गुजरा था जो मुहम्मद गजनी (१०१८ ई० के लगभग) के साथ कन्नौज आया था। यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों के आने के पूर्व तक रायकयाड़ यहाँ पर थे। मुहम्मद गजनी की कन्नौज विजय के बाद श्रीनगर के विजित होने पर इसका नाम बिलग्राम रख दिया गया। ऐसा भी कहा जाता है कि गजनी की सेना के काजी यूसुफ ने इसे १०४६ ई० मे जीता था। यहाँ सबसे पुराना मकबरा ख्वाजा मदुद्दीन का है, जिन्होंने स्थानीय दैत्य बिल की परिसमाप्ति की थी। इसलिये इसका नाम विलग्राम पड़ा।[१]

बिलग्राम मे बिलहट्टा 'बिलहाटेश्वरी' देवी का मदिर है। जो कुछ भी हो, यह बात अधिक जँचती है कि पौराणिक आख्यान के आधार पर ही इसका नाम बिलग्राम पड़ा। इस बिलग्राम मे रसलीन के पूर्वज सन् १२१७ ई० मे आए। सम्राट् शम्सउद्दीन इल्तुतमिश (१२११-१२३६ ई०) की छत्रछाया में मुहम्मद सुगरा ने बिलग्राम पर अपना आधिपत्य जमाया[२]। यह रसलीन के इस ग्राम में आदि पुरुष थे।[३] इसका उल्लेख रसप्रबोध मे स्वयं रसलीन ने किया है। दिल्ली के सल्तनत काल मे इसका उल्लेख सामान्य रूप से मिलता है। क्योंकि हरदोई दिल्ली के रास्ते मे था। इब्राहिम लोदी की हार के बाद अफगानों और मुगलों की लड़ाइयों के प्रसंग मे इस स्थान की चर्चा मिलती है। हुमायूँ शेरशाह सूरी से यहाँ सन् १५४० ई० में हारा था। इसलिये बिलग्राम ऐतिहासिक स्थान भी रहा है। शिक्षा और इतिहास के इस स्थान की महिमा इसी से जानी जा सकती है कि औरंगजेब जैसा व्यक्ति भी बिलग्राम के सैयदों को मस्जिद की चौखट और कुरान के पृष्ठ की भाँति श्रद्धास्पद मानता था और यह स्वीकार करता था कि न तो ये जलाए जा सकते हैं और न विक्रेय हैं।[४]

गुलाम नबी 'रसलीन' बिलग्रामी केवल ऐसे इतिहासप्रसिद्ध शिक्षाकेंद्र में उत्पन्न ही नहीं हुए थे, उनकी वंश परंपरा भी बड़ी उज्वल थी, जो मुहम्मद साहब से आरंभ होती है। ईरान का राजवंश भी इनसे संबंधित था।

---

१. वही।

२. वही।

३. देखिए दोहा संख्या ११ पृ० ६।

४. हयायते जलील।

मुसलमानों के तीसरे इमाम हजरत हुसैन तथा ईरान के शासक नौशेरवाँ की पौत्री शहर बानों से चौथे इमाम हजरत जैनुल आबिदीन हुए। हजरत आबिदीन की वंशपरंपरा इस प्रकार है—

हजरत आबिदीन
|
हजरत जैद
|
ईसा मूतिमुल अकवाल
|
सैयद मुहम्मद
|
सैयद अली एराकी
|
सैयद हुसैन
|
सैयद अली
|
सैयद जैद (द्वितीय)
|
सैयद उमर
|
सैयद यहया
|
सैयद हुसैन (तृतीय)
|
सैयद दाऊद
|
सैयद अबुल फरह
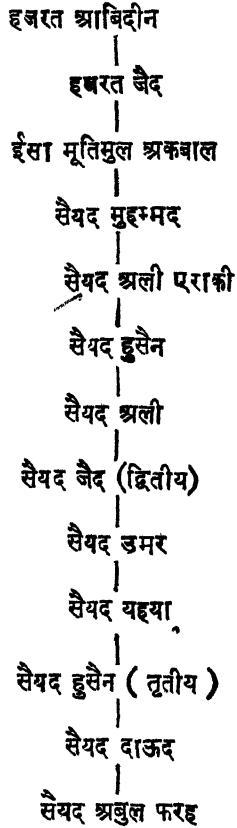
रौजतुलुक कराम मे उनकी वंशावली का वर्णन है और रसप्रबोध में स्वयं उन्होंने अपने कुल का वर्णन ११ दोहों मे किया है।[1] इन वंशावलियों को देखने से ऐसा लगता है कि विद्वानों एवं संतों की मध्यकालीन विशिष्ट क्रीड़ाभूमि बिलग्राम मे बसनेवाले मुसलमानों के मूल पुरुप एक ही थे। मुसलिम जगत में यह वंश हुसैनी वास्ती वंश के नाम से विख्यात है।[2] हुसैनी वास्ती वंश के

१. पृ० ५-७।

२. देखिए दोहा संख्या १२, पृ० ५।

सैयद अब्दुल फरह मूल व्यक्ति हैं जिनके बंश मे 'रसलीन' उत्पन्न हुए। यह बंश मूलतः मदीने का निवासी था और वहाँ शासन के अत्याचार से त्रस्त होकर ये लोग ईराक के नगर 'वास्त' मे आकर रहने लगे इसलिये यह वंश 'वास्ती' कहलाता है। सैयद अब्दुल फरह वास्त को छोड़कर गजनी चले आए फिर वहाँ से उनके तीन पुत्र सैयद अब्दुल फरास, सैयद दाऊद और सैयद अब्दुल फजाएल भारत चले आए और उनके चौथे पुत्र सैयद मुइज़ुद्दीन गजनी में ही रहे। अब्दुल फरास सम्राट् द्वारा भेंट में मिले भारत के जाबनेर गाँव में आकर रहने लगे।

जाबनेर में इनकी वंशावली निम्न प्रकार से रही—

अब्दुलफरास
|
अब्दुलफरह
|
सैयद हुसेन
|
सैयद अली

सैयद अली सुत मुहम्मद सुगरा ने सन् १२१७ई० मे बिलग्राम को अधिकृत किया था। आगे इनके वंश के लोग यहीं हुए।[1] इस वंश मे एक से एक ख्यातिलब्ध लोग हुए हैं। सैयद हुसेन तृतीय के दो पुत्र थे एक सैयद सालार और दूसरे सैयद कासिम। दोनों वश अत्यंत यशस्वी हुए। सैयद सालार के पौत्र दादन जो रसलीन के पूर्वज थे, वे ही मीर जलील जैसे विद्वान और सैयद कासिम मधनायक एवं पेमी जैसे कवि के। इस प्रकार यदि देखा जाय तो हुसैनी वास्ती वंश ने अकेले फारसी और हिंदी साहित्य एव संगीत आदि के लिये जितना कार्य किया है, शायद ही किसी एक वंश ने मध्य काल मे अकेले एक स्थान पर इतना किया हो।

---

१. दी मुसलमान रूल वाज इस्टैब्लिश्ड बाइ हिज सक्ससेर शमसुद्दीन अल्तमश, हू केम टू कन्नौज इन १२१७ ए० डी०, बिलग्राम वाज टेकेन फ्राम द रायकवारस वाइ टू आफ हिज कैप्टनस्, शेख मुहम्मद फतेह एण्ड सैयद मुहम्मद सुगरा, हू'ज डिसेंडेंट आर टू बी० फाउंड देयर।

रसलीन का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

सैयद अब्दुल फरह
|
सैयद अबुल फरास
|
सैयद अबुल फरह
|
सैयद हुसेन
|
सैयद अली
|
सैयद मुहमद (प्रथम)—बिलग्राम श्रीनगर में बसे
|
सैयद उमर
|
सैयद हुसेन (द्वितीय)
|
सैयद नसीरुद्दीन
|
सैयद हुसेन (तृतीय)
|
सैयद सालार
|
लुत्फुल्ला लड्ढा
|
सैयद दादन
|
सैयद मुहमूद
|
सैयद खान मुहम्मद
|
सैयद अब्दुल कासिम
|
अब्दुल कादिर
|
सैयद तैयब
|
अब्दुल हमीद
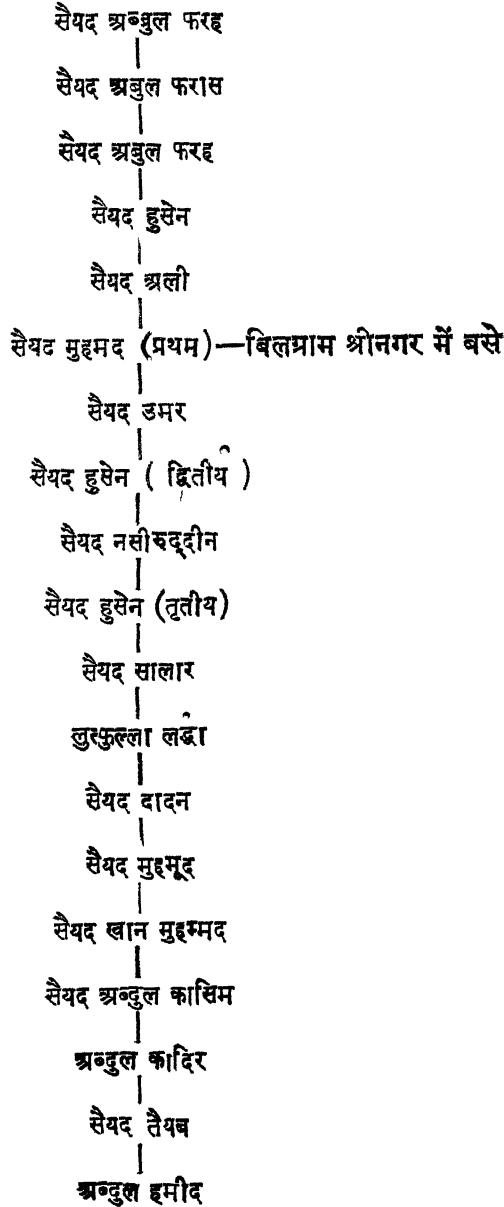
|
मुहम्मद बाकर
|
गुलाम नबी

बिलग्राम ने हिंदी को मध्यकाल मे अनेक सरस एवं प्रौढ़ कवि दिए हैं जिनमें सैयद गुलाम नबी जो 'नबी' और 'रसलीन' उपनाम से विख्यात हैं अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं और हिंदी मे शास्त्र कवि, शास्त्रीय कवि तथा सहज कवि के रूप मे मौलिक महत्व के हैं। इनका जन्म बिलग्राम में ३० जून, सन् १६९९ ई० (मोहर्रम २, हिजरी संवत् ११११) को पूर्व वर्णित सुप्रसिद्ध सैयद वंश मे बाकर के पुत्र के रूप मे हुआ था। सर्वे आजाद में इनका प्रामाणिक जीवन वृत्त तथा सरस रचनाओं का संकलन अन्यान्य कवियों के साथ किया गया है।

'रसलीन' के मामा मीर अब्दुल जलील बिलग्रामी औरंगजेब की सेना में थे और 'रसलीन' के जन्म के समय वे दक्षिण मे सितारा के गढ़ के पास सेना शिविर मे थे। वे संस्कृत, अरबी, तुरकी, फारसी, उर्दू और हिंदी के विद्वान् तो थे ही, कवि भी थे। भाजे की जन्म तिथि को उन्होंने तत्कालीन विद्वत् काव्य परंपरा के अनुसार छंदबद्ध करने का सकल्प किया। सोये मे उस शिशु का स्वप्न उन्हें दीखा और उसकी वाणी उन्हें सुन पड़ी जो जगने पर उन्होंने इस प्रकार अंकित की :

"नूर चश्मे बाकरे अब्दुल हमीदम"

अर्थात्

"मैं अब्दुल हमीद के पुत्र बाकर की आखों का तारा (संतान) हूँ।"

फारसी मे प्रत्येक अक्षर संख्या के संकेत के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। हिंदी शब्दों मे भी ऐसा होता है यथा शशि = एक, ग्रह = नौ, सिद्धि = आठ, निधि = नौ आदि आदि। इस दृष्टि से उक्त फारसी छंद से जो संवत् प्रकट होता है वही रसलीन के जन्म का भी संवत् है—

नूर	चश्‍	मे
नून + वाव + रे	चे + शीन् +	मीम
५० + ६ + २००' +	३ + ३००	+ ४०' +

बा क रे
बे + अलिफ + काफ + रे
२ + १ + १०० + २००
अ ब दु ल
ऐन + बे + दाल + अलिफ + लाम
७० + २ + ४ + १ + ३०
ह मी द म
हे + मीम + ए + दाल + मीम
८ + ४० + १० + ४ + ४० = ११११ हिजरी

रसलीन के पंडित कवि मामा ने स्वप्न मे प्रकट कविता की इस एक पंक्ति को आधार मान कर तीन और पक्तियाँ रच छंद को पूरा किया जो इस प्रकार 'सर्वे आजाद' में दी गयी हैं:—

"नूर चश्मे मीर बाकर गुफत् बामन
चूँ गुले खुरशीद दर आलम दमीदम
साल तारीखे तवल्लुद खुद बेगुफ्तम
नूर चश्मे बाकरे अब्दुल हमीदम[१]"

अर्थात्

(मीर बाकर के पुत्र ने मुझसे कहा कि मैं संसार में सूर्य के फूल (सूर्यमुखी) के समान खिला हूँ और अपनी जन्म तिथि जो मैने स्वयं कही 'नूर चश्मे बाकरे अब्दुल हमीदम' (११११ हिजरी) है।

इतना ही नहीं उसके मामा ने जो बधाई का पत्र बिलग्राम भेजा था उसमें भविष्यवाणी भी की थी कि शिशु एक निष्णात कवि भी होगा।[२] समय ने रसलीन के जीवन में ही इसे सिद्ध कर दिया।

बिलग्राम उस समय सहिष्णु विद्याव्यसनी सभी भाषाओं के पंडितों की साधना भूमि थी। कवि, पडित, शायर अपने ज्ञान के प्रकाश से उसे आलोक-

१. सर्वे आजाद, पृ० ३१२।

१. सर्वे आजाद, पृ० ३१३।

दान कर रहे थे। ज्ञान के सभी क्षेत्रों मे बिलग्राम की महिमा तो इतिहास में प्रतिष्ठित है ही, तलवार के धनी भी यहाँ कम न हुए। देश मे किसी एक गाँव का ऐसा इतिहास मुस्लिम काल मे शायद ही मिले। रसलीन की शिक्षा दीक्षा भी ऐसे ही वातावरण में हुई। इनका घर और नातारिश्ता ज्ञान और शक्ति का उपासक तो था ही, ये भी उसी साँचे मे ढले।

अपने विद्यागुरु तुफैल मुहम्मद बिलग्रामी की प्रशस्ति स्वयं 'रसलीन' ने इस प्रकार की है :—

'देस बिदेसन के थे सब पंडित
सेवत हैं पग सिष्य कहाई।
आयो है ज्ञान सिखावन को
सुर को गुरु मानस रूप बनाई।
बालक • बृद्ध सुबुद्धि जहाँ लगि
बोलत हैं यह बात सुनाई।
गौ मन मैल गहै सुभ गैल
तुफैल तुफैल मुहम्मद पाई॥'[1]

इससे न केवल रसलीन के विद्या गुरु की महिमा प्रतिष्ठित होती है अपितु बृहस्पति के समान उन्हे मान कर अपने जिस संस्कार का बोध कवि ने कराया है वह सर्वथा भारतीय है। ये अपने युग के निष्णात विद्वान् थे। इनकी शिक्षा रसलीन के जीवन में ज्योतिर्मय हुई। ये सर्व आजाद आदि प्रसिद्ध ग्रंथों के इतिहास प्रसिद्ध लेखक आजाद बिलग्रामी के भी गुरु थे जहाँ स्थानीय तथा बाहर के ज्ञानपिपासु ज्ञानार्जन हित आते थे। यद्यपि मीर साहब स्थायी रूप से १५ वर्ष की अवस्था से ही बिलग्राम मे ही रहते थे तो भी मूलतः अतरौली आगरा में वे उत्पन्न हुए थे। मीर साहब ही रसलीन के काव्यगुरु भी थे। रसलीन हिंदी के उच्च कोटि के शास्त्रीय कवि हैं। इन्होंने यथा आवश्यकता भानु मिश्र की रसमंजरी, भरत के नाट्य शास्त्र, केशव की कविप्रिया तथा अन्यान्य संस्कृत हिंदी ग्रंथों के मतों का उल्लेख मात्र ही नहीं किया है, उन पर अपने चिंतनशील विचार ही व्यक्त नहीं किए हैं अपितु उर्दू और फारसी में

---

१ फुटकल कबित्त छं० सं० २२।

उन्होंने रचना भी की है, साथ ही राधा कृष्ण से लेकर हिंदुओं की पौराणिक गाथाओं तक की चर्चा से लेकर अपने धर्म के चौदह मासूमों तक का वर्णन भी न किया है और उसमे कहीं चूक नहीं है। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने शास्त्रों का व्यापक अध्ययन किया था। ज्योतिष से लेकर समर और संगीत शास्त्र तक से उन्होंने अपने काव्य के लिए सामग्री का चयन किया है। संस्कृत के प्रति उनमे अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने कहा भी है कि "**आवै कहै सुरबानी जबै तब भाखा कहा मुख ते कोउ भाखै**"।[1] गुरु के अतिरिक्त रसलीन के श्रद्धास्पद मीर लुत्फुल्ला लद्धा, शाह बरकत उल्ला 'पेमी' आदि थे जो उच्च कोटि के संत और कवि तथा भारत मे प्रचलित भाषाओं के विद्वान् थे। निश्चय ही इनके आशीर्वाद एवं संगति के द्वारा इन्होंने अपने ज्ञान की श्री सपदा मे वृद्धि की होगी। मीर आजाद बिलग्रामी जैसे उच्च कोटि के विद्वान् उनके मित्र थे, जिनके साथ ये शाहजहानाबाद और इलाहाबाद आदि में भी थे। इससे स्पष्ट है कि वे एक दूसरे से प्रभावित थे और ज्ञान की सहसाधना भी करते थे।[2]

बिलग्राम के पूर्ववर्ती हिंदी कवियों का भी अध्ययन 'रसलीन' ने अवश्य किया होगा क्योंकि गगा के तीर पर कोई सुबुद्ध प्यासा रह नहीं सकता। ऐसे स्थान पर रहते हुए अपने नगर के पूर्ववर्ती कवियों का अध्ययन न करना संभव नहीं हो सकता। बिलग्राम के वे पूर्ववर्ती साहित्यकार एवं कवि इस प्रकार हैं :

बिलग्राम और हिंदी

यहाँ हिंदुओं मे मन्नालाल, क्षेमराज, द्वारका, हरबंश, बलभद्र (सुप्रसिद्ध हिंदी कवि से इतर) देवीदीन आदि मिश्र परिवार मे, राय बेनी राम, मनसाराम, रामप्रसाद, हरिप्रसाद, सुब्बाराम, शिवदयाल, जवाहर आदि राय परिवार में अच्छे कवि हुए। मिश्र ब्राह्मण थे और राय भाट (भट्ट ब्रह्म)।

अरबी फारसी

मीर अब्दुल वहिद, मीर सैयद मुरतुजा, शेख निजाम 'जमीरी'; शेख औहदुद्दीन, मीर अब्दुल्लाह काबिल, मीर अब्दुल जलील, मीर सैयद मुहम्मद शायर, मीर आजाद बिलग्रामी, मीर अजमत उल्लाह बेखबर, शेख गुलाम

---

१. देखिए पृष्ठ ३२५, ३२६।

२. सर्वे आजाद, ३१३।

हसन सिद्दीकी, शेख निजामुद्दीन अहमद सानेश्र, अमीर हैदर आदि अरबी तथा फारसी के प्रतिष्ठित साहित्यकार इस स्थान पर हुए। इस स्थान पर ये ऐसे कवि थे जिनका मान संमान सर्वत्र था और ऐसे ऐसे विद्वान् इनमे थे जिनका विदेशों में भी बड़ा मान रहा।

रसलीन के निकट पूर्ववर्ती एवं समसामयिक साहित्यकार इस प्रकार थे:

१. शेख इनायतुल्ला	(मृ० १६८८ ई०)
२. सैयद हुसैन	(मृ० १७२० ई०)
३. मीर अब्दुल्लाह	(मृ० १७२१ ई०)
४. मीर अब्दुल वाही 'जौकी'	(मृ० १७२१ ई०)
५. अजीब	(मृ० १७२७ ई०)
६. मीर अजमत उल्लाह बेखबर	(मृ० १७२६ ई०)
७. मीर लुत्फुल्लाह	(मृ० १७३४ ई०)
८ मीर सैयद मुहम्मद शायर	(मृ० १७४३ ई०)
६. रस नायक	(र० का० १७४६ ई०)
१०. सैयद मुबारक	(१५८३–१६८७ ई०)
११. सैयद निजामुद्दीन 'मधनायक'	(१५६१-६६८७ ई०)
१२. सैयद रहमत उल्लाह 'रहमत'	(१६५०–१७०६ ई०)
१३. मीर अब्दुल जलील	(१६६०–१७२५ ई०)
१४. सैयद बरकत उल्ला 'पेमी'	(१६६०–१७२६ ई०)

क्रमशः इनकी रचनाएँ	भाषा ज्ञान
१—स्फुट (अनुपलब्ध)	अरबी, फारसी, हिंदी (ब्रजभाषा) सस्कृत, संगीत शास्त्र
२. स्फुट—अज्ञात (कवित्त आदि)	ब्रजभाषा
३. स्फुट-अज्ञात (शृंगारी रचना)	अरबी, फारसी, हिंदी (ब्रज)
४. शकरिस्ताने खयाल (अप्राप्य) कुछ हिंदी रचनाएँ हैं।	फारसी, हिंदी
५. अप्राप्य	फारसी तथा हिंदी मिश्रित भाषा+ ब्रज भाषा
६. अप्राप्य (दोहे और कवित्त)	अरबी + फारसी + हिंदी (ब्रजभाषा)

७. अप्राप्य		फारसी + हिंदी ब्रजभाषा
८. अप्राप्य (कवित्त और दोहे)		अरबी + फारसी + ब्रजभाषा
९. बिहारी सतसई,		फारसी + अरबी + हिंदी
रसिक प्रिया की टीका		
स्फुट (सभी अप्राप्य)		
१०. तिल शतक	भक्ति	अरबी + फारसी
अलक शतक	शृंगार	संस्कृत, हिंदी
स्फुट कवित्त सवैया		
११. नाद चंद्रिका	शृंगार	फारसी, संस्कृत, हिंदी
मधनायक शृंगार		
स्फुट छंद		संगीत शास्त्र
१२. पूर्णरस	शृंगार	हिंदी काव्य शास्त्र
(अप्राप्त)	नख सिख	अरबी + फारसी
१३. शिख नख	शिख नख	तुर्की, अरबी, फारसी
पेम कथा चौपाई	(बरवै छंद)	हिंदी संस्कृत
कसीद ए गर्दाई	(दोहा)	
(बीच मे हिंदी छंद]		
१४. प्रेम प्रकाश (प्रकाशित)		अरबी, फारसी, संस्कृत हिंदी, उर्दू
अवारिफे हिंदी	भक्ति	ज्ञान (हिंदी सस्कृत)

बिलग्राम मे उत्पन्न इन पूर्वकालिक तथा समसामयिक मुसलिम कवियों की काव्य धारा का भी प्रभाव रसलीन पर अवश्य ही पड़ा होगा और उनके काव्य का अध्ययन करने का भी अवसर उन्हे मिला होगा। यद्यपि इनके अतिरिक्त बिलग्राम के हिंदू कवियों के काव्य का भी उन्होंने अवलोकन अवश्य ही किया होगा जिनकी काव्य सर्जना भी उनसे विलग पंथ की अनुगामी नहीं थी। ऐसे तो बिलग्राम विद्वानों एवं कवियों तथा शायरों की खान ही था जहाँ से भाषा और साहित्य की श्री वृद्धि करने का सतत यत्न मध्य युग मे हुआ। ऐसी विमल साहित्यिक परंपरा के मध्य रसलीन ने अपनी साहित्य रचना के लिये संबल प्राप्त किया।

सहज अनुभूति जब विशाल ज्ञान के संयोग से भाषा मे मूर्त होती है तो कालातीत साहित्य की सृष्टि होती है। ऐसे ही ज्ञानी स्रष्टा, जिनका साहित्य से अनुराग था और जिन्होने जीवन यापन के लिये तलवार का सहारा लेकर जीवन को भली भाँति देखा और भोगा था, रसलीन थे।

फारसी, अरबी, संस्कृत, रेखता, ब्रज आदि भाषाओं का उन्हे गंभीर ज्ञान था और काव्य रचना से प्रेम। इसके लिये अनुभूतिग्राही जीवन भी उन्हे मिला था। उन्होंने फारसी लिपि मे ठीक ठीक हिंदी लिखने के लिये एक ओर जहाँ फारसी लिपि मे परिष्कार किया, संस्कृत के साहित्य शास्त्र के ग्रंथों से ज्ञान अर्जित किया, अन्यत्र के हिंदी के श्रेष्ठ कवियों का अध्ययन किया, वहीं फारसी, ब्रज और रेखता मे रचनाएँ भी कीं, जिनका विस्तृत अध्ययन आगे किया जाएगा।

चौधरी बसीयुल हसन बिलग्राम के 'रोजतुल कराम' के अनुसार रसलीन का विवाह उनके विद्वान् सगे मामा सैयद करम उल्लाह की कन्या के साथ हुआ था। उनकी वशावली उस ग्रंथ के अनुसार इस प्रकार है:—
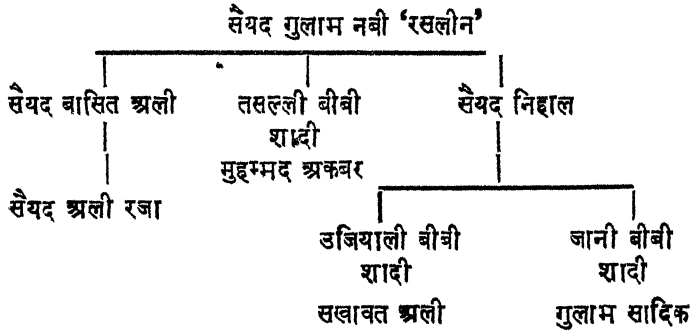
रसलीन परम स्वाभिमानी व्यक्ति थे। स्वाभिमान पुरुषार्थ के बल पर दीप्ति पाता है। पुरुषार्थी का माथा सत्य और सर्जनहारे के संमुख ही नवता है। सच्चा स्वाभिमानी दया पर नहीं शक्ति पर विश्वास करता है। याचना का जीवन कर्म पर कलंक है। ज्ञान कर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है और मान को ही जीवन का सत्व समझता है। स्वाभिमानी इसके लिये बड़ा से बड़ा त्याग सहर्ष करता है और कष्ट और अभावमय जीवन में भी सहज ही संतोष की साँस लेता है।

मध्य युग में तलवार के धनी ज्ञान से विरत नहीं होते थे। रसलीन नबाब सफदरजंग की सेना मे कुशल सैनिक थे और धनुर्विद्या मे अपना सानी नहीं रखते थे। जीवन यापन के क्षेत्र में अपने कर्म के कारण वे प्रतिष्ठित थे। स्वाभिमान उनका ऐसा था कि किसी के भी सामने वे झुकने वाले नहीं थे। इसीलिये गुरु, ईश्वर, धर्म दूतों, पूर्वजों, संतों आदि की स्तुति एवं प्रशसा तो उन्होंने की है पर किसी राजा महाराजा, नबाब या स्वामी की प्रशंसा से अपनी लेखनी का मुख मलीन नहीं किया। भले ही जीवन मे उनकी आह इस रूप मे प्रकट हुई :—

तजि द्वार ईस को नवायो सीस मानुस को।
पेट ही के काज सब लाज खोइ बावरे॥ [पृ०, ३०३]

पर साथ ही उनका स्वाभिमान मुहम्मद साहब की बदना में यह भी कहता है:—

जीभ चखै तुव नाम को अमृत औरन नाम को पावत फीको।
खाटी मही कह क्यों मुख भावत जाको गयो पन खातहि फीको॥
चाह्यो न आज लौं काहूँ सो काज कि आवत लाज यहै नित जी को।
तू बिनती करै औरन पास कहाइ के आप गुलाम नबी को॥
[पृ०, ३०१]

बिलग्राम में हिंदी मुसलमान सभी स्वतंत्रतापूर्वक अपने धर्म की उपासना करते थे। सूफियों की सी उनमे उदारता थी। यद्यपि वे अपने धर्म के पक्के अनुयायी थे तो भी दूसरों के धर्म का मान वे सचाई के साथ करते थे। सहिष्णुता सत् धर्म के अभ्युदय का मूलाधार है। रसलीन भी एक ऐसे उदार-मना निज धर्मोपासक सहिष्णु कवि थे जिन्होंने मोहम्मद साहब, हजरत अली, इमाम हुसेन, इमाम हसन, दोहत, पीर और अतिथि के साथ ही साथ गंगा, राम, हनुमान और लक्ष्मण आदि को भी श्रद्धापूर्वक उपस्थित किया है। इसे देख कर ऐसा लगने लगता है कि वे शिया थे किंतु वस्तुस्थिति यह है कि संत और कवि होने के लिये आदमी होना पहले आवश्यक है फिर कुछ और। अपने धर्म का सच्चा अनुयायी दूसरे धर्म को गिराता नहीं क्योंकि किसी को उठा कर जो श्रद्धार्जन नहीं कर सकता, वह किसी को गिरा कर स्वय ऊँचा नहीं उठ सकता। रसलीन सच्चे अर्थ में मनुष्य थे और अपने धर्म के श्रद्धालु अनुयायी। इसलिये अन्य धर्मों के प्रति वे परम सहिष्णु थे। यह सहिष्णुता उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य को मौलिक मान का अधिकार प्रदान करती है।

इस स्वाभिमानी गुण संपन्न कवि ने अंत में युद्ध क्षेत्र में ही वीर गति भी प्राप्त की। यह इसके रणबाकुरा होने का प्रमाण है।

रामचेतौनी के युद्ध मे लड़ते हुए सन् १७५० ई० मे इनका स्वर्गवास हुआ।[1] इनकी मृत्यु के संबंध मे कविवर जान (मुहम्मद आरिफ बिलग्रामी) ने निम्नांकित रचना की :—

मीर गुलाम नबी हुतो सकल गुनन को धाम।
बहुरि धरयो रसलीन निज कविताई मो नाम॥
गयो जो वह सुर लोक को, प्रभु सासन आधीन।
जान कह्यो 'रसलीन' मुनि भव रस सर में लीन॥[1]

'रसलीन मुनि भव रस सर मे लीन' को फारसी अक्षरों में लिखे तो सकल गुण धाम रसलीन की मृत्यु की तिथि स्पष्ट हो जाती है। यथा—

र स ली न
रे + सीन + लाम + ये + नून
२०० + ६० + ३० + १० + ५० +
मु नि भ व
मीम + नून + बे + हे + व
४० + ५० + २ + ५ + ६
र स स र
रे + सीन + सीन + रे
२०० + ६० ६० + २००
में ली न
मीम + ये + नून + लाम + ये + नून
४० + १० + ५० + ३० + १० + ५० = ११६३ हि०

सर्वे आजाद में दिया गया फारसी छंद इनकी मृत्यु के संबंध में इस प्रकार है :—

वहीदे जमा सैयदे खुश सुखन
व फ़िर्दौस मै जद जजामे नबी

---

१. सर्वे आजाद, ३१३।

क़लम गिरः सर क़रदः तारीखें ऊ
रक़म कर्द 'हय हय गुलामे नबी ।।'[१]

'हय हय गुलामे नबी' के फारसी अक्षर इस प्रकार जोड़े जायँ तो वही ११६३ हिजरी आएगा।

ह		य		ह		य	
हे	+	ये		हे	+	ये	
५	+	१०	+	५	+	१०	+

गु		ला		मे			
गैन	+	लाम	+	अलिफ	+	मीम	
१०००	+	३०	+	१	+	४०	+

न		बी			
नून	+	बे	+	ये	
५०	+	२	+	१०	= ११६३ हि०

राम चेतौनी हडवार गंज रेल स्टेशन के निकट है। यह स्थान एटा से लगभग १८ मील उत्तर है। इन साहित्यिक प्रमाणों के अतिरिक्त उनकी मृत्यु के प्रमाण इतिहास के ग्रंथों मे भी हैं जो परस्पर एक दूसरे की प्रामाणिकता को संपुष्ट करते हैं।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य धीरे धीरे संघर्ष और कलह से क्षीण होने लगा और स्थान स्थान पर उसकी शक्ति को चुनौती दी जाने लगी। राम चेतौनी के युद्ध में सफदरजंग की सेना के सैनिक के रूप मे नूरुलहसन खाँ बिलग्रामी मुहम्मद अली खाँ के नेतृत्व में सधे हुए तीन सौ सैनिकों मे से जो काम आए उनमे (रसलीन भी थे) यद्यपि मुगलसेना का धैर्य टूट गया था तो भी साहस और शूरता से ये लड़े। यह लड़ाई अवध के इतिहास मे अत्यंत प्रसिद्ध है।[२]

---

१ जब दोनों फौजें मुकाबिल हुईं तो नसीरुद्दीन हैदर ने, जिसकी फौज आगे थी, तोपें छोड़ने का हुक्म दिया। मगर पठानों ने ऐसी उजलत की कि उनका कुछ भी नुकसान न हुआ। जब वह करीब पहुँचे तो

मुस्तफा खाँ ने जो जंगे तनहाई में मशहूर था, अपना मर्द मुकाबिल तलब किया। नसीरुद्दीन हैदर उसका मुकाबिल हुआ और दोनों मरकर घोड़ों से गिर गए। जब नसीरुद्दीन हैदर की फ़ौज ने अपने सरदार को मुर्दा पाया तो उसके पाँव उखड़ गए और सब ने राह फ़रार की ली। उस वक्त अहमद खाँ उस मुक़ाम पर आ पहुँचा जहाँ मुस्तफ़ा खाँ और नसीरुद्दीन हैदर की लाशें पड़ी थीं। वज़ीर की यह शिकस्त बिल् खुसूस कामगार खाँ बलूच फौजदार शहर देहली की बगावत से हुई। उसने अहमद खाँ का मुकाबिला न किया, बल्कि फिर कर भागा। जब कि वजीर ने देखा कि उसके आदमियों ने मुँह फेर लिया है तो उन्होंने ब-उजलत-तमाम मुहमद अली खाँ रिसालादार और नूरुल्हसन खाँ जमादार बिलग्रामी वगैरह व अब्दुल नबी खाँ चैल: मुहमद अली खाँ को यह हुक्म दिया कि जल्द बढ़कर पेश लश्कर को कुमक पहुँचाएँ। चूँकि मुगलो में हर तरफ परेशानी फैल गई थी लेहजा इस ताज़ा वारिद फ़ौज की कोशिशें महज बेकार हुई। मुहमद अली खाँ बाएँ बाज़ू पर गया। यहाँ तीन हजार फ़ौज पैदल सफ़ बाँधे खड़ी थी और उसके पीछे कुछ सवार भी थे। जब पठान करीब आ पहुँचे तो नूरुल्हसन खाँ और उसके सिपाहियों ने कमान उठाई और अब्दुल् नबी खाँ के बंदूकचियों ने बंदूकें सर कीं। इससे बहुत से पठान मारे गए और मुंतशिर भी हो गए। मगर फिर फौर-उल्-फौर मुजम्मा भी हो गए और बराबर बढ़ते चले आते थे। मुहम्मद अली खाँ के दाहिने हाथ में गोली लगी और नूरुल्हसन खाँ के हाथी के पाँच जख्म तलवार के लगे। इस मुकाबिले में मीर गुलाम नबी व मीर अजीमुद्दीन सैयद बिलग्रामी मारे गए और नासिर खाँ भी काम आया।

· तारीखे अवध, हिस्सा अव्वल, (पृ० १८६-१८७)

मुसन्निफा—जनाब मौलाना मौलवी हकीम मुहम्मद

नजमुलगनी खाँ साहब

(सन् १९१९)

(मुतब्ब मुंशी नवलकिशोर में छपकर शाया हुई।)

मुहम्मद खाँ बंगश की मृत्यु पर, जिनकी राजधानी फर्रुखाबाद थी, उनके पुत्र कायम खाँ सन् १७४३ ई० मे गद्दीनशीन हुए पर १७४६ ई० में रुहेलों से युद्ध में खेत रहे। साथ ही साथ उनके राज्य पर राजा नवलराय (नायब सूबेदार अवध), नबाव सफदरजंग (सूबेदार अवध तथा महामंत्री दिल्ली साम्राज्य) ने कब्जा कर लिया और कायम खाँ की माँ और बीबी को जहाँ नजरबंद कर लिया वहीं उनके पाँच बच्चों को पकड़ कर जमानत के तौर पर (ओल पर) इलाहाबाद भेज दिया। राजा नवल राय का दारागंज, इलाहाबाद में आज भी भवन है। किसी प्रकार कायम खाँ की बीबी अपने को मुक्त करा सकने मे सफल हुई और पठानों के बीच उसने मुगलों के प्रति विद्रोह की आग भड़का दी। उसने अपने पति के भाई अमहद खाँ बंगश के नेतृत्व में पठानों को सुनियोजित रूप मे दिया जिन्होंने नवलराय पर चढ़ाई कर उसका काम तमाम कर दिया। फर्रुखाबाद और कन्नौज पर पुनः बंगशों का कब्जा हो गया। रुहेला बंगश पठानों के साथ थे। नबाब सफदरजंग की सेना पर भी वह टूट पड़ा क्योंकि न केवल सफदरजंग उसके पुराने शत्रु थे अपितु सेना लेकर नवलराय की सहायता के लिये भी वे आ रहे थे। दोनों सेनाओं की लड़ाई राम चितौनी के मैदान मे १३ सितंबर सन् १७५० को हुई। सूरजमल जाट की सेना नबाब के साथ थी। पठान इस युद्ध मे पीछे खदेड़ दिए गए और उनका सेनापति तक मार डाला गया। फिर भी अहमद खाँ ने रण-कौशल का परिचय देते हुए वहीं जगलों मे अपनी सेना का एक बड़ा भाग छिपा लिया था। उसने रुहेलों से सफदरजंग की सेना पर जोरदार आक्रमण करवा दिया। फलतः शाही सेना के पैर उखड़ गए और वे भाग खड़े हुए। जो शाही सेना सकट मे फँसी लड़ रही थी उसकी सहायता के लिये सफदरजंग ने नूरुलहसन खाँ बिलग्रामी के नेतृत्व में जिन तीन सौ विश्वस्त कुशल सैनिकों को भेजा था, उनमे रसलीन भी थे। इस पर भी रुहेले टूट पड़े और जयश्री अहमद खाँ के हाथ रही। रसलीन वहीं मारे गए।

रसलीन के दो ग्रंथ विख्यात हैं अंगदर्पण और रसप्रबोध। फारसी लिपि में इनके स्फुट कवित्त और सवैया तथा लोक गीत भी मिले हैं। इन के संबंध मे संपादकीय भाग में विचार किया गया है। यहाँ इनके साहित्यिक और शास्त्रीय पक्ष पर विचार किया जायेगा।

भाव-पक्ष

समाज संस्कार एवं संस्कृति रचनाकार के कृतित्व के आधार हैं। साहित्य एकांत मानसी कृति होने पर भी समाज की संपदा है। उसका वैभव, ह्रास सभी कुछ समाज का होता है और वह समाज से उद्भूत हो समाज पर ही अपना प्रभाव छोड़ता है। रचना स्रष्टा के व्यक्तित्व के कृतित्व से संवलित होती है। व्यक्तित्व के निर्माण के मूल मे रचनाकार की जीवन पारखी दृष्टि से भोगी हुई अभिव्यक्ति सापेक्ष वह अनुभूति है जो शब्द के माध्यम से प्रकट होने पर समाज के सहृदय से भावात्मक तादात्म्य स्थापित करती है। भोगजन्य अनुभूति का भाषागत प्रकाश तो रचनाकार करता ही है, उससे अपने संकल्प एवं स्वप्न, सत् कल्पना तथा संस्कार का भी योग करा अनुभूति को जीवंत जाग्रत कर मूर्त्तित करता है और साहित्य के माध्यम से अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का रचनात्मक रूप प्रस्तुत करता है। रचनाकारी इन तत्वों का योग जितना ही मर्ममय एवं प्रभावशील होगा साहित्यकार अपने रचना कौशल मे उतना ही निष्णात माना जाएगा। 'रसलीन' एक सुप्रतिष्ठित निष्णात कवि हैं। उनके काव्य मे इन तत्वों का सम्यक योग है।

रसलीन एक संस्कारशील जीव थे। उनके पीछे एक विशाल परंपरा है। उनका कुल जहाँ एक ओर मुहम्मद साहब से संबद्ध है, वहीं उनके कुल परिवार मे एक से एक विद्वान्, कवि, संत और सेनानी हुए। उनके चारों ओर विद्वानों, कवियों, एवं रण बाकुरों का जमघट था। युग मे व्याप्त सभी स्थितियों और परिस्थितियों में उन्होंने घुसकर जीवन देखा और भोगा ही नहीं था उनमे प्राप्त अनुभूति के अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता भी थी।

'रसलीन' यद्यपि मूलतः आचार्य माने जाते हैं तो भी उनका कवि व्यक्तित्व उनके आचार्य से कम महान् नहीं था। रसलीन परंपरा मे विश्वास रखनेवाले सच्चे अर्थों में ऐसे ज्ञानी मुसलमान थे जिनका हृदय इतना उन्मुक्त था जिसमे युग में व्याप्त सभी प्रकार के सत् तत्व के लिए स्थान था। ज्ञान व्यक्ति को विवेचक और संग्रही बना देता है और भावुकता का स्थान ज्ञानी के यहाँ तर्क ग्रहण कर लेता है, पर भावुकता भोग के प्रभाव को अपना संबल मानती है और निज पर बीती को ही सत्य स्वीकार करती है। साथ ही

वह उत्सर्गमयी भी होती है। ज्ञान और भाव का सहज संयोग उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार ऋणात्मक (निगेटिव) एवं धनात्मक (पाजिटिव) के योग से प्रकाश की सृष्टि। यह क्षमता रसलीन में थी। उनके आचार्य रूप की व्याख्या अलग से प्रस्तुत की गई है। उनके काव्य भूमि की प्रस्तावना यहाँ दी जा रही है।

यद्यपि रसलीन श्रृंगार के श्रेष्ठ कवि हैं तो भी उनके काव्य की परिधि व्यापक है। एक ओर वे अपने पूर्वजों के प्रति, गुरुओं के प्रति, पैगंबर, देवी देवताओं के प्रति, साधु और संतो के प्रति उनके गुण धर्म के कारण कृतज्ञता और श्रद्धा प्रकट करते हुए मिलते हैं तो दूसरी ओर अपने समकालीन मित्रों यहाँ तक कि उनके कुल परिवार के संबंधियों, दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों और वस्तुओं से भी अपना सहज स्नेह संबंध प्रकट करते हैं। जहाँ एक ओर वे रमणी के कटाक्ष के प्रशंसक है वहीं वे कर्मवीर, रणबाँकुरे, धर्मशील, नीतिज्ञ लोगों के प्रति भी उतने ही आस्थावान हैं। जहाँ वे गंगा की लहरों में खोकर प्रकृति के प्रागण मे जीवन और यौवन का गीत गाते मिलते हैं वहीं दूसरी ओर लोक जीवन के व्यवहार पक्ष यथा छट्ठी, बरही, गारी; समधिन आदि विषयों पर भी अपनी लेखनी उठाते हैं। इस प्रकार उनके जीवन मे युग मे भोगे जाने वाले समग्र जीवन के चित्र हैं।

ये चित्र मर्म से उत्पन्न हुए हैं क्योंकि इन्हें रचने में कवि ने भावात्मक दृष्टि से वस्तुओं और तत्वों का साक्षात्कार कर उन्हें मूर्त्तित किया है। किसी विद्वान के लिए भाव प्रवण रचना और ज्ञान मूलक रचना मे अतर की यह स्पष्ट क्षमता उसकी विधायिनी प्रतिभा के सामर्थ को प्रकट करती है। यह विधायिनी प्रतिभा 'रसलीन' में अपनी पूर्ण शक्ति के साथ है। कवि केवल संग्रही ही नहीं होता वह सपादक, चितक और द्रष्टा भी होता है। सग्रह का सौदर्य अग्राह्य के त्याग पर निर्भर करता है। सभी कुछ जो कवि देखता है यदि उसका यथातथ्य वर्णन करने लगे तो कोई कवि तो नहीं हो सकता भले ही पद्यकार हो जाय। 'रसलीन' कवि थे इसलिये उन्हें वही ग्राह्य था जो उनके मर्म को स्पर्श कर सके। यद्यपि कुसुम, झाड़ झखाड़ मे उत्पन्न होता है तो भी रसिक पुष्प के प्रेमी होते हैं न कि काँटों के। सग्रह सपादन की यह सद्वृत्ति कवि को मौलिक धरातल देती है। इसका यह आशय नहीं है कि कवि का काँटों से रिश्ता नाता नहीं होता। समय और अवसर के अनुसार कभी-कभी कटक फूल से अधिक महत्व के हो जाते हैं और

इस महिमा का भावात्मक बोध कवि की शक्ति का आख्याता होता है। देश और काल का ज्ञान 'रसलीन' मे था और ऐसा था जो सहज ही सहृदय को मुग्ध कर लेने के लिये पर्याप्त होता है। जिस प्रकार समुद्र गंगा की प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सकता उसी प्रकार अनुपयुक्तता लोगों के गले का हार नहीं बन सकती। 'रसलीन' का काव्य भी इस तथ्य से भरपूर है। यद्यपि रसलीन की काव्यभूमि बड़ी व्यापक नहीं है और न तो उन्होंने कोई महाकाव्य ही लिखा है तो भी जीवन को प्रभावित करनेवाले राग विराग और उनकी सभी दशाएँ कलात्मक रूप से जो मूलतः सांकेतिक हैं 'रसलीन' के साहित्य मे हैं। बड़ा और विस्तृत होने से ही कोई महान् नहीं हो जाता। ताजमहल से बहुत बड़े बड़े प्रासाद और भवन इस देश और विदेशों मे भी हैं किंतु अपनी सूक्ष्मता के बीच कला की अगाध अनन्य अभिव्यक्ति के कारण उसका संसारव्यापी गौरव है। सूक्ष्मता मे संकेत की व्यापकता अच्छी नागर कृति का निकष है। यह सूक्ष्मता कला की जीवनी शक्ति होती है यदि उसमे रसात्मकता का अनन्य उत्स हो। यह अनन्यता उस कृति की मौलिकता होती है। मौलिकता कला की प्रतिष्ठा का एक दृढ़ सोपान है। भाव चयन की इस जीवंत मौलिकता का दर्शन भी 'रसलीन' में मिलेगा।

'रसलीन' ने जिस वस्तु का भी दर्शन किया है उसके अंतस्थल मे वे पहुँच गए हैं और वहाँ से उसी तत्व का ग्रहण किया है जिस तत्व की तथा रूप रंग की और आकार प्रकार की आवश्यकता भावचित्र के गठन के लिये अनिवार्य थी। कबीर के शब्दों मे कहा जाय तो सार तो उन्होंने ग्रहण कर लिया है और थोथा को उड़ा दिया है। इन तत्वों का निरीक्षण उनके काव्य से करना अप्रासंगिक न होगा।

सर्वप्रथम हम उनके सूक्ष्म निरीक्षण को कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति के चतुर्दिक् प्रकृति उपस्थित रहती है और उसके मुकुर मे व्यक्ति अपनी मनोदशा के अनुसार अपना बिंब पाता है तथा प्रकृति के बिंब में अपने को देखता है। प्रकृति का यह वरदान कवि को अपने भावों की अभिव्यक्ति में सहायता भी पहुँचाता है। प्रकृति का द्वार सबके लिए समान रूप से उन्मुक्त है। अंतर के वातायन से जिसकी जितनी ही अधिक पैठ उसमें होगी वह उतनी ही अधिक निर्मूल्य संपदा ग्रहण कर लोक को अभिव्यक्ति के माध्यम से दान कर सकेगा। 'रसलीन' को यह अंतःस्पर्शी दृष्टि मिली थी जो अतल से प्रकृति

के प्रांगण में प्रविष्ट हो भावचित्र खड़ा करने में सहायक सिद्ध होती है। उनके प्रकृतिगत भावचित्र भावनात्मक, सजीव और रंगीन हैं। यद्यपि रीतिकाल के कवियों मे प्रायः सब ने परंपरागत प्रकृति वर्णन किया है तो भी रसलीन का प्रकृति वर्णन मौलिक दर्शन का परिणाम है। प्रकृति मे केवल ग्रह, नक्षत्र, पादप, नदी, पहाड़, जंगल, समुद्र आदि ही नहीं आते बल्कि इन सबके प्रभाव से जो परिणाम होते हैं वे भी आते हैं यथा जलवायु आदि। उदाहरण के रूप में शरद्, वसंत और ग्रीष्म के संबंध मे एक-एक दोहा प्रस्तुत है। ये दोहे उद्दीपन विभाग के रूप में कवि ने प्रस्तुत किए हैं—

शरद्—

> चद्र बदन चमकाइ अरु खजन नैन चलाइ।
> सकल धरा को छलति यह सरद अपछरा आइ॥[१]

वसंत—

> कहुँ लावत बिकसित कुसम कहूँ डुलावति बाइ।
> कहूँ बिछावत चाँदनी मधु रितु दासी आइ॥[२]

ग्रीष्म—

> धूप चटक करि चेट अरु फाँसी पवन चलाइ।
> मारत दुपहर बीच मैं यह ग्रीषम ठग आइ॥[३]

इसी प्रकार प्रत्येक मास का भी रसात्मक वर्णन कवि ने किया है। उदाहरणार्थ—

भादों—

> री दामिनि घनस्याम मिलि कत मो सनमुख आइ।
> हनन लगी है सौति लौं अपनो चटक दिखाइ॥[४]

---

१. कविता भाग, पृ० १३२

२. कविता भाग, पृ० १३०

३. वही, पृष्ठ १३१

४. वही पृष्ठ १६२

चैत्र—

धनुष बान दोऊ नए दै फूलन के चैत।
जैतवार सब जगत को कियो काम कमनैत ।।[१]

वैशाख—

लाख जतन कहि राखिए करै जार तन राख।
साख साख जो ढाक की फूल रही बैसाख ।।[२]

इन प्रकृति वर्णनों मे यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि कहीं कवि ने प्रकृति को मूर्त्तित प्राणी के रूप मे; कहीं स्वतंत्र रूप मे ग्रहण किया है और उसे ऐसा देखा है जैसे और तो नहीं देखते किंतु देखनेवालों पर जो असर पड़ता है वह प्रभाव अपने ढग से कवि . डालता है और इस प्रकार सहृदय को प्रभावित करता है जैसे मूक को वाणी मिल गई हो। प्रकृति का मूर्तीकरण करने मे कवि ने लोक जीवन मे भोगे जा रहे तत्वों से समता कर अपने वर्णन को पाठक के हृदय मे उसका बनाकर स्थापित कर दिया है। भाव स्थापन योग कला की चरम सिद्धि है।

प्रकृति के इस स्वतंत्र रूप के अतिरिक्त उसका उपयोग कवि ने रूपचित्रों को खड़ा करने मे और जीवन मे व्याप्त परंपराओं को जीवंत करने में भी किया है, जैसे कार्तिक वर्णन के प्रसग मे—

और देत हैं दीप सब जिनके कंत समीप।
हम बारे हरि नेह ते रोम रोम में दीप ।।[3]

इस दोहे मे कार्तिक मास मे किए जाने वाले दीप दान की परंपरा तो साकार होती ही है विरहिणी के तन की दीपशिखा भी रोम-रोम पर चित्रित होती है।

यहाँ तक कि बसंत ऋतु की नायिका को फुलवारी के माध्यम से उसने प्रस्तुत कर दिया है। यथा—

---

१. कविता भाग, पृष्ठ १३० ।
२. पृ० १३० ।
३. पृष्ठ १३२ ।

जाहि जोइ जाने है सो दरस सदा ही चाहै,
रूप मंजरी के सर केवल निकाई है।
सोहै कुच गेंद पै सिंगार हार मालती के
मोतिया से दंत कुद केतकी लजाई है।
सेवत हजार मखमल में कमल पद
रसलीन पछतानो दाऊदी सुहाई है।
चाँदनो सी सेत सारी चंपक बरन प्यारी
बनवारो पास फुलवारी बन आई है।[1]

प्रकृति के तत्वों को उपमान रूप में प्रायः प्रयुक्त कर कवि ने भाव तथा रूप का विधान प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ दक्षिण पति के सबध मे दिया गया उपमान यहाँ प्रस्तुत है--

सागर दच्छिन दुहुन की सम बरनत हैं प्रीति।
वह नदियन यह तियन सो मिलत एक ही रीति॥[2]

भावों को स्पष्ट करने के लिये भी प्रकृति का सहारा कवि ने लिया है और ऐसे कुँवारे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जो लोक जीवन मे सहज भोगे जाते है किंतु उनका प्रयोग अतलदर्शी कवि ही कर पाते है। यथा--

तिय पिय सेज बिछाइ यों रहो बाट पिय हेरि।
खेत बुवाइ किसान ज्यों रहै मेघ अवसेरि॥[3]

रूप की दीप्ति को साकार करने के लिये प्रकृति का कितना सुदर वर्णन कवि ने किया है और प्रकृति के तत्वों से तुलना कर अपने भाव रूप की प्रतिष्ठा की है—

चद छान बिधि मुख रचे तन चपला सो ठानि।
तापरि ओप धरै खरी तौ तूँ पूजै आनि॥[4]

इसी प्रकार का एक उदाहरण और--

---

१. पृष्ठ ३२६
२. कविता भाग, पृष्ठ १०२
३. वही पृष्ठ ७६
४. पृष्ठ १४६

देह दिपति छबि गेह की किहि बिधि बरनी जाय।
जा लखि चपला गगन तें छिति फरकत निज आय ॥[१]

विषय को स्पष्ट करने के लिये ग्रह नक्षत्रों के ज्ञान का बोध भी कवि ने कराया है। उदाहरण के लिये—

बारह मंगल रासि गुनि सोई सब मिलि आय।
उभय हथेरिन दस नखन मेहदी भई बनाय ॥[२]

प्रकृति के बाद कवि ने तत्कालीन लोक जीवन का मर्मस्पर्शी अध्ययन कर अपनी अनुभूतियों को मूर्तित किया है। यह मूर्ति सजीव है क्योंकि जीवन के जाग्रत चित्र इसमें प्राणवान हो चित्रित हुए हैं। एतदर्थ कवि ने लोक जीवन मे व्याप्त आख्यायिका, कर्म जीवन में व्याप्त जीवन के विविध चित्र और भाव जगत् में व्याप्त नाना प्रकार के भावरूपों के आधार पर अनुभूतियों को प्रत्यक्ष किया है। उस युग में व्यक्ति का जीवन आज जितना जटिल नहीं था। जनता धर्मप्रिय थी प्रत्येक व्यक्ति धर्माग्रही होता था किंतु उनमे कुछ उदारमना होते थे जो दूसरों के धर्म का सम्मान करना जानते थे और कुछ संकुचित, पर सबके सब अपने सप्रदाय के अनुसार कर्मकांड में और धर्म-व्यववहार मे रुचि लेनेवाले हुआ करते थे। समाज की दृष्टि से वे लोग अधिक मगलकारी थे जिनकी धार्मिक दृष्टि संकुचित नहीं, विशाल थी और परधर्म के प्रति भी जिनके मन मे सद्भाव था। यह सहिष्णुता कुछ लोगों मे तो यहाँ तक बढ गई थी कि दूसर संप्रदायों के आचार व्यवहार तक एक अश तक उनके भीतर समाविष्ट हो गए थे। पीर और शहीद के प्रति आस्था एक ओर थी तो दूसरी ओर लोग मंदिर और पाठशाला भी बनवा देते थे। ऐसे ही सहिष्णुतावादी लोगों मे रसलीन भी थे। जहाँ वे एक सच्चे मुसलमान के रूप में नबी, इमाम और संतों आदि का प्रशस्तिगान करते हैं वहीं वे भगीरथी गंगा की भी स्तुति एक हिन्दू भक्त की भाँति भारतीय पद्धति पर करते हैं। उदाहरणार्थ—

बिस्नु जू के पग तें निकसि संभु सीस बसि,
भगीरथ तप तें कृपा करी जहान पै।

---

१. पृष्ठ २०६

२. पृष्ठ २७३

पतितन तारिबे की रीति तेरी एरी गग,
पाइ रसलीन इन्ह तेरेई प्रभाव पैं।
कालिमा कालिंदी सुरसती अरुनाई दोऊ,
मेटि मेटि कीन्है सेत आपने बिधान पे।
त्योंही तमोगुन रजोगुन सब जगत कैं,
करिके सतोगुन चढ़ावत बिमान पैं॥[1]

गगा के किनारे रहनेवाले और उस पर अपना जीवन वारनेवाले ही ऐसी युक्ति दे सकते हैं जहाँ पर उनकी पौराणिक मर्यादा सुरक्षित रह सके।

स्थान, स्थान पर ऐसे पौराणिक उदाहरण मिलेंगे, यहाँ तक कि रसलीन रामजन्म होने पर चौदह भुवनों में आनन्द की कल्पना करते हैं। मंदोदरी, रावण, कृष्ण, कंस, कुब्जा, रुद्र, पवन सुत, ब्रह्मा आदि धार्मिक तथा पौराणिक पात्रों को उन्होंने उनके सही रूप में उपस्थित किया है।

जीवन का दूसरा रूप समर का था। सारा उत्तरी भारत उनके समय मे युद्धभूमि बन गया था। संक्षेप मे वीर रस का भी उन्होंने बड़ा ओजस्वी वर्णन किया है।

वे स्वयं सैनिक थे इसलिये युद्ध की कटुता मिटाने के लिये वे अन्य पक्षों की ओर अधिक उन्मुख होते दिखाई पड़ते हैं। योद्धा रूपसौंदर्य और शाति के लिये लालायित रहता है। शांति उसे निर्वेदिक जीवन मे मिलती है और आनंद रूप सौंदर्य के रमण मे। रसलीन का निर्माण अलमस्त, फक्कड़ संतों के बीच हुआ था इसलिये निर्वेद मे भी वे रमते थे। उनके निर्वेद संबंधी दोहे यद्यपि थोड़े हैं तो भी वे बड़े तत्वपूर्ण हैं। वे भोग में योग और योग मे भोग मानने वाले रसिक जीव थे :

प्रभु राचे ते आनि कै यह गति करति उदोत।
भोग जोग में होत है जोग भोग में होत॥[2]

यद्यपि वे कोई संत नहीं थे तो भी उनकी एतद् संबंधी अनुभूति सूफियाना ठाठ की थी—

---

१. पृष्ठ ३०६।

२. पृष्ठ २०६।

जग आन्यौ जेहि भजन को अरु फिरि वासों काम।
रे मन सुमिरत है नहीं एको दिन तेहि नाम॥
खिन हरि ढूँढत आप में खिन ढूँढ़त असमान।
घर को भयो न घाट को ज्यों धोबी की स्वान॥[1]

इसके साथ ही इनके जीवन का अनुभव भी बड़ा व्यापक था। सभी प्रकार के लोगों से इनका संबंध था इसलिये इस क्षेत्र मे इनकी उपलब्धि भी बड़े महत्व की रही है और इनकी उपलब्धि इस दिशा मे रहीम और गिरिधर कविराय से होड़ लेती है—

मैं जब देखौं मुरज लौं नीच नरन की बात।
ज्यौं ज्यौं मुख मैं मारिये त्यौं त्यौं बोलत जात॥
है सत्रुन के भिरत यौं होत लघुन को चाउ।
ज्यौं कूकुर कूकुर लरैं कौवा पावत दाउ॥[2]

इन नीतिपरक उक्तियों के पीछे देखे और भोगे हुए समाज का सजीव चित्र है।

इतना ही नहीं, जहाँ तक अपने समाज का प्रश्न है रसलीन परम व्यवहार-कुशल भी दीखते हैं। गुरुजनों के प्रति जहाँ वे श्रद्धा प्रकट करते हैं वहीं सैयद नूरुलहसन के विवाह के अवसर पर वे सोहर लिखने मे नहीं चूकते, दुलहिन के सिंगार का वर्णन भी करते हैं, समधिन को भी नहीं भूलते, पलना, अछवानी और छठी[3] के अवसरों पर ऐसे लोकगीतों का निर्माण करना भी नहीं भूलते जो आज भी उनके क्षेत्र मे गाए जाते हैं।

लोक गीत की परंपरा मे यद्यपि तुलसीदास और रहीम जैसे श्रेष्ठ कवियों ने रचनाएँ की हैं तो भी रीतिकालीन शास्त्रीय कवियों मे यह श्रेय केवल रसलीन को प्राप्त है। ये लोक गीत परंपरा का निर्वाह मात्र नहीं हैं अपितु इनमे सहज जीवन को निकट से देखने की तथा उसमें काव्यत्व की प्रतिष्ठा की अपूर्व क्षमता है, और ये उस समय के लोकचार को भी स्पष्ट करते हैं

---

१. पृष्ठ २०५।

२. पृ० २०६।

३, पृष्ठ ३३६

जो किसी न किसी रूप में आज भी बने हैं। इस प्रकार आज के लोकाचार को ये लोकगीत परंपरा का आधार देते है। उदाहरण के रूप में समधिन वर्णन में दी गई कविता[1] दी जा सकती है जिसमें लेन देन, हँसी ठिठोली और गारी की बात बधावे के साथ उपस्थित है। जहाँ संसार में सूरज और चाँद तक समधिन के जीवन की याचना की गई है वहीं लोक मे प्रचलित बाँस चढ़ने की बात भी रँगीले ढंग से की गई है। यद्यपि आज के नागर लोग ऐसे गीतों को असभ्यता का प्रतीक और अश्लील समझते हैं तो भी इसका मर्म वे ही समझ पाते हैं जो घरबार के संबधों की पवित्रता का आनंद लेने के अभ्यासी हैं।

रसलीन की ख्याति मूलतः शृंगार के कवि के रूप मे है। उनकी पहली रचना अंगदर्पण या शिखनख है। यह रसपूर्ण रचना ब्रजबानी सीखने सिखाने के उद्देश्य से रची गई है जिसमे अर्थ रत्न के समान जड़ित हैं। इसमें नायिका के अंग प्रत्यग का रूप उसी प्रकार प्रकट हुआ है जैसे दर्पण मे छवि का दर्प। यह रचना श्रीप्रभु का नाम लेकर ३८ वर्ष की आयु मे कवि ने पूरी की है। यह पहली रचना नायिका के अग प्रत्यंग, तथा उसके अलंकारपूर्ण आकर्षक रूप का चित्र प्रस्तुत करती है। यह यौवन की यौवनमयी रचना है। आराध्य या प्रेमिका के नखशिख वर्णन की प्रथा इस देश मे बड़ी प्राचीन है।[2] संस्कृत के ग्रथ इससे भरे हैं और हिंदी में भी यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है। नख शिख के ऊपर सैकड़ों ग्रथ हिंदी में भी हैं। ये ग्रथ दो प्रकार के हैं, एक तो नख-शिख वर्णन धार्मिक है और उसके अतिरिक्त संस्कृत में श्रीहर्ष और कालिदास जैसे कवियो ने नखशिख वर्णन किया है।

१, पृष्ठ ३३४–३५

हिंदी में खोज में उपलब्ध विवरण है—

नख शिख (पद्य) अब्दुर्रहमान मिर्जाकृत

नखशिख उम्मेद सिह कृत

नख शिख (पद्य) कलानिधि (भट्ठ) कृत

नख शिख (पद्य) कान्ह कृत

नख शिख (पद्य) कालिका प्रसादकृत

नख शिख (पद्य) कुलपतिकृत

आराध्य प्रणम्य होता है इसलिये देवी आदि के पवित्र रूप वर्णन में पैर के नख से कवि रचना आरंभ करता है और धीरे-धीरे शिर की ओर जाता है। नायिका, प्रेमिका या प्रणयिनी का वर्णन वह शिर से आरंभ करता है और पैर की ओर धीरे धीरे उतरता है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ रीति परंपरा का एक अंग है। परंपरा का प्रवाह नवीन स्रोत

नख शिख (पद्य) केशवदासकृत
नख शिख (पद्य) अन्य नाम 'अंगदर्पण' । गुलाम नबी (रसलीन) कृत
नख शिख (पद्य) गोकुलकृत
नख शिख (पद्य) छितिपालकृत
नख शिख (पद्य) जगतसिंहकृत
नख शिख (पद्य) देवकृत
नख शिख (पद्य) प्रतापसाहिकृत
नख शिख (पद्य) प्रेमसखी कृत
नख शिख (पद्य) बलभद्रकृत
नख शिख (पद्य) भीष्मकृत
नख शिख (पद्य) मुरलीधरकृत
नख शिख (पद्य) शिवनाथकृत
नख शिख (पद्य) श्री गोविंदकृत
नख शिख (पद्य) संतबख्श कृत
नख शिख (पद्य) सूरतिमिश्र कृत
नख शिख (पद्य) सेवादासकृत
नख शिख (पद्य) हरिबंश (घसीटा) कृत
नख शिख (पद्य) ग्वाल कवि कृत
नख शिख-शिखनख-हनुमान कृत
नख शिख राधा जी को (पद्य) चंदनकृत
नख शिख रामचंद्र जू को (पद्य) बिहारीकृत
नख शिख वर्णन, बलबीरकृत
नख शिख सटीक (गद्य-पद्य) मणिरामकृत

—हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम खंड, पृष्ठ ४७१-७२

पाकर और अधिक आनंददायक हो जाता है। प्रायः जिन लोगों ने शिखनख की रचना की है वे सब के सब रसिक रहे हैं। रसलीन इसके अपवाद नहीं।

काम हमारे देश में देही के धर्म के रूप में प्रगृहीत है इसलिये काम को देवता के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त है। रति काम की भोग्या है और रतिलीला यौवन का धर्म। रति इंद्रियाश्रित है। इन्द्रियाँ कामास्वादी होती हैं। रति की शक्ति मूलतः यौवनाश्रित है। कामास्वादन रूप सौंदर्य का अभिलाषी है। रूप सौंदर्य आस्वादन के लिये यौवन को आकृष्ट तो करता ही है किंतु भावसौंदर्य रूप को दीप्ति प्रदान करता है और अपने प्रकाश मे इंद्रियों को आस्वाद के लिये आमंत्रण देता है। रूपसौंदर्य मे रति भाव की और अनुभूति मे रस या आनद की सृष्टि होती है। भाव प्रदर्शन से और अनुभूति आस्वाद से जीवन ग्रहण करती है। भावाकर्षण की परम परिणति ही आस्वाद के लिये संचेतना की सृष्टि करती है और उसकी पर्यवसिति रसमयी होती है इसलिए रूप सौंदर्य को आनंद प्राप्ति का आदि सोपान मानना कांत, हीगल और शिलर की सौंदर्य सबंधी मान्यताओं का स्वागत करते हुए भी भारतीय सौंदर्य दृष्टि से मेद नहीं खाता। रूप में भाव एवं गुण का योग काम को आश्रय देता है। यह विविध रूप, रस, रंग विधायक होता है। शृंगार, वातावरण और प्रयत्न ये सब उसको उद्दीप्त करने मे सहायता करते है।

रूप संपूर्ण शरीर के गठन मे भी होता है और उसके अलग-अलग अवयवों मे भी होता है। कभी कभी वह उसके चाल ढाल से उत्पन्न होता है और कभी-कभी साज-शृंगार के कारण यौवनश्री से मादकता छलकती है। केशविन्यास से लेकर नखरंजन तक रूप को मद प्रदान करने में सहायक होते हैं। नैसर्गिक सौंदर्य से लेकर बनाव और प्रसाधनिक शृंगार तथा भावगत आंगिक आदोलन सौंदर्याकर्षण के कारण बनते हैं। ये सभी के सभी रूप अंगदर्पण मे हैं।

भोग में खो जाने मात्र से श्रेष्ठ रचना नहीं हो सकती। भोग के लिये आकर्षण उत्पन्न करनेवाले तत्वों के भावात्मक स्थायी प्रभाव को, जो रस का रूप ग्रहण कर लेते है उन्हें प्रकाशित करने से श्रेष्ठ रचना सृजित होती है। इस प्रकार के कवि को एक ओर भोगी बनना पड़ता है और दूसरी ओर योगी। योग भोग के प्रभाव को जब कवि प्रकट करने लगता है तो ऐसे अनभूले अनबिसरे चित्र इतने जीवंत हो उठते हैं जिन्हे अंगीकार करने के लिये

सहृदय केवल मचल ही नहीं उठता अपितु उसे गलहार बना लेता है। ऐसी ही रचना अंगदर्पण है। इसमें नायिका के अंग-प्रत्यंग का बड़ा मादक और रसात्मक चित्र उपस्थित किया गया है।

यौवन स्वयं में मादक होता है, क्योंकि इस प्रदेश में मदन का राज्य रहता है। सृष्टि की लीला का विकास ही रति से होता है और सभी जीना चाहते हैं इस लिये यह लीला रसमयी भी होती है। 'रसलीन' ने क्या मध्यकाल क सभी समर्थ व्यक्ति रतिलीला के आनद मे रस लेने वाले थे और सैनिक के लिये तो आज भी रूप शृंगार जीवन की अदम्य आवश्यकता है। इस रूप माधुरी का दर्शन कवि ने विविध रूपों मे और अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से किया है। इसलिये इसकी कविता में अपना एक मौलिक तथा विशिष्ट सौंदर्य है।

अच्छा वर्णन वही कर सकता है जिसमे जीवन को परखने की और परख कर अभिव्यक्त करने की सहज क्षमता हो। इस दृष्टि से 'रसलीन' को अतुल शक्ति मिली थी। गौर वर्ण पर रंगीन कचुकियों के अलग अलग प्रभाव का कवि द्वारा किया गया सूक्ष्म निरीक्षण उसकी अतलग्राही दृष्टि का परिचायक है।

यथा—

अरुण कंचुकी

बिधु बदनी तुव कुचन की पाय कनक सी जोत।
रँगी सुरंगी कंचुकी नारगी सी होत॥[1]

हरित कचुकी

हरित चिकन को कंचुकी पाय कुचन के थान।
हरत हराई तें हिया बूढ़न लूटत प्रान॥[2]

पीत कंचुकी

पीतांगी पर यों रही बिंदी कनक सुहाय।
मानो कचन कलस पै लैसिम कीन्हों लाय॥[3]

---

१. पृष्ठ २७८

२. पृष्ठ २७८

३. पृष्ठ २७९

इन तीनों रंगों के अतिरिक्त उस युग मे प्रचलित श्वेत, नील और जालीदार कंचुकी के प्रयोग से रमणी के शरीर पर पड़नेवाले सूक्ष्म प्रभावों का भी वर्णन कवि ने किया है। इस प्रकार सूक्ष्मता और व्यापकता दोनों दृष्टियाँ यहाँ पर एक साथ एकत्र हैं। केवल व्यापक और सूक्ष्म दृष्टि से ही रचना साहित्य नहीं हो सकती यदि वह सौदर्यानुभूति को उद्दीप्त नहीं करती। इस उद्दीपन के लिये यह आवश्यक है कि कवि ऐसे तत्वों से अपने भाव का बोध कराए जो रसाभास का कारण न बनें। इसलिये उस रूप की समता के लिये ऐसे तत्वों को प्रकट करना आवश्यक होता है जो भाव-साम्य भी रखते हों और विद्रूपता की छाया तक को भी झाँकने नहीं देते। इस तत्व का कवि ने केवल ध्यान ही नहीं रखा है अपितु सर्वत्र उसे निबाहा भी है।

अगदर्पण के विषयानुक्रम[1] को देखने से यह सहज ही स्पष्ट हो जायगा कि कवि ने किसी भी अग का वर्णन छोड़ा नहीं है, और उस युग मे प्रयुक्त शृंगार से युक्त चाहे वह आभूषण, वस्त्र, अंगज कोई भी प्रसाधन हो उसने उससे युक्त शृंगार की भी कहीं उपेक्षा नहीं की है। इस प्रकार जहाँ एक ओर वह सोंदर्य प्रसाधन के इतिहास के लिये युगबोध की सामग्री उपस्थित करता है वहीं अंगाकर्षण सनातन होने के कारण मनुष्य को स्थायी रसबोध के लिये एक ऐसी सृष्टि देता है जो अक्षर है तथा जिसका सौदर्य कालातीत है। सहज रूप सौंदर्य और आलंकारिक दोनों प्रकार के सर्वांग और आंगिक रूपों की वह सवाक् मूर्ति खड़ी कर देता है। यह मूर्तिविधायिनी क्षमता इतने ओजस्वी रूप मे कवि मे है जितनी विरल कलाकारों मे ही मिलती है। इस दृष्टि से रसलीन एक श्रेष्ठ शिल्पी भी प्रमाणित होता है। इसके उदाहरणस्वरूप नेत्र का वर्णन लिया जा सकता है। नेत्र सौंदर्याराम के राजद्वार हैं। ज्ञानेंद्रियों मे नेत्र अपने भाव से वाणी की अपेक्षा भी कभी कभी अधिक मुखर हो उठते हैं। रसलीन का नेत्रवर्णन यहाँ इसके उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है--

अमी हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहिं चितवत इक बार ।।

---

१. पृष्ठ २६१–२६३

कारे कजरारे अमल पानिप ढारे पैन।
मतवारे प्यारे चपल तुव दुखबारे नैन ॥[१]

इन दो दोहों मे ऐसा सजीव चित्र उपस्थित हुआ है जो स्वय बरबस देखने और सुनने वाले का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट ही नहीं कर लेता अपने रस मे सराबोर कर लेता है। यह शिल्पसौंदर्य केवल कुछ वर्णनों मात्र तक सीमित नहीं है अपितु उसके प्रत्येक दोहे स्वयं मे एक एक चित्र है जिनमें रस की मादकता और भाव की भंगिमा से भरपूर है। एक प्रकार के शिल्प का उपयोग पूरी रचना मे नहीं किया गया है अपितु स्थान-स्थान पर भाव को अलग-अलग तूलिका, विलग-विलग रंगों से इस प्रकार रचा गया है कि पूरी रचना नाना शिल्पों से रचे गए सुंदर भावचित्रों का अलबम बन गई है। इसके कुछ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

नासा कंचन तूरु भये मरकत पत्र पुनीत।
पलक फूल द्दग फल भये सुरतरु कामद मीत ॥[२]
सुनियत कटि सुच्छम निपट निकट न देखत नैन।
देह भये यौं जानिए ज्यों रसना मैं बैन ॥[३]
लिखन चहौं मसि बोरि जब अरुनाई तुव पाय।
तब लेखनि के सीस के ईंगुर रँग ह्वै जाय ॥[४]
तुव पग तल मृदुता चितै कवि बरनत सुकचायँ।
मन में आवत जीभ लौं मत छाले परि जायँ ॥[५]

इन रूपचित्रों को स्पष्ट करने के लिये कवि ने पौराणिक गाथाओं, नक्षत्र विज्ञान, प्रकृति प्रसाधन तथा ऐसे लोकाचारों का प्रयोग किया है जो जन मानस मे व्याप्त हैं, इससे भाव बोध का सहज संबंध स्थापन होता है।

अगदर्पण मे तो अग के सौंदर्य का उसकी दीप्ति और आभा का वर्णन है किंतु रसप्रबोध मे सभी रसों के संक्षिप्त वर्णन के साथ शृंगार का विशद

---

१. पृष्ठ २५८
२. पृष्ठ २६३
३. पृष्ठ २८१
४. पृष्ठ २८३
५. वही

वर्णन है। शृंगार रस की सभी अंग-उपांगों की जहाँ शास्त्रीय व्याख्या है वहीं उदाहरणस्वरूप उसके सभी पक्षों का हृदयग्राही उदाहरण प्रस्तुत है जो उसके काव्य की आत्मा है।

संयोग और वियोग दोनों स्थितियों में सभी प्रकार के नायक नायिकाओं का सभी दशाओं मे तथा सभी रूपों में चित्र प्रस्तुत किया गया है। विविध स्थितियों में मन की अंतर्दशाओं का ऐसा नयनाभिराम रूप प्रस्तुत किया गया है जो अंगदर्पण की मादकता को दीप्तिदान करता है। भाव की यह रूपशिखा उन तत्वों के सतत विकास का आख्यान करती है जो बीज बिंदु अंगदर्पण के मूल में है।

शास्त्र के अनुसार उदाहरण प्रस्तुत करने में गद्य की नीरसता आने का भय सदा बना रहता है किंतु रसलीन के शिल्प की यह विशेषता है कि यदि उसके उदाहरणों को शास्त्रीय व्याख्या से अलग कर रख दिया जाय तो वे काव्य के अनुपम उदाहरण माने जाएँगे। यहाँ भी रचना शिल्प में कवि ने उन्हीं तत्वों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग उसने अंगदर्पण मे किया है। इसके एक-एक वर्णन सजीव, सचित्र और सवाक् हैं। लगभग ११½ सौ दोहों में उदाहरण सबंधी दोहे ४॥ सौ के हैं वे सब के सब ऐसे अर्थ भरे है कि भाव स्वयं अपनी बात कह लेते है। जैसे—

> दीप तिहारे नेह को बरत रहत हिय माहिँ।
> बात चहूँ दिसि की सहै बूझत कैसहुँ नाहिँ॥[1]

जहाँ सहज ही निर्विकल्प रूप से कवि ने ऐसे दोहों मे अपनी बात कह दी है वहीं वह कला की बारीकी से भी अपने को संकेतों मे पूर्ण रूप से प्रकट कर देता है।

> कान परत मृग लौं परैं मुरछि ललन के प्रान।
> कंठ ठुनुक नूपुर झुनुक दुहुन लही जब तान॥[2]

इतना ही नहीं, अपनी बात को अधिक सशक्त रूप में प्रकट करने का यत्न

---

१. पृष्ठ १४६

२. पृष्ठ १०

उन्होंने किया है कि कुछ मान्य कवियों के रूप विधान पर मीठा व्यंग्य भी हो गया है। यह व्यंग्य साहित्यिक है इसलिए रसात्मक भी है—

सीस मुकुट कटि काछिनि फाटी साटी हाथ।
मिलन चहत यहि रूप पर राधाजू के साथ ॥[1]

काव्य में भावों का चित्र गठन और मन की अंतर्दशाओं का रूप-विधान सहज नहीं होता। इनको भी कवि ने सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके लिए कवि मे मूर्तिविधायिनी अदम्य क्षमता की आवश्यकता पड़ती है। व्याधिग्रस्त स्थिति का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

अरी बाल छबि स्याम की यौ परयंक लखाय।
मानों कागद पै लिखी मसि की लीक बनाय ॥[2]

एक उदाहरण मद का भी—

छिनक रहति कर लै चसक, छिन मुख रहति लगाय।
आपु करत मद पान पै छकवत पी को जाय।[3]

ऐसे उदाहरणों से रसप्रबोध भरा पड़ा है।

स्फुट कवित्त मे कवि ने श्रद्धास्पद पुरुषों तथा तत्वों के प्रति भावसिक्त श्रद्धांजलि अर्पित की है और उनका रूपचित्र शब्दों के माध्यम से रचने का यत्न किया है इसलिये केवल श्रृंगारिक ही नहीं आराध्य रूपों के मूर्तीकरण की भी कवि में क्षमता है। उदाहरणार्थ—

भूप आस बाहक हौ जग के निबाहक हौ
जाचक के थाहक हौ जस के निधान जू।
भव सिंधु थाहक हौ पापिन के दाहक हौ
विघन बगाहक हौ साहब सुजान जू।
दीनन के गाहक हौ सेवक के चाहक हौ
दया के बलाहक हौ बरसिए दान जू।

---

१. पृष्ठ १२५
२. पृष्ठ १७३
३. पृष्ठ १७२

धर्म अवगाहक हौ नबी के सलाहक हौ
फातिमा के ब्याहक हौ साह मरदान जू ॥[१]

इसी प्रकार के जीवंत उदाहरण अन्य संतों आदि के भी कवि ने प्रस्तुत किए हैं। इन फुटकल कवित्त सवैयों मे भी अपना प्रिय विषय आने पर कवि ने अपना अलमस्त रूप वसत बयार की भाँति प्रकट किया है। अच्छे कलाकार की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह कभी भी अपनी रचना से पूर्ण तृप्त नहीं होता। तृप्ति मृत्यु है और अभाव जीवन। जो कलाकार ऐसा होता है वह अपने प्रभाव को स्वयं पहचानता है और उसे पूरा करने के लिये बार-बार यत्न करता है और इसी मे शिल्प का निखार कलाकार के यश-जीवन का विस्तार करता है। लगता है कि दोहों में जिन भावों को व्यक्त करने मे कवि की मनोकामना पूरी नहीं हुई है उनके लिये विस्तृत छंदों का आधार लेकर भावचित्रों को मन की अंतर्दशाओं को मूर्तित करने का यत्न किया है या यह भी हो सकता है कि कवि विस्तृत छंदों मे नए रस-ग्रंथ के लिये भावभूमि की भूमिका प्रस्तुत कर रहा था। उदाहरण के रूप मे नेत्र वर्णन को लिया जा सकता है--

पहिरैं गुदरी तन सेत असेत तिहूँ जग को नित ही निदरैं।
हरि रूप अनूप के चाहन को बरनैं करि हाथ सौं आगि धरैं।
बरजो कोई केतो निरादर कै रसलीन तऊ नहि टारे टरैं।
सो देखौ लजीली मेरी अँखियाँ पलकों न लगैं टकटोइ करैं॥

इसी प्रकार पाती वर्णन का भी उदाहरण दिया जा सकता है—

पाती जबैं दुख कातो सी आई तबै रँग राती तैं छाँती लगाई।
देखत नैन भयो अति चैन मनो प्रिय मूरति आनि दिखाई।
आगम कौ हौं सुनौ जब स्रौन हियो सुख भौन भयो अति भाई।
आखर दृढ को कागज पै बिरहा गज को मनो साँकर आई॥[३]

इसी प्रकार के चित्र और चरित्र इन स्फुट रचनाओ मे भी हैं।

---

१. पृष्ठ ३०२

२. पृष्ठ ३३६-३३७

३. पृष्ठ ३३२

भावचित्रों या मनोदशाओं की स्थिति बाह्य शिल्प के अभाव में गद्य का जंजाल बन जाती है। भाषा भावों को शब्द देती है और शब्द उसे अलकृत कर इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि मन की बात जन की बात हो जाती है।

भावाभिव्यक्ति काव्य की दृष्टि से शून्य हो जायगी यदि उसे उचित ढंग से प्रकाशित नहीं किया गया। उचित ढंग से प्रकाशन के लिये बाह्य शिल्प या भाषा शिल्प की आवश्यकता पड़ती है। रसलीन की भाषा ब्रजभाषा है। ब्रजभाषा एक समय सारे देश के काव्य की भाषा थी। ब्रजभाषा की अधिकाश रचनाएँ, मधुर हैं। यह भाषा की माधुरी का प्रभाव है क्योंकि मधुर भाव वर्णन के लिये पदावली मे कोमलता और काति की आवश्यकता होती है। इस कोमलता को लाने के लिये ब्रजभाषा ने अपने संस्कार से ही कठोरवर्णों का तिरस्कार किया तथा संयुक्त वर्णों का, उच्चारण की दृष्टि से अधिक मधुर और सरस बनाने के लिये, सरलीकरण किया। कारक चिह्नों में भी माधुर्य लाने के लिये उसके पर्याय रचे गए या उनमें ध्वन्यात्मक माधुर्य लाने के लिये सानुस्वार का प्रयोग किया गया और विभक्ति का प्रयोग कम से कम करने का यत्न किया गया। राजस्थानी, बुंदेलखंडी, अवधी, पूरबी, छत्तीसगढ़ी, फारसी, मागधी, संस्कृत, अपभ्रंश और खड़ी बोली इन सब का संमिश्रण किया गया और इसकी प्रवृत्ति यह हुई कि जिन संस्कृत के तत्सम शब्दों मे मिठास नहीं हैं उनके स्थान पर तद्भव शब्द का प्रयोग किया गया ताकि शब्द में उच्चारणगत माधुरी बनी रहे। जिस शब्द का ब्रजभाषा मे चयन किया जाता था उसे इस रूप ग्रहण कर लिया जाता था कि उसकी अनगढ़ता समाप्त हो जाय। ब्रज-भाषा के माधुर्यगत इन सभी पक्षों का ध्यान रसलीन ने अपनी भाषा में रखा है। इसलिये उनकी भाषा मे संस्कृत, ब्रज, अरबी, फारसी, अवधी, छत्तीसगढ़ी और बुंदेल खंडी के शब्द ऐसे मधुर रूप मे घुल मिल गए हैं कि वे उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो जाते हैं।

रसलीन 'सुरबानी' के प्रशंसक थे किंतु उन्होंने उसके तत्सम शब्दों का वहीं व्यवहार किया है जहाँ पर वे शब्दराजि की पंक्ति मे अनगढ़ नहीं लगते अपितु उसकी शोभा बढ़ाने मे सहायक होते हैं। उदाहरण के रूप मे जहाँ 'अंकुर' 'अंगज' 'अंबर' 'गंधर्व', संचार', 'लक' 'कीर्तिका' आदि जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं वहीं वे 'उरबसी'>'उर्वशी', 'तरुनता'>तरुणता',

'पूरुब' > 'पूर्व', प्रगलभ' > 'प्रगल्भ', 'बच्छ' > 'वक्ष', रच्छा, > 'रक्षा' जैसे तद्भव शब्दों को अपनाते हैं। अरबी और फारसी के जानकार होते हुए भी उनसे भी जो शब्द इन्होंने लिए हैं उनको भी आवश्यकतानुसार तद्भव रूप में ग्रहण किया है। जैसे 'अलह' > 'अल्लाह' (अ), नेजा (फा)', रौसन > रौशन (फा)', हरोल > 'हरावल' (फा) इत्यादि। इन्होंने बोलियों के शब्द भी इसी प्रकार प्रगृहीत किए हैं जैसे 'सियराइ' 'टकटोई', 'पोर', 'चाई' सतराई, लेरुआ, ऐंड़ति इत्यादि।

श्रेष्ठ रचना के लिये व्यापक शब्द भंडार चाहिए। यदि शब्दों का ठीक-ठीक प्रयोग करना कवि नहीं जानता, तो केवल व्यापक शब्द-भंडार का ज्ञान मात्र होने से रचनाकार श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

शब्द के अर्थबोध या उसके पर्याय की अर्थछाया का ज्ञान कवि के लिये आवश्यक है। साथ ही उसका पद्य मे प्रयुक्त पूर्वापर शब्दों से ध्वनिगत, भावगत मेल भी परम आवश्यक है। ध्वनि से वातावरण ही केवल नहीं बनता है। स्वर तथा भाव को रूप देने मे भी सहायता मिलती है। इनके लिये आवश्यक है कि शब्द की ध्वनि का ज्ञान और पद की लयता का पूर्ण बोध कवि को हो। इसलिये छंद के साथ ही संगीत का ज्ञान भी अच्छे रचनाकार के लिये आवश्यक है। रसलीन तत्कालीन प्रचलित भाषाएँ—अरबी, फारसी, संस्कृत, रेखता के पडित तो थे ही। इसलिये उनका शब्दभंडार व्यापक था और इसीलिये वे अपनी कविता के लिये शब्दचयन में ऐसे कौशल का परिचय देते हैं कि उनके शब्द अपने स्थान पर अनगढ़ नहीं लगते। दूसरी ओर वे नाद करते हुए मिलते हैं जिसकी ध्वनि का साम्य उसके अर्थ से होता है और उसमे सगीतात्मकता भी प्रकट होती है। वे संगीत के अच्छे ज्ञाता थे। यह उनके निम्नांकित पद से स्पष्ट हो जाता है—

भैरों कैसो सोहै रग गोरी अग छाया संग
सोहनी तरंग देत मेघ की बहार मैं।
दीपक की नाक कत गुन करी फूलै बाँक
मारौ नैन झाँक बस्यौ सारँग पहार मैं।
धनासरी राग माँझ गावत ललित तान
झूलत हिंडोले स्याम गहन फुहार मैं।

परगाती नाम बाम जाइ भास रहे ठाम
एती सुगराइ राम करी वा कुमार मैं ॥[1]

जिन्हे सोहनी, मेघ मल्हार, दीपक, धनासरी, ललित हिंडोला, प्रभाती, भैरौं, रामकली सारंग आदि राग रागिनियों का ज्ञान नहीं है और यह ज्ञान नहीं है कि वे किस बेला मे गाई जाती हैं उन्हें इस काव्य का मार्मिक आनद कहाँ से मिलेगा ?

इन सब तत्वों के रहते हुए भी शब्द चयन ध्वन्यात्मक अर्थवत्ता अच्छे काव्य की सृष्टि नहीं कर सकता यदि उसमे पदगत सौंदर्य न हो। पदावली या वाक्य का सौंदर्य उसके अर्थ को प्रकट करता है किंतु यहाँ भी कौशल की आवश्यकता होती है। इस कौशल के लिये बाँकापन आवश्यक है जब यह कला पद विन्यासगत होती है तो उक्तिकौशल इसकी पूर्णता मे सहायक होता है। वक्र उक्ति हृदय पर मधुर किंतु गंभीर चोट करती है। उक्ति की वक्रता सहज शिल्प नहीं। इसीलिये इस देश मे वक्रोक्ति को काव्य का जीवन माना गया है। वक्रोक्ति का सहज तथा सुंदर प्रयोग करने मे रसलीन सिद्धहस्त हैं। वक्रोक्ति के साथ ही उक्तिवैचित्र्य भी काव्य का गुण है। यह उक्ति वैचित्र्य भी रसलीन की कविता में अद्वितीय बन गया है। इनके कुछ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं—

ऐंठे ही उतरत धनुस यह अचरज की बान।
ज्यौं ज्यौं ऐंठत भौ धनुख त्यौं त्यौं चढ़त निदान ॥[2]

रे मन रीति बिचित्र यह तिय नैनन के चेत।
बिस काजर निज खाइकैं जिय औरन के लेत ॥[3]

चितवन बान चलाइ अरु हास कृपान लगाइ।
हरज गुरज पिय हिय हनै भुज फाँसी गर ल्याइ ॥[4]

---

१. पृष्ठ ३२४
२. पृष्ठ १५७
३. पृष्ठ २५६।
४. पृष्ठ १४५।

कहा कहौं वाकी दसा जब खग बोलत रात।
पीय सुनत हो जियत है कहाँ सुनति मरि जात ॥ [१]

मुरली आप लुकाइकैं पूछत है ब्रजनाथ।
कहति हमारो हार हू धरयो हुतो तिय साथ ॥ [२]

तू तिय छबि मध जो दई श्रवन चषक को धाइ।
सो मो हिय अति छकित वे नैनन झलकी आइ ॥ [३]

आस्था प्राप्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति संसार मे अपने-अपने क्षेत्र मे यत्नशील रहता है। आस्था और विश्वास प्राप्ति के लिये पूर्व दृष्टांत या प्रतिष्ठित तत्वों से संबंध स्थापन हितकर सिद्ध होता है। कवि और साहित्यकार इस बात के लिये प्रयत्न करता है कि वह अपनी कथनी के प्रति विश्वास जमा सके। विश्वास श्रद्धा से या दृष्टात से उत्पन्न होता है। पुरातन के प्रति लोक में आस्था और श्रद्धा का भाव सनातन रूप से रहता है। यहाँ तक कि लोग इतिहास को भी रस मानने लगते हैं। कवि यदि पूर्ववत् श्रद्धास्पद साहित्यकारों की कृतियों से उनकी उक्तियाँ या उनके चिंतन उपस्थित करता है तो उसे अनुकरणकर्ता कहते हैं किंतु ऐसी उक्तियाँ और ऐसे शब्दयोग भी होते हैं जो किसी एक व्यक्ति या साहित्यकार का संपादन रहकर साहित्य की संपदा बन जाते हैं और रचनाकार की कथनी को लोकविश्वास का भाजन बनाने मे बल देते हैं। ऐसी ही श्रेणी में लोकोक्ति और मुहावरे आते हैं। दर्शन ग्रथों मे जो स्थान मंत्र का होता है साहित्य में वही लोकोक्ति का।

लोकोक्ति और मुहावरे यदि ठीक से प्रयुक्त हो जाँय तो प्रतीक रूप मे विशद अर्थ की निष्पत्ति में भी सहायक होते हैं। इनसे अभिव्यक्ति के प्रकाश को बल मिलता है। इसलिये अच्छे साहित्य में लोकोक्ति और मुहावरे रचनाकार द्वारा प्रयुक्त किए जाते हैं।

रसलीन एक श्रेष्ठ भाषाविद और शिल्पी थे इसलिये उनकी रचनाओं में लोकोक्तियाँ और मुहावरे स्वतः समुच्छ्रित हो प्रकट हुए। रसलीन की प्रतिभा नवोन्मेषी थी इसलिये इन उक्तियों और मुहावरों को भी वे नया परिधान पहि-

---

१ पृष्ठ १२६।

२. पृष्ठ १२१।

३. पृष्ठ ११५।

नाने का यत्न भी करते हुए कहीं कहीं दीखते हैं किंतु यह नवीनता स्वयं में इतनी संस्कारशील और दोषमुक्त है कि सहज ही ग्राह्य हो जाती है। ग्राह्यता से कवि के संस्कार की शक्ति का बोध होता है। रसलीन में यह शक्ति पर्याप्त मात्रा में थी। यहाँ उनकी लोकोक्तियों और मुहावरों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं जो उपर्युक्त कथन के साक्षी हैं—

कुछ लोकोक्तियों के प्रयोग

लरिकाई सब ते भली जामैं फिरिह निसक। ४६/२१८
आली चाटे ओस के कैसे ताप बुझाय। ६१/३०४
काह कीजिए कनक लै जातें टूटे कान। ६५/३२४
तिहि तरुवर दहियत नहीं रतियत जाकी छाँह। १८१/६७२
दोऊ दग पच्छीन को हनन एक ही चोट। २५३/११
ज्यौं चोरी गुर पाइकै तुरत लीजिए खाइ। ६०/२६८
मो घट आग लगाइकै घट लै जल को जाइ। १०४/५३५
आली बानर हाथ मे पर्यो नारियर जाइ। १५८/८३६
धर्महि ते जय होत है पापहि ते छै होत। २००/१०८२
ज्यौं कूकुर कूकुर लरै कौवा पावत दाव। २०६/११४३

कुछ मुहावरों के प्रयोग

द्योस चार के चाँदनी। २२/६६
'ऐंची फिरै' २७/१२०
कंट गड़ै। २७/१२७
'करति दुराव'। २६/१३३
भूख प्यास बिसराइ। ३३/१५०
मुख स्वेत ह्वै जाइ। ३६/१६७
'नींद हिराइ'। ४०/१७६
सिर चढ़ै। ४५/२१६
पीठ दै। ५५/२७०
फूलि गयो...गात। ५७/२८३
सेत ही बेची। ६२/३०६
सिर हत्या दीन। ७०/३४५

तुरकी सी बात । ८१/४०६
पलको न लगैं । ३३७/६६
नहि टारे टरैं । ३३७/६६
आदर धूप सुभाव । ८८/४४२
सोनो और सुगन्ध । ९३/४७१
दई है आब । ३०६/१५
गज को साँकर-आई । ३३२/८४
हाथ सो आगी धरैं । ३३६/६६
भारत दुपहर बीच मै । १३१/६७६
मृग मरीचिका दिखाइ । ३२९/७५
पारद ह्वै उफनाइ । १५४/८१६
कजाकी सी करत हैं । ३३६/९५

अलंकार जैसे सहज सौंदर्य को निखारने मे सहायक होते हैं उसी प्रकार साहित्य मे अलंकारों का समुचित प्रयोग अनुभूति को काति प्रदान करता है। अलकार की अधिकता देह की शोभा का नाश भी कर देती है और उसकी चकाचौध मे सत्य खो जाता है। इसलिये सच्चे कलामर्मज्ञ अलंकार का उतना ही प्रयोग करते हैं कि भाव और अनुभूति शोभाशालिनी हो, न कि चमत्कार की भूलभुलैया में मूल तत्व ही खो जाय। रसलीन ने अलंकारों का बड़ा संतुलित प्रयोग किया है जिसकी व्यापक चर्चा प्रत्येक छंद के साथ परिशिष्ट मे दे दी गई है।[1] इन्होंने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है उनमें दृष्टांत, विरोधाभास निरुक्ति, हेतु असंभव, कारक दीपक, श्लेष, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, भ्रांतिमान, यमक, उदाहरण पर्याय, विभावना, काव्यलिंग, उपमा, विकल्प, व्याजोक्ति, अनुप्रास, अतिशयोक्ति, छेकोक्ति असंगति, अपह्नुति, तद्गुण, विशेषोक्ति, निदर्शना, अर्थापत्ति, मीलित, सूक्ष्म, युक्ति, समुच्चय, आक्षेप, स्वभावोक्ति, संभावना, परिकरांकुर व्याघात, परिकर, लोकोक्ति, अर्थांतरन्यास, विषादन, व्यतिरेक, मिथ्याध्यवसित, अत्युक्ति, 'मुद्रा', अवज्ञा, लेश आदि अलंकारों का प्रयोग किया है, साथ ही इन अलंकारों के जितने भेद हो सकते है उनका प्रयोग भी किया है और एक अलंकार से

१. ग्रंथावली का परिशिष्ट, अलंकार निर्देश, पृष्ठ ३६३—३८०

दूसरे को पुष्ट करने का भी सफल प्रयास किया है और कहीं कहीं अनेक अलंकार एक साथ ही आ गए हैं, जैसे सामान्या वर्णन में—

भावै सब ही के पूरे करै काज जी के
धनी उर बसै नीके हरबसी बनी है।
रूप सुबरन एक रति हू न पूजै नेक
धनी है मनी अनेक जाके आगे भनी है।
दीखै जो रतन कोटि खान रसलीन जोत
सोई के सुपट ओट दीपक लौं छनी है।
आनन सरस बेधे पाहन से प्रान घने
देखत के नैन यह हीरा की सी कनी है।

इसमे श्लेष, मुद्रा, उपमा, पंचम विभावना अलंकार है। इस प्रकार की अलंकार-योजना स्थान-स्थान पर मिलेगी जो रसलीन के काव्य को संपुष्ट करती है।

रसलीन के मूल दो ग्रंथ दोहों में हैं। स्फुट सवैया कवित्त और सरसी छंद का प्रयोग भी इन्होंने सीमित रूप से किया है। दोहा रसलीन का प्रिय छंद है। यह हिंदी का बहु प्रचलित अर्द्धसम मात्रिक छंद है। दूहा, दुहला दोहरा, गाहा आदि के नाम से भी यह ख्यात है। कालिदास और परवर्ती संस्कृत काव्य निर्माताओं का भी यह प्रिय छंद रहा है। प्राकृत पैंगलम मे इसकी आदि स्थिति है। इसके सबंध में विस्तार से परिशिष्ट में छद विमर्श के अंतर्गत विचार किया गया है। इस छंद की विशेषता ठीक-ठीक रहीम ने इस दोहे में प्रकट की है—

दीरघ दोहा अर्थ के आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिट कूदि चलि जाहिं॥

इस मर्म को रीति काल के आदि कवि कृपाराम ने समझा था और उसका मार्मिक तथा सार्थक प्रयोग मतिराम, बिहारी तथा रसलीन ने किया। स्वल्प तत्व से अधिकतम प्रभावनिष्पति कला का प्राण है और हिंदी छंदों मे दोहा इसके प्रमाण हैं। रसलीन इसके सफल प्रयोक्ता हैं। प्रायः जितने दोहाकार

---

१. पृष्ट ३१८, द सं० ४५

हैं वे सब के सब सोरठा लेखक भी रहे हैं पर रसलीन का एकमात्र सोरठा शिवसिंह सरोज मे उपलब्ध है जो सपादकीय में दे दिया गया है। दोहे के विविध प्रकारों में हस, मधुकर, मच्छ, पयोधर, त्रिकल, कच्छप, चल नर, शार्दूल, करभ, मरकट, विडाल, मडूक, श्येन दोहों का प्रयोग रसलीन ने सफलतापूर्वक किया है।

रीतिकाल मे मधुर भाव को अभिव्यक्त करने के लिये सवैया का प्रयोग हिंदी मे बड़े व्यापक पैमाने पर किया गया है। रसलीन ने मत्तगयंद और दुर्मिल सवैयों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। घनाक्षरी मे कवित्त या मनहर उन्हें प्रिय थे और मात्रिक छंद मे सरसी। किंतु इन सफल प्रयोगों के बाद की मूलतः उनकी स्थिति दोहाकार के रूप मे है और उनके बारे मे वही बात कही जा सकती है जो बिहारी के दोहों के बारे मे विख्यात है—'देखन मे छोटे लगै घाव करैं गंभीर। इस प्रकार रसलीन ऐसे भाषाशिल्पी, भाव रहस्य के ज्ञाता, सौंदर्य भेद के मर्मज्ञ कोविद के रूप से प्रकट होते हैं जिसका साहित्य मध्य काल के रीतिकालीन कवियों में अपनी भावगत विशेषता के कारण उतने ही महत्व का है जितना मतिराम, देव बिहारी, दास और पद्माकर का।]

अब इनके काव्य के शास्त्र पक्ष के संबध में जो इनके आचार्यत्व का प्रतिष्ठाता है हम विचार करेंगे।

रसलीन की शास्त्रीय मान्यताएँ

'रसलीन' ने रस प्रबोध में रस आदि के सबध में जो विचार व्यक्त किए हैं उनको यथावत् पहले प्रस्तुत किया जा रहा है। उनके सारे के सारे विचार निजी चिंतन नहीं हैं उन्होंने ग्रंथों का अध्ययन किया और उस पर चिंतन भी किया है। वे ऐसे सर्वरस निरूपक शास्त्र कवि हैं जिन्होंने शृंगार और उसके आलंबन विभाव नायिका एवं नायक का विस्तृत अध्ययन दोहों के माध्यम से अपस्थित किया है।

रस—जब विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव से स्थायी भाव जागरित होता है तो उससे रस उत्पन्न होता है। मनुष्य के हृदय रूपी भूमि में ब्रह्मा ने जो रस का बीज बोया है उसका जो अकुर है वह स्थायी भाव कहा जाता है। जल के समान आलबन उद्दीपन विभाव हैं जो उपयुक्त समय पर उस अंकुर को सींच कर सरसाते हैं। इससे अनुभाव का वृक्ष लगता है और व्यभिचारी भाव फल के समान हैं जो स्वाद

प्रतिक्षण फूलते रहते हैं। उनके संयोग्य से मकरंद की भाँति रस उत्पन्न होता है। रसिक जन मधुपों की भाँति कवि रचना में उसकी पहिचान करता है।

भाव—रस भाव से होता है इसलिये कवि प्रथमतः भाव का वर्णन करता है। जो रस के अनुकूल होकर सहज ही स्वभाव बदलता है उसे कविराय भाव कहते हैं। ग्रंथ मत से ये भाव दो प्रकार के हैं:—**स्थायी और उद्दीपन**। रति आदि नौ स्थायी भाव हैं, वे अपने अपने रस मे स्थायी भाव ठहराए जाते हैं। जिनका सभी रसों मे संचार होना है उसे व्यभिचारी कहते हैं। नवरसों के मूल नौ स्थायी भाव हैं। व्यभिचारी दो प्रकार का होता है, शारीरिक और मानसिक स्वेदादिक आठ भाव तन व्यभिचारी और तैंतीस निर्वेदादि मानसिक सचारी माने जाते हैं। नौ स्थायी, आठ तन व्यभिचारी, तैंतीस मन व्यभिचारी ये कुल मिला कर पचास हैं।

स्थायी भाव लक्षण—रस के मूल होने के बोध के कारण इनका प्रथम वर्णन किया गया है। रस के संमुख होते ही जो स्वभाव को परिवर्तित कर देता है। उस परिवर्तन को स्थायी भाव कहते हैं। जिस रस के संमुख जैसा परिवर्तन होता है वही उस रस का स्थायी भाव है।

नाम—रति, हास्य, शोक, कोप, उत्सह, भय, घृणा, आश्चर्य एवं निर्वेद।

विभावः—विभाव स्थायी भाव का कारण है और यह दो प्रकार का होता है **आलंबन एव उद्दीपन**। जिससे स्थायी भाव व्यक्त हो वह अनुभाव और जिससे उसकी आधिक्य हो वह उद्दीपन है। जो स्थायी भाव से अनायास लाकर प्रकट कर देता है उसे पंडित अनुभाव कहते हैं। रति आदि स्थायी भावो के कारण ही विभाव है, कार्य अनुभाव और सहकारी चर भाव है। स्थायी भाव से विभाव और कुछ अनुभाव प्रकट होते हैं और उससे अनुभाव और चरभाव प्रकट होते है। स्थायी से जो प्रकट होता है वह रस है जिसके आस्वाद में भूल कर सब महामग्न होते हैं वह रस कवियों में चित्र के समान चित्रित हैं जिसे लख कर चतुर सुजान मोहित होते हैं। इसी को ग्रंथों में रस कहते हैं। ये नौ प्रकार के हैं।

रस के प्रकारः—काव्य मत से--शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत एवं शांत रस। नाटक के मत से आठ रस हैं। शांतरस की गणना इसमें नहीं की जाती।

रस उपजने के प्रकार--श्रवण, दर्शन एवं स्मरण तीन प्रकार से रस उत्पन्न होता है।

शृंगाररस—शृंगार से ही सब काम होता है। इसके देवता कृष्ण हैं और यह श्याम वर्ण का है। यह सब रसों का राजा है। इसके देवता अन्य देवताओं के सिरताज हैं इसलिये यह रसों में रसराज है। तथा केवल इसी रस में सभी व्यभिचारी भाव भी मिलते हैं इसलिये भी यह रसराज है। इसीलिये इसका कवि ने सर्वप्रथम वर्णन किया है। इसका स्थायी भाव रति है।

रति लक्षण—प्रिय जन को देख सुनकर जो कुछ प्रीति भाव चित्त में होता है वही शृंगार का स्थायी भाव रति है।

विभाव—इसके आलंबन और उद्दीपन दो विभाव हैं। इसके नायिका नायक आलंबन हैं।

नायिका लक्षण—जिस नारी को देखने से ही नर के हृदय मे प्रीति उपजती है और जो रस रीति का ज्ञान रखती है वही नायिका है।

भेद—(क) स्वकीया (सलज, सुरीति, पति प्राणा)
(ख) परकीया (परपुरुष प्रेमी)
(ग) गणिका (धन की प्रेमी)

स्वकीया-भेद—(क) मुग्धा (जिसमें यौवन के आगमन के लक्षण लक्षित हों।)
(ख) मध्या (जिसमे लज्जा एवं काम समान हों।)
(ग) प्रौढ़ा (जिसमे पति की प्रीति हो।)।

जिनका लक्षण नाम से प्रकट हो जाता है उनके लक्षण का वर्णन कवि ने नहीं किया है।

(क) मुग्धा के भेद—(१) अंकुरित यौवना-(जिसमे तारुण्य का अंकुर प्रकट हो।)

(२) शैशव योवना (शैशव यौवन की संधि)
(३) नव यौवना (जिसमें यौवन चंद्रकला की भाँति वृद्धि पर हो) ।

नवयौवना मुग्धा के भेद—
(क) अज्ञात यौवना
(ख) ज्ञात यौवना

(४) नवल अनंगा
(क) अविदित कामा
(ख) विदित कामा

(५) नवलवधू
(क) नवोढ़ा (पति की काम संगति मे अधिक डरनेवाली ।
(ख) विश्रब्ध नवोढ़ा (पति पर कुछ कुछ विश्वास करनेवाली)
(ग) लज्जा आसक्त रति को बिरु (रति लाज से जब काम की ज्योति सरसती है,) इसे लाज परा रति नवोढ़ा भी कहते हैं ।)

(ख) मध्या के भेद समान लज्जाभरना (समान लज्जा एवं कामवती)
(१) उन्नत यौवना (यौवन झलके काम कम)
(२) उन्नत कामा (काम अधिक झलकें)
(३) प्रगल्भवचना (प्रगल्भ वचन द्वारा कामाभिव्यक्ति)
(४) सुरताविचित्रा

एक अन्य भेद अन्य मत से—लघु लज्जा

(ग) प्रौढ़ा के भेद—
(१) उद्भट यौवना प्रौढ़ा
(२) मदनमदमाती प्रौढ़ा
(३) लुब्धाप्रीति प्रौढ़ा
(४) रति कोविदा प्रौढ़ा—दो प्रकार
(क) रतिप्रिया
(ख) आनन्द संमोहिता

इसके अतिरिक्त पतिदुखिता नायिका होती है जो मूढ़, बाल और वृद्ध पति दुःखिता—तीन प्रकारों मे विभक्त है ।

मुग्धा तथा धीरादि का अंतर—जो कवि लोग मुग्धा में मान का वर्णन करते हैं वह विस्रब्ध नवोढ़ा मे ही कुछ ठहरता है। धीरादि मे मान होता है। यह सब लोग जानते हैं। पर मुग्धा मे धीरादिक नहीं होतीं। मुग्धा मे विज्ञ, अविज्ञ विवेक नहीं होता और धीरादिक का यही विवेक मूल है।

धीरा खंडिता का विवेक वर्णन—मान धीरादि और खडिता दोनों में होता है। लघु, मध्यम, गुरु—ये तीनों मान धीरादिक के भेद से कारण उपस्थित होने पर नायिका में होते हैं। खडिता का मान सुरति-चिह्न के कारण होता है। धीरादिक में गुरु मान मिट जाता है। धीरादिक और खंडिता के योग से नायिका मध्य अधीरा होती है। इसलिये इन दोनों में कोई भेद नहीं करता है और कुछ यह भेद करते हैं पर भिन्न रूप से। गुरुमान के चिह्न दो प्रकार के होते हैं:—साधारण, असाधारण। जिससे रति निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं होती वह साधारण और जिससे स्पष्ट प्रकट हो वह असाधारण चिह्न है। यह रसमंजरी के साक्ष्य पर आधृत है। इससे ही धीरादिक और खंडिता के अंतर का बोध होता है।

मध्या प्रौढ़ा धीरा आदि का भेद:—मान के अनुसार मध्या के तीन भेद हैं:—

(क) धीरा (व्यंगयुक्त कोप करनेवाली)
(ख) अधीरा (क्रोध व्यंगहीन करनेवाली)
(ग) धीराधीरा (व्यंग और क्रोध दोनों करनेवाले तथा यहाँ तक कि रो देनेवाली,

मध्या धीराधीरा—(क) आकृति गोपना
(ख) सादरा

मान के अनुसार प्रौढ़ा धीरादिक—(क) धीरा (रतिक्षण रिस)
(ख) अधीरा (रतिक्षण चोट करना)
(ग) धीरा धीरा (अनत पा कर रिस एवं चोट)

ज्येष्ठा कनिष्ठा भेद—एक से अधिक नायिकावाला जिससे अपेक्षाकृत ज्यादा प्रेम करे वह ज्येष्ठा और दूसरी कनिष्ठा। ज्येष्ठा कनिष्ठा मे से प्रत्येक

में धीरा, अधीरा एवं धीराधीरा भेद हैं। इस प्रकार ये बारह हुए। मुग्धा के भेद इन बारह भेदों के साथ तेरह हो जाते हैं। इस प्रकार स्वकीया तेरह प्रकार की होती हैं।

स्वकीया पतिव्रता भेद—स्वकीया में स्नेह और पतिव्रता में भक्ति का भाव होता है।

परकीया

परकीया भेद—(१) पर-पुरुषानुरागिनी होती है। इसके दो भेद होते हैं:—

(क) ऊढ़ा

(ख) अनूढ़ा

(क) ऊढ़ा—अन्य की व्याहता पर प्रेम अन्य पुरुष से करनेवाली।

(ख) अनूढ़ा—बिना व्याही पर परपुरुष से प्रेम करनेवाली।

परकीया भेद (२)— (क) असाध्या

(ख) सुखसाध्या

(क) असाध्या—प्रेम लगा हो पर मिल न सके वह असाध्या है। बुद्धि और मन की लगन को प्रकटतः दोष कहा जाता है इसलिये परकीया में ही असाध्यादि का वर्णन कवि ने किया है। कुछ लोग असाध्यादिक के तीन प्रकार बताते हैं—

(१)—(क) असाध्या, (ख) दुःसाध्या। सुख साध्या

(२)—(क) ,, (ख) ,, धर्म सभीतादि

(३) (ग) ,, (ख) ,, वृद्ध, वधू आदि सभीता

(ख) सुख साध्या—जो सहज ही प्रेमी से मिलना चाहे, वह सुख साध्या है।

असाध्या परकीया के भेद—(१) धर्म सभीता

(२) गुरुजन सभीता

(३) दूती वर्जिता

(४) अतिकाता

(५) खलपृष्ठ असाध्या

सुखसाध्या परकीया के भेद—(१) वृद्ध वधू सुखसाध्य
(२) बालवधू ,,
(३) नपुसक वधू ,,
(४) विधवा वधू ,,
(५) गुणी वधू ,,
(६) गुण रिझावती वधू ,,
(७) सेवक वधू ,,
(८) निरंकुस ,,

परकीया के दो भेद और उनके प्रभेद :—(१) ऊढ़ा
(२) अनूढ़ा

दोनों के दो प्रभेद :—

(१) अद्बुद्धा—स्वयं मिलनें का फंदा डालती है।
(२) उद्बोधिता—जो प्रेमी के फंदे से मिले।

अवस्था भेद के अनुसार परकीया के छह प्रकार से कथन :—

(१) सुरति गोपना—

(क) वर्तमान सुरति गोपना
(ख) प्रत्यद्भमान सुरतिगोपना
(ग) वृत्तवृत्त द्भमा मान सुरति गोपना

सुरति को गुप्त रखनेवाली सुरति गोपना है।

(२) विदग्धा

स्वयं दूती और विदग्धा एक ही हैं। इसलिये इन दोनों मे भेद करना कठिन है। इसलिये जो स्वयं दूती को रखते हैं, वे विदग्धा का भेद नहीं मानते। जो दोनों में भेद करते है उनका यही विचार है कि वे इन दोनों के भेद में विचार कर रहे हैं : इनके भेद इस प्रकार है :—

(क) वचन विदग्धा—किसी अन्य को संबोधित कर जब प्रिय को संकेत का बोध नायिका कराती है तो उसे वचनविदग्धा कहते हैं। स्वयं-दूतिका भी स्वय यह कर्म करती है।

(ख) क्रिया विदग्धा—कौशल से अपना कार्य करती है और युक्ति से संकेत करती है। स्वयंदूतिका भी इशारे से संकेत करती है और अपने तथा अपने प्रिय मे नई प्रीति रचती है। इन दोनों की विधि एक ही है। क्रिया विदग्धा के निम्नांकित भेद है—

(क) पतिवंचिता—अपने पति को देखते ही जो उपपति (पर प्रेमी पुरुष) के रस मे डूब जाय।

(ख) दूती वंचिता—दूती से सब कुछ छिपाकर जो प्रेमी से मिलने का संकेत करे।

(३)—लक्षिता—

(ग) हेतु लक्षिता
(घ) सुरति लक्षिता
(ङ) प्रकाश लक्षिता

(४)—कुलटा

(५) मुदिता

(६) अनुशयना (मध्यम)

(क) स्थानविघटना
(ख) भाव संकेत सोचिता
(ग) अनुशयना
(१) स्वेनाधिष्ठित संकेत रचनानुगमन
(२) स्थानाधिष्ठित संकेत वर्णानुगमन
(३) पियमनोरथा

स्वकीया परकीया - बिना नेम के काम की दृष्टि से तीन प्रकार की होती हैं।

(१) कामवती
(२) अनुरागिनी
(३) प्रेमासक्ता

सामान्या भेद—(१) स्वतंत्रा, अपनी इच्छा से रमनेवाली।
(२) जननी अधीना (माँ या गुरुजन के अनुशासन मे रमनेवाली)
(३) नेमता सामान्या (द्रव्य द्वारा रमने का समय जिससे नियत हो।)

(४) प्रेम दुःखिता (प्रेम हो जाने पर बिछुरने से दुखी हो वह प्रेमदुःखिता है ।)

नायिका के अन्य भेद :—

(क) अन्यसुरति दुःखिता ।

(ख) गर्विता ।

(ग) मानिनी ।

सभी नायिकाओं मे भेद होते हैं। प्राचीन आचार्यों के मत में यह भेद नहीं मिलता, इसे नवीन लोगों ने काट कर बनाया है । अन्य-सुरति-दुःखिता खंडिता से, गर्विता स्वाधीन-पतिका से और मान से मानिनी ये तीन भेद निकले हैं और इन भेदों को अष्ट नायिका भेद से अलग ठहरा दिया गया है। यद्यपि ये अष्ट नायिका भेद मे नहीं वर्गीकृत होते तो भी अवस्था भेद से सब भिन्न हो जाते हैं। यद्यपि नवीन मत पर तीनों भेद विदित हुए तो भी ग्यारह सौ बावन प्रकार की नायिकाओं मे ये नहीं गिने जाते। गर्विता के भेद हैं :—(१) वक्रोक्ति गर्विता (२) सुधि प्रेम गर्विता (३) रूप गर्विता और स्वच्छ रूपगर्विता ।

(४) गुण गर्विता और स्वच्छ गुण गर्विता ।

मानिनी—प्रिय द्वारा किए गए अपराध को लेख कर जब नायिका उससे उदास होती है तब वह मानिनी नायिका हो जाती है। तीन प्रकार से कोप प्रकट करती है। प्रिय समुख कोप करनेवाली खडिता, मुँह पीछे अन्य संयोग कुपित एवं कोप मौन ।

अवस्था भेद से नायिका के आठ भेद :—

(१) स्वाधीन पतिका—प्रिय जिसके गुण या स्नेह के अधीन हो ।

(२) वासकसज्जा—प्रिय के आने के दिन शृंगार से शरीर को सजानेवाली नायिका ।

(३) उत्कंठिता—किसी कारण से प्रिय के गृह न आने से चिंतित नायिका ।

(४) अभिसारिका—जो प्रिय से मिलने के लिये उसके पास जाय या प्रिय को स्वयं अपने पास बुला ले ।

(५) विप्रलब्धा—वह नायिका जो शृंगार सजकर प्रियतम से भेंट करने जाय किंतु वहा प्रिय को न पाकर मन ही मन रुष्ट हो।

(६) खंडिता—प्रिय के शरीर पर रति चिह्न देख कर क्रोधित होनेवाली नायिका।

(७) कलहंतरिता—प्रिय से कलह कर पीछे पछतानेवाली नायिका।

(८) विरहिणी—(क) जिसका पति परदेश गया हो।

(ख) गमिष्यत्पतिका—कुछ दिन में जिसका पति परदेश जानेवाला हो।

(ग) गच्छत्पतिका—जिसका पति प्रदेश जाने को ही हो।

(घ) आगमिष्यत् पतिका—संदेश या पत्र द्वारा जिस नायिका को पति के आगमन की सूचना मिल जाय।

(ङ) आगतपतिका—जिसका पति विदेश से आकर मिले।

(च) आगच्छत् पतिका—जिसको अपने बिछुड़े पति के आगमन का संदेश मिले।

विरह होनेवाला है या हो चुका है, विरह समाप्त होनेवाला है या समाप्त हो चुका है आदि छहों एक ही में गिने जाते हैं।

रसलीन का अभिमत है: इन नायिकाओं में मुग्धा का वर्णन उचित नहीं है, केवल विश्रब्ध नवोढ़ा में ये गुण होते हैं। किंतु सातों प्रकार की पतिकादि में मुग्धा भी होती है यद्यपि बिना दोनों की चाह के रस की दीपशिखा नहीं जलती।

स्वाधीनपतिका—मुग्धा, मध्या, परकीया, सामान्या।

वासकसज्जा—मुग्धा, मध्या, परकीया, सामान्या॥

उत्कंठिता—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या।

अभिसारिका—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया में होती है और इसके परकीया में भेद है:—

(क) कृष्णाभिसारिका

(ख) शुक्ला या ज्योति अभिसारिका।

(ग) दिवाभिसारिका

ये सामान्या में भी होती हैं।

विप्रलब्धा—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या।
खंडिता—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या।
कलहतरिता—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या।
प्रोषितपतिका—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या में होती हैं।
गमिष्यत्पतिका
गच्छत्पतिका
आगमिष्यत्पतिका
आगच्छत्पतिका
आगतपतिका भी इनमें ही होती हैं।
आगतपतिका में संयोगगर्विता भी होती है।
नायिका के भेद
गुण के अनुसार—(१) उत्तमा, (२) मध्यमा और (३) अधमा।
उत्तमा—कंत का कोई भी अवगुण नहीं देखती।
मध्यमा—प्रिय के अनुकूल होने पर अनुकूल और प्रतिकूल होने पर विमुख
हो जाती है।

अधमा—सदा मान करनेवाली अनमनी नायिका।

जाति के अनुसार—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, और हस्तिनी।

लोक के अनुसार भेद—(१) दिव्या, (२) अदिव्या और (३) दिव्यादिव्या।

नायिका की गणना—(१) स्वकीया (२) परकीया (३) सामान्या १ × ४ =
४ × ८ अष्टनायिका = ३२ × ३
उत्तमादि = ९६ × ४ पद्मिनी आदि = ३८४,
३८४ × ३ दिव्यादिव्य = ११५२।

भरत के मत से—स्वकीया •१३ + २ परकीया + १ सामान्या = १६ × ८
अष्टनायिकाएँ = १२८ × ३ उत्तमादि = ३८४ × ३ दिव्यादिव्या
= ११५२।

भरत मत से स्वकीया १३ प्रकार—७ वर्ष तक देवी, १४ वर्ष तक गंधर्वी,
२१ तक शुद्ध गंधर्वी २८ तक मानवी, ३५ वर्ष तक शुद्ध मानुषी।
६।।।-१०।। वर्ष तक गौरी, १२। वर्ष-२४ लक्ष्मी, २४-३५ तक सरस्वती।
रस ग्रंथ में भरत के मत से ३५ वर्ष के ऊपर की नायिका का वर्णन

नहीं करते। गौरी पूजनीय है, लक्ष्मी संयोग समर्थ हैं। इसके बाद सरस्वती है जिसका अर्थ पूछने योग्य नहीं, सभी समझते हैं। लक्ष्मी के वय में स्वकीया १३ प्रकार, उसमें पाँच प्रकार की मुग्धाएँ हैं और मध्या तथा प्रौढ़ा ४ प्रकार की हैं। इन तेरह भेदों में मुग्धा को हृदयंगम करें। प्रथम अंकुर यौवना ३ मास, नवलवधू ६ मास तक रहती है। १४ वर्ष में नवयौवना, १५ वर्ष में नवलअनंगा, १६ वर्ष में सल्लजरति। यह तो मध्या की जाति हुई। १७वें वर्ष में नूढ़ा यौवना, १८वें वर्ष मदना, १९वें वर्ष प्रगल्भवचना, २०वें में सुरतिविचित्रा २१वें वर्ष में प्रौढ़ा लुब्धा, २२वें वर्ष में रतिकोविदा, २३वें में वशवल्लभा, २४॥ तक रमा रहती है।

कोक के मत से—७ वर्ष तक कन्या, १३ वर्ष तक गौरी, २३ वर्ष तक तरुणी, ४० तक प्रौढ़ा, कोक के मत से यह वर्णन रसलीन ने किया है।

नायक-वर्णन—आलंबन में नायक का दूसरा स्थान है। जिस नर को देखकर नारी के हृदय में रति भाव उत्पन्न होता है, वही नायक है। स्वकीया पति, परकीया उपपति, सामान्या के मित्र. मित्र को कविजन वैसुक (वैशिक) कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं।

पति के भेद—(१) अनुकूल (२) दक्षिण (३) शठ और (४) धृष्ट। एक स्त्री में प्रेमासक्त अनुकूल, शीलवान् और सब को प्रसन्न रखनेवाला दक्षिण, मिष्टभाषी किंतु कपटी नायक शठ और धृष्टता से भरा हुआ धृष्ट नायक होता है। उपपति और वैशिक के मध्य का एक भेद और भी किया जा सकता है। पति तो एक ही होता है। उपपति के भेद है—(१) गूढ (२) मूढ और (३) आरूढ़। गूढ़ परतिय का स्नेह निज तिय पर प्रकट नहीं करता, मूढ़ उसे प्रकट कर देता है। आरूढ़ सदा परतिय गेह उसके लिये जाता है और उसके सभी बंधन स्वीकार करता है।

वैशिक के दो भेद है—अनुरक्त और मत्त। मन कर्म वचन से गणिका मे लीन रहनेवाला अनुरक्त है। मत्त तीन प्रकार के हैं—काममत्त, सुरामत्त, और धनमत्त। काम से अतृप्त सदा कामवश इधर उधर फिरनेवाला, दिन में घर पर रात में परस्त्री के घर और सवेरे गणिका के घर समय काटनेवाला। अपनी सुंदर पत्नी न भाए और

सुरापान हेतु वारवधुओं के यहाँ नित घूमता रहे उसे सुरामत्त कहते हैं। रुपए के बल पर जो नगर नागरी (वैश्या) को वशीभूत किए रहता है वह धनमत्त नायक है।

नायक प्रकृति गुण के अनुसार--(१) उत्तम--अपने मान की चिंता न कर मनुहार करनेवाला।

(२) मध्यम—उत्तम और अधम के मध्य।

(३) अधम--निर्लज्ज, निष्ठुर, स्वार्थी आदि।

स्वभाव के अनुसार नायक भेद - मानी एवं चतुर नायक--इन दोनों तथा शठ नायक में अंतर है। मानी नायक के दो भेद हैः (१) रूपमानी, (२) गुणमानी।

चतुर नायक—जो सभी प्रकार से चतुर हो, वह चतुर नायक है। इसके दो भेद है—वचन चतुर एवं क्रिया चतुर। चतुर नायक के अंतर्गत ही स्वयंदूत नायक भी आता है। जब नायक अपनी नायिका का देश तज कर परदेश जाता है तो प्रोषित नायक कहलाता है। अनभिज्ञ नायक वह है जो संकेत की सज्ञा का जरा भी ज्ञान नही रखता।

रस की दृष्टि से नायक के भेद

रस की दृष्टि से नायक चार प्रकार के होते हैं—

(१) धीरोदात्त—जिसमें धैर्य की प्रधानता हो, जो दान, दया, समान और शुभ कर्मों के प्रति सदा उत्साही बना रहता है। उसका जितना प्रेम प्रियतमा के प्रति होता है उतना ही प्रेम धर्म के प्रति भी।

(२) धीर प्रशांत—जिसके चित्त में निरतर शाति निवास करती है और मन शांति की बातों में ही रमता है।

(३) धीरललित—जो आभूषण और वस्त्रों के प्रति विशेष दत्तचित्त रहता है और विषय की उद्दाम कामना जिसमें जगती रहती है।

(४) धीरोद्धत—तनिक से दोष से जो क्रुद्ध हो जाता है, जिसमें अभिमान और अमर्ष भरा रहता है तथा जो स्वयं अपनी प्रशंसा करके प्रमुदित होता है।

लोक भेद के अनुसार नायक भेद—(१) दिव्य, (२) अदिव्य (३) दिव्यादिव्य।

नायक की गणना—

पति ४ + उपपति ३ + वैशिक २ = ९ × ३ उत्तमादिक = २७ × ४ धीर ललित आदि = १०८। १०८ × ३ दिव्यादिव्य आदि = ३२४

नायक का उतना विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है जितना नायिका का क्योंकि जिसका वर्णन जितना उचित है, उतना ही किया गया है।

दर्शन—रति का आरंभ दंपति के दर्शन से होता है। इसलिये दर्शन को भी आलंबन के बीच कवि ने रखा है। उसके चार प्रकार हैं—(१) श्रवण (२) स्वप्न (३) चित्र और (४) प्रत्यक्ष।

उद्दीपन-विभाव—उद्दीपन में सखी, दूती, ऋतु आदि आते हैं।

सखी—जो सदा नायिका के साथ रहे और नायिका के सब कार्य बिना किसी से बताए करती रहे।

सखी के प्रकार हैं:—(१) हितकारिणी (२) विज्ञविदग्धा (३) अंतरंगिनी (४) बहिरंगिनी। सखी लक्षण में बहिरंगिनी किसी प्रकार भी नहीं आती तो भी कवि ने इसका वर्णन इसलिये किया है कि ग्रंथों में इनका वर्णन है। सखी के कार्य है—मंडन, शिक्षा, उपालंभ एवं परिहास। वह नायिका से, नायक के प्रति, नायिका का स्वयं नायक के प्रति, नायिका का परिहास नायक से होता है।

दूती—छल बल आदि से न मिल सकनेवाले नर और नारी के जोड़े को जो मिलाती है, वह दूती है। दूसरे के भेजने पर जा आती है वह दूती है और स्वय जा दूती का कार्य करे, वह जान दूती है।

त्रिविध भेद—उत्तम, मध्यम, अधम।

जान दूती के तीन प्रकार—

(१) हितावान दूती (२) हिताहितावान दूती (३) अहितावान दूती।

दूती के कार्य—स्तुति, निंदा, विनय, विरह-निवेदन, प्रबोध एवं मिलाना।

सखा-कथन—जो नायक से नायिका को मिलवाता है वह नर सखा है। इसके चार प्रकार हैं:—(१) पीठमर्द (२) विट

(३) चेटक और (४) विदूषक। बुद्धिमत्तापूर्ण बातों से पीठमर्द मान मिटा देता है। विट दूतपन की सारी रचनाएँ जानता है। चेटक अवसर देखकर सुपारस करता है। दंपति से परिहास करनेवाला विदूषक है।

'ऋतु--षट् ऋतु-वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमंत शिशिर।

अन्य उद्दीपन—षट्ऋतु में ही समा जाने के कारण इनका कवि ने सविस्तर वर्णन नहीं किया है। ये घाम, सेज, रागादि हैं।

अंगज संभोग उद्दीपन - संभोग में अंग से उत्पन्न आलिंगन, चुंबन, स्पर्श, मर्दन, नख एवं दतशन।

श्रृंगार रस का अनुभाव

जो हृदय में उद्रिक्त रति भाव को (तन, मन या वचन के माध्यम से) प्रकट करे, वह अनुभाव है। कटाक्ष आदि चार प्रकार का होता है। उसका वर्णन कवि इस भाँति करते हैं-(१) शारीरिक (२) मानसिक (३) आहार्य (४) सात्विक। हस्तसंचालन आदि कायिक, मन का मोद रूपी प्रभाव जिससे प्रकटे वह मानस, बनाव श्रृंगार और वेशपरिवर्तन से जो प्रकट हो आहार्य, स्वयमेव से प्रकट होनेवाला सात्विक है। विच्छित्ति आदि तन व्यभिचारी सात्विक भाव के अंतर्गत हैं। स्थायी भाव को प्रकट करने के कारण ये सब अनुभाव कहे जाते हैं। नर और नारी जो अनुभाव प्रकट करते हैं वे एक दूसरे के लिये उद्दीपन हैं।

हाव - श्रृंगार के सम संयोग को हाव कहते हैं। अनुभावों को विशेष और हावों को सामान्य स्थान प्राप्त है। जहाँ वचन, कर्म और चेष्टा से अनुभाव का वर्णन कवि करते हैं वहाँ अनुभाव हाव हो जाता है। जो रति भाव प्रकट हो वह अनुभाव है। जब रति बढ़ जाती है और श्रृंगार की धार फूट पड़ती है ता वही हाव बन जाती है। नारी में सहज प्रभाव के कारण नायिका में ही इसका वर्णन कवि ने किया है क्योंकि कुछ कारणों से साहित्य मे आकर अनेक हाव प्रकट नहीं होते।

हावदशा वर्णन - स्वभावगत.—प्रियतम का देखकर जब नायिका जानबूझ कर अपने आंगिक सौंदर्य का प्रदर्शन करती है तो लीला हाव, प्रिया जब प्रियतम के मन को हरनेवाला व्यापार करती तो विलास हाव, ललित हाव में

नायिका चितवनादि नायिकालंकारों से सजती है, क्रोध में भूषण आदि का निरादर करनेवाली अल्प शृंगारित नायिका की शोभा को विच्छित्ति हाव, कपट निरादर और गर्व में नायिका में सात्विक हाव, प्रिय संग चाह पूर्ण होने का हाव विहृत हाव नायिका के जिस हाव से प्रेमजन्य ऐंठन आदि प्रकट हो वह मोट्टायित, रति मे कलह प्रकट करनेवाला हाव कुट्टमित हाव, रोदन हसन रिस, का हाव किलकिंचित हाव और विभ्रम में उलटा काम करने का द्योतक हाव विभ्रम हाव है। इस प्रकार (१) लीला (२) विलास (३) ललित (४) विच्छित्ति (५) विब्बोक (६) विहृत (७) मोट्टयित (८) कुट्टमित (९) किलाकिंचित (१०) विभ्रम ये दस हाव हैं।

बोधादिक दस हाव—(१) बोधक (२) मौग्ध्य (३) हासी (४) मद (५) तपन (६) विक्षेप (७) चकित (८) केलि (९) कौतूहल (१०) उद्दीपन।

क्रिया द्वारा संकेत बताना बोधक, जानकर, अजान मौग्ध्य, प्रिय के पास उमंग पूर्वक सरस तिय की हँसी कामज, रूपतारुण्यगत गर्व मद, संताप तपन, ज्ञान की हानि होने पर मन का इधर उधर भटकना विक्षेप, अचानक कुछ आश्चर्य देखकर चौंकना चकित, प्रिय को वेश बना कर रिझाना केलि, कौतुक रचकर उठ कर चल देना कौतूहल, बात का विस्तार उद्दीपन हाव है।

तीन हाव एवं मनोभाव – भाव, हाव और हेला ये तीन मन से उत्पन्न होते हैं। तीनों अत्यंत रस भरे हुए हैं यद्यपि डरे हुए हैं।

मन में प्रथम लगाव को भाव कहते हैं। केवल स्वभाव से इसका भान हो जाता है। प्रेम चातुरी जिससे दीप्त होती है वह हाव है। हेला भाव की प्रौढ़ता प्रकट करता है।

तनुज हाव (रूपगत)—(१) शोभा—रूप सौंदर्य की छटा को शोभा कहते हैं।

(२) कांति-- अंग की आभा और विमलता को कांति मानते हैं।

(३) दीप्ति—नायिका के रूप की चमक की अतिशयता को दीप्ति कहते हैं।

(४) माधुर्य —नायिका के मुख की सहज मधुरता का माधुर्य कहते हैं।

(५) प्रगल्भता – यौवन के गर्व से अभिभूत होकर निःशंक चलना और हँसना प्रगल्भता है।

(६) धीरता—पातिव्रत और पतिप्रेम की दृढ़ता को धीरता कहते हैं।
(७) विनय—शीलसौजन्य से संभृत विनम्रता और रिस मे भी रसवर्षण को विनय कहते हैं।
(८) औदार्य—प्रेम की वह पूर्णावस्था, जहाँ पहुँचकर जीवन, तन, धन और लज्जा की तनिक भी पर्वाह नहीं रह जाती, औदार्य है।

रसलीन ने व्यभिचारी के दो प्रकार कहे हैं: तनव्यभिचारी और मन-व्यभिचारी। तन व्यभिचारी को सात्विक कहा है।

(क) तन व्यभिचारी।

सात्विक भाव—सुख-दुःख आदि भावनाएँ जो हृदय में उत्पन्न होकर बेसँभार बाहर प्रकट हो जायँ 'उन्हें सात्त्विक भाव कहते हैं। ये सात्त्विक भाव स्थायी भावों का प्रकाशन करते हैं और होते हैं ये सात्त्विक भाव, इसलिये इन्हें अनुभावों में गिना जाता है। शृंगार भाव और सात्त्विक भाव में अंतर यह होता है कि शृंगार भाव पूर्ति को अभिव्यक्त करते हैं और स्थायियों को ला देते हैं।

अनुभावों और सात्त्विक भावों का अतर

सात्त्विक भाव बरबस स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं, किंतु अनुभाव स्ववश रहते हैं।

सात्त्विक भावों की सख्या

(१) स्वेद, (२) स्तंभ, (३) रोमाच, (४) स्वरभग, (५) कंप, विवर्ण, (७) अश्रु और (८) प्रलय।

(ख) मन व्यभिचारी

इन्हें संचारी भाव कहते हैं। ये स्थायी भाव में नित्य निवास करते हैं और जिस प्रकार समुद्र से लहरें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार ये स्थायी भावों में उत्पन्न होते रहते हैं। ये सभी रसों में फिरते रहते हैं, यह इनका स्वभाव ही है और जो जिस रस के लिये उपयुक्त होता है, वह वहाँ प्रकट होता है। पहले 'निर्वेद' को स्थायियों में गिनाया जा चुका है अब यह व्यभिचारियों में आकर रखा जा रहा है। तैतीसों के नाम इस प्रकार हैं:

(१) निर्वेद, (२) ग्लानि, (३) दीनता, (४) शंका, ५) त्रास, (६) आवेग, (७) गर्व, (८) आँसू, (९) अमर्ष, (१०) उग्रता, (११) उत्सुकता,

(१२) स्मृति, (१३) चिंता, (१४) तर्क, (१५) मति, (१६) धृति, (१७) हर्ष, (१८) व्रीडा, (१६) अवहित्था, (२०) चपलता, (२१) श्रम, (२२) निद्रा, (२३) स्वप्न, (२४) वेपथु, (२५) आलस्य, (२६) मद, (१७) मोह, (२८) उन्माद, (२६) अपस्मार, (३०) जड़ता, (३१) विषाद, (३२) व्याधि और (३३) मरण।

रसलीन ने 'तर्क' नामक व्यभिचारी के चार भेद किए हैं :

(१) संशयात्मक, (२) विचारात्मक, (३) अध्यवसायात्मक और (४) विप्रतिपत्त्यात्मक। (--नाट्यशास्त्रानुसार। ७।६२२४)

'देव' का भावविलास भी यही कहता है।[1]

वियोग शृंगार

वियोग के चार प्रमुख प्रकारों में रसलीन ने 'पूर्वानुराग' के दो प्रकार कहे हैं :

(१) दृष्टानुराग, और (२) सुरतानुराग।

गुरु मान छुडाने के उपायों के ये प्रकार कहे गए हैं :

(१) सामोपाय, (२) दानोपाय, (३) भेदोपाय, (४) उपेक्षोपाय, (५) प्रसग विध्वंस, और (६) प्रणतोपाय।

वियोग शृंगार के प्रसग में उद्दीपन विभाव के अंतर्गत रसलीन ने बारहमासा वर्णन भी किया है, जो अत्यत हृद्य है।

रस प्रकरण

शृंगार रस के विशद और व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करने के बाद रसलीन ने शेष आठों रसों का संक्षिप्त उल्लेख कर दिया है।

अन्य रस - शृंगार के वर्णन करने के उपरात कवि ने अन्य आठ रसों का वर्णन किया है। जैसे इन रसों के स्थायी भाव अलग-अलग होते

---

१. विप्रतिपत्ति विचारु अरु संशय, अध्यवसाइ।
वितरक चौबिध जानिए — — — ॥
भावविलास

हैं उसी प्रकार आलंबन भी अलग-अलग होते हैं। उद्दीपन विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव भी प्रायः अलग-अलग होते हैं।

हास्य रस--यह हास का परिपोषक होता है। वचन, कर्म और संग की विकृति से यह उत्पन्न होता है।

भेद--(१) मंद--मुस्कराहट मात्र जिसमें दाँत नहीं खुलते।
(२) मध्यम--हास्य की ध्वनि निकलती है।
(३) अतिहास--हास का अतिरेक।

देवता--ब्रह्मा
रंग--श्वेत

करुण रस--शोक का परिपोषक है। इष्टनाश, विपत्ति आदि इसके विभाव हैं। भ्रम, ताप, विलाप, ऊर्ध्वश्वास अनुभाव हैं। स्थायी भाव करुणा है।

देवता--यम।
रंग--कपोती रंग।

रौद्र रस--कोप का परिपोषक है। दुसह बैर एवं शत्रु दर्शन विभाव है। कंप, घर्म, आवेग, धृति, वर्म, आसू अनुभाव है।

देवता--रुद्र।
रंग--अरुण।

वीर रस--उत्साह का परिपोषक है। पूर्व शत्रुता विभाव है। उग्रता, पुलक, प्रसंनतादि अनुभाव हैं।

देवता--इंद्र।
रंग--गौर।

वीर के चार प्रकार सत्य वीर, दया वीर, रण वीर, दान वीर।

भयानक रस--भय भाव का परिपोषक है। घोर वायु, घोर ध्वनि से उत्पन्न होता है। मुख सुखना, हृदय की धड़कन, कंपन आ द अनुभाव है।

देवता--काल।
रंग--श्याम।

बीभत्सरस—घृणा का परिपोषक है। विरुचि, नींद, थूकना, मुख फेरना आदि अनुभाव हैं।

देवता—महाकाल।
रंग—नील।

अद्भुत रस—आश्चर्य का परिपोषक है। नई बात देख सुन कर उत्पन्न होता है। बिना जाने चकित हो जाना अनुभाव है।

देवता—ब्रह्मा।
रंग—पीत।

शांत रस—निर्वेद भाव का पोषक है। यह गुरु या देव कृपा से उत्पन्न होता है। क्षमा, सत्य, देव पूजन, योगादि इसके अनुभाव हैं।

देवता – विष्णु।
रंग—चंद्र वर्ण।

इन रसों के सामान्य परिचय और उनके उदाहरण के उपरांत भाव संधि, उनका उदय, शबलता, शाति एवं प्रौढोक्ति का उदाहरण दिया गया है। इसके बाद कवि ने इस रूप में नेम कथन किया है।

सभी प्रछन्न प्रभाशवान हैं और वे प्रकट होते हैं। भूत, भविष्य, वर्त्तमान हुआ, होगा, होता है रूप में वर्णित होता है। सभी विशेष सामान्य हैं, उनका लक्षण ही विशेष होता है। यदि लक्षण से ही केवल विशेष कुछ होता है तो वह भी सामान्य ही है। जो रस स्वतः समुच्छित हो वह सच्चे अर्थ में रस है और जो रस दूसरे के कारण हो वह निःसत्व है। एकतरफा और तिय के संमुख नर की, पूज्य से प्रीति और चोरी से रस रीति अधम है। गुरुजनों के साथ हँसी, बधू का अति उत्साह, शोक मैत्री दर्प रसाभास है। जहाँ भाव की पूर्णता नहीं है वहाँ भावाभास है। नायक नायिकाभास भी होता है उसी समय उन्हें घृणा छोड कर अन्य देवता से प्रीति, पिता, पुत्र, बालक बालिका, बंधु होता है स्थायी भाव, कृपा सत्य आदि रहता है। रस जनित रस इस प्रकार होते हैं:—शृंगार से—हास्य, करुण रौद्र से, अद्भुत वीर से, बीभत्स से भयानक। इसके बाद लेख रस शत्रुवर्णन में छिन्न है शांतरस का प्रस्तावक अलग से कवि ने कहा है और फिर ग्रंथ की पूर्णता का वर्णन किया गया है।

रसलीन पर पूर्वाचार्यों का प्रभाव

रसलीन ने शृंगार रस प्रकरण में भरत मुनि और रसमंजरी (भानुदत्त-कृत) का नामोल्लेख किया है। अन्यत्र 'दूसरे मत से' आदि से अन्यतः गृहीत विषयों या विचारों की ओर स्पष्ट संकेत भी ये कर देते हैं। रीतिकाल के परवर्ती शृंगारी आचार्यों में प्रायः सभी 'रसमंजरी' और 'रसतरंगिणी' से प्रभावित रहे हैं। रसलीन भी पूर्व परंपरा के पालक हैं। इनका नायिका-भेद रसमंजरी से पूर्णतया प्रभावित है। भरत के नाट्यशास्त्रगत नायिका भेद भी इन्होंने यत्र तत्र अपनाए हैं। हिंदी के आचार्यों में कुलपति, केशव, देव, मतिराम आदि से ये अनुप्राणित हैं। काव्यविधा, भाषा विधान और कल्पना-विहार तथा छंद शिल्प इन्होंने बिहारी से अपनाए हैं।

फुटकल कवित्त और सवैये के क्षेत्र में ये किसी कविविशेष से प्रभावित नहीं हैं। उनमें स्वानुभूतियाँ और विश्वास भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इनकी स्वकीय उद्भावनाएँ और अभिव्यंजन शैली भी अपनी है।

आचार्य भरत के ये पहले ऋणी हैं। और संस्कृत तथा हिंदी के सभी आचार्य उन्हीं को आधार मानकर आगे बढ़े।

संस्कृत प्रभाव—हास्यरस के प्रकरण में ये साहित्यदर्पण से प्रभावित हैं। दर्पण में हास्य की उत्पत्ति पर कहा गया है :

'विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।'

रसलीन कहते हैं :

—सा० द०, ३।२१५।

'विकृत वचन क्रम संग ते नित उपजत है आइ।'

—र० प्र०, दो १०५७।

आगे चलकर विश्वनाथ ने हास को तीन कोटियों में रखा है : ज्येष्ठहास, मध्यम हास और नीच हास और फिर इन तीनों में प्रत्येक के दो-दो प्रकार बताए हैं :

ज्येष्ठाना स्मितहसिते मध्यमानां विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः॥
ईषद्विकासिनयनं स्मित स्यात्स्पन्दिताधरम्।
किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः॥

मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरः कम्पनावहसितम् ।
अपहसित सास्राक्षं विक्षिप्तांग भवत्यतिहसितम् ॥

--सा० द०, ३।२१७–२१६

रसलीन का कहना है :

दसन खुलत नहि मंद मैं धुनि मद्धिम मैं होइ ।
बहु हँसिबौ अतिहास मै, हास तीन विधि जोइ ॥

—र० प्र०, दो० १०६०

रसलीन ने रसों का क्रम भी दर्पणकार के अनुसार ही रखा है।

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। वे पूर्वाचार्यों के अनुसार ही कहते हैं :

काव्यमते ये नव रसहु बरनत सुमति बिसेषि ।
नाटक मति रस आठ हैं बिना सांत अवरेखि ॥

—र० प्र०, दो० ५८

इसे धनंजय ने इस प्रकार कहा है :

'शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।'

—दशरूपक

रुद्रट भट्ट ने कहा है :

शृंगार हास्य करुणा रौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च काव्ये नवरसाः स्मृताः ॥

—शृं० ति० १।९

रुद्रभट्ट ने मुग्धा के चार भेद कहे हैं : (१) नववधू, (२) नवयौवना, (३) नवानंगरहस्या और (४) लज्जाप्रायरतिः

मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूपिता ।
नवानङ्गरहस्या च लज्जाप्रायरतिस्तथा ॥

– शृं० ति०, १।४८

---

१. शृंगारहास्य करुणा रौद्र वीर भयानकाः ।
बीभत्सोद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः ॥

—सा० द० ३।१८२

रसलीन ने अंकुरित यौवना, शैशवयौवना, नवयौवना, नवलअनंगा और नवलवधू ये चार मुग्धा के भेद किए हैं। यह शैशवयौवना वयःसंधि की स्थितिवती मुग्धा है। उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

तिय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि द्योस के दोउ भाव दरसात॥

—र० प्र० । ८७

बिहारी ने कहा है :

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग॥

इसी शैशव और यौवन शब्दों के योग से रसलीन को एक नए मुग्धा भेद की बात सूझी और उन्होंने उसका नाम 'शैशवयौवना' रखा।

मानमोचन के छह उपाय रसलीन ने शृंगारतिलक से लिए हैं। वहाँ कहा गया है :

साम दानं च भेदः स्यादुपेक्षा प्रणतिस्तथा।
तथा प्रसङ्गविभ्रंशो दण्डः शृंगारहा न तु॥
तस्याः प्रसादने सद्भिरुपायाः षट् प्रकीर्तिताः।

—शृ० ति० १६२, १६३।

हास के पात्रानुसार तीन भेद रसलीन ने इन्हीं के अनुसार किए हैं। इनका कथन है :

विकृताङ्गवचश्चेष्टा वेषेभ्यो जायते रसः।
हास्योऽय हासमूलत्वात्पात्रत्रयगतो यथा॥

—शृ० ति०, ३।१

इसी प्रकार इनके लक्षण भी तदनुसारी है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

अष्टनायिका का लक्षण सोदाहरण नाट्यशास्त्र में है जिसे परवर्ती कवियों ने अपनाया है, हिंदी के आचार्यों ने भी।

रसलीन की मौलिक देन मुग्धा नायिका का 'शैशवयौवना' नामक प्रकार रसलीन की अपनी सूझ का परिणाम है। इसी प्रकार उपपति के तीन

भेद उनकी स्वकीयत देन है। रसमंजरीकार ने उसके वही पुराने भेद गिना दिए है : उपपतिरतिचतुर्घा। अनुकूल दक्षिण धृष्टशठ भेदात्।'

उपपति तीनि प्रकार पुनि गूढ़ मूढ़ आरूढ़।
तिनको यहि बिधि आनि कै बरनत है मतिगूढ़ ॥—रस०प्र० ५३७

परकीया के दो भेदों के दो प्रभेद इनके दिए हुए हैं :

ऊढ़ अनूठा दुहुन मैं ये है भेद बिचारि।
पहिले उद्बुद्धता बहुरि उद्बोधिता निहारि ॥—वही, २४३

असाध्या परकीया के असाध्या और सुखसाध्या भेदों में भी इनकी मौलिक देन स्पष्ट है।

हिंदी के आचार्यों के लिये ब्रजभाषा गद्यरूप में उनके संमुख खड़ी नहीं हो सकी थी अतः स्वतंत्र चिंतक आचार्य अपने स्वतंत्र चिंतित विचारों को पद्यबद्ध रूप में प्रकट कर दिया करते थे। रसलीन को भी यही करना पड़ा। रसलीन प्राचीन साहित्यशास्त्र से पूर्णतया परिचित थे और स्वकालीन हिंदी के आचार्यों के विचार तो उनके सामने ही थे अतः वे उनसे भी लाभान्वित हुए। वे कहते हैं कि प्राचीनों ने अन्यसुरतिदुःखिता और गर्विता को नायिका भेद में पृथक् स्थान नहीं दिया, यह तो इधर आकर नवीनों ने किया है। फिर वे कहते है कि अन्यसुरतिदुःखिता नामक भेद 'खंडिता' से और 'गर्विता' भेद स्वाधीनपतिका से निकला है। यही स्थिति मानिनी की है, इसकी भी पृथक् कल्पना हुई है। यही कारण है कि इन तीनों को अष्टनायिकाओं में स्थान नहीं मिला। गर्विता के भी इन्होंने अनेक भेद किए हैं :
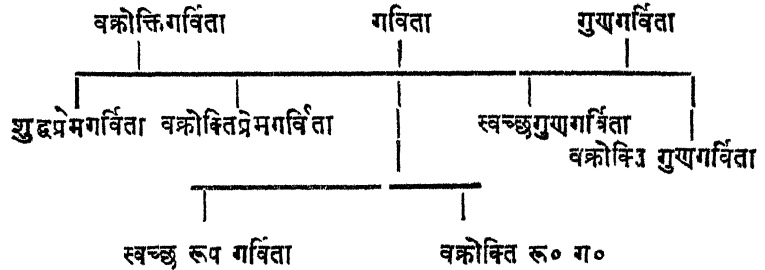
अन्य सुरतिदुःखिता—वह खंडिता है जिसके दो भेद हो जाते हैं, एक वह जो पति के शरीर पर रतिचिह्न देखकर दुःखी होती है; दूसरी वह है जो पति

की प्रेमिका परस्त्री की देह पर रतिचिह्न देखकर दुःखी होती है। इधर भी इस कवि की दृष्टि गई है।

निज पति रति को चिह्न जो लखै और तिय अंग।
अन्य सुरति दुखिता सोई जेहि दुख बढ़ै अनंग ॥—र०प्र०३३३

रसलीन ने भारत में बसनेवाली विभिन्न जातियों और प्रांतों की नायिकाओं को लाकर उनकी संख्या में वृद्धि करने का भोंडा प्रयास कहीं नहीं किया है जैसा कि देव, दास आदि ने किया है। इन्होंने सुरुचिपूर्ण शालीन अपने आचार्यत्व को सँभालते हुए अपने कविरूप की पूर्णतया सुरक्षा की है। यहाँ काव्य या काव्यशास्त्र को उनके गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए उनके साथ कहीं भी खिलवाड़ करने की चेष्टा नहीं की गई है।

हिंदी के कवि-आचार्यों में रसलीन का स्थान

रीतिकाल के आगमन के पूर्व हिंदी काव्य साहित्य प्रभूत मात्रा में सृष्ट हो चुका था और यह सब संस्कृत काव्यशास्त्र के निर्देशन में चलता रहा। केवल हिंदीज्ञ उससे निकट का परिचय प्राप्त नहीं कर सकता था। हिंदी में शास्त्राभाव संस्कृत के प्रकांड पंडित और अनुभवपक्व महाकवि केशवदास को सर्वप्रथम खटका। इसका एक कारण यह था कि वे केवल दरबारी कवि ही नहीं, अपितु राजगुरु और शिक्षक भी थे। अतः शिशिक्षु जनों की कठिनाई का बोध उन्हें ही सर्वप्रथम हुआ। उन्होंने काव्यशास्त्र का सर्वांगीण निरूपण किया और पूर्ण सामर्थ्य के साथ किया। एक लंबी अवधि तक हिंदी के कवि इन्हीं के ग्रंथों का अध्ययन करके अपने को अधिकारी कवि मानते रहे। बाद में अन्य राजाओं और जमींदारों ने अपने आश्रित कवियों द्वारा काव्यशास्त्र लिखाने में अपने को विशेष गौरवान्वित समझा और उसी का परिणाम है कि हिंदी साहित्य में लक्षण ग्रंथों का इतना बाहुल्य हुआ कि स्वच्छंद सृष्ट काव्य परिमाण में उससे बहुत छोटा हो गया। स्वच्छंद कवियों में इने गिने ही मिलेंगे जिन्होंने रीति ग्रंथ की सर्जना में हाथ डाला है और उसमें रसलीन मूर्धन्य हैं। ये कविरूप में किसी को दरबार के आश्रित नहीं थे और कविता को इन्होंने अपनी जीविका का आधार कर्म नहीं बनाया तथापि इन्होंने जो रीति ग्रंथों का निर्माण किया उससे स्पष्ट है कि वे अपने को उसका अधिकारी समझते थे। उन्होंने किसी आश्रयदाता की आज्ञा से यह ग्रंथ नहीं रचा था। अपने स्वयंप्रभ ज्ञान से प्रेरणा पा आचार्यासनासीन

होकर अपने शास्त्रज्ञान और लोक ज्ञान के उज्वल प्रकाश में इसका निर्माण अपने घर पर किया था। केशवदास जैसा अधिकारी विद्वान् कहता है :

जिन कविकेशवदास सों कीन्हों धर्म सनेहु
सब सुख दै करि यों कह्यौ रसिकप्रिया करि देहु ॥

र० प्रि० प्र० १/१०

हिंदी के आद्याचार्य केशवदास ने 'मुग्धा' के चार भेद किए हैं :

नवलबधू नवयौवना नवलअनंगा नाम।
लज्जा लिए जु रति करै लज्जाप्राइ सुधाम ॥

—र० प्र० १।१७

महाकवि देव ने मुग्धा के चार भेद—अज्ञात यौवना, ज्ञातयौवना - फिर ज्ञात यौवना, वयः संधि, नवल अनंगा, और सलज्ज रति, विश्रब्ध नवोढ़ा भेद किए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पिहानीवाले खान अकबर अली के पुस्तकालय से इन्हें रस सागर तरंग आदि ग्रंथ मिल गए थे। इसलिये इस कवि पर देव का प्रभाव रीतिक्षेत्र में सर्वाधिक है, काव्यविधा और शैली की बात ही दूसरी है।

परकीया के दो भेद—उद्बुद्धा और उद्बोधिता— जो रसलीन ने किए हैं, वे भिखारीदास से गृहीत हैं, दासजी कहते हैं :

मिलनपेच आपुहि करै उद्बुद्धा है सोइ।
जो नायक पेचनि मिलै उद्बोधिता सो होइ ॥

—र० सा०, ७५

रसलीन कहते हैं—

मिलन पेच अपने करै उद्बुद्धा तिहि जानि।
जो नायक पेचनि मिलै उद्बोधिता बखानि ॥

—र० प्र०, २४३

अन्य संभोगदुःखिता के पतिप्रीता परकीया चिह्नदर्शन को लेकर जो भेद रसलीन ने किए हैं, वे भी भिखारीदास में मौजूद हैं। बल्कि दासजी ने पति के हाथों 'बख्शी' हुई 'सारी' परकीया को पहने देखकर भी अन्यसंभोग-दु:खिता स्वकीया को देखा है। दोनों रूप देखें;

अली भले तन सुख लह्यौ मेरे हर्ष बिसेषि।
मनभावन की यह बिमल बकसी सारी देखि॥
रोम रोम प्रति सौतितन लखि लखि पतिरति भाइ।
तिय हिय रिसि दावा बढै दावा ज्यों तृन पाइ॥

—र० सा०, ११५, ११६

यही मतिराम आदि ने भी किया है।

नायिका भेद के क्षेत्र में जिस पैमाने पर कार्य आचार्य कवि श्रीपति और भिखारीदास ने किया है, वह व्यापकता यद्यपि रसलीन में नहीं है तथापि सामान्य सहृदय पाठक की उपयोगिता की दृष्टि से मुख्य बातों को चुनकर दोहों के माध्यम से जो काव्यकौशल एव विस्तार रसलीन ने दिखाया है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। भाषा और विषय की समाहार शक्ति रसलीन में सर्वोपरि है। रसलीन ने केवल रसों का और उनमें भी शृंगार का सविस्तार अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसी सिलसिले मे इन्होंने जो शिखनख वर्णन 'अंगदर्पण' नाम से किया वह शुद्ध कविवर केशवदास ने शिखनख और महाकवि देव के सुखसागरतरंग के तृतीय अध्याय में नखशिख नाम से प्रस्तुत वर्णन से प्रभावित है। ऋतुवर्णन परंपरापोषण की दृष्टि से नही जैसा कि देव के उपर्युक्त ग्रंथ में है अपितु रसलीन का ऋतुवर्णन सर्वाधिक हृद्य हुआ है। कतिपय छंद उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। देखें—

कहूँ लावति बिकसत कुसुम कहूँ डोलावति बाइ।
कहूँ बिछावति चाँदनी मधुरिपु दासी आइ॥
सरबर माहि अन्हाइ अरु बाग बाग भरमाइ।
मंद मंद आवत पवन राजहंस के भाइ॥

—बसंत, ६७३

सुमन सुगंधन सों सनी मद मंद चलि आइ।
प्रौढा लौं मन को हरति हिय लगि बरषा बाइ॥
झूलि झूलि तिय सिखति हैं गगन चढ़न की रीति।
आजु कालिह महँ आइहैं सुर नारिन को जीति॥

—वर्षा, ६८४, ६८६

चंद्र छत्र धरि सीस पै लहि अनंग उपदेस।
कमल अस्त्र गहि जीति जग कीन्हों सरद नरेस ॥
—शरद्, ५८७

अवयवों के ग्रहण में रसलीन ने कितनी अभिनव सूझ का परिचय दिया है, जिससे चित्त चमत्कृत हो उठता है। इनके कितने ही अप्रस्तुत वर्ण्य के समान ही चित्ताकर्षक हैं। कतिपय की बानगी लें :

ऐसे कामिनि लाज ते पिय पै अटकति जाइ।
जैसे सरिता को सलिल पवन सामुहे पाइ ॥
र० प्र० ३१।

पिय तन नख लखि जो करत तिय बेदन अबिदात।
कछू खुलति कछु नहि खुलति तू तुरकी सी बात ॥ ४०६

रसलीन का मूल्यांकन

सर्वाङ्ग निरूपक आचार्य न होते हुए भी रसलीन ने जिस अंग को अपनाया है उसमें पग पग पर उनकी मौलिक सूझ और प्रतिभा की छाप ने इस शास्त्रीय विषय को भी विलोभनीय और उनके स्वतंत्र चिंतन ने परंपरा-भुक्त विषय को भी नया रूप दे दिया है।

प्रायः यह परिपाटी चल चुकी है कि रीतिकाल के कवियों की आलोचना करते समय समीक्षक उनके अन्य पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियों से उनकी तुलना करते हैं। तुलना करने से मूल्यांकन को जहाँ बल मिलता है वहीं विज्ञान की भाँति साहित्य की स्थिति न होने के कारण न्याय सुचारु रूप से नहीं हो पाता है। इसलिये तुलनात्मक समीक्षा से बचने का यत्न गंभीर लोग करते हैं। आचार्य शुक्ल ने भी इसी कारण से तुलनात्मक समीक्षा को हेय समझा है। यहाँ रसलीन की उपलब्धियों को प्रकाशित करने के लिये किसी अन्य पूर्ववर्ती कवि के काव्य की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करना मेरा ध्येय नहीं है।

रीति काल के केशव, देव, मतिराम, भिखारी दास आदि सभी पूर्ववर्ती और समसामयिक कवियों के काव्य की अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं। अनेक स्वल्प ख्यात पूर्ववर्ती कवि भी अपने गुण धर्म के कारण शतियों के उपरांत भी आज जीवित हैं और रसलीन की महिमा की मर्यादा की सीमा को लांघ कर ऐसा आख्यान भी नहीं करना चाहता कि उनके प्रति पक्षपात हो जाय;

क्योंकि हिंदी साहित्य में जो कुछ भी सुंदर और मंगलमय है वह सब की हमारी संपदा है।

कोई भी कवि ऐसा नहीं होता जो अपनी रचना के लिये कहीं से प्रेरणा न ग्रहण करता हो। रसलीन मूलतः दोहाकार हैं इसलिये दोहा लिखने की प्रेरणा अपने गुण के कारण बिहारी से उन्हे मिलती दीखती है। प्रेरणा जब स्वस्थ स्पर्धा का रूप ले लेती है तो प्रेरणादाता से तो होड़ लेकर आगे बढ़ने के लिये अपने पंख पसारती ही है उस ढग के और जो भी कार्य होते हैं उन्हे भलीभाँति देख परख कर सब को पीछे छोड़ जाने की कामना से डग बढाती है। रीतिकालीन श्रृंगार के दोहाकारों में मतिराम और भिखारी ही ऐसे कवि है जिनको रसलीन ने सामने रखा जा सकता है। दोहा तो परिधान मात्र है, आत्मा भावानुभूति है। वह अन्य परिधानों और रूप रगों में भी उस युग में प्रकट हुई और उसमें सर्वाधिक आकर्षण देव का था इसलिये देव के काव्य को भी कवि ने साधा था। प्ररणा और आराधना में अतर है। प्रेरणा शक्ति देती है और आराधना समर्पण। इस दृष्टि से ये पूर्ववर्ती कवि रसलीन के प्रेरक तो हैं, आराध्य नहीं।

जो जितना ही महान् कवि होता है वह उतने ही विस्तृत काव्य सिंधु में गोते लगाता है और रत्न की उपलब्धि करता है। उस रत्न पर जब खराद लगा वह उसे उपस्थित करता है ता ससार उसे उस कवि का मानता है न कि रत्नाकर का। तुलसीदास इसके जीवत प्रमाण है। ऐसी ही कुछ स्थिति रसलीन की भी है। उसने व्यापक काव्य दोहन किया है और उपलब्धि को अनुभूति के निकष पर परख कल्पना, लोकदर्शन और अध्ययन के आधार पर मौलिकता प्रदान की है। उस युग के जीवन की सीमा लघु धरती पर विचरण करती थी इस लिये प्रायः एक ही प्रकार के दृश्य कवियों ने चुने हैं किंतु दृष्टि भेद की स्पष्ट स्थापना रसलीन की नवोन्मेषी प्रतिमा का आख्यान करती है।

जहाँ तक साहित्य शास्त्र का प्रश्न है रसलीन ने भरत, भानुदत्त मिश्र, केशव जैसे आचार्यों के मत का उल्लेख किया है और दूसरे आचार्यों के मत की भी बात की है तथा दूसरे आचार्य रुद्र भट्ट, विश्वनाथ आदि आचार्यों के मतों पर यथास्थान अपनी मान्यताएँ तार्किक पद्धति पर उपस्थित की हैं। ज्ञान परीक्षण का आधार तर्क है। औरों ने भी ऐसा किया है किंतु अपने तर्कों के प्रति जो आस्था रसलीन में दीखती है वह उसके तेज का आख्यान करती

है। इतना ही नहीं उसने कुछ भेदों के उपभेद भी प्रस्तुत किए हैं। वे उसकी वैज्ञानिक तत्वविवेचनी शक्ति का परिचय देते हैं। कुछ लोग बिना देखे सुने समझे रसलीन पर यह आरोप लगा देते हैं कि उसने नायिका भेद का अनाप-शनाप विस्तार किया है किंतु जो रसप्रबोध का अध्ययन कर चुके है वे जानते हैं कि उसका विस्तार न केवल सार्थक है अपितु वैज्ञानिक भी है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शन और विश्लेषण और तद्जन्य उपलब्धि विज्ञान का प्राण है। साहित्य-शास्त्र विज्ञान के अधिक निकट है। इसलिये रसलीन का यह कृतित्व सर्वथा महत्वपूर्ण है और इस क्षेत्र में ऐसी उपलब्धि है जो उसे उत्तम आचार्य की कोटि में प्रतिष्ठित करती है तथा उसे वही स्थान प्रदान करती है जो भिखारी, चितामणि, देव, मतिराम और पद्माकर का है। इसका विस्तृत विवेचन पहले ही किया जा चुका है।

जहाँ तक काव्य का प्रश्न है, कुछ भले ही ऐसे काव्य को कविता न मानें और अंगदर्पण आदि की उपेक्षा कर लें किंतु अंगों के सौंदर्य को प्रकट करनेवाले अंगदर्पण श्रेष्ठ शृंगारिक ग्रंथ है। काम के प्रति, जो सबका जनक है, कोई विदेह भले ही अनासक्त हो ले किंतु कोई देही अपनी उत्पत्ति के मूल धर्म से विरत नहीं हो सकता। इसलिये काम के प्रति उतना ही आकर्षण यौवन का होता है, जितना आराध्य के प्रति भक्त का। यौवन के धर्म की अनुभूति प्रायः सबको होती है इसलिये इन भावों को आत्मीय बनाने में किसी को संकोच नहीं होता। हाँ, शिष्टाचार जो युग और समय के अनुसार परिवर्तनशील है इसे एकांत सुस्वादु बना दे लेकिन जब तक जीवन है यौवन रहेगा ही और यौवन रहेगा तो शृंगार होगा ही। इसलिये रति का भाव, जो रसराज की आत्मा है, सनातन महत्व का है। यह सौंदर्य वस्तु, प्रकृति और जीव सब मे होता है। नश्वरता में ही अनंत शाश्वतता का निवास है। इसीलिये प्रकृतिप्रेमी निर्गुण का नहीं सगुण का उपासक होता है क्योंकि इसमें रूप होता है। जहाँ रूप होगा वहाँ आकार प्रकार और रंग होगा और जहां रंग होगा वहां रस होगा ही।

अंगदर्पण और रसप्रबोध के दृष्टांत दोहे और स्फुट रचनाओं में समासोक्ति, सौंदर्य, निदर्शन, शब्द-भाव चित्र विधान, ध्वन्यात्मकता संगीतात्मकता और साधारणीकरण की सहज क्षमता है इसलिये ये रचनाएँ स्थायी महत्व की हैं।

इन सब तथ्यों के दर्शन के लिये यह आवश्यक है कि उस युग के कुछ श्रेष्ठ रचनाकारों की रचनाओं के प्रकाश में रसलीन की उसी विषय की रचना का अवलोकन कर लिया जाय।

परकीया अभिसारिका

बिहारी

उठि उठि ठक एतौ कहा पावस के अभिसार।
जान परैगी देखि यौं दामिनि घन अँधियार॥
गोप अथाइनि तें उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसारिके भली सँझोखे सैल॥
छप्यो छपाकर छिति छयौ तम ससिहर न सँभारि।
हँसति हँसति चल ससिमुखी मुख तें आँचरि टारि॥[1]

मतिराम

स्याम बसन में स्याम निसि दुरी न तिय की देह।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि भौंर भीर पिय गेह॥
मलिन करी छबि जोन्ह की तन छबि सों बलि जाउँ।
क्यौं जैहौं पिय पै सखी लखि जैहै सब गाउँ॥
ग्रीषम ऋतु की दुपहरी चली बाल बन कुंज।
अंग लपटि तीछन लुऐं मलय पवन के पुंज॥[2]

देव

घटा घहराति बिज्जु छटा छहराति
आधी राति हहराति कोटि कोटि रबि रंज लों।
हूकत उलूक बन कूकत फिरत फेरु
भूकत जु भैरो भूत गावे अलि कुंज लों।
झिल्ली मुख मूँदि तहाँ बीछीगन गूँदि
बिष ब्यालनि को रूँदि के मृनालनि के पुंज लों।

---

१. बिहारी सतसई, लालचंद्रिका टीका, पृ० १०८-९। दोहा स० १५६-५८

२. मतिराम, रसराज १९८, २००, २०२

जाई वृषभान की कन्हाई के सनेह बस
आई उठि ऐसे मैं अकेली केलि कुंज लों ॥[1]

भिखारीदास

जिहि तनु दियो जु नहि दुरे निसि यहि नीलहि चीर ।
तिहि बिधि तोहि अभिसारिके दियो भँवर को भीर ॥
भलें चल्यो मिलि जोन्ह रँग पट भूषन द्युति अंग ।
मुख न उघारै बिधु बदनि जैहै उघरि प्रसंग ॥
कारी रजनि उज्यारहूँ तन दुति बढ़ै अपार ।
बिधि करि दियो निहारु अब दिनहि बन्यो अभिसार ॥[2]

रसलीन

यो ऐंचति पग मग धरति उरभो उरुग अधीर ।
ज्यौ मदमत्त मतंग छुटि खेंचे जात जंजीर ॥
अंग छपावति सुरति सों चली जाति जो नारि ।
खोलत बिज्जु छटा चितै ढाँपति घटा निहारि ॥
सेत बसन जुति जोन्ह मैं यौ तिय दुति दरसाति ।
मनौं चली छीरधिसुता छीर सिंधु मैं जाति ॥[3]

ये उदाहरण अपनी बात स्वय कह देते है। इनका चयन किसी खास दृष्टि से नहीं किया गया है अपितु एक सामान्य स्थल सभी में से उठा लिया गया है। ऐसा ही प्राय. सभी स्थलों पर मिलेगा।

इसका आशय यह नहीं है कि रसलीन ही इस युग के सबसे बड़े कवि और आचार्य हैं। सभी अच्छे आचार्य हैं और सभी अच्छे कवि भी, पर रसलीन का आचार्यत्व और कवित्व दोनों सम कोटि का है। अन्यत्र यह बात नहीं मिलेगी। इसी कारण प्रायः इनके परवर्ती कवि इनकी ज्ञान गरिमा और भाव भंगिमा से प्रभावित दीखेंगे।

---

१. देव, भाव विलास, स. १८९२, भारत जीवन प्रेस, पृ० ९७-९८
२. भिखारीदास, रस सारांश, ना० प्र० स० पृष्ठ २१
३. रसलीन, रस प्रबोध ३९३, ३९५, ३९७

रसलीन के शब्दों में ही यदि कहा जाय तो उसके कृतित्व को इस रूप में आँका जा सकता है :—

बाँचि आदि ते अंत लौं यहि समझै जौ कोइ।
तेही औरन्हि ग्रंथ में फेरि चाह नहिं होइ ।।[1]

या

उनका काव्य

गुन सुवरन नग अर्थ लहि हिय धरियो ज्यों माल ।[2]

के समान है।

यह कवि की गर्वोक्ति नहीं, उसकी सहज आस्था है जो सर्वथा सत्य है।

हिंदी साहित्य में रीति काल का जा महत्व है, रीति साहित्य में जो महत्व नायिका का है और नायिका के लिये जो महत्व शृंगार का है वही महत्व रीतिकालीन शास्त्रकाव्य में रसलीन का है।

———

१. पृष्ठ ८,

२ पृष्ठ २८६।

ऋणनिर्देश

रसलीन का मान 'अमी हलाहल मद भरे' वाले एक दोहे के कारण वैसे ही प्रतिष्ठित था जैसा रत्नों के क्षेत्र में कोहनूर का है। सभी रसलीन को जानते थे और मानते भी थे और इतिहास ग्रंथों मे इनकी चर्चा भी की जाती रही है, पर इनकी समस्त कृतियाँ एक साथ कभी सामने नहीं आई।

समय समय पर इनके कृतित्व की शिवसिंह सरोज से लेकर हिंदी-साहित्य के बृहत् इतिहास तक में चर्चा की गई है। सभा ने अपनी खोज रिपोर्टों में भी इनके संबंध मे उपलब्ध विवरण प्रस्तुत किए हैं। इस कवि की ओर गंभीर रूप से ध्यान नागरी प्रचारिणी सभा का तब गया जब स्वर्गीय राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद जी की प्रेरणा से सौ ग्रंथावलियों के प्रकाशन की योजना बनाई जाने लगी। एक शत कवियों मे रसलीन का नाम स्वतः आ गया। इसी बीच श्री संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ में रसलीन का विस्तृत जीवन-वृत्त और परिचय प्रकाशित कर भूतपूर्व न्यायाधीश श्री गोपाल चंद्र सिंह ने रसलीन की ओर हिंदी जगत् का ध्यान आकृष्ट किया और उन्हें ही इस ग्रंथावली के संपादन का भार सौंपा गया। उनके पास रसलीन के कुछ हस्तलेख भी हैं। यदि वे यह कार्य करते तो संभवतः और अच्छा करते और हिंदी का अधिक उपकार होता किंतु कार्यव्यस्तता के कारण बहुत समय व्यतीत हो जाने पर भी यह कार्य संभवतः वह पूरा न कर सके।

बिहारी सतसई (लालचंद्रिका से युक्त) के संपादन का कार्य सभा ने मुझे सौंपा। उसे प्रस्तुत करते समय विशेषकर 'अमी हलाहल मद भरे' वाला दोहा बिहारी का है या नहीं इनकी जाँच पड़ताल करते समय कृपाराम और रसलीन ने मेरे मानस को अपनी ओर आकृष्ट किया। कृपाराम की हिततरंगिणी विश्व भारती, नागपुर से प्रकाशित हुई और रसलीन ग्रंथावली, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से सात आठ वर्ष पहले प्रकाशित होने की बात स्थिर हुई। राष्ट्र कुल शिक्षा एकक के निदेशक डॉ० वेणीशंकर झा उन दिनों लंदन में थे और रसलीन के हस्तलेख की फोटो कापी उन्होंने वहीं

मे मेरे लिये भिजवाई। डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने रज़ा लाइब्रेरी रामपुर से भारत सरकार के पुरातत्व विभाग की कृपा से हस्तलेख प्राप्त कराया। प्रोफेसर रामसुरेश त्रिपाठी, अध्यक्ष संस्कृत विभाग अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने अंग दर्पण की अपनी प्रति की प्रतिलिपि सहर्ष भेज दी। पुस्तक का छपना प्रारंभ हुआ, और सात-आठ वर्षों बाद आज रसलीन की २७०वीं वर्ष गाँठ पर प्रकाशित भी होने जा रही है। इसी बीच अलीगढ़ विश्वविद्यालय के डॉ० शैलेश जैदी बिलग्राम के मुसलमान कवियों का हिंदी साहित्य को योगदान' विषय पर शोधार्थ नागरीप्रचारिणी सभा में पधारे और इसी विषय पर उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि भी मिल गई है, मेरे संपर्क में आए। उन्होंने इस संबंध में जो जो सामग्री उन्हें मिली उसका मुझे बोध कराया और मेरी सामग्री को बराबर देखकर इस बात के लिये तकाजा करते रहे कि यह ग्रंथावली किसी तरह पूरी होनी चाहिए। इसी बीच सभा ने मुझसे यह आग्रह किया कि यह ग्रथावली सभा की परंपरा के अनुरूप है। इसलिये यह उसे प्रकाशनार्थ दे दी जाय। हिंदी प्रचारक पुस्तकालय के भागीदारों—श्री कृष्णचंद बेरी, श्री ओमप्रकाश बेरी ने इसकी अनुमति मुझे और सभा को सहर्ष दी। इस प्रसंग में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के डा० हुकुम चंद नय्यर एवं मौलवी शिवनाथप्रसाद ने पुस्तक आदि से मेरी बड़ी सहायता की। पं० करुणापति त्रिपाठी भी, जो स्वयं लिखने के मामले में मुझसे कम सुस्त नहीं हैं, इस कार्य को पूरा करने के लिये कोंचते रहे। पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' ने इस प्रसंग में मेरी बड़ी सहायता की है। पं० विश्वनाथ त्रिपाठी भी यथा आवश्यकता सहायता करते रहे हैं। श्री बैजनाथ वर्मा, जिन्होंने इसके आवरण की रचना की है, बराबर इस कार्य के लिये तकाजा करते रहे। इसकी पूर्णाहुति के समय डा० जैदी पुनः हाजिर हो गए और जो कुछ बन पड़ा मुझे योग देते रहे। चिरंजीव श्रीनाथ सिंह और डा० रत्नाकर पांडेय सकोच भरी उलाहनाओं के साथ इसे पूरा करने के लिये चोट करते रहे। इसीलिये इस व्यस्तता के बीच भी यह कार्य समय पर सपन्न हो सका।

रसलीन का प्रसंग आते ही स्वर्गीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की स्मृति जाग उठती है, जिन्होंने इसका उद्घाटन करने के लिये सहज भाव से अपनी स्वीकृति दी थी क्योंकि वे इस ग्रंथ का सही मूल्य जानते थे। केवल इस ग्रंथ

के लिये ही नहीं बल्कि इस देश के लिये भी दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्यता, ज्ञान और चरित्र का वह फ़रिश्ता सहज समाधि में सो गया।

महामहिम् राष्ट्रपति वराह वेंकट गिरि ने इस ग्रंथ के उद्घाटन करने की कृपा प्रदर्शित कर श्रेष्ठ सांस्कृतिक और साहित्यिक कृति को प्रकाश में लाने की कृपा की, उनका सभा पर ही नहीं, हिन्दी जगत् पर यह ऋण है।

इन सब के प्रति मैं हृदय से ऋणी हूँ और विश्वास है कि इनका योग ऐसे कार्यों में सदा मिलता रहेगा।

सुधाकर पांडेय

रसप्रबोध

गुलामनबी 'रसलीन'

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

मंगलाचरण

अलह नाम छबि देत यौं[1] ग्रंथन के सिर आइ।
ज्यों राजन के मुकुट तें[2] अति सोभा सरसाइ ॥ १ ॥

अलख अनादि[1] अनंत नित पावन[2] प्रभु करतार।
जग को[3] सिरजनहार अरु दाता सुखद अपार ॥ २ ॥

रम्यौ[1] सबनि[2] मैं अरु रह्यौ[3] न्यारो आपु[4] बनाइ।
याते चकित[5] भये सबै लह्यौ[6] न काहू जाइ ॥ ३ ॥

१—१. य (१), २. तै (२)।
२—१. अनाद (२), २. पावत (१), ३. की (२)।
३—१. रमो (२), २. सबन (२), ३. रहो (२), ४. आप (२), ५. थकित (२), ६. लहो (२)।

१—अलह=ईश्वर। छबि=कांति, प्रभा। सिर आइ=शीर्ष पर होकर, सिरनामे पर आकर। सोभा=(शोभा) दीप्ति, कांति। सरसाइ=वृद्धि को प्राप्त होती है।

२—अलख=(ईश्वर का एक विशेषण) अगोचर। अनादि=(ईश्वर का एक विशेषण) जिसका आदि न हो। अनंत=(ईश्वर का एक विशेषण) जिसका अन्त न हो। नित=सदा। करतार=सृष्टि करने वाला। सिरजनहार=रचने वाला, सृष्टिकर्त्ता। अपार=असीम। पावन=पवित्र।

३—रम्यौ=व्याप्त हुआ। न्यारो=अलग। लह्यौ=प्राप्त किया गया। गुन=(गुण) जाति-स्वभाव, धर्म, प्रकृति।

जब काहू नहिं लहि पर्‌यौ[1] कीन्हौं[2] कोटि विचार।
तब याही गुन ते[3] धर्‌यौ[4] अलह नाम संसार॥ ४॥

नबी की स्तुति

लहि न परत तेहि[1] गुन कह्यौ[2] बरनि[3] सकत है कौन।
याते नामुहि सुमिरि कै चित[4] गहि रहिए[4] मौन॥ ५॥
अति पवित्र[1] रसना करौ मेघन जल ते[2] धोइ।
तऊ नबी गुन कथन के जोग न कबहूँ होइ॥ ६॥
जिनके पावन ते[1] भई पावन भूमि बनाइ।
तिनको[2] सुमिरन जो करैं सो पावन ह्वै[3] जाइ॥ ७॥
नबी हुते[1] जग मूल पुनि[2] पीछे प्रकटे सोइ।
ज्यौं तरु उपजत[3] बीज तें[4] अंत[5] बीज[5] फिरि होइ॥ ८॥

४—१. परो (२), २. कीनौ (२), ३. तै (२), ४. धरो (२)।
५—१. तिहि (२), २. कहो (२), ३. बरन (२), ४...४. गहि रहिए चित (२)।
६—१. विचित्र (१), २. तै, (२)।
७—१. तै (२), २. तिनकी (१), ३. हो (२)।
८—(१) हुते (२), २. फिरि (२), ३. उपजै (२), ४. बीज तै (२), ५...५. बीज अनत (२)।

४—किन्हौं कोटि विचार=नाना प्रकार से विचार किया।

५—परत=(पड़ना) नियत किया जाना। बरनि=गुण कथन करना। सुमिरि=स्मरण करके, ध्यान करके। गहि=पकड़कर, धारण करके। मौन=मुनि भाव (न बोलने का भाव, चुप्पी)।

६—पवित्र=शुद्ध, निर्मल। मेघन जल ते धोइ=बादलों के जल से धोकर (वर्षा का जल अत्यंत पवित्र माना गया है।)। नबी=ईश्वर का दूत, पैगंबर।

७—पावन=पाने। पवित्र।

८—जगमूल=जगत के आदि कारण। प्रकटे=प्रकट हुए। सोइ=वही। अंत=नाश, मृत्यु, अंतकाल।

जाको गहि सुरलोक जग चल्यौ[1] नरक पथ छोरि[2] ।
ऐसी बाँधि नबी दई सत्य धर्म की डोरि[3] ॥ ६ ॥
सहस जीभ लहि सेस लौं सब जग बरनै[1] आइ ।
तऊ नबी की नेकऊ[2] किय[3] अस्तुति नहिं[3] जाइ ॥ १० ॥
तिन संतनि के पगन पै[1] धरौं सदा सिर नाइ ।
पुनि[2] तिनके हित कारियन देहु[3] असीस बनाइ ॥ ११ ॥

कवि कुल कथन

प्रगट हुसेनी[1] बासती[2] बंस जो[3] सकल जहान ।
तामैं[4] सैद अब्दुल[5] फरह आए मधि[6] हिंदुवान ॥ १२ ॥

६—१. चलौ (२), २. छोडि (१), ३. डोडि (२) ।
१०—१. वर्णइ (१), २. कैसेऊ (२), ३···३. करी न अस्तुति (२) ।
११—१. मै (२), २. पुन (२), ३. देउ (१) ।
१२—१. हुसैनी (२), २. बास्ती (१), ३. जु (२), ४. तहॉ (२), ५. अबुल (१), ६. मध्य (२) ।

६—सुरलोक=स्वर्ग, देवलोक । नरक=(नर्क) धर्म शास्त्रानुसार पापियो को अपने दुष्कर्म का फल भोगने के लिए मृत्यु के उपरांत यहाँ जाना पडता है, घोर यातना तथा कष्ट का स्थान । छोरि=छोड़कर । डोरि=रस्सी, सूत्र, लगन ।

१०—सेस=(शेष) पुराण के अनुसार सहस्र फनोंवाले सर्पराज जिनके फनों पर पृथ्वी अवस्थित है । नेकऊ=रचक, जरा भी । अस्तुति=(स्तुति) गुण-गान ।

११—पगन पर=चरणों पर । हितकारियन=भलाई करनेवाले । असीस=(आशिष) दुआ, अभ्युदय, कल्याण आदि के लिए कामना या प्रार्थना ।

१२—हुसेनी बासती=वासित नगर के हुसेन से सम्बद्ध । हुसेन मुहम्मद साहब के जामाता अली के द्वितीय पुत्र थे जो कर्बला-युद्ध मे मारे गये थे और शिया उन्हें अत्यंत श्रद्धेय मानते है ।

तिनके अबुल फरास सुत जग जानत यह बात।
पुनि सैयद अबुलू[1] फरह तिनके सुत अवदात ॥ १३ ॥
पुनि सैयद[1] सु हुसेन[2] सुत तिनके सबल सरूप।
तिनके सुत सैयद अली विदित भए जग भूप ॥ १४ ॥
सैयद[1] महमद प्रगट भे जिनके सुत[2]· बलवान·[2]।
बिलग्राम श्रीनगर मैं जिन[3]· कीन्हौं·[3] निज थान ॥ १५ ॥
तिनके सैयद[1] उमर भे[2] तिनसुत[3] सैद हुसेन।
तिनकै[4] सैद नसीरुद्दीन भे यह सब जानत ऐन ॥ १६ ॥
पुनि भे सैद हुसेन अरु पुनि सैयद सालार।
लूतुफूलाह[1] लाधा[2] भये तिनके बुद्धि[3] अपार ॥ १७ ॥
पुनि सैयद दारन[1] भए खुदादादि तिहि[2] नाम।
पुनि सैयद महमूद जो भए सिद्ध अभिराम ॥ १८ ॥
सैद खान[1] मुहमद[2] भए तिनके सुत जग आइ।
चारु[3] अबुल कालिम भए तिनके[4]· अति·[4] सुखदाइ ॥ १९ ॥

१३—१. अब्दुल (२)।
१४—१. सैद (२), २. हुसैन २.।
१५—१. सैद (२), २···२. अति बलिवान (२), ३···३. जिनकीनव (२)।
१६—१. सैद (२), २. भये (२), ३. तिन सुत (२), ४. तिनते (२)।
१७—१. लुतफुल्लाह (२), २. लुध्या (२), ३ विदित (२)।
१८—१. दावन (२), २. खोदाइद जेहि (१)।
१९—१. जान (२), २. महमद (२), ३. बहुरि (२), ४···४. तिन अत (२)।

१३—अवदात=निर्मल, गौर।
१५—थान=स्थान।
१६—ऐन=(ऐन)पूरा पूरा, बिलकुल।
१८—खुदादादि=स्वयंभू, ईश्वर, मालिक। सिद्ध=सिद्धिप्राप्त योगी या संत। अभिराम=सुखद।
१९—चारु=मनोहर।

सैद[1]" अबुल कासिम"[1] भये पुनि सैयद[2] सुर ग्यान।
तिनके सैद हमीर सुत जानत सकल जहान॥ २०॥
पुनि सैयद बाकर भये तिनके तनुज प्रसिद्धि[1]।
सब लोगन की[2] सिद्धता जिनकी प्रगटी रिद्धि[3]॥ २१॥
भयौ गुलाम नबी प्रगट तिनको सुत जग आइ।
नाम करो 'रसलीन' जिन कविताई मैं जाइ॥ २२॥

—००—

२०—१...१ सैयद अबुल कादिर (२), २. तबीब (२)।
२१—१. प्रसिद्ध (२), २. मै (२), ३. सिद्ध (२)।

२०—सुर ग्यान=संगीत का ज्ञान। सकल=समस्त।
२१—तनुज=पुत्र। रिद्धि=ऋद्धि, उत्कर्ष, गौरव।

रसप्रबोध

ग्रंथ-परिचय

दोहा मै यहि[1] ग्रंथ को कीन्हौं[2] तेहि[3] रसलीन।
अपने मन की उक्ति सो रचि रचि जुक्ति[4] नवीन ॥ २३ ॥

नवहूँ रस को जब भयो यामै बोधु[1] बनाइ।
रसप्रबोध या ग्रंथ को नाम धर्‌यौ तब ल्याइ ॥ २४ ॥

सत्रह सै अट्ठानबे[1] मधु सुदि छठ[2] बुधवार।
बिलगराम मैं आइ[3] कै भयौ[4] ग्रंथ अवतार ॥ २५ ॥

बाँचि आदि ते अंत लौ यहि[1] समझै जौ[2] कोई।
तेहि[3] औरनहि[4] ग्रंथ मैं[5] फेरि चाह नहिं होइ ॥ २६ ॥

कविजन सौं[1] रसलीन यह बिनती करत पुकारि।
भूलि निहारि बिचारि कै दीजै[2]... बरन सुधारि...[2] ॥ २७ ॥

२३—१. यह (२, ३), कीनो (२), कीन्हो (३), ३. तिहि (३), ४. जुगुति (३)।

२४—१. बोध (२, ३)।

२५—१. अठानबे (२) अड्ठानबे (३), २. छठि (१), ३. आय (३), ४. भयो (२), भये (३)।

२६—१. यह (२, ३), २. जो (१), ३. ताहि (२, ३), ४. और रस (२, ३), ५. की (२, ३)।

२७—१. सो (३), २ ··२. दीजो ताहि सँवारि (२, ३)।

२३—उक्ति=कथन, वचन। जुक्ति=तर्क।

२४—बोधु=ज्ञान, जानकारी। ल्याइ=लाकर।

२५—मधु=चैत्र मास। सुदि = शुक्ल पक्ष। अवतार = जन्म।

२६—आदि ते अंत=शुरू से आखिर तक।

२७—बिनती=निवेदन। पुकारि=गहरी माँग करके, विशेष आग्रहपूर्वक। निहारि=देखकर। बरन=(वर्ण) रूप। सुधारि = संशोधन कर दें।

रस-वर्णन

बरनि[1] मंगलाचरण अरु कविकुल को अब आनि।
रस कौं[2] बरनन करत हौं ग्रंथ मूल जिय जानि ॥ २८ ॥

रस-लच्छण

स्रवन सुनत रस सब्द को ग्रंथनि[1] देख्यौ जाइ[2]।
रस लच्छन तिनके मते समुझि परयौ यह आइ[3] ॥ २९ ॥

जब विभाव अनुभाव[1] अरु बिबिचारी[2] ते[2] आनि।
परिपूरन थाई[3] जहाँ ऊपजै सब[4] रस जानि ॥ ३० ॥

रस-रूप

जो धाये[1] रस बीज विधि मानुस[2] चित छिति माहिं[3]।
ताके[4] अंकुर जो कछू सो थाई कहि जाहिं[5] ॥ ३१ ॥

२८—१. बरन (२, ३), २. को (१, ३)।
२९—१. ग्रथन (२, ३), २. जाय (२, ३), ३. आय (२, ३)।
३०—१. अनभाव (१), २. व्यभिचारी मिलि (३), ३. व्यापी (३), ४. सो (२, ३)।
३१—१. थायी (२, ३), २. मानस (३), ३. माह (१, ३), ४. ताको (३), ५. वाह (३) वाहि (२) जाह (१)।

२८—बरनि=वर्णन कर। कविकुल=कविवंश। आनि=गौरव, मर्यादा।
२९—स्रवन=श्रवण, कान। लच्छन=लक्षण, गुण-धर्म।
३०—विभाव=भाव के तीन अंगों मे से एक; वह अवस्था जो मन मे किसी भाव को उत्पन्न या उद्दीप्त करे। अनुभाव=मनोगत भाव की सूचक बाह्य क्रियाएँ। बिबिचारी=(व्यभिचारी) संचारी भाव, एक प्रकार के भाव जो स्थायी न रह कर सभी रसों मे सहायक रूप मे संचरण करते हैं। थाई=(स्थायी) भाव का एक प्रकार जो मन मे बना रहता है और परिपाक होने पर रसावस्था में परिणित हो जाता है।
३१—धाये=(ध्याना) स्मरण किया, धारण किया। विधि=शास्त्र सम्मत व्यवस्था। छिति=पृथिवी। अंकुर=नवोद्भिज, अँखुआ।

अवसर[1] सम उपजावने सरसावत[2] जल रूप।
आलंबन[3] उद्दीप[4·] सो जान[·4] विभाव अरूप[5] ॥ ३२ ॥

अनुभावहु तरु प्रकट करि[1] जानि लेहु यह बात।
बिबिचारी[2] है फूल सौं[3] छिन[4·] छिन[·4] फूलत जात ॥३३॥

तिन[1] संजोग मकरन्द लौं रस उपजत है आनि।
रसिक मधुप कवि चित्र करि ताहि करै पहिचानि ॥ ३४ ॥

सर्वप्रथम भाव वर्णन का कारण

भावहि ते रस होत है समुझि लेहु[1] मन माहिं।
याते पहले भाव कवि[·2] बरनत है ठहराहि[·2] ॥ ३५ ॥

भाव-लक्षण

जो रस को अनकूल[1] ह्वै बदलै[2] सहज सुभाव।
बिन बल[3] ताको भाव कहि भाषत है कविराव ॥ ३६ ॥

३२—१. औसर (१), २. सरसावन (१), ३. अलिवन (२, ३), ४···४. उद्दीपन हियो जन, (३), ५. अनरूप (२, ३)।

३३—१. कर (१), २. व्यभिचारी (२, ३), ३. सो (१) ४···४ छिनि छिनि (३)।

३४—१. तिनि (२, ३)।

३५—१. लेहि (२, ३), (२···२) सब बरनत सुकवि सराहि (२, ३)।

३६—१. अनुकूल (२, ३), २. बदल (३), ३. बसि (२, ३)।

३२—अवसर=समय। आलंबन=रस में एक विभाग जिसके अवलंब से इसकी उत्पत्ति होती है। उद्दीपन=वे विभाव जो रस को उत्तेजित करते हैं।

३३—तरु=वृक्ष। छिन छिन=क्षण-क्षण (प्रत्येक पल)।

३४—सँजोग=(सयोग) मिश्रण, मिलाप। मकरंद=फूलों का रस, किंजल्क, मधु। मधुप=मधुकर, भ्रमर।

३५—भावहिं=(भाव) मन मे उत्पन्न होने वाला विकार। ठहराहि= स्थिर करते हैं।

३६—अनकूल=मुआफिक, सहाय। भाषत=कहते हैं। कविराव=(कविराज) श्रेष्ठ कवि।

सोइ भाव ग्रंथनि[1] मते द्वै विधि लीजै जानि[2]।
इक थाई अरु दूसरो उद्दीपन जिय मानि[3] ॥ ३७ ॥
थाई है मन भाव सों रत्यादिक नौ[1] गाइ।
ते निज निज रस मैं रहै वै थिर[2] ह्वै ठहराइ[2] ॥ ३८ ॥
विविचारी[1] तिनको[1] कहैं कोबिद बुद्धि अपार।
बहुर सकै सब रसन मैं जिनको होइ[2] सँचार ॥ ३९ ॥
नौ[1] थाई सो मूल है नवरस के पहचानि[2]।
विविचारिन[3] को काज सब[4] देहौं सकल बखानि[5] ॥ ४० ॥
तिन विविचारिन को सुमति द्वै विधि करत विवेक।
तन विविचारी एक है मन विविचारी एक ॥ ४१ ॥
अष्ट स्वेद आदिक सोई[1] तन विविचारी जान[2]।
तैंतिस निरवेदादि सों मन विविचारी मान ॥ ४२ ॥

३७—१. ग्रथन (२, ३), २. जान (२, ३), ३. मन-मान (२, ३)।
३८—१. नव (३) ना गोइ (२), (२...२) थिर ह्वै टरि जाइ (३), थिरु ह्वै ठहि जोइ (२)।
३९—१. व्यभिचारी तिनिको (३), विभिचारी तिनिको (२), २. होय (३)।
४०—१. नव (२, ३), २. पहिचानि (१, ३), ३. बिभिचारिन (२) व्यभिचारिन के (३), ४. अब (२, ३), ५. बखान (२, ३)।
४१—विविचारी के स्थान पर सर्वत्र—व्यभिचारी (३), विभिचारी (२)।
४२—१. तेई (२, ३), २. जानि (१)। सर्वत्र व्यभिचारी, विविचारी के स्थान पर (३), विभिचारी (२)।

३८—रत्यादिक=(रति आदि) रस के स्थायी भावों जैसे रति आदि। शृंगार रस का स्थायी भाव रति है। (देखिए दोहा सं० ४८)
३९—कोविद=कृतविद्य, विद्वान्। सँचार=(संचार) गमन।
४१—सुमति=अच्छी बुद्धि।
४२—अष्ट स्वेद आदि=स्वेद आदिक आठ तन व्यभिचारी भाव। निरवेदादि=निर्वेद आदि मन व्यभिचारी भाव।

तन विविचारिन थाइयन[1] प्रगटै ज्यों[2] अनुभाव[3]।
सहचारी थाईन के मन विविचारी भाव ॥ ४३ ॥
नौ थाई अरु आठ तन विविचारी[1·] परकास[·1]।
तैंतिस मन विविचारियन[2] मिलि हैं भाव पचास ॥ ४४ ॥

स्थायी भाव–लक्षण

जब भावन मैं यह लख्यौ थाई है रसमूल।
तब इनकौ[1·] प्रथमै करयौ बरनन[1] है अनुकूल ॥ ४५ ॥
जो रस सनमुख[1] ह्वै कछू बदलै सहज सुभाव।
तेहि[2] बदलनि को कहत हैं कबिजन थाई भाव ॥ ४६ ॥
जा रस सनमुख जो कछू ननक बदल हिय होइ[1]।
ता रस को थाई वहै यह बरनत कवि लोइ[2] ॥ ४७ ॥

स्थायी भावों के नाम

रति हाँसी अरु सोक पुनि कोप[1] उछाह सु आनि।
भय[2·] घृण अचरज[·2] समुझि पुनि निरवेदहि थिर[3]जानि॥ ४८ ॥

४३—१. भाय इन (१) नवाइन (३), २. सो (२, ३), ३. अनभाव (१), सर्वत्र व्यभिचारी (३) विभचारी (२) विविचारी के स्थान पर।

४४—(१···१) बिभूचारी परगास (२), व्यभिचारी परगास (३), २. व्यभिचारिअन (३), बिभचारिअन (२)।

४५—(१···१) बरन करयौ प्रथमै (२, ३)।

४६—१. सन्मुख (३), २. तिन (२, ३)।

४७—१. होय (२, ३)। २. लोय (२, ३)।

४८—१. क्रोध (२, ३), (२···२) भै घिन अचिरज (१), ३. जिय (२, ३)।

४३—सहचारी = सहचारी भाव।

४७—सनमुख=सम्मुख। लोइ=लोग।

४८—रति=रति–श्रृंगार का स्थायी भाव। हाँसी=हास्य रस का स्थायी भाव। शोक=करुण रस का स्थायी भाव। कोप=रौद्र रस का स्थायी भाव। उछाह=वीर रस का स्थायी भाव। भै=(भय) भयानक रस का स्थायी भाव। धिन=(घृणा) बीभत्स रस का स्थायी भाव। अचिरज=(आश्चर्य) अद्भुत रस स्थायी भाव। निरवेद=शांत रस का स्थायी भाव।

विभाव-लक्षण

थाई कारन को सुकवि कहत विभाव विशेषि[1]।
सो द्वै विधि आलंब[2] अरु[2] उद्दीपन अवरेषि[3] ॥ ४९ ॥
उपजै थाई जाहि लै[1] सो अनिभावन[2] जानि[2]।
अधिक जाहि ते होइ[3] सो उद्दीपन पहिचानि[4] ॥ ५० ॥

अनुभाव-लक्षण

जो थाई को आनि कै प्रगट[1] करै अनयास[1]।
सोई है अनुभाव यह बरनत बुद्धि निवास[3] ॥ ५१ ॥

स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, विविचारी भाव के रस होने का वर्णन

रत्यादिक थिर भाव को[1] कारन जान विभाव।
कारज है अनुभाव अरु सहकारी चर[2] भाव ॥ ५२ ॥
प्रकटत थिरहि[1] विभाव पुनि कछु प्रगटत अनुभाव।[2]
अति प्रगटत[3] हैं आनि[4] पुनि[5] जे अनुभव चर भाव ॥ ५३ ॥

४९—१. विशेष (२, ३), २. अवलनरु (२. ३), ३. अवरेष (२, ३) ।

५०—१. लहि (२, ३), २ २. अवलंबन जानि (२), अवलबन जान (३), ३. होत (२, ३), ४. पहिचान (२, ३) ।

५१—१. प्रगटि (२) २. अन्यास (३), ३. नेवास (१) ।

५२—१. के (२, ३), २. चिर (१) ।

५३—१. बिरह (२, ३), २. अनभाव (२, ३) ३. प्रगटति (२), ४. आइ (२, ३), ५. तन (२, ३) ।

४९—कारन=(कारण) हेतु, निमित्त। विभाव=भावों को उत्पन्न करनेवाली वस्तुओं की साहित्य मे प्रचलित संज्ञा। आलंब=आलबन। अवरेषि=समझिए।

५०—अवलब=आधार।

५१—अनयास=स्वतः। बुद्धि-निवास=बुद्धि के निवास (महापंडित, परम विद्वान्)।

५३—थिरहि=स्थायी। चर=अस्थिर।

थाई के यौं प्रकट भय[1] रस कहियत हैं सोइ[2]।
जेहि स्वादन[3] मैं भूलि सब महामगन[4] मन होइ ॥ ५४ ॥

सो रस चित्रित कवित[1] मैं कविजन चित्र समान।
जाहि लखतहूँ[2] रीझि कै मोहत चतुर सुजान ॥ ५५ ॥

याही[1] को रस कहत हैं सो कवि ग्रंथनि[2] ल्याइ।
अपने अपने रूप पै[3] नौ[4] विधि लिखे बनाइ ॥ ५६ ॥

नवरसो के नाम

रस[1]· सिंगार सुहस करुन रौद्र बीर कौ आनि·[1]।
अरु[2]· भयानक बीभत्स पुनि अद्भुत सांत बखानि·[2] ॥ ५७ ॥

काव्य मते यै[1]···नवरसहु···[1] बरनत सुमति विसेषि।
नाटक मति[2] रस आठ हैं बिना सांत अविरेषि[3] ॥ ५८ ॥

सो रस उपजै[1] तीनि[2] विधि कविजन कहत बखानि[3]।
कहुँ दरसन कहुँ स्रवन[4] कहुँ सुमिरन ते पहिचानि[5] ॥ ५९ ॥

५४—१. ते (२, ३), २. सोय (२, ३), ३. स्वादिन (२,३), ४. मगन होइ (१)।

५५—१. कवितु (१), २. लखत ही (२, ३)।

५६—१. याहू (१), २. ग्रथनै (३) ३. मै (२, ३), ४. नव (२, ३)।

५७—१···१. प्रथम शृंगार सुहास रस करुना रौद्राहि जान। (२, ३)
२ ··२. बीररूभय बीभत्स कहि अद्भुत सात बखान ॥ (२, ३)

५८—१. ये रस नवौ (२, ३), २. संत (२,३), ३. अविरेष (३)।

५९—१. उपजत (२, ३) २. तीन (२, ३), ३. बखान (२, ३), ४. श्रवन (३) ५. परमान (२, ३)।

५४—स्वादन=जायका। महामगन=(महामग्न) अत्यंत आनन्दित।

५५—मोहत=मुग्ध होते हैं। सुजान=जानकार, पंडित, विद्वान्।

५७—सिंगार=शृंगार। सुहास=हास्य। करुन= करुण। भ्यानक= भयानक। बीभत्स=वीभत्स। अद्भुत्=अद्भुत। सांत = शांत।

५९—दरसन = दर्शन। स्रवन=श्रवण। सुमिरन=स्मरण।

शृंगार रस

सर्वप्रथम वर्णन का कारण

रस को रूप बखानि कै[1] बरनौ नौ रस नाम।
अब बरनत सिंगार कों जाही ते सब काम ॥ ६० ॥

तेहि[1] सिंगार को देवता कृष्ण लीजिऔ[2] जानि[3]।
और[4] बरनहूँ कृष्ण लौं[5] कृष्ण बरन पहिचानि[6] ॥ ६१ ॥

सोइ देवतादिकन मैं सब के[1] हैं सिरताज।
याते उनको रस भयउ[2] सबन माहिं[3] रसराज ॥ ६२ ॥

अरु बिबिचारी[1] सकल कवि[2] याही रसमय होत[2]।
याहू[3] ते सब रसनि[4] मैं यह रसराउ[5] उदोत ॥ ६३ ॥

शृंगार रस म आठों रसो के व्यभिचारी के उदाहरण

मोहन लखि यह सबनि[1] ते है उदास दिन राति।
उमहति हँसति[2] बकति[3] डरति[4] विगचति[5] विलखि रिसाति॥ ६४ ॥

६०—१. बखान पुनि (२, ३)।

६१—१. तिहि (२, ३), २. लीजिये (२, ३), ३. जान (२,३) ४. मोर (२, ३), ५. हैं, (२, ३), ६. पहचान (२, ३)।

६२—१. को (२, ३) २. भयौ (२, ३) ३. मही (१)।

६३—१. बिभचारी (२) व्यभिचारी (३), २...२. रस याही मै ते होत (२, ३), ३. याही (१), ४. रसन (२, ३), ५. रसराज (२, ३)।

६४—१. सबन (२, ३), २. हँसत (१), ३. थकित (१), ४. डरत (१) ५. बिरचत (१)।

६१—बरन=वर्ण, वर्णन।

६२—सिरताज=सिरमौर।

६३—रसराउ=रसराज।

६४—मोहन = जिसे देख कर जी लुभा जाय या प्रेम मोहित हो जाय। उमहति=उमड़ती है, इतराती है। बकति=प्रलाप करती है। बिगचति=पछाड़ खाती है। बिलखि=विलाप करके। रिसाति=क्रोधित होती है।

जब निकस्यो सब रसन मैं यह[१] रसराज कहाइ।
तब बरन्यौ याकौ[२] कविन सब तें पहिले ल्याइ ॥ ६५ ॥

शृंगार रस का स्थायी भाव

रति का लक्षण

प्रियजन लखि सुन जो कछुक[१] प्रीति भाव चित होइ[२]।
सो[३] रति भाव सिंगार को थाई जान्यौ[४] सोइ[५] ॥ ६६ ॥

रतिभाव का उदाहरण

तुव हित नव तरु नेह को उपज्यौ हरि हिय आइ[१]।
सुरति सलिल सींचति[२] रहति[३] सफल होनि के चाइ[४] ॥ ६७ ॥

वै चिकनी बतियाँ रहीं तिय हिय जोति जगाय।
पूरन करिये नेह तो अति दीपति सरसाय ॥ ६८ ॥

रति के विभावों का वर्णन

प्रथमहि[१] कारन[२] होत है कारज[३] ते नित आइ।
याते आदि विभाव को उचित बरनिबो ल्याइ[४] ॥ ६९ ॥

६५—१. बहु (१), २. याके (२, ३)।

६६—१. कछू (२, ३), २. होय (२, ३), ३. है (२, ३), ४. जान्यौ (३), ५. सोय (२, ३) ।

६७—१. आय (२, ३), २. सींचत (२, ३), ३. रहत (२, ३) ४ चाय (२, ३)।

६९—१. प्रथमै (२, ३), २. कारज (२, ३), ३. कारन (२, ३). ४. लाइ (३)।

६५—निकस्यो=प्रकट हुआ।

६६—रति=नायक एवं नायिका की परस्पर प्रीति और प्रेम।

६७—तुव=(तव) तुम्हारे। हरि=श्री कृष्ण। सुरति = अनुराग, स्नेह, भोग विलास, काम, क्रीडा। सलिल=पानी।

६८—चिकनी बतिया =(चिकनी बातें) बनावटी स्नेह भरी बातें। जोति जगाय=(ज्योति जगाकर) प्रकाश जगाकर। दीपति = (दीप्ति) शोभा, कांति, छवि। सरसाय=सरसाये।

६९—कारज=कार्य।

रति कारन जो कवित मैं सो विभाव द्वै जान[1]।
इक[2] आलंबन दूसरो उद्दीपन पहिचान[3] ॥ ७० ॥
जाते[1] रति अवलम्बई सो आलम्बन होइ[2]।
रति की दीपति जाहि ते उद्दीपन है सोइ[3] ॥ ७१ ॥
सो आलंबन[1] नायका[2] अरु नायक जिय जानु[3]।
पिय प्रति तियहिं[4] तियाहि[5] प्रति पिय चित मैं यह आनु[6] ॥ ७२ ॥

रसिक प्रिया का दोहा

बरनत नारी नरनते लाज चौगुनी[1] चित्त[2]।
भूख दुगुन[3] साहस छगुन[4] काम अष्टगुन[5] मित्त[6] ॥ ७३ ॥

नायिका-लक्षण

निरखत[1] ही जिहि नारि के नर हिय उपजै प्रीति।
ताहि कहत हैं नायका[2] जो जानत रसरीति ॥ ७४ ॥

नायिका के तीनो गुणो का वर्णन

गौरी[1] तुलित अनूप मनहरनी कमला रूप।
बानी लौं अति चतुर तिहि[2] तिय बरनत कविभूप ॥ ७५ ॥

७०—१. जानि (१) २. एक (१) ३. पहिचानि (१)।
७१—१. याते (२, ३), २. होय (२, ३), ३. सोय (२, ३)।
७२—१. अवलवन (१), २. नायिका (३), ३. जानि (२, ३), ४. तिया (२, ३), ५. तियाइ (१) ६. आनि (२, ३)।
७३—१. चोरानी (२, ३), २. चित्ति (२, ३), ३. दुगुनि (२, ३), ४. छगुनि (२, ३), ५. अठगुनी (२, ३), ६. मित्ति (२, ३)।
७४—१. देखत (२, ३), २. नायिका (३)।
७५—१. गोरी (२, ३), २. तेहि (१)।

७०—द्वै=दो।
७३—अष्टगुन=अठगुना। मित्त=मित्र।
७४—रसरीति=रस-शास्त्र।
७५—गौरी=आठ वर्ष की कन्या, पार्वती। तुलित=अनेक वस्तुओं के गुण मान आदि के एक दूसरी से घट बढ होने का विचार। अनूप=बेजोड,

तीनों गुणों का उदाहरण

मुख ससि निरखि चकोर अरु तन पानिप[1] लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर होत नयन रसलीन ॥ ७६ ॥
गिरिजा सिव तन मैं रही कमला हरि हिय पाइ[1]।
तू तन हरि पिय हिय बसी हिय हरि प्रानन जाइ[2] ॥ ७७ ॥
सुरन निकारे[1] सिन्धु ते रतन चतुर्दस[2] जोइ।
वेधा मेधहु[4] सिन्धु तें एकै तुही बिलोइ ॥ ७८ ॥

नायिका भेद

पतिहि सौं[1] जिहि[2] प्रीति सो सुकिया[3] सलज सुरीति[4]।
परकीयहि[5] पर पुरुष सौं गनिकहि[6] धन सौं[7] प्रीति ॥ ७९ ॥

७६—१. तनयानय (२, ३)।
७७—१. पाय (२, ३); २. जाय (२, ३)।
७८—१. निकारै (१), २. चतुरदस (२, ३), ४. मेधा (२, ३)।
७९—१. जो (३), २. जेहिं (१), ३. स्वकिया (२, ३), ४. सरीति (३), ५. परकीया (२, ३), ६. धनकहि (२, ३), ७. सौ (२, ३)।

अनुपम। मनहरनी=मन हरनेवाली। कमला=रूपवती स्त्री, लक्ष्मी। बानी=वाणी, सरस्वती। कविभूप=कविराज।

७६—ससि = (शशि) चन्द्र। पानिप=(पानी + प) कांति, चमक, पानी। मीन=मछली। पदपकज=चरणकमल। भँवर=भ्रमर। रसलीन=कवि का नाम तथा रस मे डूब जाने का भाव।

७७—हरि=श्री विष्णु, हर कर।

७८—सुरन=(सुरों), देवताओं। निकारै=निकाला। रतन चतुर्दस=लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, रंभा, वारुणी, सुधा, दक्षिणावर्त शंख, ऐरावत हाथी, धन्वन्तरि, धनुष, विष, कामधेनु, कल्पतरु, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा घोड़ा। बेधा=ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सूर्य। मेधहु=धारणा शक्ति, सरस्वती का एक रूप, बल या शक्ति। बिलोइ=मथकर।

७९—सुकिया = स्वकीया। सलज=लज्जाशील। सुरीति=(सु + रीति) सुन्दर रीति। परकियहि=परकीया को। गनिकहि=धन-लोभ से नायक से प्रीति करनेवाली नायिका। धन सौं=धन से, संपदा से।

स्वकीया उदाहरण

मनचिंता धन चखन तें चिंतामनि[1] की रीति।
सखो सील कुलकानि[2] अरु प्रीतम पावत[3] प्रीति ॥ ८० ॥
धरति न[1] चौकी नगजरी यातें उर में ल्याइ।
छाँह परे पर पुरुष की जिन[2] तिय धर्म[3] नसाइ ॥ ८१ ॥

स्वकीया-भेद

मुग्धा जामें पाइये जोबन[1] आगम रीति।
मध्या में लज्जा मदन प्रौढ़ा में पति प्रीति ॥ ८२ ॥

मुग्धा वर्णन

चख चलि श्रवन मिल्यौ चहत कच[1] बढ़ छुवत[2] छुवानि।
कटि निज दर्बि[3] धर्‌यौ चहत बच्छुस्थलु मैं[5] आनि ॥ ८३ ॥
जिनको लच्छन नाम ते प्रकट होत अन्यास।
तिनको लच्छन भिन्न करि मैं नहिं करत प्रकास ॥ ८४ ॥

८०—१. चिंतामन (२, ३), २. कुलकान (२, ३), ३. आवत (२, ३)।
८१—१. धरत न (१), २. जनु (१), ३. धरम (२, ३)।
८२—१. यौवन (३) २. लज्या (२)।
८३—१. कुच (१), २. छुबति (२), छ्वति (३), ३. दरब (२, ३), ५. बछ-स्थल में (२) वक्ष-स्थल मे (३)।

८०—मनचिंता=मनचेता, अभीष्ट। चखन=आखें। चिंतामनि=(चिंतामणि) एक कल्पित रत्न जिसके संबध में प्रसिद्ध है कि उससे जो अभिलाषा की जाय वह पूर्ण कर देता है। सील=शील। कुलकानि=कुल की मर्यादा।

८१—धरति = धारण करती है। चौकी = गले मे पहनने का एक गहना जिसमे एक चौकोर पटरी होती है। नगजरी=रत्नजडी। छाँह परे=छाया पडने पर। नसाइ=नाश होता है, नष्ट होता है।

८२—मुग्धा=यौवनप्राप्त परम लज्जालु स्वभाव की नायिका। मध्या=सम काम एवं लज्जाशील नायिका। मदन=काम। प्रौढा=सब प्रकार की रीति मे निपुण कम लज्जामयी एवं प्रचुर कामशील अधिक वय की नायिका।

८३—कच=बाल। छुवानि=एडियो। दर्बि=(द्रव्य) धन-दौलत। बच्छुस्थलु=छाती।

मुग्धा के पांच भेद

अकुंरितयौवना मुग्धा-वर्णन

विधि किसान जो उरि बए[1] बीज तरुनता ल्याइ।
सो वय[2] अवसर लहि भये अब कछु अंकुर आइ ॥ ८५ ॥

यौं बाला जोबन झलक झलकति[1.] उर में आइ[.1]।
ज्यौं प्रकटत मन को वचन बिय पुतरिन दरसाइ[2] ॥ ८६ ॥

शैशवयौवना मुग्धा वर्णन

तिय सैसव जोबन[1] मिले भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि घौस के दोउ भाव दरसात ॥ ८७ ॥

जो तिय सिसुता सम[1.] भयेउ जोबन[.1] आनि उदोति[2]।
मीन रासि[3] को भानु मैं ज्यौं निसि सम दिन होति[4] ॥ ८८ ॥

८५—१. बुये (२) उये (३), २. सोऊ, (२, ३)।
८६—१...१. उर निज मे दरसाइ (१), २. मे आइ (१)।
८७—१. यौवन (३)।
८८—१...१. मे भयौ यौबन (२, ३), २. उदोत (१), ३. रास (२, ३), ४. होत (१)।

८५—विधि=शास्त्र सम्मत कार्य करने का ढंग, ब्रह्मा। उरि=उर। बए=बोया। तरुनता=तारुण्य। अंकुर=आँख, अँखुआ, पानी।

८६—बाला=नायिका। बिय = दोनों। पुतरिन=पुतलियों।

८७—सैसव=शैशव। निसि=रात्रि। घौस=दिन।

८८—उदोति=प्रकाशित होता है, प्रगट होता है। मीन रासि=मेष आदि राशियों मे अंतिम या बारहवी राशि। इस राशि में पूर्व भाद्रपद नक्षत्र का अंतिम पद तथा उत्तर भाद्रपद और रेवती नक्षत्र संमिलित हैं। इसकी अधिष्ठात्री देवी दो मछलियाँ है। यह चरण रहित, जलचारी, निःशब्द, पिंगल वर्ण, स्निग्ध मानी गयी है। इसमें जन्म लेने वाला क्रोधी, द्रुतगामी अनेक विवाह करनेवाला होता है। इस राशि मे सूर्य प्रायः फरवरी-मार्च महीने में रहता है।

नवयौवना-मुग्धा

ज्यौ[1] वय तिथि बाढ़ति कला जोबन[2] ससि अधिकाति[3]।
त्यौं[4] सिसुता निसि तिमिरु घटि[5] छबि धुति[6] फैलति[6] जाति[7] ॥८९॥

उकसत ही तुव[1] उरज अरु निकसति[2] लंक[3] सुभाइ।
उकस निकस सब तियन[5] के परी जिअन[5] मैं आइ[6] ॥ ९० ॥

नवयौवना के दो भेदों मे से

प्रथम भेद-अज्ञातयौवना

वा दिन बाँधी साँस[1] मैं होड़ सखिन सों ल्याइ[2]।
सो[3]... मेरे विय ठौर है हिय में उकसी आइ...[3] ॥ ९१ ॥

धाइ धाइ लखु[1] कौन यह भई बाल तन पीर।
दुहूँ ओर[2] उर मैं[3] धरै सेंकि[4]... सेंकि[4] कै चीर ॥ ९२ ॥

८९—१. जो (१), २. यौवन (३), ३. अधिकात (१), ४. त्यो (१), ५. तिमिर घट (२, ३), ६...६. कर ठेलति (२, ३), ७. जात (१)।

९०—१. तुअ (१), २. निकसत (१), ३. झलक (१), ४. सुभाय (२, ३), ५. तियन (२, ३), ६. हाय (२, ३)।

९१—१. सॉसु (२, ३), २. लाइ (२, ३), ३...३. वेई मेरे वियर बर उर मे उससी आइ (२, ३)।

९२—१. लखि (२, ३), २. वोर (२) और (१), ३. उरजन (२) उहसन (३), ४...४. सेकि सेकि।

८९—तिथि=मिति, दिवस। कला=चन्द्र-मण्डल का सोलहवां भाग। तिमिरु=तिमिर, अंधकार। घटि=घटकर। छबि-द्युति=कांति की प्रभा।

९०—तुव=तव, तुम्हारा। उरज=स्तन। लंक=कमर। उकस=उभार। परी=पड गई। जिअन=जीमे, हृदय मे।

९१—बाँधी सास=दम साधा। होड=प्रतिस्पर्धा। विय=दो। ठौर=स्थान, जगह।

९२—धाइ धाइ=दौडौ दौडौ। सेकि सेंकि=गरम करके। चीर=कपड़ा।

द्वितीय भेद-ज्ञातयौवना

सखी गुनत[1] जो तिय नयन[2] कुच[3] तकि बिहँसि लजाति[4] ।
मानौ[5] कमल कलीन बिच अली बिहँसि रहि जाति[6] ॥ ६३ ॥
तन सुबरन के कसत यों[1] लसत पूतरी स्याम ।
मनौ[2] नगीना फटिक मैं[3] जरी कसौटी काम ॥ ६४ ॥

नवलअनगा-मुग्धा

ताजन[1] मदन न मानही परे लाल[2] बस माहिं[3] ।
हठे तुरँग लौं तिय नयन उचकतहूँ रहि जाहिं[4] ॥ ६५ ॥

नवलअनगा के दो भेदों में से

प्रथम भेद-अविदितकामा

भई व्याधि[1] ऐसी कछू छूटो[2] खल ते[2] हेत ।
द्यौस चारितें चाँदनी मों[3] चित करत[4] अनेत[5] ॥ ६६ ॥

द्वितीय भेद-विदितकामा

खेलतिहीं गुड़िया घरी गुड़वन संग मिलाइ[1] ।
निरखि निरखि फिरि[2] आपु[3] ही दगन रही सकुचाइ[4] ॥ ६७ ॥

६३—१. गुनति (२) गुनधि (३), २. गुनन (२, ३), ३. रुच (२, ३), ४. लजात (१) ५. मनहुँ (२, ३), ६. जात (१) ।

६४—१. को (२, ३), २. मनो (२, ३), ३. मे (२, ३) ।

६५—१. लाजन (२, ३), २. लाज (३), ३. माह (१), ४. जाँह (१) ।

६६—१. व्याध (२, ३), २. छुटो खलक ते (२, ३), ३. यो (१), ४. करति (१), ५. अचेत (२, ३) ।

६७—१. मिलाय (२, ३), २. फिर (२, ३), ३. आप ही (२, ३), ४. सकुचाय (२,३) ।

६३—गुनत=सोचती है । अली=भौरा ।

६४—सुबरन=सुन्दर वर्ण, सोना । कसत=परीक्षा करती है । लसत=शोभित होती है । फटिक=स्फटिक । जरी=जड़ी । कसौटी=सोना परखने का पत्थर ।

६५—ताजन=कोड़ा, तर्जन (नियंत्रण) । लाल=प्रिय । तुरँग=घोड़ा । उचकत=उचकती हुई ।

६६—व्याधि=रोग । खल=नायक का व्यंग संबोधन । द्यौस चारिते चाँदनी=चार दिनों से चाँदनी । अनेत=अनीति ।

नवलवधू-मुग्धा

सौतिन मुख निसि कमल भे[1] पिय चख भए चकोर।
गुरजन[2] मन सारंग[3] भये लख दुलही मुख[4] ओर ॥ ९८ ॥
तुव दीपति के बढ़त हीं हरि लीनो मन पीय।
दृग खोले बोले कहा अब हरि लै हौ जीय[1] ॥ ९९ ॥

नवल वधू के दो भेद

है नवोढ़ पति संग जो सोवति अधिक डराइ।
अरु विस्रब्धनवोढ़ जो[1]... पति कौ नेकु पत्याइ[...1] ॥१००॥

नवोढा—उदाहरण

सखी[1] कहे लालाभरन[2] नैकु[3] न पहिरति बाम।
मन ही मन सकुचति[4]... डरति[...4] मरति[5] लाल के नाम ॥१०१॥
मोर मुकुट धरि एक सखि बधू, दिखाई छांह।
भगी पन्नगी लौं[1]... लपकि धाइ लगी[...1] उर मांह ॥१०२॥

९८—१. भो (२, ३), २. गुरुजन (२, ३), ३. सागर (२, ३), ४. दुलहिन (२, ३)।

९९—१. तिय (१, २)।

१००—१...१. जो पति सो कछु पतियाय (२, ३)।

१०१—१. सखिन (२, ३), २. लल आभरन (२) चल आभरन (३), ३ नेकु (१), ४... ४. सकुचत, डेरति (१), ५. भजत (२, ३)।

१०२—१. लो लपकि लगी धाइ (१)।

९८—सौतिन=सौत का। निसि-कमल=रात्रि का कमल (संकुचित, मलिन)। गुरजन=बडे, बूढे। सारंग=मोर, दीपक।

९९—हरि लै हो जीय=अब प्राण लोगे।

१००—पत्याइ = (पतियाय) पतियाती है, विश्वास करती है।

१०१—लालाभरन=(लाल + आभरन) लाल का या लाल रंग का आभूषण।

१०२—पन्नगी=सर्पिणी।

बिश्रब्धनवोढ़ा–उदाहरण

जतन जोर तें नवल तिय यौं पिय पै ठहराइ[1]।
औषधि बल तें अगिनि में ज्यौं पारो रहि जाइ[2] ॥१०३॥

सौंहै आवति भावती जब पिय सौंहैं लाल।
सुरति बात हिमिबात[1] लहि सुखत मूल जलजात ॥१०४॥

हँसति[1]· हँसति·[1] रति बात लहि यौं[2] रोई गहि देह[3]।
दमकि दमकि ज्यौं[4] दामिनी पीछे बरसै मेह ॥१०५॥

तिय अच्छन[1] अरु ज्ञान मधि प्रीति न देत[2] जनाइ[3]।
जमुन गंग कौ[4]· पाइकै रहे सरस्वति भाइ[4] ॥१०६॥

नवलवधू मे तृतीय भेद

लज्जा-आसक्त रतिकोविदा लक्षण

एक मते बिस्रब्ध सों[1]· लाजपरा रति·[1] होति।
सरसति जेहि[2] रति लाज ते पियहि काम की जोति ॥१०७॥

१०३—१. ठहराय (२, ३), २. जाय (२, ३)।
१०४—१. हिमबात (२, ३)।
१०५—१ ··१. हँसत हँसत (१), २. यो (१), ३. नेह (२, ३), ४. ज्यों (२, ३)।
१०६—१. अच्छन (२, ३), २. देति (२, ३), ३. जनाय (२,३) ४ ··४. के बीच मे ज्यो सरसुति सरसाई (२, ३)।
१०७—१ ··१. लज्जा पर यति (१), लज्जा पराइत (३), २. जिहि (२, ३)।

१०३—जतन जोर=यत्न के बल से, यत्न द्वारा। नवल=नई। पारो=पारा।
१०४—सौहै=सम्मुख, शपथ। हिमिबात=हिम बात, बर्फीली हवा, ठंढी बात। जलजात=कमल, जलज।
१०५—दामनी=(दामिनी) बिजली। मेह=(मेघ) बादल।
१०६—अच्छन=आँखे। ज्ञानमधि=ज्ञान मे। भाइ=भाव।
१०७—लाजपरा=(लज्जापरक)। जोति=ज्योति।

मौं दृग खोलन[1] को लला[2] बिनै करी हिय लाइ।
पै इन नैननि[3] नहिं लख्यो रही लाज सो[4] छाइ ॥१०८॥
हौं रीझी वा केलिको[1] लखि चरित्र अभिराम।
जिती[2] बढ़ति है लाज तिय तितो[3] बढ़त पिय काम ॥१०९॥

मुग्धा का मुड़ कर बैठना

नवला मुरि बैठनु[1] चितै यह मन होत विचार।
कोमल मुख सहि ना सकत[2] पिय चितवन[3] को मार ॥११०॥

मुग्धा की सैन

सब निसि जागी पिय डरनि[1] सोई मुख धरि हाथ।
प्रातहि ससि अरिको गह्यौ द्वै कमलन[2] मिलि साथ ॥१११॥

मुग्धा की सुरतारभ

यौं[1·] भाजति नवला[·1] गही उरमधि स्याम निसंक।
मानौ[2·] तरपति बीजुरी[·2] धरी मेघ निज अंक ॥११२॥

मुग्धा की सुरति

यौं[1·] रति राचति नवबधू नैकु नहीं ठहराइ[1]।
ज्यौं हरनी बेधा[2·] गहै छूटन कौं अकुलाइ[3] ॥११३॥

१०८—१. खोलत (१), २. ललै (१), ३. नैनन (३), ४. यो (२, ३)।
१०९—१. बाल को (२, ३), २. जेति (१), ३. तेतो (१)।
११०—१. बैठनि (२, ३), २. सकति(२, ३), ३. चितवनि (२, ३)।
१११—१. डरन (१), २. कमलनि (२, ३)।
११२—१ ··१. भाजति नवला यौ (२, ३), २···२. जनु तरपति ही बीजुरी (२, ३)।
११३—१···१. रति राचति यौ नवल तिय नैक न हितू हिराइ (२, ३), २. ब्याधा (२, ३), ३. अकुलाई (३)।

१०८—छाइ=छा गयी है।
१०९—केलि = काम-क्रीडा। चरित्र = करनी, करतूत। अभिराम = मनोहर, सुन्दर।
११०—चितवन = देखने या ताकने का भाव या ढग। मार = आघात, चोट।
१११—ससि=शशि। अरि=शत्रु। कमलन=कमलरूपी हाथों।
११२—निसंक=बिना किसी सदेह के। अंक=गोद।

यौं नवला रति में करति भाँति भाँति किलकार।
ज्यौं फेरत ही साज[1] के फिरत जात[2] सुर तार ॥११४॥

मुग्धा का सुरतांत

यौं[1] मींजत कोऊ लला अबलन अंग बनाइ।
मले पुहुप की बास लौं साँसु[2] न पाई[3] जाइ ॥११५॥
टपकावति अँसुवा कुचन ओट किये पटलाज।
आली शिव के[1] सीस इनि[2] जमुन बहाई आज ॥११६॥

मुग्धा का मान

सखिन कहे[1] रूसी तिया लखि पिय कियौ[2] विचार।
कंट गड़्यौ तब धन कह्यौ आवत हमैं निकार ॥११७॥
पिय परतिय कुच गहत लखि लली चली अनखाइ।
तब पिय धाइ लड़ाइ[1] मुख चूमि लियौ उर लाइ ॥११८॥

—o—

मध्या-भेद

समानलज्जा-मदना

इति उति दोऊ ओर झुकि आनि[1] बीच ठहराइ[2]।
लाज मदन में धन रहै तुला सूचिका भाइ ॥११९॥

११४—१. तार (२, ३), २. जाति (३), फिरि जावत (२)।
११५—१. यो (१), २. सास (२, ३), ३. जानी (२, ३)।
११६—१. सीव के (२, ३), २. इन (१)।
११७—१. सखिन कहै (३), लखि न कहे (२), २. कह्यो (२, ३)।
११८—१. लगाइ (२, ३)।
११९—१. आन (१), ठहिराइ (२)।

११४—किलकार=हर्ष या जय ध्वनि। साज=गाने के साथ बजाये जानेवाले बाजे। सुर तार=स्वर और ताल।

११५—मले पुहुप=मलय पुष्प, मर्दित कुसुम। साँसु न पाई जाइ=अनवरत। बास=सुरभि।

११६—पट=पर्दा। शिव = कुच की उपमा शिवलिंग से दी जाती है।

११७—रूसी=रूठ गयी। कंट=काँटा।

११८—अनखाइ=नाराज होकर।

११९—इति ऊति=(इत-उत) इधर-उधर। तुला=मान। सूचिका=सूचित करनेवाली।

रमनी मन पावत नहीं लाज मदन[1] को अंत।
दोउ[2] ओर ऐंची फिरै ज्यौं बिवि तिय को[2] कंत ॥१२०॥

तिय हिय पलन कपाट गति निरखि लेहु दृग कोर।
खुलत प्रेम के जोर तें मुँदत[1] नेम के जोर ॥१२१॥

बिजुकावत[1] हो मदन के खिचत[2] लाज गुन आइ।
बँधो कुरंगिनि लौं तिया उचकि उचकि मुर जाइ[3] ॥१२२॥

मध्या के चार भेदों में से

प्रथम भेद उन्नतयौवना

लिखि बिरंचि राख्यौ हुतौ[1] यह सँजोग इक संग।
कुच उतंग तिय उर बढ़ै[2] पिय उर बढ़ै[3] अनंग ॥१२३॥

द्वितीय भेद-उन्नतकामा

यौं तिय नैननि लाज मैं[1] लसत काम के भाइ।
मिले[2] सलिल मैं नेह ज्यौं ऊपर ही दरसाइ ॥१२४॥

१२०—१. प्रीति (२, ३), २···२. दुहूँ ओर ऐंचो रहे ज्यौ बिन तिय को (३), दुहूँ ओर ऐंच्यौ रहे ज्यौ बिबि तिय को कत (२)।

१२१—१. मुँदति (२, ३)।

१२२—१. बिझुकावत (२, ३), २. खिंचति (२, ३), ३. मुरि जाइ (२), मुरझाइ (३)।

१२३—१. हतो (३), २. चढ़ै (३), ३. चढ़ै (३)।

१२४—१. जो (२, ३), २. मिल्यौ (२, ३)।

१२०—रमनी=बाला।

१२१—पलन=पलको। कोर=छोर। नेम=नियम, बंधेज।

१२२—बिजुकावत=छल या धोखा करती है। कुरंगिनि=बादामी या तामडे रंग की हरिनी। उचकि उचकि=उछल उछल या कूद कूदकर।

१२३—बिरंचि=ब्रह्मा। उतग=ऊँचा। अनंग=कामदेव।

१२४—लसत=युक्त होती है। नेह=स्नेह, तेल।

उन्नतकामा-उदाहरण

जो घट दीपक पूरि कै उमगौ[1] नेह बनाइ।
सो तुव[2] बतियाँ तें तिया प्रगट चुवत हैं आइ ॥१२५॥

तृतीय भेद प्रगल्भवचना

प्रगलभ वचना नायिका[1] मध्या के[2] यह भाइ।
जो रिस धुनि सों आगहि[3] रोकै पियहि बनाइ ॥१२६॥

प्रगल्भवचना-उदाहरण

पिय अविवेकी कमल[1] ये नैकु[2] न मोंहि सुहाहिं।
प्रति फूलन के मधुप कौ[3] ठौर देत[4] हिय माहिं ॥१२७॥

चतुर्थ भेद-सुरतविचित्र

छिन रति छिनि विपरीत [1]"रुचि पूरित हियौ"[1] अनंग।
टुटत तार अरु जुटत[2] है कूजत खग[3]" धुनि संग"[3] ॥१२८॥
अधर निदर नासा चढ़ै[1] दृगन फेरि सतराइ।
ठुनकि ठुनकि घन सुरति छिन[2] पिय मन हरति बनाइ ॥१२९॥

१२५—१. उमग्यौ (२, ३), २. सोवत (२, ३)।
१२६—१. नाइका (१, २), २. कों (२, ३), ३. आगरी (२, ३)।
१२७—१. काम (२, ३), २. नेक (३), ३. कौ (२, ३), ४. होत (२, ३)।
१२८— १...१. रचि पूरित हिये (२, ३), २. जुरत (१), ३...३. धुनि खग सग (२, ३)।
१२९—१. उचै (२, ३), २. खन (२, ३)।

१२५—पूरि कै=पूरा करके। उमगौ=उमडा, सीमा या मर्यादा से बाहर हुआ। बतियां = वर्तिकाओं, बातों। चुवत=टपकता है।

१२६—प्रगलभ = प्रगल्भ, ढीठ।

१२७—प्रति=प्रत्येक, हर एक।

१२८—विपरीत=रतिबध के दस प्रकारों में से दूसरा। तार=सुयोग, ब्यौंत, व्यवस्था। जुटत=जुडता है। कूजत=ध्वनित होता है।

१२९—निदर=निरादर करके। नासा=नाक, नासिका। सतराइ=चिढ़ती है।

लघुलज्जा मध्या—लक्षण

लघु लज्जाहू इक मते मध्या बरनी जाइ।
जामैं कछु इक आनि कै लाज लेस रहि जाइ ॥१३०॥

लघुलज्जा मध्या—उदाहरण

होड जीति अकबारि[1] की खेल बीच ते हारि।
ललन रहे अँगिया चितै ललना दियै[2] निहारि ॥१३१॥

लाज पाछिली संग तिनि तिय हिय निति[1] नियराइ।
प्रीति नई हितकारिनिहि[2] लखि रिसाइ फिरि जाइ ॥१३२॥

मध्या का मुडकर बैठना

पिय लखि मुरि बैठति[1] नहीं कर घूँघुट[2] को भाव।
चोरी कै मन लाल की गोरी करति[3] दुराव ॥१३३॥

मध्या का सुरतारंभ

रति आरंभ निहारि[1] जब झझकि बाँह सतिराति[2]।
मृग[3] दृग नासा अधर तें[4] कोटि कला[5] करि जाति[6] ॥१३४॥

१३१—१. इकबार (१, ३), २. दियो (२, ३)।
१३२—१. नित (२), २. हितकर नहीं (३)।
१३३—१. बैठत (१), २. घूँघट (२, ३), ३. करत (१)।
१३४—१. निहार (२, ३), २. सतरात, (२, ३), ३. भ्रू (२, ३), ४. सो (२, ३), ५. भाव (२, ३), ६. जात (२, ३)।

१३०—लेस=संपर्क।
१३१—अँगिया=चोली (स्त्रियों का एक पहनावा जिसमे केवल स्तन ढके रहते हैं, पेट तथा पीठ खुली रहती है। इसमे चार बंद होते है जो पीछे बांधे जाते है।) दियै=दिया।
१३२—निति=नित। नियराइ=निकट आती है।
१३३—गोरी=गोरी, नायिका।
१३४—कला = बहाना।

बाँह गहत सतरात[1] जब[2] कर झझकति[3] सुकुमारि[4]।
चूर चूर मन करति है चूरिन की झनकारि[5] ॥१३५॥

मध्या की सुरति

छिनक रहत थिर[1]' थकित'[1] ह्वै छिनही मैं अकुलात[2]।
रति मानति मनभावती ठनगन ठानति जात[3] ॥१३६॥
यौं रति मैं सुकुमारि[1] के दृग उघरत मुँदि जात।
ज्यौं तारे आकास के झलकत दुरत प्रभात ॥१३७॥
कान परत मृग लौं परैं मुरछि ललन के प्रान।
कंठ ठुनुक[1]' नूपुर झुनुक'[1] दुहुन लई जब तान ॥१३८॥

मध्या की विपरीत रति

रमति रमनि[1] विपरीत यौं लाज मदन मैं थाकि।
ज्यौ रथ हाँकत सारथी दुहूँ[2] लोक कौ[3] ताकि ॥१३९॥

१३५—१. इतरात (३), २. तब (२, ३), ३. झझकत (२, ३), ४. सुकुमार (१), ५. झनकार (१)।
१३६—१.···१ थिरु इकति (२, ३), २. अकुलाइ (२, ३), ३. जाइ (२, ३)।
१३७—सुकुमार (२, ३)।
१३८—१.···१ ठुनक नेवर झुनक (२, ३)।
१३९—१. रमन (३), २. मै (३), दुन्हु (२), ३. लीक को (२, ३)।

१३५—चूरिन=चूड़ियो।
१३६—रति = काम क्रीडा, संयोग। मनभावती=मन को भली लगनेवाली, प्रिया। ठनगन ठानति=प्रेम का हठ करती है।
१३७—दुरत=आँखो से दूर होती है।
१३८—मुरछि=मुरछा गया। ठुनक=टेर, टीप। तान=आलाप।
१३९—रमति=रमण करती है। थाकि = मुग्ध होकर। रथ=गाड़ी। सारथी= रथ का चलानेवाला, रथ-नागर। ताकि=अवलोक कर।

मध्या का सुरतांत

बिगरे भूखन तन[1] सजति धनि बैठो परजंक।
पिय तन हेरति[2] अनख[3] सौं फेरि फेरि दृग बंक ॥१४०॥

खिन[1] मुकुरति[2] है[3] ढीठ ह्वै छिन लजि हेरत गात।
कौतुक लाग्यौ सखिन कौ[4] पूछत रति की[5] बात ॥१४१॥

—०—

प्रौढ़ा

पति-अनुराग-वर्णन

बीते दिन डर लाज के अब आवत यह प्रान।
एको पल निज कंत कौ[1] अंत न दीजै जान ॥१४२॥

जब वनिता वृषरासि मैं रवि[1] जोबन चमकाइ[1]।
मदन तपति[2] प्रति द्यौस बढ़ि लाज सीत छुटि[3] जाइ ॥१४३॥

१४०—१. नहिं (२, ३), २. हेरत (१), ३. अनय (१)।
१४१—१. छिन (२, ३), २. मुकुरत (१), ३. ह्वै (१), ४. रचि (२, ३), ५. कौं (२, ३)।
१४२—१. कौं (२, ३)।
१४३—(१···१) यौवन रवि दरसाइ, २. तपत (२, ३), ३. घटि (२, ३)।

१४०—बिगरे=ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे उपयोगिता घट जाय या नष्ट हो जाय। भूखन=भूषण, आभरण। परजंक=पलँग। अनख=खिन्नता। बक=टेढा।

१४१—हेरत=देखती है। कौतुक=खेल, तमाशा, दिल्लगी।

१४२—कंत=पति, प्रियतम। अंत=दूर, अन्यत्र।

१४३—वृष रासि=इस राशि में सूर्य अत्यन्त तपता है। इस राशि में मई जून में सूर्य आता है। रवि जोबन=रवि के समान तपनेवाला यौवन। सीत=शीत।

प्रौढा के चार भेद

प्रथम भेद-उद्भटयौवना प्रौढा

गजगौनी तुव गुन[1] चितै रीझि गईं[1] सब बाल।
कुच कुंभनि ते[2] पेलिकै बसि करि लीन्हौं लाल ॥१४४॥

द्वितीय भेद-मदनमदमाती प्रौढ़ा

कुच पिय हियहि लगाइ तिय अंग मोरि अँगराइ।
उरज गहत अठिलाइ कै नैन[1] मिलै मुसुकाइ ॥१४५॥

तृतीय भेद लुब्धा प्रतिप्रौढ़ा

घन[1] सरूप अरु सुमति कौं सरस सबनि[2] तें जानि।
गुरजन[3] दुरजन ईस सम सील नवाए[4] आनि ॥१४६॥

चतुर्थ भेद-रति कोविदा प्रौढा

विमल गंग सी धनि[1] रची विधि अखंग[2] रसदानि।
जा प्रसंग मैं पाइये सुख तरंग को खानि ॥१४७॥

१४४—(१...१) गति निरखि रीझि रही (३), २. कुभन सो (३)।
१४५—१.नयन (२, ३)।
१४६—१. धनि (२, ३), २. सबन (२, ३), ३. गुरुजन (२, ३), ४. निवाये (३)।
१४७—१. धन (१), २. अनग (२, ३)।

१४४—गजगौनी=गजगामिनी, हाथी की भाँति मन्द चलनेवाली। कुंभनि= हाथी के सिर के दोनो ओर उभडे हुए भाग। पेलिकै=आक्रमण करने के लिए उद्यत होकर या आगे बढ़कर। बसि करि=वश मे करके। करि=हाथी, कर लेना।

१४५—अँगराइ=देह तोडती है।

१४७—अखंग=न चूकनेवाला। रसदानि=रस-दानी प्रसंग=संगति। तरंग= लहर, मौज। खानि=खजाना, उत्पत्ति स्थान।

रति सरूप धरि औतरै[1] लिखै भारती भाइ।
तऊ रावरी सुरति गुन सकै[2] न केहू[2] पाइ ॥१४८॥

रतिकोविदा के दो भेद

रतिप्रिया, आनन्दातिसंमोहा-प्रौढा

ये द्वै[1] प्रौढ़ाहूँ कोऊ[2] कवि बरनत यह जानि।
इनहुँन[3] को बरनन कियो उदाहरन मैं आनि ॥१४९॥

रतिप्रिया-उदाहरण

पियत रहत पिय अधर नित भूख प्यास बिसराइ[1]।
चखै न ऊख मयूष वरु[2] वा पियूष कौं पाइ[3] ॥१५०॥
लाल रंग मैं पग रही बहिर[1] अंत इक बानि[1]।
सदा सोहागिनि[2] फूलती सदा दामिनी जानि[3] ॥१५१॥

आनन्दातिसमोहा—उदाहरण

गहत बाँह पिय के अली छुट्यो[1] कंप तन आइ।
भगी[2] दृगन लौं[3] लाज सुधि हिय सों[4] गई बिलाइ ॥१५२॥

१४८—१. अवत है (२, ३), २ · २. केहू सकै न (३)।
१४९—१. दोउ (२, ३), २. को (१, ३), ३. इनन्हम (२, ३)।
१५०—१. बिसराय (२, ३), २. वह (२, ३), ३. पाय (२, ३)।
१५१—१···१. बहितवेगो इक खान (२, ३), २. सदा सुहागिन (२, ३), ३. जान (३)।
१५२—१. छुटो (२, ३), २. भजी (२, ३), ३. ते (२, ३), ४. तें (२, ३)।

१४८—औतरै=अवतरित वहाँ। भारती=सरस्वती। भाइ = भाव।
१४९—उदाहरन=(उदाहरण) दृष्टांत, मिसाल।
१५०—ऊख=ईख। मयूख=किरण। पियूष=अमृत, सुधा।
१५१—पगि रही=सन रही, मग्न हो रही, डूब रही। बहिर-अंत=बाहर-भीतर। बानि=सज-धज, टेव। सदा सोहागिनि=प्रिय के नित्य सम्पर्क के कारण सौभाग्यवती, रूढालक्षणा द्वारा वेश्या अर्थ।
१५२—बिलाइ = बिलीन हो गयी।

ललन गहत सुख ते[1] गयौ[2] मोह नींद लौं छाइ।
मार करन की सुधि अली जागी[3] भोरहिं[3] आइ ॥१५३॥

प्रौढा का मुड़कर बैठना

पिय चितवत तिय मुरि गई कुलहित पट मुख लाइ।
अमी चकोरन के पियत घन लीन्हौं[1] ससि छाइ ॥१५४॥

प्रौढा का सुरतारभ

बाह गहत सीबी करति कुच परसत मतरानि[1]।
तिय[2] निज महत बढ़ाइ कै रुचि उपजावति जाति[3] ॥१५५॥

प्रौढा की सुरति

आलिंगन चुंबन करत कोक कलन[1] के घात।
दंपति रति रस लेत हूँ[2] कहूँ न नैकु[3] अघात ॥१५६॥

यौं उर[1] लागत[1] सेज तें बाम स्याम गहि बाँह।
ज्यौं बिजुरी घन सेत की दुरै असित घन माँह ॥१५७॥

१५३—१. मुख तो (३), २. गयो (२, ३), ३. जगी भोरहीं (२, ३)।
१५४—१. लीनौ (२, ३)।
१५५—१. सनरात (२) इतरात (३), २. पिय (२, ३), ३. ऊजावति जाय (२, ३)।
१५६—१. कलिन (२, ३), मैं (२), ३. नैक (२, ३)।
१५७— १...१. उरि लागति (२), उरि लागत (३)।

१५३—मोह नींद = मोहनिद्रा। भोरहिं=तड़के, सबेरे।
१५४—कुलहित=कुल के लिए, कुल की गौरव रक्षा के लिए। अमी = अमृत।
१५५—सीबी='सीसी' शब्द, सिसकारी। परसत=स्पर्श करने पर, छूने पर। महत=महत्व।
१५६—कोक-कलन = रतिविद्याओं। दंपति=स्त्री-पुरुष का जोड़ा। अघात= तृप्त होते हैं।
१५७—घन=शरीर, बादल। सेत=गौर, श्वेत। असित=अश्वेत, काला, कुटिल।

ललन मुकुत[1] टूटत परे बाल हाथ कुच[2] आइ।
बूँद बचाये सिव मनौं सरसोरुह सिर लाइ ॥१५८॥

प्रौढा की विपरीत रति

टीका छुटि विपरीति[1] खिन[2] परयौ उरोजन[3] आइ[3]।
हाथ चलायौ ससि मनो कमल कली अरि पाइ ॥१५९॥
छिनिक लेति है सुरति सुख छिन[1] राचति बिपरीति[2]।
अध ऊरध पलटत रहै बिब्ब[2] कैतकी रीति[2] ॥१६०॥

प्रौढ़ा का सुरतात

ढुरकि परी कहुँ[1] उरबसी नख कुच सीस सुहाइ।
तरणि[2] छप्यौ मनु गिरि[3] सिखर द्वैज कला दरसाइ ॥१६१॥
जिन[1] अभरन साजे हते[2] करिबे को रस रंग।
तिनते अति छबि देत है स्वेद बुंद[2] तुव अंग ॥१६२॥

—*—

१५८—१. मुकुति (२, ३), २. कुछ (३)।
१५९—१. विपरीत (२, ३), २. खन (२, ३), ३...३. उरजनी आइ (३) न उरजन लाइ (१)।
१६०—१. छिनि (२), २. विपरीत (३), २. २. बिब कौतिकि की रीति (२) बिब कौतुक की रीति (३)।
१६१—१. किहि (३), २. तरुन (२, ३), ३, सिरि (२, ३)।
१६२—१. जे (२, ३), २, हुते (२, ३) २. बूँद (२, ३)।

१५८—मुकुत = मुक्ता, मोती। सरसीरुह=कमल।
१५९—विपरीति=दस प्रकार के रतिबधों में से दूसरा। कली= अप्राप्त यौवना, कलिका। अरि=शत्रु।
१६०—राचति=अनुरक्त होती है, रचती है। अध=नीचे। ऊरध=ऊपर। बिब्ब=दो। कैतकी=केवडा, एक फूल।
१६१—ढुरकि=झुक करी, ढुलक कर। छप्यौ=छिप गया। गिरि=पर्वत, बादल सिखर=चोटी, पहाड का सबसे ऊँचा भाग। द्वैज-कला=द्वितीया के चंद्रमा की कांति। उरबसी=एक आभूषण, एक अप्सरा, हृदय में बसी हुई।
१६२—स्वेद=पसीना।

पतिदुःखिता-वर्णन

इनि[1] भेदन मैं जो कोऊ रसभासा बिख्यात।
मुग्धा कुलटा हूँ[2] विषै सो पुनि[3] पायो जात ॥१६३॥

मूढपतिदुःखिता

अति मीठे अरु रस भरे लाल रसाल सुभाइ।
तनिक कचाई कठिनई प्रगट करति[1] है आइ ॥१६४॥

ललित सलोने ललन पै तजि गुरजन[1] की आनि[2]।
गरे लगति है आइ ज्यौं नेहप को पकवानि ॥१६५॥

बालपतिदुःखिता

बारे पिय के हाथ तिय राखति कुच पै लाइ।
कमलन पूजत शिव मनौ बली मदन को पाइ[1] ॥१६६॥

बृद्धपतिदुःखिता

धरति[1] न धीरज काम ते बृद्ध नाह[2] को पाइ।
बाल सेत[2] अवलोकि मुख बाल सेत ह्वै जाइ ॥१६७॥

१६३—१. इन (१), २ कुलटान्ह (२), ३. पुन (२, ३)।

१६४—१. करत (१)।

१६५—१. गुरुजन (३), २. आन (२, ३), ३. लगत (१) ४. पक्वान (२, ३)।

१६६—१. पाई (३)।

१६७—१. धरत (३) २. स्वेत (२, ३) ३. स्वेत (२, ३)।

१६३—रसभासा=साहित्य शास्त्र। कुलटा=वह कलंकिनी नायिका जो अनेक पुरुषों से प्रेम करती है। विषै=विवरण।

१६४—रसाल = आम, रसीला। सुभाइ=स्वभाव। कचाई=कच्चापन, अनुभवहीनता। कठिनई=कड़ापन, कठिनाई।

१६५—सलोने=सुंदर, नमकीन। गरे लगति=गले मिलती है। नेहप=प्रेम, तेल। पकवानि = घी या तेल मे तली हुई खाद्य वस्तु।

१६६—बारे=बाल, नादान। बली=बलवान।

१६७—बृद्ध=बूढ़ा, अधिक अवस्था का। सेत=सफेद।

मुग्धा तथा धीरादि का अन्तर

मुग्धा मैं जो मान को बरनत हैं कवि ल्याइ।
सो बिस्रब्ध नवोढ़ मैं आनि[1] कछू ठहराइ[1] ॥१६८॥

मान हेत धीरादि को यह जानत सब कोइ।
पै मुग्धा मैं कैसहूँ धीरादिक नहिं होइ ॥१६९॥

धीरादिक मैं मूल है विग्यादिक की टेक।
सो मुग्धा मैं होत नहिं विग्य अविग्य विवेक ॥१७०॥

धीरा खडिता का विवेक-प्रसग-वर्णन

मान हेत धीरादि अरु खंडिताहुँ[1] को जानु[2]।
तिन दुनहुन[3] के भेद मैं यह कवि करतु[4] बखानु[4] ॥१७१॥

लघु मध्यम[1] गुरु मान को सब[2] हेतन को पाइ।
धीरादिक के भेद सों होत तियन मो[3] आइ ॥१७२॥

हेत खंडिता को कहै सुरत[1] चिह्न ही जानि[1]।
तहाँ मिटै[2] गुरमान[3] हित धीरादिकहूँ आनि[4] ॥१७३॥

१६८—१...१. कहुं इक पायो जाइ (२, ३)।
१७१—१. खडित हूँ (२, ३) २. जान (२, ३), ३. दोनहु (२, ३) ४...४ करे बखान (२) ३. करत बखान (३)।
१७२—१. मझिम (२, ३) २. सुव (२, ३), ३. मैं (२, ३)।
१७३—१...१. सुगति चीन ही जान (२, ३), २. मिटे (२, ३), ३. गुरुमान (२, ३) ४. आन (२, ३)।

१६८—मान=नायक की किसी बात से नायिका का कृत्रिम क्रोध, अभिमान।
१६९—धीरादिक=धीरा आदि नायिकाएँ।
१७०—विग्यादिक=समझदार आदि, चतुर आदि। विग्य अविग्य=जान-अनजान। विवेक=यथार्थ ज्ञान, भले बुरे की पहचान।
१७१—दुनहुन=दोनों। बखानु=बखान, प्रशंसा, वर्णन।
१७२—गुरुमान=भारी सम्मान, प्रिय का मान।

पुनि धीरादिक साथ[1] मैं मिलै जो[2·] खंडित[·2] साथ।
सो यह मध्य[3] अधीर है यह जानत बुधिनाथ॥१७४॥

यासो[1·] कोइ इनहूँन[·1] मैं भेद धरति नहिं लाइ[2]।
कोउ धरे यहि[3] भाँति सों भिन्न[4·] भिन्न ठहराइ[·4]॥१७५॥

चिह्न हेत गुरमान के ते द्वै विधि जिय जानि[1]।
इक[2] साधारन दुतिय जिय असाधारनहिं[3·] मानि[·3]॥१७६॥

निहचै रति प्रगटै नहीं सो साधारण जोइ।
चिह्न असाधारन सु तो रति परगट करि[1] होइ॥१७७॥

पग[1·] छूटी[·1] दृग अरुनई अलसानादिक भेद।
ये साधारन चिह्न[2·] हैं जानि लेहु बिनु खेद॥१७८॥

दृगन पीक अंजन अधर नख रेखादिक और।
चिह्न असाधारन बिषै[1] बरनत कवि सिरमौर॥१७९॥

१७४—१. भेद (२, ३), २···२. खडिता (२, ३), २. मधिम (२, ३)।
१७५—१···१. याते कोइन दुहुन मैं (२, ३), २. आन (२, ३), ३. यह (२, ३), ४. भिन भिन सोइ बखान (३)।
१७६—१. जान (२, ३), २. यक (२, ३), ३. असाधारण मान (२, ३)।
१७७—१. कर (१)।
१७८—१ ··१. पाग छुटी (२, ३) २. चिह्नु (२)।
१७९—१. बिषे (१, २)।

१७४—बुधिनाथ=बुद्धिमान।
१७६—दुतिय=द्वितीय, दूसरा,। असाधारनहि=असाधारण ही। मानि=मानकर।
१७७—निहचै = निश्चय। सुतो = वह तो। परगट=प्रकट, स्पष्ट।
१७८—पग= सन कर। अलसानादिक = आलस्य आदि का। खेद=दुख, व्यथा।
१७९—पीक=घुले पान का रंग। सिरमौर=श्रेष्ठ, सिरताज।

सो इन द्वै बिधि चिह्न मैं[1] धरे आनि यहि टेक।
धीरादिक अरु[2] खंडिता याते लहै विवेक ॥१८०॥
साधारण चिन्है धरै हेत व्यंग को पाइ।
केवल वरनादिक[1] विषै यह मतु[2] समुझि बनाइ ॥१८१॥
चिन्ह असाधारण सु तो जानु[1] खंडिता हेत।
खंडित ही मैं धरतु[2] हैं जे कवि बुद्धि निकेत ॥१८२॥
जो कोउ यह परमान की साखी चहै बनाइ।
सो देखै रसमंजरी उदाहरन को जाइ ॥१८३॥

मध्या, प्रौढ़ा, धीरादि का भेद-वर्णन

मान भेद ते तीनि बिधि मध्या प्रौढ़ा होइ।
धीरा और अधीर तिय धीराधीरा जोइ ॥१८४॥
कोप करै[1] जो व्यंगजुत[2] सो धीरा जिय जानि[3]।
जो रिस करै[4..] अविग्र[..4] सो सो अधीर पहिचानि[5] ॥१८५॥
विग्य[1..] अविग्य[..1] दोऊ विषै[2] कोपै धीर अधीर।
मध्या प्रौढ़ा दुहुँन मैं यह बरनत[3] कवि धीर ॥१८६॥

१८०—१. से (३), २. यह (२, ३)।
१८१—१. धीरादिक (३), २. मन (२, ३), ३. बनाई (३)।
१८२—१. जान (२, ३), २. धरत (२, ३)।
१८५—१. करत (१), २. व्यग्यविधि (२, ३), ३. जान (२, ३)।
४...४. कै अव्यंग (२, ३), ५. पहिचान (२, ३)।
१८६—१...१. व्यग्य अव्यग्य (२, ३), २. विषे (१), ३. बरनै (१)।

१८०—टेक = हठ, आदत।
१८१—हेत=कारण। बरनादिक=वर्णन आदि का।
१८३—परमान=प्रमाण। साखी=साक्षी। रसमंजरी=आचार्य भानुदत्त कृत नायिका भेद का ग्रंथ।
१८४—जुत=युत।
८६—को करै = क्रोध करती है। कवि धीर=गंभीर कवि।

मध्याधीरादिक लक्षण

बिंग[1] बचन धीरा कहै प्रगट रिसाइ अधीर।
मध्या धीराधीर सों रोइ जनावै पीर॥१८७॥

रसमंजरी के मत से

धीरादिभेद साधारण सुरति चिह्न के उदाहरण

मध्याधीरा

चलत अलिनयुत कुंज पिय स्वेद चल्यौ[1] जो गात।
तेहि सुखवति हौं बात मैं लै पुरइन[2] को पात॥१८८॥

तुम अवसेरत मो दृगन गई जु नींद हिराइ।
सोइ लाल लागी मनो दृगन रावरे[1] आइ॥१८९॥

सिथिल अंग[1] पियरो बदन अंग अंग अलसात।
कौन माल[2] सों लाल तुम लरि आये हौ प्रात॥१९०॥

मध्याधीरा उदाहरण

कहूँ ठगे कितहूँ[1] खँगे अति सगबगे सनेह।
लाज पगे दृग रगमगे जगे कौन के गेह॥१९१॥

१८७—१. व्यग (२, ३)।
१८८—१. लस्यौ (१), २. नलिनी (२, ३)।
१८९—१. तिहारे (२, ३)।
१९०—१. गात (२, ३), २. बाल (२, ३)।
१९१—१. कहहूँ (२, ३)।

१८७—पीर=पीडा, दुख।

१८९—अवसेरत=कष्ट देती है, परेशान करती है। हिराइ=खो गई, भूल गई। लागी=लग गई, जुड गई, रावरे=आपके।

१९०—सिथिल=श्रम से थका हुआ। पियरो=पीला। माल=मल्ल, पहलवान। लरि आये=लडकर आये। गुंथ कर आये।

१९१—ठगे=धोखे से लुटे, छले हुए। खँगे=अनुरक्त हुए, अटक गये। सगबगे=चकित, सकपकाये हुए। सनेह=प्रेम, स्नेह, तेल। पगे=लिप्त हुए, निमग्न हुए। रगमगे=रंगरंजित, रंगमग्न।

लाल एक दृग अगिनि[1] ते जारि दियौ सिव[2] मैन।
करि ल्याये मो दहन को तुम द्वै पावक नैन ॥१६२॥

यही बड़ाई तुम लखो मेरे हिय[1] ठहराइ।
हाथ परत हौ और के पाय परत मो आइ ॥१६३॥

रीत सँजोगी बरन की राखत हौ सिरमौर।
गुरुताई यह[1·] मोहि दै[·1] मिले रहत हौ[2·] और[·2] ॥१६४॥

मध्याधीराअधीरा-उदाहरण

निसि बिछुरी कटु[1] बचन कहि यौं रोई लखि कंत।
औटि बोलि[2] उफनाइ[3] ज्यौं छीर चुवत है अंत ॥१६५॥

कत न बोलियत निठुर[1] के यौं पूछत गहि हाथ।
घन[2] अँसुवा घन बूँद लौं झरें बात के साथ ॥१६६॥

१६२—१. अग्नि (२, ३), २. शिव (१)।
१६३—१. ढिग (२, ३)।
१६४—१···१. दे और को (३), २···२. मो ओर (*३)।
१६५—१. कछु (२. ३), २. औटि (२, ३), ३. उफनाय (२, ३)।
१६६—१. ललन (२, ३), २. घनि (२, ३*)।

१६२—मैन=कामदेव। दहन=दाह। पावक=आग, अग्नि।
१६३—बड़ाई=बड़प्पन, महत्ता। लखि=देखकर। हाथ परत=हाथ पड़ते हो, पराये के वशीभूत होते हो। पाय परत=चरणों पर गिरते हो, दैन्य भाव से विनय करते हो।
१६४—सँजोगी=वह पुरुष जो अपनी प्रिया के साथ हो। गुरुताइ=गुरुता, महत्ता।
१६५—बिछुरी=जुदा हो गयी। कटु=कडुवा, अप्रिय। औटि=जलाकर। छीर= रस, दूध।
१६६—अँसुवा=सू, अश्रु। बात=वार्ता, बातचीत, हवा।

मध्याधीराअधीरा आकृति-गोपना

सादरा वर्णन

आकृति गोपन सादिरा[1] निज[1] निज मति के तंत।
मध्याधीर अधीर कौ प्रौढ़ा धीर कहंत ॥१९७॥
रीति[1] सो व्यंग्याविंग्य[1] की जामै[3] पाई जाति।
[4]मध्या धीराधीर ते[4] यातें सुभ ठहराति[5] ॥१९८॥

मध्याधीरअधीर आकृति-गोपना-उदाहरण

पिय बिनवत तू सुनत नहिं दयै[1] तूल सै[2] कान।
लाल बोर[3] हेरत न क्यौं दृग दुख देति निदान ॥१९९॥

मध्याधीराअधीरा सादरा

जे कहियत आदर बचन मधुर चीकने ल्याइ[1]।
बिष की[2] संकु[3] प्रकट करत सहत घीव इक[4] भाइ ॥२००॥

प्रौढाधीरादिक-लक्षण

धीरा रिस रति खिन[1] करै हनै अधीर रिसाइ।
प्रौढ़ा धीर अधीर रिस गोप हनै अनखाइ ॥२०१॥

१९७—१. सादरनि (२, ३), २. या (३)।

१९८—१. रीत (२, ३), २. व्यग्या व्यग्यइ (२, ३), ३. यामैं (२, ३), ४...४. मध्याधीर अधीर यह (२, ३), ५. ठहरात (२, ३)।

१९९—१. दियै (२, ३), २. मै (२, ३), ३. बोरि (२, ३)।

२००—१. लाइ (२, ३ ,२. के (१), ३. सग (१), ४. के (१)।

२०१—१. छिन (३)।

१९७—आकृति=रूप। गोपन=छिपाना, छिपाव। सादिरा=बाहर निकलनेवाली। तंत=उपाय। कहत=कथन।

१९८—सुभ=कल्याणप्रद, श्रेष्ठ।

१९९—बिनवत=विनय करता है। तूल=रूई। बोर=ओर, तरफ। निदान=अंतमे, आखीर।

२००—चीकने=स्निग्ध, स्नेहमय। संक=शंका, डर, भ्रम। सहत=शहद, मधु। घीव=घी, घृत।

२०१—हनै=मारता है, चोट पहुँचाता है। गोप=गले में पहनने का एक गहना। अनखाइ=रूठ कर, खीझ कर।

प्रौढाधीरा-उदाहरण

पिय आवत आदर कियो बोली कछु मुसुकाइ।
[१]"तनी कंचुकी के गहत धन भ्रू तानि बनाइ"[१] ॥२०२॥

दुरी गाँठि जो लाल हिय "[१]लखहु न काहू "[१]नाथ।
प्रगट बाल मधि गाँठ लौं भई गहत ही हाथ ॥२०३॥

प्रौढ़ाअधीरा-उदाहरण

पाग ढुरी पीरी खरी पिय मुख परी निहारि।
फूल छुरी कर मैं धरी अनख भरी झिझिकारि[१] ॥२०४॥

[१]"स्याम हारि कर नारि सों"[१] यौं छुटि लाग्यौ नाह।
मनु चंदन की[२] डार तें अहि तमाल तन[३] माह ॥२०५॥

प्रौढा धीराअधीरा-उदाहरण

नैन लाल तकि रिसभरी कछू न बोलति[१] बाल।
बाँह गहत ही लाल[२]· उर हनी तोरि उर माल·[२] ॥२०६॥

२०२—१...१. तनिक कचुकी गहत धन तानी भौह बनाइ (२, ३)।

२०३—१...१. लखी न केहू नाथ (२, ३)।

२०४ १. झझकारि (२, ३)।

२०५—१...१. हहा महा कर नारि तें (२, ३), २. के (२, ३), ३. तरु (२, ३)।

२०६—१. बोली (२, ३), २ ..२. उर हनी तनी तोरि कै माल (२, ३)।

२०२—तनी=बंधन, बंद। कंचुकी=चोली, अँगिया। तानि=खींचकर, तान कर।

२०३—उरी=दूर होना। गांठ=ग्रंथि, गठरी।

२०४—पाग=पगडी, चासनी। ढुरी=ढुलकी। पीरी=पीला। झिझकारी=झटकाकर। फूलछरी=फुलझडी एक तरह की आतिसबाजी जिसमें फूल जैसी चिनगारियां झडती हैं।

२०५—अहि=सर्प। तमाल=एक वृक्ष। तन=शरीर, देह।

२०६—हनी=मारा।

ज्येष्ठाकनिष्ठा-लक्षण

जाहि करत[1] पिय प्यार अति ताहि ज्येष्ठा नाम।
जापर कछु घटि प्यार है सो कनिष्ठका बाम ॥२०६॥

ज्येष्ठाकनिष्ठा-उदाहरण

किन विचित्र यह खेल बलि दीन्हौ[1] तुम्हहिं सिखाइ[1]।
मूठि मारि[2] वाके दृगन मो मुख मीडत धाइ ॥२०७॥
अधिक ठगी हौं रावरी लखि चतुराई नाथ।
इक दिखाइ ससि एक के हिये धरत[1] हौ हाथ ॥२०८॥

ज्येष्ठाकनिष्ठा के भेदों में से

धीरादि-कथन

धीर तु आदिक भेद षट[1] जे[1] बरने कवि जान।
ज्येष्ठ कनिष्ठ प्रकार तें द्वादस होत निदान ॥२०९॥
मुग्धा मैं है[1] भेद इन द्वादस भेदनि संग।
तेरह बिधि सुकियान[2] को[3] बरनत बुद्धि उतंग ॥२१०॥

स्वकीया पतिव्रता-भेद-कथन

सुकिया[1] और पतिव्रता मैं यह भेद विचारि।
वह सनेह यह भगति सों सेवति है निरधारि ॥२११॥

२०६—१. कहत, (२, ३)।
२०७—१. १···दीनौ तुमै बताइ (२,, ३), २. मूठि डारि (२, ३)।
२०८—१. धरति (१)।
२०९—१. १···जे षट (२, ३)।
२१०—१. के (२, ३), २. स्वकियान (३), (३), (१) है।
२११—१. स्वकिया (३)।

२०७—बलि=सखी। मीड़त=मीजती है।
२११—सेवति = सेवा करती है। निरधारि=निश्चय करके, सोच करके।

परपुरुषानुरागिनी

परकीया-उदाहरण

निज दुति देह दिखाइ कै हरै और के प्रान।
नेह चहति[1] निसि दिनि रहै सुंदरि दीप समान ॥२१२॥

परकीया के उभय भेद

ऊढा अनूढ़ा

ऊढ़ा ब्याही और सों करै और सों प्रीति।
बिनु ब्याही परपुरुष रत[1] यहै अनूढ़ा रीति ॥२१३॥

ऊढ़ा-उदाहरण

नैन[1] अचल चल मंज तिय दोऊ विधि मनरंज।
निज पति लागत कंज अरु उपपति लागत खंज[1] ॥२१४॥

सासु खरी[1] डाहति[1] रहै ननदी जुदी रिसाइ।
नेह लगत हरि सों सबै रूखी भईं बनाइ ॥२१५॥

अनूढा-यथा

रूखे होतेहु बासु लैं[1] चोरी देति जनाइ।
बिना चढ़े[2] सिर नेह ज्यौं[3] चढ़यौ[4] नेह सिर[4] आइ ॥२१६॥

ब्याह सुनति[1] उर दाह ते खरी होति[2] बेहाल।
नेह दही तैं ल्याइ[3] कै नेह दही, मैं बाल ॥२१७॥

२१२—१. चहत (१, २)।

२१३—१. रति (२, ३)।

२१४—१···१. निजपति लागति कुज अरु उपपति लागत खञ्ज।
नैन अचल चल मंज तिय दोऊ विधि मनरंज ॥

२१५—१···१ खडी डाढति (२, ३)।

२१६—१. बास लौ (२, ३), २. बढे (३), ३. जो (२, ३),
४···४. नेह चढ्यो सिर (२, ३)।

२१७—१. सुनत (१), २. होत (१), ३. लाइ (१)।

२१४—मंज=माज कर। मनरंज = मनोरंजन। कज=कमल। खज=लंगडा।

२१५—जुदी=अलग। रूखी=रूखापन लिये हुए, रुक्ष।

२१६—बिना चढे सिर नेह=सिर पर बिना तेल चढे ही, तेल चढाना एक वैवाहिक कृत्य है अतः तेल चढना का अर्थ है विवाह, बिना विवाह हुए ही। चढ़यौ नेह सिर=सिर पर प्रेम सवार हो गया।

२१७—दही=जलीहुई, दधि; दाहना।

लरिकाई सबते भली जामै फिरिहि निसंक।
अब आई यह वैस जँह निकसत लगै कलंक ॥२१८॥

द्वितीय भेद

असाध्या परकीया-लक्षण

पुन परकीया उभै बिधि बरनत हैं कवि लोइ।
एक असाध्या दूसरी[1] सुखसाध्या[2] जिय जोइ[3] ॥२१९॥
प्रेम लगै नहिं मिलि सकै सोइ असाध्या जानि।
चहै मिलन जो सहज ही ते[1] सुखसाध्या मानि ॥२२०॥
बुधिबल मन की लाग कौ प्रगट दोष ठहराइ[1]।
प्रकीया ही मैं धरै असाध्यादि कौं लाइ ॥२२१॥
कोउ असाध्यादिकन को बरनत तीनि प्रकार।
प्रथम असाध्य दुसाध्य अरु सुखसाध्या निरधार ॥२२२॥
दुतिय[1] असाध्य दुसाध्य है धरम सभीता आदि।
वृद्ध बधू आदिक रहत[2] सुखसाध्या कवि बादि ॥२२३॥

असाध्या परकीया

प्रथम भेद-सभीता असाध्या

अधर धरै किन[1] पै नहीं[1] अपनो धर्म[2] गँवाइ।
बंसी लौं तजि बंस कौं मोहन मिलिहौं जाइ ॥२२४॥

२१८—द्वितीय पक्ति है ही नहीं (२, ३)।
२१९—१. दूसरे (१), २. सध्या (१), ३. ज्योइ (२, ३)।
२२०—१. तिय (२, ३)।
२२१—१. बहराइ (२, ३)।
२२३—१. बहुरि (२, ३), २. कहै (२, ३)।
२२४—१···१. कित ऐ नही (२, ३), २. धरम (२, ३)।

२१८—वैस=वयस, उम्र।
२१९—उभै=दोनों। लोइ=लोग।
२२१—लाग=लगाव, प्रेम, लगन, उपाय।
२२३—वृद्ध वधू=बूढ़े की पत्नी। बादि=कहते हैं।
२२४—बंसी लौं=बाँसुरी सी। बंस = बाँस, कुल।

द्वितीय भेद

गुरुजनसभीता-असाध्या

स्याम मधुप निसि दिन बसै हिये तामरस माहिं[1]
गुरुजन डर[2] दुरजन भये[3] देखन देत[4] न छाहिं[5] ॥२२५॥

तृतीय भेद

दूतीवर्जिता-असाध्या

जो निज हियहूँ सो कहति[1] मो जिय खरो डराइ।
सो अन्तर दुख और सों कहौं[2] कवनि[3] बिधि जाइ ॥२२६॥

चतुर्थ भेद

अतिकाता असाध्या

सजल स्याम निसि स्याम मैं सेत जोनि[1] मैं बाल।
दुहु पटधनु[2] मैं तन तड़ित कैहू दुरति[3] न लाल ॥२२७॥

पंचम भेद

खलपृष्ठ असाध्या

समुझि बोलिये बात[1] यह खरो चवाई गाँउ[2]।
नाउ लेत हरि को अली हर मैं दीजत पाँउ[3] ॥२२८॥

२२५—१. माह (१), २. अरु (३), ३. भयउ (१), ४. देख (२, ३), ५. छाह (१)।

२२६—१. कहत (२, ३), २. कहो (२, ३), ३. कौन (१)।

२२७—१. जोन्ह मै (१), २. पटधन (२, ३), ३. दुरत (१)।

२२८—१. बाह (२, ३), २. गाव (२, ३), ३. पाँव (२, ३)।

२२५—तामरस=कमल, सुवर्ण। छाहिं = छाया।

२२६—खरो=स्पष्ट, भारी, खरी।

२२७—जोनि=ज्योत्स्ना, जोह्न, चाँदनी। पटधनु=इन्द्रधनुष के समान रंगीन। दुरति=छिपती है।

२२८—हरि=श्रीकृष्ण, प्रिय, नायक। हरमें दीजत पाँड = हल में पाँव दे दिया जाता है। हल का निर्माण काठ से होता है और मध्यकाल में काठ के दो कुन्दों के बीच अपराधी का पैर डालकर कस दिया जाता था। मु० काठ में पाँव देना=एक प्रकार का मध्यकालिक दण्ड विधान।

सुखसाध्या

प्रथम भेद-वृद्धबधू सुखसाध्या

वृद्ध कामिनी काम ते सुनहु[1] धाम मैं पाइ।
नेवर झमकावत[2] फिरै देवर के ढिग जाइ ॥२२९॥

द्वितीय भेद

बालबधू सुखसाध्या

जो छतियाँ बारे ललै नहिं दरसीं[1] कर लाइ।
चहति परोसी हाथ ते खरी मसोसी जाइ ॥२३०॥

तृतीय भेद

नपुंसकबधू-सुखसाध्या

तुम साँचो[1] बिर रतिक ते सुत[2] उपजै जेहि[3] आइ।
नाम हेत फल माँगिये पति[4] देवतन मनाइ ॥२३१॥

चतुर्थ भेद

विधवाबधू सुखसाध्या

ओप भरी निज रूप छबि देखत दरपन माँह।
रोइ नाह की[1] काम के हाथ गहाई बाँह ॥२३२॥
काह[1] भयो[2] नथ[3] लौ तजे सब[4] सिंगार जो[5] बाम।
तुव[6] तन तजहि[7] न नेकहू मन हरिबे को काम ॥२३३॥

२२९—१. सून (२, ३), २. झनकावति (२, ३)।
२३०—१. परसों (२, ३), ३. चहत (१)।
२३१—१. बाँचौं (१), २. सुख (३), ३. गज (१), ४. पिय (१)।
२३२—१. के (२, ३)।
२३३—१. कहाँ (२, ३), २. भये (२, ३), ३. नख (२, ३), ४. यहि (१), ५. के (१), ६. तू (१), ७. असति (२, ३)।

२२९—नेवर=नूपुर, पैर के अँगूठे मे पहना जानेवाला घुँघरूदार आभूषण।
२३०—बारे=बालेपन में, छोटी उम्र मे। ललै = लाल को, अल्पवयस्क नायक को। दरसीं=दिखीं। कर लाइ=हाथ लगाकर। मसोसी=ऐंठी।
२३१—बिर=बीर, सखी, कान का एक गहना। फल=संतान, कर्म, परिणाम।
२३२—ओप=कांति, चमक।

पंचम भेद

गुनीबधू-सुखसाध्या

बाँकी तानन गाइ कै टाँकी सी हिय देइ।
ढाँको छतियाँ को कछू झाँकी दै जिय लेइ ॥२३४॥
गावति[1] है सुरताल सों[2] नागरि ढोल बजाइ।
स्रुति धारन के मन रही[3] तारन माँहि[4] नचाइ ॥२३५॥

षष्ठ भेद

गुनरिझावती-सुखसाध्या

होत राग बस[1] एक यह सब जग जानत ऐन।
ये रागहु बसि करति है उलरि[2] ऐन तिय नैन ॥२३६॥
या रमनी की बात कछु मन समझी नहिं जाइ।
रीझि[1] रही[2] है बीन सुनि कै परबीन रिझाइ ॥२३७॥

सप्तम भेद

सेवकबधू-सुखसाध्या

बिकल होनि नहिं देउँगी[1] अपने[2] प्रभु को जीय।
दिनि सेवा करि पिय अरु[3] निसि सेवा करि तीय ॥२३८॥

२३५—१. गावत (२, ३), २. मों (२, ३), ३. रहै (१), ४. माह (१)।
२३६—१. बसि (२, ३), २. उलटि (२, ३)।
२३७—१. रीझ (२, ३), २. रहै (२, ३)।
२३८—१. देहुँगी (३), २. दिन (३), ३. पगु (२, ३)।

२३४—टाँकी=लोहे का एक औजार जिससे पत्थर काटा जाता है। झाँकी=दर्शन, अपूर्ण दर्शन, झलक।
२३६—उलरि=नीचे ऊपर होकर। ऐन=स्पष्ट, सरासर, साफ-साफ।
२३७—परबीन=प्रवीण, दक्ष, दूसरे की बीन।

अष्टम भेद

निरकुंस-सुखसाध्या

जोबनवन्ती[1] जो न डरु पिय को माने नैक।
और तिया छल छंद पढ़ि गावैं तान अनेक ॥२३९॥
देवन पूजन जाहि अरु करै[1] बाग[2] को सैल।
औ निरअंकुस नारि जे[3] फिरै तियन की गैल ॥२४०॥
जेहि[1] पिय अटक्यौ[2] और सों अति रोगी को नारि।
और दूसरी बात यह सुखसाध्या निरधारि ॥२४१॥

परकीया के दो भेद और नाम

लक्षण-कथन

ऊढ़ अनूढ़ा दुहुन मैं ये द्वै भेद बिचारि।
पहिले अदभूता बहुरि उदभूदिता निहारि ॥२४२॥
मिलन पेच अपने करै अदभूता[1] तिहि जानि[2]।
जो नायक पेचनि मिलै उदभूदिता[3] बखानि[4] ॥२४३॥

अदभूता-उदाहरण

एते हैं रँग लाल ते करै न कौन[1] उपाइ[2]।
बिनु[3] पीतमबर पीर[4] नहिं इन आँखिन की जाइ ॥२४४॥

२३९—१. जोबनवती (२), २. उर (१)।
२४०—१. करहि (२, ३), २. बनहि (२, ३), ३. जो (१)।
२४१—१. जिहि (२, ३), २. अटको (१)।
२४३—१. अदभूत (१), २. जान (२, ३), ३. अदभूदिता (१), ४. बखान (२, ३)।
२४४—१. कोऊ (२, ३) २. पाइ (२, ३), ३. बिन (१) ४. बरनि (२, ३)।

२३९—जोबनवन्ती=यौवनवती, यौवना। छल-छंद=छलकपट।
२४०—सैल=सैर, भ्रमण। गैल=गली, रास्ता।
२४३—पेच=चाल, फरेब।
२४४—पीतमबर=पीताम्बर, पीतावस्त्र, प्रिय का बरदान, अच्छा प्रीतम। पीर= पीड़ा, व्यथा, दर्द।

नायिका स्वयदूती

मो अँगिया तन तकि रहे क्यौं हरि दीठि[1] लगाइ।
जौ नीकौ है तो तुमैं दैंहौं आजु पठाइ ॥२४५॥

सुधि न लेति यहि[1] बाग की मालिबहू[2] रिस ठानि[3]।
बनमाली क्यौं थभि रहे कृपा कीजिए आनि ॥२४६॥

उद्भूदिता–उदाहरण

दीपक लौं काँपति[1] हुती ललन होति[2] जँह[3] बात।
तहीं[4] चलत अब फूल लौं बिगसन लाग्यौ[5] गात ॥२४७॥

अवस्था भेद के अनुसार

षट बिधि परकीया–कथन

उद्बुद्धादिक[1] दुहुन मैं यै गुपुतादिक जानि[2]।
ते सब षट बिधि होत हैं यह सब[3] करत बखान ॥२४८॥

गुप्त[1] सुरति गोपन करै भयो होइगो होत।
करै विदग्धा चतुरई निज क्रम माँझ उदोत ॥२४९॥

जाको हित पर पुरुष सौं प्रकट होइ[1] अनयास[1]।
वहै लच्छिता सो त्रिविध हेत[2] सुरति परकास ॥२५०॥

२४५—दीठ (२, ३)।
२४६—१. या (२. ३), २. मालिहू (२, ३), ३. मानि (२, ३)।
२४७—१. झाँपति (३) २. होत (१), ३. यह (३) ४. ताहि (२) नाहिं (३), ५. लागै (१)।
२४८—१. उदभूतादिक (२, ३) २. जानि (२, ३) ३. कवि (२, ३)।
२४९—१. गुपति (२, ३)।
२५०—१. वहोत अन्यास (२, ३), २. होत (३)।

२४५—तन=ओर।
२४६—मालिबहू=माली की वधू। बनमाली = श्रीकृष्ण।
२४७—तहीं=वहीं।

कुलटा ताको जानिये जो चाहै बहु मित्र।
इच्छा बात भये मुदित मुदिता को यह चित्र ॥२५१॥
बिनसै ठौर सहेट कौ[1] अरु सँकेत सन्देह।
जाइ न समै सँकेत तिहु[2] दुख अनसैना एह ॥२५२॥

प्रथम भेद

वर्त्तमान सुरतिगोपना—उदाहरण

अलि हौं गुंजन हित गई कुञ्जन पुञ्जन आजु[1]।
कंट लगे[2] बस्तर[2] फटे अंग कटे बिनु काजु[3] ॥२५३॥

प्रत्यक्षमान सुरति गोपना—उदाहरण

हौं न जाउँगी कैसेहूँ फूल लैन को बाग।
मलिन[1] होइगो गात यह लागे पुहुप पराग ॥२५४॥

वृतवृत्त क्षमामान

सुरतिगोपना—उदाहरण

जेहि[1] गुंजन तोरत[2] परे[2] ये खरोंट तन आइ[3]।
कहा करो अब ल्याइहौं[3] फिरि तेरे हित जाइ ॥२५५॥

२५२—१. सँकेत के (२, ३), २. तिहि (२, ३)।
२५३—१. आज (१), २…२. अटे वसत्तर (२, ३), ३. काज (१)।
२५४—१. मरन न (२), मालन (२)।
२५५—१. जिहि (२, ३), २…२. तोरति परी (२, ३), ३. पाइ (२, ३), ४. लाइहौं (१)।

२५१—इच्छा=मन की, अनुकूल, इच्छित।
२५२—ठौर = स्थान, जगह। सहेट=संकेत, प्रेमी-प्रेमिका के मिलने का निश्चित स्थान, सकेत स्थान। सँकेत=तग, संकट, इशारा। अनसैना= अनुशयाना। एह = यह।
२५३—गुंजन = घुघुँची। कुंजन=लता आदि से ढका हुआ स्थान। पुंजन= समूह। कंट लगे=काँटे लगने से। बस्तर=वस्त्र।
२५४—पुहुप=पुष्प, फूल। पराग=पुष्परज।
२५५—खरोंट=खरोंच, काँटे आदि से तन के छिल जाने का निशान।

वर्तमान सुरतिगोपना—उदाहरण

रे यह ढोटा कौन को मेरो मही चुराइ[1]।
मुँह सुँघाइ कै आपनो साह भयौ है जाइ ॥२५६॥

बड़ो अनोखो छोहरो देखौ[1] री यह आनि।
मेरी नीबो पाँति[2] जिनि तोरी गेंदा जानि ॥२५७॥

है अचेत यह[1] चेत[1] मैं गई हुती[2] बौराइ।
प्रेम[3] जानि इन हेत कै झारयौ मोहि बनाइ ॥२५८॥

लखति[1] कहा हौ सो न जौ[2] करि काहू[3] सो मीति।
उदर लगावत नेह मिसि रचि राख्यो बिपरीति[4] ॥२५९॥

द्वितीय भेद—विदग्धा

उसमें स्वयंदूती—बचन

विदग्धा-विवेक-कथन

घर है बचन विदग्ध अरु स्वयंदूति[1] कौ एक।
याते है इन दुहुन मैं करिबो कठिन बिबेक ॥२६०॥

यही बात को समुझि कै कवि अपने मन माहिं।
जो राखति[1] हैं एक को दूजी राखत नाहिं ॥२६१॥

२५६—१. चोराइ (१)।
२५७—१. देखो (२, ३), २. पीत (२, ३)।
२५८—१ ··१. या खेत (२, ३), २. हती (१), ३. प्रेत (२, ३)।
२५९—१. लगत (१), २. नहीं (२, ३), ३. कान्ह (२), ४. प्रीति (२, ३), ५. वेपरिति (२, ३)।
२६०—१. स्वयदूत (१)।
२६१—१. राखत (१)।

२५६—ढोटा=पुत्र, बेटा, बालक। मही=मट्ठा, छाछ। साह=साधु, साव, सच्चा।
२५७—छोहरो=छोकरा, लड़का। नीबी=फुफती।
२५८—चेत=होश चैत, चित्त, मन।

जिन[1] राख्यो है दुहुन को तिनकर[2] यहै बिचार।
इन दुहुनन कै भेद मैं यह कीन्हौं विस्तार[3] ॥२६२॥
जो तिय सैन सँकेत की करैं मीत को कोइ[1]।
काहू को दै बोच तौ बचन विदग्धा होइ ॥२६३॥
करै सैन संकेत वा रचै नई[1] जो प्रीति।
नित[2] अंतर तिय पुरुष सों स्वयंदूति[3] विधि[3] रीति ॥२६४॥
क्रिय विदग्ध अरु बोध कौ याही बिधि मिलि जात।
तिनि दुनहुन[1] के भैद मैं जानि लेहु यह बात ॥२६५॥
क्रियबिदग्ध करि चतुरई करै आपनौ[1] काम।
सैन बुझावै करि क्रिया सो बोधक अभिराम ॥२६६॥

बिदग्धा में वचनविदग्धा-उदाहरण

रे रंगिया करि राखिहौं[1] सकल रंग के[2] काज[2]।
साँझ परे हौं आइहौं स्याम बसन को[3] आज ॥२६७॥
स्याम बार पग परत सुनु[1] बाम कह्यौ[2] मुसुकाइ।
लगो न नेह उठाइतौ[3] निसि लौं नेह सुखाइ ॥२६८॥

२६२—१. जो (२, ३), २. तिन करि (२, ३), ३. निस्तार(३)।
२६३—१. जाइ (२, ३)।
२६४—१. जाइ (२, ३), २. बिन (२, ३), ३...३. स्वयदूतिका (२, ३)।
२६५—१. दोनों के (२, ३)।
२६६—१. आपने (१)।
२६७—१. राखियो (२, ३), २...२. को साज (२, ३)। ३. के (२, ३)।
२६८—१. सुन (२, ३), २. कह्यौ (१), ३. लुटायहौं (१, ३)।

२६२—तिनकर=उनका।
२६५—भैद=भेद।
२६६—क्रिया=चेष्टा, कर्म। बोधक=बोध करनेवाला, शृंगार रस का एक हाव।
२६७—रंगिया=रँगाई का काम करनेवाला। बसन=वस्त्र, निवास।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण

थाकित भई हौं हाल हीं लखि चरित्र यहि[1] बाल।
डारि उरबसी लाल की लखै उरबसी लाल ॥२६९॥
खिनि[1] खिनि[1] घटिको काढ़ि तीय[2] मुरि मुरि लखि लखि नाहिं।
कूप सलिल घट मैं[3] भरै कूप सलिल घट माहिं ॥२७०॥

क्रियाविदग्धा

पतिवंचिता-लक्षण

पति देखति ही होय जो उपपति के रसलीन।
ताहि कहत पतिवंचिता जे[1] पंडित परबीन ॥२७१॥
रोग ठानि कै ढीठ तिय निपुन वैद करि ईठि[1]।
बैठी पति सों पीठि दै जोरि ईठि[2] सों दीठि ॥२७२॥

क्रियाविदग्धा मे दूतीवंचिता

दूती सों सब तूति[1] करि मिलै न ताहि जताइ।
सोइ वंचिता दूतिका यह बरनत कविराइ ॥२७३॥

उदाहरण

दूतिहिं जो छलि आपुते मो सँग ल्यायौ[1] नेह।
तू अछेह इन[2] चतुरई अति कीन्हौ हिय[2] गेह ॥२७४॥

२६९—१. ये (२, ३)।

२७०—१…१. खन खन (१), २. घटका काढियत (२, ३), ३. सें (२, ३)।

२७१—१. ते (२, ३)।

२७२—१. पीठ (२. ३), २. पीठि (२, ३)।

२७३—१. तन (१) दूसरी पक्ति (२, ३) नहीं है।

२७४—१…१. दूती छलि जो आय तू मो सग लायो (२, ३)।
२…२. पन आन कै कियो हिये मे गेह (२, ३)।

२६९—उरबसी=एक भूषण, हृदय मे बसनेवाली।

२७०—कूप=कुँआ। घट=घडा, हृदय। सलिल=जल, अश्रु।

२७२—ईठि=इष्ट, अभीष्ट, जिसकी चाह हो। पीठि दै=पीठ फेरकर। दीठि=दृष्टि, नजर।

२७३—तूति=करतूत, तत्व, रहस्य, उपाय।

२७४—अछेह=अत्यधिक।

बारेन[1] की मति ते भई बूढ़िन की मति नीच।
बीच पारि[2] कै मोहिं इन मो सो पारयौ बीच ॥२७५॥

तृतीय भेद-लच्छिता

उसमे हेतुलच्छिता

तेरि'[1] ओर'[1] चितवत हि जब[2] हरि दीन्हौं[3] मुसुकाइ।
तूँ कत रदन धरे अधर दीजै भेद[4] बताइ ॥२७६॥

सुरतिलच्छिता-उदाहरण

को है माली चतुर जिन[1] सरस सींचि रस जाल।
या कंचन की बेलि[2] मैं[3] मुकुत[4] लगाये लाल ॥२७७॥

कौन महावत जोर जिन[1] बसि[2] करिबे की[3] चाइ।
तुव जोबन गज कुंभ पै अंकुस दीन्हौं[4] आइ ॥२७८॥

प्रकाशलच्छिता-उदाहरण

प्रगट भई तुव[1] रूप की नेह लगत ही जोति।
सब जग जानत नेह ते बालन सोभा होति ॥२७९॥

२७५—१. वा बिन (२, ३), २. पाइ (२, ३)।
२७६—१···१. तोहि उठि (२, ३), २. जबै (२, ३), ३. दीनो (२, ३), ४. मोहि (२, ३)।
२७७—१. जो (२, ३), २. कै बेल (२, ३), ३. मे (२, ३)। ४. मुक्ति (२, ३)।
२७८—१. सो (२, ३), २. बस (२, ३), ३. के (२, ३), ४. दीनौं (२, ३)।
२७९—१. तूॅ (१)।

२७५—बारेन की=छोटों की। पारि=डालकर। पारयो बीच=अलगाव किया।
२७६—रदन=दाँत।
२७८—महावत=हाथीवान। चाइ=चाव।

प्रकाशलक्षिता–द्वितीय मत से

जेहि कारो पट पीयरो सो मेरो[1] मन माहिं[2]।
आवत[3] लोगनि के बदन कारी पीरी छाहिं[4] ॥२८०॥

चतुर्थ भेद-कुलटा उदाहरण

बिधि सुनार अद्भुत गढ़ी तिय की सुबरन देह।
जेहि अनेक नग जटन कौ[1] तुलित एक ही गेह ॥२८१॥

पति समान सब जग बसै कामवती मन माहिं[1]।
ज्यौं मुद्राज सिल मैं सबै होत भोर की छाँहिं[2] ॥२८२॥

पंचम भेद

मुदिता–उदाहरण

कालिह[1] ननद घर काज है जैहैं सब मिलि प्रात।
चलत बात यह फूल सो[2] फूलि गयौ[4] सब गात ॥२८३॥

बधू रहै घर हम चलैं चलत[1] बात रसलीन।
तरकी[2] कदली पात[3] लौं[4] तिय कंचुकी नवीन ॥२८४॥

२८०—१. मेरे (२), २. माह (१), ३. आवति (३), ४. छाँह (१)।
२८१—१. के (३)।
२८२—१. माह (३), २. छाँह (१)।
२८३—१. कालि (३), २. मो (३), ३. फूल (३), ४. लग्यौ (२, ३)।
२८४—१. चलति (१), २. भरकी (२, ३), ३. पत्र (३) ४. लो (२, ३)।

२८०—पीयरो—पीला, (पति)। कारी पीरी छाँहि=काली-पीली छाया पड़ना।
२८१—तुलित=तुल्य, समान, सदृश। गेह=घर, मकान।
२८२—मुद्राजसिल=पत्थर का वह टुकड़ा जो बहुत चमकीला हो या जिसपर मीनाकारी की गई (?) हो।
२८३—कालिह = आने वाला कल। फूलिगयौ=खिलगया, प्रफुल्लित हो गया।
२८४—तरकी=तड़क गई, फट गई। कदली पात=केले का पत्ता।

षष्ठ भेद–अनुसैना मध्यम

उसमें प्रथम भेद–स्थानविघटना उदाहरण

बन बीतत बीतो[1]· जो कछु कहो जात सो न हाल·[1]।
ऊख·[2] ऊँखारति निपटहीं·[2] सूखि गयो मुख बाल ॥२८५॥

पावस देन सराहिये[1] पति ऊपर पति सोइ।
दीबो कौन बसंत को जो दीन्हौं[2] पति जोइ[3] ॥२८६॥

द्वितीय भेद

भाव संकेतमोच्चिता उदाहरण

करि उजारि[1] नैहर चली सोचत कौन सुभाइ।
दैंउ जाइ ससुरारि के ऊजर गेहु[2] बसाइ ॥२८७॥

फूल माल[1] मो करि चितै तू कत भई उदास।
कहा भयो तू[2] सासुरे जो फुलवारी पास ॥२८८॥

तृतीय भेद–अनुसयना

उसमें प्रथम भेद–स्थानाधिष्ठित संकेत रचनानुगवन

तीसरि[1]· अनुसैना·[1] विषै[2] प्रथम भेद बह गाइ।
मीत गयो संकेत धन[3]· सकत न केहू·[3] जाइ ॥२८९॥

२८५—१···१. बीत्यो जु कछु कह्यौ जात सु न हाल (२, ३), २···२. ऊखहि उखरत निपटहीं (२, ३)।

२८६—१. सराप अलि (२, ३), २. दीनो (२, ३), ३. ग्वोइ (२, ३)।

२८७—१. उजोरि (१), २. गेह (१)।

२८८—१. मूल (३), २. वॉ (३)।

२८९—१···१. तीजो अनुसयना (२, ३), २. विपे (३) ३···३. तिय सकत न तंह जाइ (२, ३)।

२८५—बन = रूई। निपटहीं=बिलकुल, सर्वथा।

२८६—पति=स्वामी, मालिक। पति=लज्जा। जोइ = स्त्री, देखकर।

२८७—करि उजारि=उजाड़ करके, बियाबान करके। ऊजर=उजड़ा हुआ।

२८८—कहा=क्या।

२८९—अनुसैना=वह परकीया नायिका जो प्रिय के मिलने का स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो। धन=स्त्री, बधू। केहूँ = किसी प्रकार भी।

गुहत[1] माल नँदलाल जेहि काल सुनी बन[1] जात।
मदन ज्वाल की जालते[2] छयो बाल को गात ॥२६०॥
बंसी लै[1] मनु मीन कौ[3] खींचत बंसी टेरि।
निकसि चलनि को धाम[4] तें वा मन पावत फेरि ॥२६१॥

द्वितीय भेद स्थानाधिष्ठित संकेत

वर्णावनुगवन अनुसयना

पुनि अनुसयना त्रितिय मैं इहै[1] भेदि कहि [1]जाइ।
जो पिय पास सँकेत के[2] चिह्न लखे पछिताइ ॥२६२॥

उदाहरण

घरी टरी न टरी कहूँ सोचन[1] भरी विसेखि।
परी छुरी सी ह्वै[2] रही हरी छुरी करि देखि ॥२६३॥
फूलछरी संकेत की मोहन कर मैं पाइ[1]।
अवसर चूकी[2] डोमनी सौं[3] रमनी पछताइ[4] ॥२६४॥

पिय मनोरथा

नैन चहै मुख[1] देखिये मनसौं कछू दुराइ।
मन चाहत दृग मूँदि कै लीजै हिये लगाइ ॥२६५॥

२६०—१...१. गुहत माला नँदलाल जिहि काल सुने बन जात (३), २. ज्वाल सों (२, ३)।
२६१—१. लो (२, ३), २. मन (२, ३), ३. को (३), ४. धाम (३)।
२६२—१...१. भेद दूसरो आइ (३), २. कों (३)।
२६३—१. सोचत (१), २. ह्वौ (१)।
२६४—१. पाय (३), २. चूके (३), ३. त्यों (२, ३) ४. पछताय (३)।
२६५—१. सुख (२, ३)।

२६०—छयो = छीज गया, कृश हो गया।
२६१—बसी=मछली फँसाने का काँटा। बंसी=बासुरी। वा मन=उसका मन।
२६२—त्रितीय=तीसरा।
२६३—घरी=घडी, घटा, समय।
२६४—छरी=छडी। डोमनी = एक जाति की स्त्री जिसका पेशा मांगलिक अवसरों पर गाना बजाना है, गौनहारिन। अवसर चूकी = ठीक समय पर ताल देने मे जो चूक गई।
२६५—चहै=चाहता है। दुराइ=छिपाकर।

परकीया का सुरतारंभ

मो कर दोऊ भरि दिये मनचीते फलु[1] आजु।
अलप वृच्छ की छाँह इनि[2] किन्हें[3] कलपतरु काजु ॥२९६॥

बैन[1] मिलत मुख में बसी मुखु[2] बोलत हिय आइ।
हिय लावत कछु सुधि नहीं कित गइ लाज लगाइ[3] ॥२९७॥

परकीया की सुरति

यौं[1] सँकेत सुख लखत[2] हरि पिय आतुर गरि ल्याइ[3]।
ज्यौं चोरी गुर पाइ[4] कै तुरत लीजिये खाइ ॥२९८॥

राधा तन फूलन मिल्यौ[1] पातन[2] हरि गो गात।
नूपुर धुनि खग धुनि मिली भले बने सब भाँत[3] ॥२९९॥

परकीया का सुरतांत

फूल माल सो बाल जो मैं ल्याइ[1] उभराइ।
ऐसी अंग लगाइ सो कत डारी कुँभिलाइ ॥३००॥

२९६—१. फल (२, ३), २. इन (१), ३. किये (२, ३)।
२९७—१. बेन (१), २. मुख (२, ३), ३. भगाइ (२, ३)।
२९८—१. यो (१), २. लेत (२, ३), ३. लाइ (२, ३), ४. पाय (२, ३)।
२९९—१. मिलो (२, ३), २. या तन (३), ३. सात (२, ३)।
३००—१. लाइ (१)।

२९६—मनचीते=मनचाहा। अलप=अल्प, थोड़ा। कलपतरु=कल्पतरु, समुद्र-मंथन से निकले चौदह रत्नों मे से एक जिससे की गई सभी याचनाएँ पूर्ण होती है।

२९७—बैन=वचन,। सुधि=स्मरण, चेत, याद।

२९८—गुर = गुड़।

२९९—मिल्यौ=मिल गया। नूपुर धुनि=नुपुर की ध्वनि। भले बने=अच्छे बन गये।

३००—उभराइ=उभाड़ कर। डारी=डाली।

पट झारति[1] पोंछति[2] बदन सुंदरि दरपन हेरि।
दूती सों अनुखाति है लाजवती दृग फेरि ॥२०१॥
सब जग हारयौ ये[1] अलख काहू को न लखात।
कुंजन मैं रति के दोऊ पंछी लौं[2] उड़ि जात ॥२०२॥

स्वकीया-परकीया

बिना नेम कथन

सुकिया[1] परकीया दोऊ बिना नेम परमान।
कामवती अनुरागिनी प्रेम असकता[2] जान ॥२०३॥

कामवती उदाहरन

कत मो कर लावत कुचनि[1] कत गहियत लपटाय[2]।
आली चाटे ओस[3] के कैसै ताप[4] बुझाय[5] ॥२०४॥

२०१—१. झारत (१), २. पोछत (१)।
२०२—१. पै (२, ३), २. लौं (२, ३)।
२०३—१. स्वकिया (२, ३), २. असक्ता (२, ३)।
२०४—१. कुचन (२, ३), २. लपटात (२, ३), ३. वोस (१), ४. प्यास (२, ३), ५. बुझात (२, ३)।

२०१—हेरि=देखकर, ताककर। अनुखाति=क्रोध करती है, रुष्ट होती है। लाजवती=लज्जाशील नायिका।

२०२—अलख=जो न देखा जा सके। हारयौ=हार गया। काहूको=किसी को। मैं=मे।

२०३—सुकिया=स्वकीया, विनय आदि गुणो से युक्त, गृहकर्म परायण, पतिव्रता स्त्री। शील, संकोच, स्नेह, सौजन्य और सौंदर्य आदि गुणो से युक्त सती, पार्वती और सीता के समान मन, वचन और कर्म से प्रेम करनेवाली स्त्री। परकीया=पति के रहते दूसरे पुरुष से सबंध रखनेवाली नायिका। नेम=नियम, कायदा। असकता=आसक्त, अनुरक्त, लीन, मोहित।

२०४—गहियत=पकड़ते हो, ग्रहण करते हो। ओस=वायु मंडल मे मिली हुई भाप जो रात की सरदी से ठंढी होकर जलबिंदु के रूप मे पदार्थों पर लग जाती है, शबनम।

अनुरागिनी-उदाहरण

पिय कुंडल को चिह्न जो परयौ बाल की बाँह।
खिन चूमति, खिन लखि रहत खिन लावत उर माँह ॥२०५॥

नाइ नाइ जेहि[1] चषक में मधु पिय दयो[1] पियाइ।
बार बार तिय[2] चखति है तेहि[3] अधरनि पै[4] ल्याइ[5] ॥२०६॥

प्रेमआसक्ता उदाहरण

ये रस लोभी दृग सदा रोके हूँ अकुलाइ।
मन भावन मुख कमल लखि परत भँवर[1] लौं धाइ[1] ॥२०७॥

हरि लखि इनि[1] नैननि[2] लये[3] करिकै[4] दुहूँ[5] सुभाइ।
खींचे आवत बल किये छुटे लगत चढ़ जाइ ॥२०८॥

अधिक रूप दरसाइ[1] इनि[2] दृग दूतन मिलि साथ।
यो मन मानिक सेत हो[3] बेचो[4] हरि के हाथ ॥२०९॥

२०६—१...१. जिहि चखन मे मद पिय दियो (२, ३), २. तिहि (२, ३), ३. तिय (२, ३), ४. मै (२, ३), ५. लाइ (२, ३) ।

२०७—१...१. मधुप लौं जाइ (२, ३) ।

२०८—१...१. इन नैनन (१), २. लिये (२, ३), ३. करिके (२, ३), ४. दुसह (२, ३) ।

२०९—१. दरसाय (२, ३), २. इनं (१), ३. सो तिही (२, ३), ४. बेच्यो (२, ३) ।

२०५—कुंडल = सोने चाँदी आदि का बना हुआ कान का एक मंडलाकार आभूषण, बाली । बाल=नायिका । खिन=क्षण ।

२०६—नाइ नाइ=डाल डालकर । चषक=मद्य पीने का पात्र । दयो=दिया ।

२०७—रोकेहूँ=रोकने से भी । अकुलाइ=व्यग्र होते हैं, घबराते हैं । मनभावन= मन को अच्छा लगनेवाला ।

२०८—सुभाइ=स्वभाव ।

२०९—दूतन = वे जो संदेश पहुँचाने या किसी विशेष कार्य के लिये कहीं भेजे जायँ, चर ।

सामान्या-भेद

गरब[1] कोटि राखै तऊ लहै लोटि[2] के भाइ।
दाम मोट ये लेति[3] हैं काम चोट उपजाइ ॥३१०॥

ल्याये पायल है[1] भली परी रहैगी पाइ।
लाल दीजिये माल जो राखै[2] हिय[3] सो[4] लाइ ॥३११॥

मुकुत[1] माल लखि धनि[2] कह्यौ यह अचिरिजु[3] है नाह।
गंग तिहारे उर बसी[3] शिव[4] मेरे उर माह ॥३१२॥

मध्यस्वतत्र–सामान्या

सिगरी[1] बार बधून मैं प्रभुता लहै जो बाम।
अपनी इच्छा सो रमै ताहि सुतंत्रा नाम ॥३१३॥

उदाहरण

रसिक[1] पाइ मन मोद सों रचि सुभनाद विनोद।
बैठि मोद मैं[2] धनि[3] करति छलि[4] बलि[5] सों धन मोद ॥३१४॥

३१०—१. गर्व (१, २. लोट (१), ३. लेत (२, ३)।

३११—१. हो (२, ३), २. राखौ (२, ३), ३.° (२, ३), ४. मै (२, ३)।

३१२—१. मुक्ति (२, ३) २. धन (१), ३.° अजगुति (२, ३) (४) बसै (२, ३) ४. सिव (२, ३)।

३१३—१. सगरी (२, ३)।

३१४—१. सग (३), २. मे (३), ३. धन (१), ४. छल (१), ५. बल (१)।

३१०—सेत ही=मुफ्त मे ही। मोट=बहुत अधिक।

३११—पायल=पैर में पहनने का एक आभूषण। माल=माला। पाइ=पैर मे। काम चोट=कामवेदना, कामाघात।

३१२—लाल = नायक।

३१३—अचिरिजु=अचरज, आश्चर्य। नाह=नाथ, स्वामी।

३१४—सिगरी=समग्र, समस्त, सब। बार बधून=वेश्याएँ।

३१५—बाम = स्त्री। सुतंत्रा=स्वतंत्र, मुक्ता।

द्वितीय—जननी आधीना

बार बिलासिनि होइ जो जननी के आधीन।
कै गुरजन[1] सासन रमै सो जननी आधीन ॥३१५॥

उदाहरण

परहथ बसि ये[1] निरदई धन भोजन के चाइ।
धनी प्रान पच्छीन को हनत कुही लौं[2] धाइ ॥३१६॥

तीसरी—नेमता सामान्या

दिन प्रमान कै दरबि[1] दै जो तिय राखी होइ[2]।
बारिबधू[3] के भेद मैं कही नेमता सोइ[4] ॥३१७॥

यथा

तिय[1] के नित बित[2] देन लौं चितहि[3] बढ़ावत नाइ[3]।
हेम नेम घट जात ही प्रेम नेम घट जाइ ॥३१८॥

चतुर्थ—प्रेमदुःखिता

एक ठौर बसि प्रेम जो होइ[1] बार तिय आनि।
बिछुरत ही दुख लहहि[2] सो प्रेमदुःखिता जानि ॥३१९॥

३१५—१. गुरुजन (३)।
३१६—१. बसिये (२, ३), २. लो (२, ३)।
३१७—१. दरब (२, ३), २. होय (२, ३), ३. बारबधू (१), ४. सोय (२, ३)।
३१८—१. पिय (२, ३), २. चित (२, ३), ३…३. चित हित बढ़त बनाइ (२, ३)।
३१९—१. दोय (२, ३), २. लहै (२, ३)।

३१५—बार बिलासनि=वेश्या।
३१६—परहथ=दूसरे के हाथ में। चाइ=चाव। कुही=एक शिकारी पक्षी।
३१७—दरबि=द्रव्य। नेमता=नियमता।
३१८—वित=वित्त, धन। हेम = सोना। प्रेम-नेम=प्रेम का नियम।
३१९—ठौर=स्थान। बार=बारि। लहहि=प्राप्त करना। आनि = आकर।

उदाहरण

मोहिं रावरे हाथ दै घन कीन्हौं[1] जिन[2] हाथ।
अब छूटत वह पापिनी[3] छुट्यौ न वाको साथ ॥३२०॥
वित हित बाढ़त नेह[1] यह बँध्यौ जीय[2] सुख पाइ।
अब अलि छूटत[3] होत दुख कीजै कौन उपाइ ॥३२१॥

सामान्या का सुरतिआरंभ

बरनि कहत है[1] बार तिय रति[2]' आरंभन कोइ'[2]।
सुख औरनि की सुरति को याके प्रथमहि होइ ॥३२२॥

सामान्या की सुरति

सुरति रंगिनी यों लपकि धनी-गरे लपटाइ।
ज्यों तरंगिनी[1] सिन्धु को करि तरंग मिलि जाइ ॥३२३॥

सामान्या का सुरतांत

नये रसिक देखे नये लेत तियन[1] के प्रान।
काह[2] कीजिये कनक लै जातें टूटे कान ॥३२४॥

३२०—१. कीनों (२, ३), २. जिनि (१), ३. पापनी (२, ३)।
३२१—१. नेम (२, ३), २. जीव (२, ३), ३. छुटवत (२, ३)।
३२२—१. सकत सै (२, ३), २'''२. यह तिय रंभ को होइ (२, ३)।
३२३—१. तरगनी (२, ३), तरंगिणी (१)।
३२४—१. त्रियन (२, ३), २. कहा (२, ३)।

३२०—रावरे=आपके। छूट्यौ=छूटा। वाको=उसका।
३२१—वितहित=वित्त के लिए। जीय=हृदय मे।
३२२—बरनि=वर्णन कर। बार=वाली। सुरति=केलिप्रसंग। याके=इसके।
३२३—सुरति रंगिनी=कामकलामे रँगीली नायिका। धनीगरे=धनवान् के गले से। तरंगिनी=नदी।
३२४—काह=क्या।

ज्यौं आवत निसि मीत को चितवत रही लजाइ।
त्यौं[1] अब धनहित है[2] खरी माँगत चित सकुचाइ ॥३२५॥

सुखहित कै तन आपने चित राखति[1] नित[2] गोइ।
करि धन अपने हाथ फिरि धन अपनी मति होइ ॥३२६॥

३२५—१. ज्यौं (१), २…२. धनहित है (२, ३)। ३. है (१, २)।
३२६—१. राखत (१), २. निज (२, ३)।

३२६—सुखहित = सुख के निमित्त। गोइ=छिपाकर। धन=संपदा। धन= धन्या।

सुरति-दुःखिता

वक्रोक्ति गर्विता-वर्णन

अन्य सुरति दुखिता बहुरि तीन गर्विता आनि[1]।
और मानिनी नेम बिनु सकल तियन मैं[2] जानि[3] ॥३२७॥

पराचीन मत[1] माहि[2] ये भेद लखे[3] नहिं जात।
करयौ[4] नवीनन काटि कै यह विध सो अवदात[5] ॥३२८॥

अन्य सुरति दुखिता कहीं खँडिता ते यह जानु[1]।
स्वाधिनपतिका[2] ते कढ़ो भेद गर्विता भानु[3] ॥३२९॥

मानिनि को कढ़ि मानतें तिहूँ भेद तब लाइ[1]।
अष्ट नाइका[2] भेद तें भिन्न दियो ठहराइ ॥३३०॥

३२७—१. आन (१), २. मे (३), ३. जाने (१)।

३२८—१. मति (२, ३) २. माह (१), ३. गने (२, ३), ४. करे (२, ३) ५. अविदात (२, ३)।

३२९—१. जान (२, ३), २. स्वधीन पतिका (१), ३. मान (२, ३)।

३३०—१. बतलाइ (२, ३), २. नायका (२, ३)।

३२७—गर्विता=वह नायिका जिसे अपने रूप, गुण या पतिप्रेम का घमंड हो। मानिनि=स्त्री, प्रेमिका। सकल=समस्त।

३२८—पराचीन = प्राचीन, पुराना। करयौ = किया। अवदात = स्वच्छ, स्पष्ट।

३२९—खंडिता=जिसका नायक रात को किसी अन्य नायिका के पास रहकर सबेरे आये। स्वाधीनपतिका=वह नायिका जिसका पति उसके वश में न हो। कढ़ो = निकला। भानु=भान, ज्ञान, आभास।

३३०—मानिनि=मानिनी। मानवती=गर्ववती, नायक का दोष देखकर उसपर रूठी हुई नायिका। कढ़ि=निकल कर। तिहूँ=तीनों।

जदपि[1·] घरे नहिं जात पै[·1] अष्टनायिका माँहि[2]।
तऊ अवस्था भेद तें सकल भिन्न ह्वै जाहिं[3] ॥३३१॥
जब[1·] नवीन मत[·1] पै भयौ तिहूँ भेद अविदात।
ग्यारह सै बावन तियन माह[2] गने नहिं जात ॥३३२॥

अन्यसुरतिदुखिता—लक्षण

निज पति रति को चिन्ह[1·] जो लखै और तिय अंग[·1]।
अन्य सुरति दुखिता सोई जेहि दुख बढ़ै[2] अनंग ॥३३३॥
पिय तन लखि रति चिन्ह जो दुखित खंडिता होइ।
ज्यौं यहि[1] दुख पिय सुरति छत[2] और बाल तन जोइ ॥३३४॥
इहै[1] भेद इनि[2] दुहुन मैं जानत है कवि जान।
जातरु[3] पिय औगुननिते[4] दुखी दोउ पहिचान ॥३३५॥

अन्यसुरतिदुखिता—उदाहरण

तेरे[1·] पास[·1] प्रकास बर नेह बास सरसाइ।
मो कारन ल्याई[2] नहीं[3] आयो आपु[4] लगाइ ॥३३६॥

३३१—१··१. जद्यपि धरे नही जात ये (२, ३), २. माह (१), ३. जाह (१)।
३३२—१. जब नवि मति मे यौ (२, ३), २. मान (२, ३)।
३३३—१···१. चिह्न लखै और तियन के (२, ३), २. चढ़ै (३)।
३३४—१. यह (२, ३), २. छन (३)।
३३५—१. यहै (२, ३), २. इन (१), ३. जानतहू (२, ३), ४. अवगुननि (२, ३)।
३३६—१···१. तेरो प्रान (२, ३), २. ल्यायौ (२, ३), ३. मही (२), ४. आप (२, ३)।

३३१—पै = फिर भी, परंतु, लेकिन। तऊ = तथापि। ह्वै जाहिं = हो जाते हैं।
३३२—पै=पर। माह = मे।
३३३—चिन्ह=निशान। तिय=स्त्री। जेहि=जिसे। अनंग=कामदेव।
३३४—पियतन = प्रीतम के शरीर पर। ज्यौ = जैसे। छत=घाव, जखम। जोइ=देखकर।
३३५—इहै=यही। इनि = इन। जातरु=जिससे।
३३६—प्रकास=आलोक, कांति।

गई बाग कहि जाति[1] हौं तुव[2] हित लैन रसाल।
सो नहि ल्याई आपुही[3] छकि आई है बाल ॥३३७॥
काह[1] कहौं तोसों अली अपने अपने भाग।
मोहि दियो तन कनक बिधि दीनों तोहि सुहाग ॥३३८॥

गर्बिता—लक्षण

गरब[1] न उपजत है तियहि जौं लौं नहिं बस[2] नाह।
या ते[3] गरबित[4] को भवन स्वाधिनपतिका माह ॥३३९॥
बात कहै[1] जो गरब[2] को सोइ गरबिता[3] जानि[4]।
बरने पति आधीनता स्वाधीनपतिका[5] मानि[6] ॥३४०॥
सोइ गरबिता उभय विधि बरनत[2] हैं कवि लोइ।
बक्रोकति है एक पुनि दुतिय सुगरबित[3] होइ ॥३४१॥

बक्रोक्तिगर्बिता—उदाहरण

पिय मूरति मेरी सदा राखत दृगन बसाइ।
डरियत गोरी देह यह मति सौंरी[1...] परि[1] जाइ ॥३४२॥

३३७—१. बात (२, ३), २. तू (१), ३. आप ही (२, ३)।
३३८—१. कहा (२, ३)
३३९—१. गर्ब (१), २. बसि (२, ३), ३. सोई (२, ३), ४. गर्बिता (२, ३)।
३४०—१. कहत (१), २. गर्ब (१), ३. गर्बिता (१), ४. जान (२, ३), ५. स्वाधीनपति का (२, ३), ६. मान (२, ३)।
३४१—१. गर्बिता (१), २. बरनति है (२, ३), ३. सो गर्बित (१)।
३४२—१...१. कारी है (३), २. सौरी है (२)।

३३७—हौ = मैं। तुवहित=तुम्हारे लिए। छकि=अघाकर, तृप्त होकर।
३३८—दीनों=दिया। कनक = स्वर्ण, सोना। सुहाग = सौभाग्य, सुहागा। टि० 'सोने मे सुहागा' कहावत है। यहाँ सोने जैसा वर्ण एक को मिला और सुहाग (सुहागा, सौभाग्य) दूसरे को।
३३९—तियहि=स्त्री को। जौ लौं = जब तक।
३४०—बरने=वर्णन करते हैं। मानि=मानकर।
३४१—उभय=दोनो। बक्रोकति=वक्रउक्ति, व्यंग वचन।
३४२—देह = शरीर। सौंरी=साँवली।

सुधि–प्रेमगर्बिता

मो पिय चख पच्छी[1] नहीं जो जल जल पै[2] जाहि।
मीन रूप तामें[3] परे सदा रहै तेहि[4] माहि ॥३४३॥
मोहि भूषन की भूख नहिं बृजभूषन को प्यार।
मन सों रह्यो[1] सिंगार[2] करि[3] तन सोरहो[4] सिंगार ॥३४४॥

वक्रोक्ति रूपगर्बिता

जोबन लहि ई[1] रूप ढिग[2] अद्भुत गति यह कीन।
आपु जगत को मारि कै मो[3] सिर हत्या[3] दीन ॥३४५॥

सुच्छरूपगर्बिता

जो दृग[1] कमलन दुखित[2] नहिं मेरे रूप सुजान।
तो मो[3] आनन जनि[4] कही सरसिज सत्र[5] समान ॥३४६॥
हौं न सहौंगी बात अब[1] तों सो[2] कहति निसंक।
मेरे मुख को चंद कहि लावत लाल कलंक ॥३४७॥

३४३—१. पच्छी (२, ३), २. मै (२, ३), ३. जामे (२, ३), ४. तिहि (२, ३)।

३४४—१. सों रही (२, ३), २. सिंगारि (२, ३), ३. कै (२, ३), ४. रही (२), यही (३)।

३४५—१. लहियन (२, ३), २. ढंग (१), ३. हत्या मोहि सिर २, ३)

३४६—१. दुख (२, २), २. दुखत (२, ३), ३. मैं (१), ४. जिन (२, ३), ५. मत्र (३)।

३४७—१. अलि (२, ३), २. सो तो (१)।

३४३—चख = नयन, आँख। तामे=उसमें।

३४४—भूषन=आभूषण। बृजभूषन=श्रीकृष्ण। सोरहो सिंगार=सोलहो शृंगार, सज्जा के सोलह अंग, (उबटन लगाना, स्नान करना, वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, अंजन लगाना, सिंदूर भरना, महावर लगाना, भाल तिलक बनाना, ठोड़ी पर तिल बनाना, मेंहदी रचाना, सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करना, अलंकार धारण करना, पुष्पहार पहनना, पान खाना, ओठ रंगना और मिस्सी लगाना।

३४५—मो सिर=मेरे सिर। हत्या=बध का आरोप।

३४६—दृग कमलन=कमलवत् नेत्र। सरसिज सत्र=कमल-पत्र।

वक्रोक्ति गुनगर्बिता

मो पै गुन कछुए नहीं[1] ऐसो तैं हित पाइ।
अपनी बारीहूँ पियहि मो घर जाति पठाइ॥३४८॥

सुच्छ गुनगर्बिता

तौ प्रवोन[1] जो छीन कै सौतिन सो रसलीन।
झीन तार जो[2] बीन कै[3] करौं[4] बाँधि आधीन॥३४९॥

को चतुराई जो न हौं[1] एक कला[2] मैं जीति।
आजु लालु[3] मनको करी[4] हाथ छाल की[5] रीति॥३५०॥

मानिनि लक्षण

पिय सों[1] कछु अपराध तकि[2] तिय उदास जो होइ।
ताहि मानिनी कहत हैं[3] सब[3] पंडित कवि लोइ॥३५१॥

तीनि भाँति पिय सो करै[1] मानिनि[2] कोप प्रकास[3]।
मुख परि कै पीछे किधौं चुप ह्वै रहै उदास॥३५२॥

मुख पर कहै सो खंडिता पीछे अन्य सँभोग।
और तीसरी मानिनी जहाँ[1] मौन परयोग[2]॥३५३॥

३४८—१. बैन ही (२, ३)।

३४९—१. पठीन (२, ३), २. तार के (२, ३), ३. के (२, ३), ४. करो (२, ३)।

३५०—१. हो (२, ३), २. जला (३), ३. लला (२, ३), ४. करो (२, ३) ५. छुला की (२, ३)।

३५१—१. ते (२, ३), २. किय (२, ३), ३...३ सब जे (२, ३)।

३५२—१. करति (२, ३), २. मान (२, ३), ३. परकास (२, ३)।

३५३—१. जह है (२, ३), २. प्रयोग (२, ३)।

३४८—पै=पर। कछुए=कुछ भी।

३४९—झीन=पतले। बीनकै=वीणा के, बुनकर।

३५०—लाल=नायक। छाल=छल्ला।

३५१—तकि=देखकर।

३५२—कोप=क्रोध, रोष। किधौं=या, या तो।

३५३—परयोग=प्रयोग।

मानिनी–उदाहरण

पिय अपराध न जानियत को जानै किहि काज।
बैठी भौंह चढ़ाइ कै ग्रीव नवाये आज ॥३५४॥

अवस्था भेद से

अष्ट नायिका कथन

जेहि[1] गुन पिय आधीन है[2] स्वाधिनपतिका[3] नाम।
पिय आवन दिन तन[4] सजै बासकसज्या[5] बाम ॥३५५॥
कौनहु[1] हेतु न आवही पीतम[1] जाके गेह।
ताको सोचु[2] करै हियै उत्कंठित सो एह ॥३५६॥
करै चलन बरचा चले[1] पहुचे[2] लौं[3] पिय पास।
बोलि पठावै सिख सुनै अभिसारिका प्रकास ॥३५७॥
सँजि सिंगार जौं[1] जाइ[2] तिय ललन मिलन के हेत।
बिन[3] पिय भेटै रिस करै विप्रलब्ध तेहि[4] चेत ॥३५८॥
पर रति चिह्नित[1] पिय चितै बलि[2] खंडिता रिसाइ।
कलहन्तरिता कलह करि फिरि पीछे पछिताइ ॥३५९॥

३५५—१. जिहि (२, ३), २. सो (२, ३), ३. स्वधीनपतिका (२, ३), ४. तब (२, ३), ५. वासकसज्जा (३)।

३५६—१···१. कौने हेतु न आवई प्रीतम (२, ३), २. सोच (२, ३)।

३५७—१. चलै (२, ३), २. पहुँचै (२, ३), ३. जो (३)।

३५८—१. जो (१), २. जाय (२, ३), ३. बिनु (२, ३), ४. तिहि (२, ३)।

३५९—१. चिन्हति (२), चिन्तित (३), २. बोलि (२, १)।

३५४—ग्रीव = ग्रीवा, गर्दन।

३५५—बासकसज्या = (बासकसज्जा) शृंगार करके नायक की प्रतीक्षा करनेवाली नायिका।

३५६—एह = यह।

३५७—लौं=तक। सिख=उपदेश, शिक्षा, शिष्य।

३५८—रिस=क्रोध, रोष।

३५९—रिसाइ=क्रुद्ध होकर। कलहन्तरिता=पति या नायक का अपमानकर पीछे पछतानेवाली नायिका।

प्रोषितपतिका जाहि पिय गयौ[1] होइ परदेस।
गमषित[2] जेहि दिन कतिकमैं[2] चलन चहै प्रानेस ॥३६०॥

गछितपतिका जाहि पिय चलन समै में होइ।
पतिया[1] सगुन संदेस लखि आगमपतिका[1] जोइ ॥३६१॥

आइ मिलै जो विदेस तें आगतपतिका जानु।
बिछुरे[1] पति[2] आयो सुन्यौ[3] अगछित[4] पतिका[4] मानु ॥३६२॥

है अरु होनो ह्वै चुक्यो[1] बिरह जो तीनि[2] प्रमानु[3]।
एकै करि सब को गनै अष्ट नायका जानु[4] ॥३६३॥

उचित न इन नारीनु[1] मैं मुग्धा बरनन[2] ल्याइ।
ये[3] विश्रब्ध नवोढ़ गुन दीनो[4] है ठहराइ[5] ॥३६४॥

सातों पतिकादिकन मैं मुग्धाऊ पुनि होति।
पै बिन[1] चाह निति[2] दुहुन के रस की होइ[3] न जोति ॥३६५॥

३६०—१. चल्यौ (२, ३), २. २…२. गमिष्यपति जिहि दिनहि मै (२, ३)।

३६१—१…१. पति आगमन सदेश लहि आगमिष्यति बोइ (३)।

३६२—१. बिछुरयौ (२, ३), २. पिय (२, ३), ३. सुनै (२, ३), ४…४. आगतपति का मान (२, ३)।

३६३—१. चुकौ (१), २. तीन (२, ३), ३. प्रमान (२, ३), ४. जान (१)।

३६४—१. नारीन (२, ३), २. बर्नन (१), ३. पै (२, ३), ४. दीन्हौ (२, ३), ५. ठहिराइ (२, ३)।

३६५—१. बिनु (२, ३), २. (२, ३) नहीं है। ३. होती (२, ३)।

३६१—पतियाँ=पत्र, चिट्ठी।

३६२—मानु=मानो।

३६३—होनो=होनेवाला। प्रमानु=प्रमाण।

३६४—नारीनुमैं=नायिकाओं मे।

३६५—बिन चाहनि=अनचाहे।

स्वाधीनपतिका में

मुग्धा स्वाधीनपतिका

रूप न आयौ है[1] कछू जो धन करिहौ[2] हाथ।
अबहीं ते[3] चाकर भये कहाँ डोलियत नाथ ॥३६६॥
ज्यौं ज्यौं लालन प्रेम बस[1] सँग न तजत दिन राति।
त्यौं त्यौं लाज समुद्र मैं तिय बूड़ति सी जाति ॥३६७॥

मध्या स्वाधीनपतिका

पिय पग धोवत[1] भावती कौतुक करति बनाइ।
खिनिक[2] झवावति पाइ खिनि[3] खैंचि[4] लेति[5] सकुचाइ ॥३६८॥
निरखि निरखि प्रति दिवस[1] निसि पिय चख तिय मुख ओरि[2]।
कमल जानि अलि होत हैं ससि अनुमानि[3] चकोरि[4] ॥३६९॥
निकसत ही पीछें[1] परत आवत आगे होत।
रविग्रह सनमुख छाइ[2]· लौं तुव प्रिय प्रकृत·[2] उदोत ॥३७०॥
ज्यौं ज्यौं पिय चित चाय सौं देत महाउर[1] पाइ[2]।
त्यौ त्यौं पिय अति रीझि[3] कै नैनन मैं[4] मुसुकाइ ॥३७१॥

३६६—१. सो (२, ३), २. करिहो (२, ३), ३. सो (१)।
३६७—१. बसि (२, ३)।
३६८—१. धोवति (२, ३), २. खिनक (१), ३. खिन (१), ४. ऐंचि (१), ५. लेत (१)।
३६९—१. दौस (२, ३) २. और (१), ३. अनुमान (१), ४. चकोर (१)।
३७०—१. पाछें (३), २···२. धाम लौं तिय तुव प्रकृति (२, ३)।
३७१—१. महावर (२, ३), २. धाइ (२, ३), ३. रीझ (२, ३), ४. मे (२, ३)।

३६६—चाकर=सेवक।
३६८—खिनिक झवावति=एक क्षण रगड़वाती है।
३६९—अनुमानि=अनुमान करके।
३७०—प्रकृत=स्वाभाविक। उदोत=प्रकाश, शोभा।
३७१—चितचाय = चाव से भरे हृदय से। महाउर=महावर, पैर रंगने का लाल रंग, लाख का रंग जिससे स्त्रियाँ पाँव रँगती हैं।

परकीया—स्वाधीनपतिका

यौं ही लाज न खोइये[1] फिरि फिरि मेरे साथ।
परकीया आवति कहूँ घात परेही[2] हाथ ॥३७२॥

मो मन पच्छी[1] प्रीति गुन बाँधि रह्यौ है नाथ।
जो उदास ह्वै उड़त है तौ फिरि ल्यावत हाथ ॥३७३॥

सामान्या—स्वाधीनपतिका

किती[1] रूप अरु गुनभरी कत मोही को लाल।
कंकन दै कर गहत[2] है हिय लावत दै माल ॥३७४॥

मुग्धा—वासकसज्जा

इक भूषन सखि सजति है पिय को आगम जानि।
दूजे[1] नवला स्वेद ते निजतन राचति[2] आनि ॥३७५॥

सौति हार तकि नवल तिय मिस गस को ठहराइ।
पिय आवत गुन मुकुत[1] को गूँदति[2] माल बनाइ ॥३७६॥

मध्या—वासकसज्जा

लाल मिलन गुनि[1] तन सजति बाल बदन की जोति।
छिनिक कमल सी मलिन छिनि अमल चंद सी होति ॥३७७॥

३७२—१. खाइये (१, २), २. परैही (२, ३)।
३७३—१. पछी (२), पंथी (३)।
३७४—१. केति (१) २. कहत (१)।
३७५—१. दूजी (१), २. राखति (२, ३)।
३७६—१. मुक्त (१), मुकति (३), २. गूँदत (१)।
३७७—१. सुनि (१)।

३७२—फिरि फिरि=घूमकर। घात परेही=ठीक मौका मिलने पर ही।
३७३—प्रीति गुन=प्रेम की डोरी।
३७४—दै=देकर।
३७५—आगम = आगमन, समागम। राचति=रचती है।
३७६—गस=मूर्छा, बेहोशी। गूदति=गूंथती है।
३७७—गुनि=सोचकर, विचारकर।

बदन जोति भूषनन[1] पर चख चकचौधति[2] बाल।
मोहि सोचु[3] यह अंग तुव कैसे लखि हैं लाल ॥३७८॥
तिय पिय सेज बिछाइ यौं रही बाट पिय हेरि।
खेत बुवाइ किसान[1] ज्यौं रहै[2] मेघ अवसेरि ॥३७९॥

परकीया—वासकसज्जा

दिन अन्हाइ साजै बसन मीन मिलन सुख[1] पाइ।
निसि दिव[2] रानी संग ले[2] द्वारे पौढ़ी जाइ ॥३८०॥

सामान्या—वासकसज्जा

नखसिख करति सिंगार तन धनी आइबो जानि।
अंग अंग साजति सिलह[1] सुभट जुद्ध अनुमानि ॥३८१॥

मुग्धा—उत्कंठिता

खेलन बैठी सखिन[1] सँग नवल वधू चित लाइ।
पिय बिनु आये सोचु[2] मैं खेल भूलि सब[3] जाइ ॥३८२॥
लालन आयौ बाल सौं[1] कह्यौ न लाजन जाइ।
खुल्यौ[2] कुमुद सौं हिय गयौ मुँद सरोज के भाइ ॥३८३॥

३७८—१. भूषन पहिरे (२, ३), २. चकचौधत (१), ३. सोच (२, ३)।
३७९—१. बुवाई कृष्ण (२, ३), २. रहत (२, ३)।
३८०—१. सुधि (१), २. घौसै गिनि संग ही (२, ३)।
३८१—१. सिलह (२, ३)।
३८२—१. सखी (१), २. सोच (२, ३), ३. सो (२, ३)।
३८३—१. तें (१), २. लगाइ (२, ३) ३, लख्यौ (१)।

३७८—चकचौधति=चौधियाती है।
३७९—हेरि=देखती। अवसेरि=प्रतीक्षा।
३८०—अन्हाइ=नहाकर, स्नानकर। पौढ़ी=लेटी।
३८१—सिलह=अस्त्र-शस्त्र, हथियार।
३८३—भाइ=भाँति।

मध्या—उत्कंठिता

आवन कहि आयो न पिय गई जाम जुग राति।
सोच सँकोचन मैं परी खरी बाल बिललाति ॥२८४॥

पिय [1]नहिं आये[1] यह व्यथा रही जु बाल दुराइ[2]।
मुँदी नेह की बासु लौं मुख पै[3] प्रगट दिखाइ ॥२८५॥

प्रौढ़ा—उत्कंठिता

सखी कह्यौ जिय साजि[1] कै आजु न आयो नाह।
ग्रह भूले[2] खग लौं फिरे मो मन सोचन माह ॥२८६॥

परकीया—उत्कंठिता

थल बताइ[1] आयो न पिय यहै[2] सोचु[3] जिय लाइ।
पिंजर पंछी लौ तिया कुंज माँहि[4] बिललाइ ॥२८७॥

सामान्य—उत्कंठिता

पिय नहीं आयो[1] अवधि बदि[2] नैन रहे मग जोइ।
औरन के ग्रह जान की दई बेर[3] सब खोइ ॥२८८॥

२८५—१···१. आयो नहिं (२, ३), . दुराइ (२, ३), ३. परि (२, ३), ४. लखाइ (२, ३)।

२८६—१. जानि (२, ३), २. भूखे (२, ३)।

२८७—१. थल बताई (१), बुलबाई (२, ३), २. है (१), ३. सोच (२, ३) ४. कुजर लौं (२, ३)।

२८८—१. आए (१), २. बधि (२, ३), ३. सरम (२, ३)।

२८४—जाम जुग=दो पहर। बिललाति = व्याकुल होती है।

२८५—नेह = स्नेह, तेल।

२८६—साजि कै=अनुकूल करके। सोचन माह=चिंता के विचार मे। ग्रह= मकान। ग्रह भूले खग लौं = अपना अड्डा भूले हुए पत्ती के समान।

२८७—थल=स्थान, मिलन स्थल। बिललाइ=बिलखती है, घबडाती है।

२८८—जोइ=जोहते, देखते। बेर=समय।

मुग्धा–अभिसारिका

नैन चकोरन चंद्रिका प्यारी आज निसंक।
आस पास[1] आवत नखत लीन्हे[2] बीच ससंक ॥३८९॥
चलि ये नवला बदन ते नाम तिहारे लाल।
हाँसी बातन मैं कहूँ[1] हाँसी निकसति[2] हाल ॥३९०॥

मध्याभिसारिका–उदाहरण

ऐसे कामिनि लाज ते पिय पै अठकति जाइ।
जैसे सरिता को सलिल पवन सामुहे पाइ ॥३९१॥

प्रौढाभिसारिका

दुहुँ दिसि कचकुच भार तें झुकति जाति[1] यौं बाल।
मानौ[2] आसव ते छकी चली[3] छकावत[3] लाल ॥३९२॥

परकीया अभिसारिका

यौं ऐंचति[1] पग मग धरति[2] उरझे उरग अधीर।
ज्यौं मदमत्त[3] मतंग छुटि खैंचे जात जंजीर ॥३९३॥

३८९—१. बास (२, ३), २. लीने (२, ३)।
३९०—१. कछु (२, ३), २. निकसी (२, ३)।
३९१—यह दोहा २, ३ मे नहीं है।
३९२—१···१. झुकत जात (२, ३), २. मानहु (२, ३), ३···३. छकी छकावति (२, ३)।
३९३—१. ऐंचत (१), २. धरत (१), ३. मतमत्त (१)।

३८९—निसक=संकारहित। ससंक=शंकासहित, शशांक चन्द्रमा।
३९०—हाँसी=हँसी युक्त। हासी=आह सी। हाल=अभी।
३९१—सामुहे=सामने, संमुख।
३९२—कचकुचभार=केशपाश और स्तनों का बोझ। आसव=मदिरा। छकी=नशे में चूर होकर, मस्त होकर। छकावत=हैरान करती हुई, चक्कर में डालती हुई, नशे मे चूर करती हुई।
३९३—ऐंचति=खींचती हुई। उरग=साँप, साँपो जैसे लम्बे चिकने केश। मतंग=हाथी।

कृष्णाभिसारिका

पिय के रंग भये बिना मिलन होत नहिं बाम।
याते तूँ[1] रँग स्याम ह्वै मिलन चली है स्याम ॥३६४॥
अंग छुपावति सुरति सों चली जाति जो[1] नारि।
खोलत[2] बिज्जुछटा चितै ढाँपति घटा निहारि ॥३६५॥

(शुक्ला) जोतिऽभिसारिका

सजे सेत भूषन बसन जोन्ह[1] माहिं[2] न लखाइ।
पट उघटत खिन[3] बदन दुति[4] चमक द्वैज सी जाइ ॥३६६॥
सेत[1] बसन जुति जोन्ह[2] मैं यौं[3] तिय दुति दरसाति[4]।
मनौ[5] चली छीरधिसुता छीर सिन्धु मैं जाति[6] ॥३६७॥

दिवाभिसारिका

पहिरि दुपहरी अरुन पट चली सोचि[1] जिय[1] नाहिं[2]।
नैकु[3] न जानी परति[4] तिय फूली[5] किंसुक माहिं[6] ॥३६८॥

३६४—१. तुं (१)।
३६५—१. यौ (२, ३)। २. खेलति (२, ३)।
३६६—१. जोन्हि (२, ३), २. काह (१), ३. छन (२, ३) ४. बसन (२, ३)।
३६७—१. स्वेत (२, ३), २. जोन्हि (२, ३), ३. ये (२, ३), ४. दरसाइ (२, ३) ५. मनो (२, ३), ६. जाइ (२, ३)।
३६८—१. सोच सचि (२, ३), २. नाह (१), ३. नैक (२, ३), ४. परत (२, ३), ५. फूले (१); ६. माह (२, ३)।

३६४—याते=इसी से। स्याम=काला। स्याम=श्रीकृष्ण।
३६५—बिज्जु छटा=बिजली की चमक।
३६६—उघटत=हटने पर, खुलनेपर। द्वैज=द्वितीया, दूज।
३६७—जुति=युक्त। दुति=कान्ति, शोभा। छीरधिसुता=क्षीर सागर की पुत्री, लक्ष्मी। छीरसिन्धु=क्षीर सागर, दूध का समुद्र।
३६८—नैकु=तनिक भी। जानी परति=जानी जाती है, जान पड़ती है। किंसुक=किंशुक, पलास।

सामान्याभिसारिका

चली बार तिय मीत पै जेहि[1] घन हेत लुभाइ।
सो तन[2] छबि तें छकि रह्यौ[3] अभरन ह्वै लपटाइ ॥३९९॥

मुग्धा विप्रलब्धा

सखिन संग नवला गई पिय को मिलन[1] सँकेत।
अरुन कमल सो मुख भयो दिन[2] हिम संक[2] समेत ॥४००॥

मध्या विप्रलब्धा

लख्यौ न पिय गति[1] भवन मैं तब[2] सखि सौ समुहाइ।
बैनन मैं अनखाइ तिय नैनन रही लजाइ ॥४०१॥

प्रौढा विप्रलब्धा

लखि सँकेत सूनो रही यौं तिय सारि[1] नवाइ।
मनौ विनय सिव की[2] करै सबल काम को पाइ ॥४०२॥

परकीया विप्रलब्धा

जो सँग लै कुंजन गई बाल मालती फूल।
मधुप मिले बिनु ह्वै गये सो गुड़हर के तूल[2] ॥४०३॥

सामान्या विप्रलब्धा

निज घर आयौ[1] रसिक तजि गई जेहि[2] धनि[3] चाइ।
सो न मिल्यौ[4] यौंही गयौ धन मेरे कर आइ ॥४०४॥

३९९—१. जिहि (~~२, ३~~), २. सौतिन (२, ३), ३. रह्यो (१)।
४००—१. निकेत (१), २···२. दिने ससक (१),
४०१—१. पिय रति (१), २. तिन (१)।
४०२—१. नारि (२, ३), २. को (२, ३)।
४०३—१. गोड़तह (१), २. मूल (१)।
४०४.—१. आयो (२, ३), २. जिहि (२, ३) ३. धनी (२, ३)।
४. मिलो (१)।

३९९—मीत=मित्र, जार, नायक। अभरन ह्वै=आभूषण बनकर।
४००—नवला=नवीना नारी, तरुणी।
४०१—अनखाइ=नाराज होती है।
४०२—सारि=सारी, साड़ी।
४०३—तूल=समान, तुल्य।
४०४—रसिक=प्रेमी, रसिया। चाह=चाव, अनुराग।

मुग्धा खंडिता

सखिन सिखाये तिय कह्यौ[1] लखि जावक पिय भाल।
ताही के घर जाइये जेहि पग लागे लाल ॥४०५॥

मध्या खंडिता

पिय तन नख लखि जो[1·] करत[1] तिय बेदन अविदात[2]।
कछू खुलति कछु नहिं खुलति तू[3·] तुरकी सी[·3] बात ॥४०६॥

प्रौढ़ा खंडिता

लाल तिहारे भाल को जावक पावक नैन।
जिनि[1] मेरे मन मैन कौ जारि दियो[2] ज्यौं मैन[3] ॥४०७॥

परकीया खंडिता

मीन नहीं यह पेखियत जिनि[1·] जिमि लागी[·1] दागि[2]।
दृगन रावरे की लला पलकन लागी आगि ॥४०८॥

जो कछु कहियत ठीक घरि सब ही होत अलीक।
मिटिगै अंजन लीक सो नेम निरंजन लीक ॥४०९॥

४०५—१. कह्यौ (१)।

४०६—१...१. करत जो (२, ३), २. अवदात (१), ३···३. तुत रे कैसी (२, ३)।

४०७—१. जिन (१), २. दयो (१), ३. सैन (३)।

४०८—१···१. जिन जिन दीन्हौ २. दाग (२, ३), ४. आग (२, ३)।

४०९— २, ३ मे यह दोहा नहीं है।

४०६—जावक=महावर, आलक्तक। लाल=प्रेमी, नायक, लालरंग।

४०७—वेदन=वेदना। तुरकी=तुर्क देश की, (यदि तरकी हो तो=फूल की तरह का कान का एक गहना)।

४०८—सैन = निशान, परिचायक चिह्न, सेना, इशारा।

४०९—पेखियत=देखती है। लला=प्रेमी, नायक का संबोधन।

४१०—अलीक = मिथ्या, झूठ। लीक = रेखा, मर्यादा, लांछन, दाग, लोकरीति। निरंजन = जिसमें आँजन न हो, परमात्मा। नेम = नियम, व्रत।

पीक रावरे दृगन की कहे देति यहि ठौर।
मोसे नैन लगाइ तुम नैन लगाये और ॥४१०॥

सामान्य खंडिता

जान्यौ[1] बिन गुन माल कौं[2] माल ठाम लखि कंत।
मो मन मानिक लै दयो मन मानिक तुव अंत ॥४११॥

मुग्धा कलहन्तरिता

लाल बिनै मानी न तिय अब मन मैं पछिताइ।
विपुल मध्य को दुख तनिक[1] मुख पै होत ललाइ ॥४१२॥

मध्या कलहन्तरिता

पिय बिनती करि फिरि गये सो कलेस सरसाइ।
तिय मुख अंबुज तें निकसि मधुप रीति दुरि जाइ ॥४१३॥

प्रौढ़ा कलहंतरिता

जिय नहि आन्यौ पिय बचन नाहक ठान्यौ रोसु[1]।
अमृत तजि बिष[2] मैं[2] पियो दें कौन कौं दोसु[3] ॥४१४॥
तब न लखौ[1] पिय बदन ससि कीन्हौं[2] कोटि प्रकार।
अब अलि नैन चकोर ये लीलत फिरत अंगार ॥४१५॥

४१०—२, ३ मे यह दोहा नहीं है।
४११—१. नौ (१), २. रौं (२, ३)।
४१२—१. तनक (१)।
४१४—१. रोस (२, ३), २…२.मैं विष (२, ३), ३. दोस (२, ३)
४१५—१. लखे (१), २. कीनों (१)।

४१०—पीक=मुहं मे पान का रंग। नैन लगाई = नयन लड़ाये, प्रेम किया। और=अन्य।
४११—माल=माला। मानिक=माणिक्य, लाल।
४१२—बिपुल=प्रचुर, अगाध।
४१३—मधुपरीति=भौंरे के समान।
४१४—आन्यौ = ले आई, ठान्यौ=दृढ़निश्चय किया, रोसु = क्रोध, कोप।
४१५—लीलत=निगलते हैं।

परकीया कलहतरिता

जाहि मीत[1] हित पति तज्यौ तज्यौ ताहि जिहि[2] हेत।
सो यह[3] कोपहु तजि गयौ करि हिय विपति[4] निकेत ॥४१६॥

अली मान अहि के डसे झारयौ हरि करि नेह।
तऊ क्रोध बिष ना छुट्यौ अब छूटति है देह ॥४१७॥

सामान्या कलहतरिता

जाके मिलत मिटी सकल हुती साध जो[1] प्रान।
ताकी बात सुनी न मैं नेह[2] तूल दै कान ॥४१८॥

मुग्धा प्रोषितपतिका

पिय बिछुरन दुख नवल तिय मुख सों[1] कहति लजाइ।
बदन[2] मूँदे नलनीर के जल सम रुके बनाइ ॥४१९॥

मध्या प्रोषितपतिका

पिय बिनु[1] तिय दृग जल निकसि यौं[2] पुतरीन बिलात।
ज्यौं कमलन तें रस झरत मधुकर पीवत जात ॥४२०॥

४१६—१. मात (२, ३), २. जेहि (१), ३. वह (२, ३), ३. विपरि (२, ३)।

४१८—१. जे (१), २. नेत (१)।

४१९—१. तें (१), २. बचन (१)।

४२०—१. बिन (१) २. ये (१)।

४१६—पति=स्वामी, इज्जत, मान, मर्यादा। कोपहु=क्रोध करके। निकेत= निवास, चिह्न।

४१७—अहि=साँप। झारयौ=मंत्र आदि से झाड़फूँक किया। देह = शरीर, गाँव।

४१८—साध्य=वश मे करने योग्य, सरलता से प्राप्य। नेह=प्रेम, तेल, स्नेह।

४१९—नल नीर=नल या टोटी का पानी ।

२२०—बिलात = लुप्त होता है, नष्ट होता है।

तिय उसास पिय बिरह ते उससि अधर लौं आइ।
कछु बाहर निकसत कछुक भीतर कों फिरि जाइ ॥४२१॥

प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

निसि जगाइ प्रातहिं चलत प्रान मजूरी हाल।
अंग नगर मैं बिरह यह भयो नयो कुतबाल[1] ॥४२२॥

निसि दिन बरखत रहत हूँ तँह[1] कहुँ घटन न सूल।
नैन नीर हिय अगनि[2] कौ भयो घीव[3] के तूल ॥४२३॥

परकीया प्रोषितपतिका

रकत[1] बूँद काजर भरयौ[2] रोवति यौं डरि बाल[2]।
मनौ निसानी वा दृगन दई गुंज की माल ॥४२४॥

सामान्या प्रोषितपतिका

जो सिंगार तन[1] करति नित[1] धन के हित[2] सुकुमारि।
घनी बिरह ते होत सो अँग अँग माँहि अँगार ॥४२५॥

व्यथा[1] घनी सो कहन कों निज गुन पथिक लुभाइ।
रोइ जनावै[2] नेह तिय नेह दृगन में लाइ ॥४२६॥

४२२—१. कोतवाल (१)।
४२३—१. केहू (१), २. अग्नि (२, ३), ३. घीर (१)।
४२४—१. रक्त (२, ३), २...२. भरे यौ यौं रोवत (२, ३)।
४२५—१...१. तिय करति हित नित २. नहीं रहेगा।
४२६—१. बिथा (२, ३), २. करन (२, ३)।

४२१—उससि=उसाँस लेकर, उठकर, सिसककर।
४२२—मजूरी=मयूरी।
४२३—मूल=जड़, उत्पत्तिस्थान। घीव के तूल=घी में रखी रूई की बत्ती के समान।
४२४—रकत = रक्त। गुंज=गुंजाफल, घुंघुची।

गमिष्यतिपतिका

जाको पिय कछु दिन मै चलनहार होइ तामे

मुग्धा गमिष्यतिपतिका

जो नवला मन मैं दयो नयो नेह तरु लाइ।
बिरहताप रितु[1] बात तै जनु[2] डारयौ कुँभिलाइ ॥४२७॥

रवन गवन सुनि कै स्रवन दृग[1] देखन मिसि ठानि।
तिय अंजन धोवन लगी अँसुवन को जल आनि ॥४२८॥

मध्या गमिष्यतपतिका

कहन चहत पिय गवन सुनि कह्यौ[1] न मुख ते जाइ।
लाज मदन को झगरिबो धन[2] हिय होत लखाइ ॥४२९॥

प्रौढ़ा गमिष्यत्पतिका

कातिक पून्यौ अंत सुनि परबा[1] पिय[1] प्रस्थान।
कामिनि मुख ससि को भयौ अगहन गहन समान ॥४३०॥

४२७—१. रित (१) २. जनि (१)।
४२८—१. दिन (१)।
४२९—१. कहौ (१), २. नहिं (१)।
४३०—१...१. परब्र पिया (२, ३)।

४२७—डारयौ=डाल, वृक्ष की शाखायें।
४२८—रवन=पति, स्वामी। गवन=गमन, जाना। आनि=लाकर।
४२९—झगरिबो=झगडा होना।
४३०—कातिक पून्यौ=कार्तिक मास की पूर्णिमा। परबा=परिवा, एकम। अगहन=अगहन महीना, अग्रहायण। गहन=ग्रहण, बिपद्।

पहिले[1·] पाँखन आइ है·[1] पिय[2] असाढ़ के मास।
प्रथमहिं झरि छिति बासु लौं निकसी[3] पैहौं सांस ॥४३१॥

परकीया—गमिष्यतिपतिका

मिलन घरी लौ[1] ज्यौं प्रथम दुख दीन्हौं तुव[2] स्याम।
सो[3] चाहत हौ अब दयौ लै विदेस को नाम ॥२३२॥

सामान्या—गमिष्यतपतिका

रच्यो गवन तो करि कृपा मोहि दीजियौ[1] लाल।
जिय राखन कों उरबसी नाम जपन कों माल ॥४३३॥

गच्छतपतिका

जिसको पिय चलने के समय मे हों तामे

मुग्धा—गच्छतपतिका

ज्यौ[1·] ज्यौ·[1] लालन चलन की प्रात घरी नियरात।
त्यौ[2·] त्यौ·[2] तियमुख चंद की जोति घटत सी जात ॥४३४॥

मध्या—गच्छत्पतिका

पिय के चलत[1] विदेस कछु कहि नहिं सके[2·] लजोरि·[2]।
चरन अँगूठा ते[3] रहे दावि पिछौरी[4·] छोरि·[4] ॥४३५॥

४३१—१···१. पहिल पक्ष में आइहो (२, ३)। २. जो (१), ३. निकसत (२, ३)।

४३२—१. ज्यौ (२, ३), २. तुम (२, ३), ३. त्यौं (२, ३)।

४३३—१. दीजियो (२, ३)।

४३४—१···१. ज्यो ज्यों (२, ३), २···२. त्यों त्यों (२, ३)।

४३५—१. चलन (१), २···२. सकति सँजोर (२, ३,) ३. सो (२, ३), ४·· ४. पिछौही छोर।

४३१—पाखन=पक्ष (महीने में दो पक्ष होते हैं।) में। छितिबासु= धरती की गंध।

४३२—सौ=सो, वही। दयो=देना।

४३३—उरबसी=एक गहना।

४३४—चलन=चलने, गमन। प्रात=सबेरे, प्रातःकाल। नियराय = नजदीक होती है।

४३५—लजोरि=लज्जाशील नायिका, लजालू। पिछौरी = ऊपर से ओढ़ा जानेवाला स्त्रियों का वस्त्र, ओढ़नी। छोरि=छोर, कोना।

पिय[1] बिछुरन छिन यौ डरै[2] तिय[3] असुँवा चख[4] आइ।
मनु मधुकर मकरंद कौ उगलि गयो फिरि खाइ ॥४३६॥
रे[1]· तन जड़·[1] तेरो कहौ कहा होइगो रंग।
घरी एक मैं चलत[2] है जिय[3] तो पिय के संग ॥४३७॥
गवन समै पिय के कहति[1] यौं नैनन सों तीय।
रोवन के दिन बहुत हैं निरख लेहु[2] छिनि[3] पीय ॥४३८॥

परकीया–गच्छतपतिका

करी देह जो चीकनी[1] हरि नित लाइ सनेह।
बिरह अगिन[2] परि छिनिक[3] मैं होइ चहत अब खेह ॥४३९॥

सामान्या–गच्छतपतिका

पहिले वितु[1] दै आपुनो जो कीन्हौं[2] चित हाथ।
सोहित[3] तोरि[4] विदेस कौं कत[5] चलियत अब नाथ ॥४४०॥

आगमिष्यतपतिका

जिसका पति विदेस से आनेवाला हो उसमे

मुग्धा–आगमिष्यतपतिका

दिन द्वै मैं मिलिहैं इन्हैं पिय विदेस तें आइ।
सखियन सों यह सुनि[1]· तिया·[1] अखियन रही लजाइ ॥४४१॥

४३६—१. तिय (१), २. तिया (२, ३), ३. चख- (२, ३), ४. गर (२, ३)।

४३७—१···१. चेतनु जनु (२, ३), २. चलति (१), ३. जी।

४३८—१. कहत (१), २. लेहु (२, ३), ३. खिन (२, ३)।

४३९—१. चिकिनी (२, ३), २. अग्नि (२, ३) ३. खिनक (२, ३)।

४४०—१. खित (२, ३), २. कीनौं (२, ३), ३. तौ (१), ४. तोर (१), ५. कित (१)।

४४१—१···१. सुनति तिय (२, ३)।

४३६—मकरंद=फूलों का रस, मधु। उगलि गयौ= उगल दिया।

४३७—जउ = जो।

४३८—तीय = तिय, नायिका। रोवन=रोने के लिए।

४३९—सनेह=प्रेम, स्नेह। खेह=राख, धूल।

४४०—तोरी = तोडना, तुम्हारा।

बाम नैन फरकत भयो बाम[1] जो आनँद[2] आइ।
खिनि उघरति खिनि मुँदति है बादर धूप सुभाइ ॥४४२॥

प्रौढ़ा—आगमिष्यतपतिका

पतिया[1] आई अरु सुनौ[2] पिय आगमन प्रकास।
याते कामिनि प्रान को उपज्यो दुगुन हुलास ॥४४३॥
नैन बाम[1] की फरकि[2] लहि अरु बोलत सुनि काग।
अंग अंग तिय पै[3] लग्यो[4] बरसन आनि सोहाग[5]।४४४॥

परकीया—आगामिष्यतपतिका

हरि आगम[1] सुनि पथिक मुख उमगे सहित सनेह।
नख ते सिख लौं नारि की भई चीकनी देह ॥४४५॥

सामान्या—आगमिष्यतिपतिका

आवत सुनि परदेस तें धनी मित्र तेहि[1] आस।
बारविलासिन के भयो बारहि बार विलास ॥४४६॥

४४२—१...१. बामा आनद (२, ३)।
४४३—१. पाती (२, ३), २. सुन्यो (२, ३)।
४४४—१. बाङ (१-), २. फरक (१), ३. को (२, ३), ४. लगो (१),
५. सुहाग (२, ३)।
४४५—१. आवन (२, ३)।
४४६—१. तिय (१)।

४४२—बाम=बायाँ। बाम = स्त्री। बादर धूप=धूप छाँह।
४४३—पतिआ=पत्र, चिट्ठी। याते = इस प्रकार। हुलास=उल्लास, उत्साह, मनकी उमंग।
४४४—फरकि=फरककर (फरकना से बना है)। काग=कौवा। आनि=आकर।
४४५—उमगे=उमंग मे आ गया, उल्लसित हो गया। नखते सिखलौं=नख या पैर से लेकर सिर तक। चीकन=स्निग्ध, जिसपर हाथ फिसल जाय।
४४६—बारहिबार=बारबार, बारंबार। विलास=आनंद, कामजन्य आनंद।

आगच्छतपतिका

जो तिय विदेश से आगमन सुने उसमें

मुग्धा—आगच्छतपतिका

पिय आये यह सुनि भयौ हरख जो[1] नवला आइ[1]।
कमल कली लौं अरुनता कछु मुख पै दरसाइ[2] ॥४४७॥

मध्या—आगच्छतपतिका

लाजवती परदेस तें पिय आयौ सुधि पाइ।
निसिदिन मधु के कमल सम[1] सकुचत विकसत[1] जाइ ॥४४८॥

प्रौढ़ा—आगच्छतपतिका

पिय आवन[1] सुनि कै तिया यह[2] मन मैं पछिताइ।
पंख[3] नहीं जौं उड़ि मिलौं सब तें[4] पहिले जाइ ॥४४९॥

परकीया—आगच्छतपतिका

आवन[1] सुनि[1] घनस्याम की आन देस तें बात।
चपला ह्वै चमकन लग्यौ[2] नेहन हीं को गात ॥४५०॥

सामान्या—आगच्छतपतिका

धनी मित्र आगमन सुनि सजि सिंगार अभिराम।
बैठी बाहर नगर के डगर बाँधि कै बाम ॥४५१॥

४४७—१. १···बाल तन आय (२, ३), २. दरसाय (२, ३)।
४४८—१. १···लौं विकसित सकुचत (२, ३)।
४४९—१. आवत (२, ३), २. बहु (२, ३), (२, ३), खंज (१), ४. सें (२, ३)।
४५०—१. १···आवत लखि (१), २. लगौ (१)।

४४७—हरख = हर्ष, ।
४४८—मधु=मधुमास, वसंत ऋतु, चैत का महीना। सकुचत=संकुचित होती है। विकसत = खिलती है, प्रसन्न होती है।
४४९—सबतें=सबसे।
४५०—आन=अन्य, दूसरे।
४५१—अभिराम=सुंदर, मोहक। डगर= राता, मार्ग।

आगतपतिका

जिसके पिय परदेश से आ मिलें उसमे

मुग्धा-आगतपतिका

बिछुरि मिल्यौ पिय बाँह गहि ज्यौं ज्यौं पूछत[1] जात।
बूड़ी लाज समुद्र तिय मुख ते कढ़त न बात ॥४५२॥
पिय आयौ[1] आनंद जो भयो नवल[2] तिय आइ।
घटमधि दीपक जोति लौं मुख[3] तें कछुक लखाइ[3] ॥४५३॥

मध्या आगतपतिका

आयो[1] पिय परदेस ते तिय बैठी सकुचाइ।
तिरछी आँखिन[2] तें कछू लखत कनाखि जनाइ[2] ॥४५४॥

प्रौढा आगतपतिका

पिय लखि यौं तिय दृगन कै अंजन अँसुवा[1] ढारि[1]।
ज्यौ ससि निरखि चकोर दे[2] बुझी चिनगिनी डारि ॥४५५॥
तिय हँसि बतिया करन[1] में अँसुवा ढारति जाइ।
मिलन बिरह सुख दुख कहति[2] भई फूलझरी भाइ ॥४५६॥

४५२—१. बूझत (०१)।

४५३—१. आये (२, ३), २···२ तिया उर लाइ (२, ३), ३···३ कछु मुख ते दरसाइ (२, ३)।

४५४—१. आये (१), २···२ अँखियन ते कछुक लखत कनखियन चाइ (२, ३)।

४५५—१. १···आँसू आदि (२, ३), २. वै (२. ३)।

४५६—१. करत (२, ३), २. कहत (२, ३)।

४५२—बिछुरि = बिछुड़कर। कढ़त न=निकलती नहीं है। बात = वाणी, वचन, वायु।

४५३—घटमधि = घड़े के मध्य मे स्थित।

४५४—कनाखि = आँख की कोर से, तिरछी निगाह से।

४५५—बुझी = जलती चीज का ठंढा होना। चिनगिनी = चिनगारी, आग का छोटा टुकड़ा।

४५६—बतियाकरन = बात करते समय। फूलझरी = एक तरह की आतिशबाजी जिसे जलाने पर फूल जैसी चिनगारियाँ झड़ती हैं।

सुख ई[1] बिछुरन खिसिर की है लहलही तुरंत।
बेलि रूप प्रफुलित[2] भई लहि बसंत सो[3] कंत ॥४५७॥

परकीया—आगतपतिका

गये बीति दिन बिरह के आयी निसि आनंद।
प्रेम फँदी कुमुदिनि[1] भई निरखत ही बृजचंद ॥४५८॥

सामान्या—आगतपतिका

तुव बिछुरत तन नगर में बिरह लुटेरे आइ।
मेरे सुबरन रूप कौ[1] लीन्हौं[2] लूटि बनाइ ॥४५९॥

आगतपतिका

संजोगगर्विता—लक्षण

पिय आये[1] परदेस ते गरब होइ[2] जेहि[2] बाल।
सो सँजोग[3] गर्वित तिया जानत सुकवि रसाल[3] ॥४६०॥

उदाहरण

कहाँ गये हैं[1] जलद ये नित उठि जारत आइ[2]।
गाइ मलार बुलाइयतु[3] तऊ न परत लखाइ ॥४६१॥

४५७—१. सषरो (२, ३), २. प्रफुलत (२, ३), ३. को (२, ३)।
४५८—कुमुदिन (१)।
४५९—१. को (२, ३), २. लीनो (१)।
४६०—१. आयो (२, ३), २. २. करै जो (२, ३), ३...३. सजोगनि गरविता बरनत बुद्धि विसाल (२, ३)।
४६१—१. वे (२, ३), गाइ (२, ३), ३. बुलाइए (२, ३)।

४५७—लहलही = हरी-भरी, प्रफुल्ल, आनंदमय। बेलिरूप = लता के समान।
४५८—कुमुदिनि = कोईं, कुमुद। फँदी = फँसी हुई, फंदे में पड़ी हुई। बृजचंद = श्री कृष्ण, प्रियतम।
४५९—लूटि बनाई = लूट का धुन बनाकर।
४६०—गरब = गर्व।
४६१—जलद = बादल। मलार = एक राग जो वर्षा ऋतु मे गाया जाता है, मल्लार।

नायिका-भेद

गुण क्रम से कथनम

होइ नहीं ह्वै कै मिटै नाहक हूँ जिहि[1] मान।
कहै उत्तमा मध्यमा अधमायुक्त[2] प्रमान ॥४६२॥

उत्तमा उदाहरण

कहूँन[1] औगुन कंत को लखौ[1] न हित के जोर।
पिय मयंक मुख के भये रमनी नैन चकोर ॥४६३॥

जदपि मधुर रस लेत है सब फूलन मैं जाइ[1]।
तदपि[2] मालती के हिये औगुन नहिं ठहराइ[3] ॥४६४॥

मध्या-उदाहरण

पिय सनमुख सनमुख रहति[1] विमुख विमुख ह्वै जाति[2]।
धन दरपन[3] प्रतिबिंब लौं तेरी गति दरसाति[4] ॥४६५॥

बिनु[1] सनेह रूखी[2] परति[3] लहि[4] सनेह चिकनाइ।
पिय[5] सुभाइ कुच कवन के तिन मैं होति लखाइ[5] ॥४६६॥

४६२—१. जह (२, ३), २. अध परक्रन (२, ३)।
४६३—१...१. केहू ऐगुन कत के लखै (२, ३)।
४६४—१. जाय (२, ३), २. जदपि (१), ३. ठहराय (२, ३)।
४६५—१. रहत (१), २. जात (१), ३. दरसन (१), ४. दरसात (१),
४६६—१. बिन न, २. रुखे (२, ३), ३. परत (२, ३), ४. लखि (४), ५...५. विष सुभाव ये कचन के तिन मैं तुव दरसाइ (२, ३)।

४६२—नाइक हूँ = झूठ मूठ ही। अधमा = नायिका का एक भेद, निम्न श्रेणी की स्त्री, कर्कशा स्त्री।
४६३—मयंक = चंद्रमा।
४६४—मालती = एक प्रसिद्ध लता जिसके फूलों में बड़ी मीठी सुगंध होती है, युवती।
४६५—सनमुख = सम्मुख, जो सामने हो। सनमुख=अनुकूल। विमुख=विरत, आड मे। विमुख = प्रतिकूल, उदासीन, मुखदीन।
४६६—रूखी = शुष्क, स्नेहहीन, रूठी हुई।

अधमा—उदाहरण

ज्यौं ज्यौं आदर सों ललन पानिय देत बनाइ।
त्यौं त्यौं भामिनि मैन लौं[1] खिन खिन पैठति जाइ ॥४६७॥

बिन ही औगुन पगन परि जदपि[1] मनावहि लाल।
तदपि मान हूँ पै सदा रहै अनमनी बाल ॥४६८॥

नायिका–भेद

जाति कथन

पद्मिनी—लक्षण

तन अमोल कुंदन बरन सुभ[1] सुगंध सुकुमारि[1]।
सूछम भोजन रोस रति सो पदमिनी[2] निहारि[2] ॥४६९॥

उदाहरण

तन सुवास दृग सलज सुभ मन सुचि करम[1] सुनीति।
इनि[2] सुबरन बरुनी[2] लई जगत निकाई जीति ॥४७०॥
सोनो और सुगंध है बाल सलोनो गात।
जापै तिय[1] चख[1] भौंर लौं सदा रहत मँडरात ॥४७१॥

४६७—१. नैन वे (२, ३)।
४६८—१. यदपि (१)।
४६९—१···१. सम सुरीध सुकुमार (२, ३), २···२. पदमिन निरधार (२, ३)।
४७०—१. कर्म (१), २. इन सुब्रान बरनी (२, ३)।
४७१—१···१. चख पिय (१)।

४६७—पानिप = कांति, आभा, लावण्य। मैन = कामदेव,।
४६८—पगन = पैरो, पाँव। अनमनी = खिन्न, उदास। अमोल = अमूल्य।
४६९—कुंदन = तपे हुए सोने जैसा शुद्ध और निर्मल। सुभ = सुखद। सूछम = सूक्ष्म, अल्प, बहुत थोड़ा।
४७०—सलज = लज्जायुक्त। सुचि = पवित्र, शुद्ध। सुनीति = सुंदर नीति, निकाई = बढ़ियापन, अच्छापन, सुंदरता।
४७१—मँडरात = चक्कर काटता है।

जेहि[1] मृगनैनी को रहै नृत्त गीत मैं[2] ध्यान।
चोंप सदा पिय चित्र सों वह चित्रिनी सुजान ॥४७२॥

चित्रणी—उदाहरण

तिय निजु[1] पिय को चित्र मैं सोतुष[2] दरसन पाइ।
गाइ गाइ नृत्तति रहति भाँति भाँति के भाइ ॥४७३॥
मित्रन[1]· चितवत है कहा[1] चित्र रही चितु[2] लाइ।
पत्री हेरति है कोऊ पतरो[3] सनमुख पाइ ॥४७४॥

सखिनी—लक्षण

देह छीन मोटो नसैं कुच लघु निलज निसंक।
कोपवती नख[1] देइ रति संखिनि पीकौ अंक ॥४७५॥

उदाहरण

सनक[1] हियो लखि लाल कों यह मन होति[2] संदेह।
नखन[3] खादि चाहत जियो लालन को मन[4] गेह ॥४७६॥

४७२—१. जिहि (२, ३), २. में (२, ३)।
४७३—१. निज (२, ३), २. सैतुष (१),
४७४—१···१. चितवत कहीं (१), २. चित (१), ३. पत्री (२, ३)।
४७५—१···१. नख दत रुचि (१)।
४७६—१. सनख (२, ३), २. होत (२, ३), ३. निरखन (१), ४. के हिय (२, ३)।

४७२—चोप = चिपकनेवाली वस्तु, लासा,। चित्रिनी = कामशास्त्र में माने हुए स्त्रियों के पद्मिनी आदि चार भेदों मे से एक (यह कलानिपुण और बनाव सिंगार की शौकीन होती हैं।) सुजान = चतुर, सुविज्ञ।
४७३—सौतुष = सन्मुख, प्रत्यक्ष। नृत्तति = नाचती है, नृत्य करती है।
४७४—चितवत = देखती। हेरति = ढूढ़ती है। पतरी = पत्तल।
४७५—कोपवती = क्रोधी। अंक = गोद, कोरा।
४७६—सनक = पागलपन।

हस्तिनी-लक्षण

थूल अंग लोमन छयो गोरी भूरे केस।
गजगौनी उरगंधिनी[1] यहे[2] हस्तिनी[3]· भेस·[3] ॥४७७॥

उदाहरण

ठेगनी[1] मोटी गोरटी जोबन मद ऐंडाति।
सखिन संग गजगामिनी चली ठान सों जाति ॥४७८॥

नायिका—भेद

लोक—भेद के अनुसार

इंद्रानी दिव्या कहै नर तिय[1] कहै अदिव्य।
सिय लौं जो तिय औतरे सो कहि दिव्यादिव्य ॥४७६॥

नेम-वर्णन

कामवती अनुरागिनी प्रौढ़ा भेद प्रमानि[1]।
ज्येष्ठ कनिष्ठा हूँ[2] बिषे मानवती जिय जानि[3] ॥४८०॥
तिय अभिलाष दसा भई लालस मती कहाइ।
ताहि वृत्तके[1]· मति कहै·[1] चुंबन आदि घिनाइ ॥४८१॥

४७७—१ उररीधिनी (२, ३), २. मानि (२, ३), ३···३. हसतहि यह भेद (२, ३)।

४७८—१. रँगनी (१)।

४७६—१. चित्र (१)।

४८०—१. प्रमान (२, ३), २. कनिष्ठाहुँ (२, ३)। ३. जान (२, ३)।

४८१—१···१. सो मति कहत है (२, ३)।

४७७—छयो = छाई हुई। गजगौनी = हथिनी की तरह चलनेवाली।

४७८—ठेगनी = ठिंगनी, छोटे कदकी। ऐंडति = अँगड़ाई ~~लेती है, इतराती है।~~

४७६—इन्द्रानी = इंद्र की पत्नी। दिव्या = लोकोत्तर गुणों से युक्त अमानुषी नायिका। नरतिय = मानुषी। औतरे = अवतार लिया।

४८०—प्रमानि = प्रमाणित।

४८१—लालसमती = लोलुपा, चंचला, किसी चीज को पाने की प्रबल इच्छा वाली। वृत्तके=विहित नियम के। घिनाइ = घृणा करती है।

सुकियन मौ[1] धीरादि को बरनि[2] गये प्राचीन।
मान हेत सब[3] तियन मैं ठहरावत परबीन[3] ॥४८२॥

कुलटा छुटि[1] जो भेद सो परतिय कौ[2] सब आइ।
सुकिया ह्वै ये ह्वै सकत त्रिया हास कों पाइ ॥४८३॥

त्यौही[1] परिकीयान मैं है मुग्धादिक कर्म।
ज्यौं विद्या बाँचत सबै है ब्राह्मन को धर्म ॥४८४॥

लोक भेद दिव्यादि है यह जिय मैं अचिरेषु[1]।
इतनी बिधि सब नायिका बरनत बुद्धि विशेषु[2] ॥४८५॥

नायिका भेद–मध्या

पिवेक कथन

सुकियादिकहूँ भेद को कर्म[1] भेद जिय जानु[2]।
मुग्धादिक को चित विषे भेद वहिक्रम मानु[3] ॥४८६॥

अन्य सुरत दुखदादि को अष्ट नायिका[1] संग।
गनत अवस्था भेद मैं जिनकी बुद्धि उतंग ॥४८७॥

४८२—१. स्वकियन-मैं (२, ३), २. बरन (२, ३), ३···३. त्रतियन रहो रावत वख खीन (२, ३)।

४८३—१. छुट (२, ३), २. के (२, ३)।

४८४—१. यो ही (२, ३)।

४८५—१. अचिरेष (२, ३),। २. विशेष (२, ३)।

४८६—१. करम (३, ३),। २. जानि (२, ३) ३. मानि (२, ३)।

४८७—१. अष्ट नायका (२, ३)।

४८२—बरनि गये = वर्णनकर गये। परबीन = प्रवीण, दक्ष।

४८४—मुग्धादिक = मुग्धा आदि का।

४८५—अचिरेसु = अचरज से।

४८६—वहिक्रम = अवस्था।

४८७—उतंग = ऊँची, श्रेष्ठ।

उक्तिमादि को बूझिये प्रकृत भेद हिय माँहि[1]।
पदुमिनि[2]· आदिक कबित मैं[2] जाति भेद ठहराँहि[3] ॥४८८॥

नायिका की गणना

इक सुकिया द्वौ[1] परकिया सामान्या मिलि चारि।
अष्ट नायिका मिलि सोई बत्तिस होत विचारि ॥४८९॥
उत्तमादि सों मिलि वहै पुनि[1] छियानबे होत।
पुन चौरासी तीन सैं पदुमिनि[2] आदि उदोत ॥४९०॥
तेरह सै बावन बहुरि दिव्यादिक के संग।
यौ गनना में[1] नायिका बरनी बुद्धि उतंग ॥४९१॥×

नायिका की गणना

भरत के मत से

सुकिया तेरह भाँति पुनि परकीयौ द्वै 'नारि।
सामान्या मिलि ये सकल सोरह भेद विचारि ॥४९२॥*
अष्ट नायिका मैं गुने सत अट्ठाइस जानि।
पुनि चौरासी तीनि सै उत्तमादि मिलि मानि ॥४९३॥*
तेरह सै बावन बहुरि दिव्यादिक के संग।
यौ गनना मैं नायिका बरनी बुद्धि उतंग ॥४९४॥*

४८८—१. माह (३), २···२. पद्मिनि आदि कवित्त मैं (२, ३), ३. ठहराह (२, ३)।
४८९—१. द्वै (३)।
४९०—१. सुन (२ ,३), २. पद्मिनि (२, ३)।
४९१—मौ (१)।
४९२—*(२, ३), प्रतियों मे नहीं है।
४९३—*(२, ३) प्रतियों मे नहीं है।
४९४—*(२, ३) प्रतियो मे नहीं है।
×—एक ही दोहा स० ४९१, ४९४ दो बार (१) मे है।

४८८—पदुमिनि = पद्मिनी।
४९१—गनना = गणना,।
४९३—सत = शत, सौ।

सुकीया-तेरह विधि

भरत के मत से

सात बरस लौं जानिये देवी सुद्ध[1] प्रमान[1]।
बहुरि[2] देवि गंधर्व ह्वै चौदह लौ यह[1] जान ॥४९५॥

तेहि पीछे इकीस लौ सुच्छ[1] गंध्रवी होइ।
पुनि गंध्रवी मिलि मानुषी अष्टाइस लौं जोइ ॥४९६॥

सुच्च[1] मानुषी को बरनि[2] पैंतिस लौं उरधारि।
सात बरस प्रति लहति[3] है पांच नाम ये नारि ॥४९७॥

पुनि इन पाँचो भेद मैं तीनि भेद यौं जानि।
साढ़े दस लौं रहति है गौरी[1] बैस प्रमानि ॥४९८॥

पुनि पौने दस लौं रहे ओढी[1] गौरी लेस।
सवा बारही बरस[2] लौं पुनि लच्छिमी सुदेस ॥४९९॥

साढ़े चौबीस लौं रहे बैस लच्छिमी आनि।
तेहि ऊपर पैंतीस लौं बैस सरस्वति जानि ॥५००॥

४९५—१…१. बिधि परमान (२, ३), २…२. बहुरि दवी रीधरवी चौदह लो ताह (२, ३)।

४९६—१. सुधि (२, ३)।

४९७—१. सुद्धि (२, ३), २. बहुरि (२, ३), ३. ३ लहत है (१), प्रति प्रति लहत (२, २)।

४९८—१. गोरी (२, ३)।

४९९—१. और (१) २, बैस (१, २)।

४९५—देवी = सुशीलता सदाचार से युक्त स्त्री। गंधर्व = स्वर माधुर्य उत्पन्न होनेवाली स्त्री की अवस्था।

४९६—गंध्रवी = गंधर्व की स्त्री। सुच्छ = स्वच्छ, सुन्दर, पवित्र। मानुषी = नारी, स्त्री।

४९७—सुच्च = सुचरित्र, स्वच्छ।

४९८—गौरी = आठ वर्ष की अविवाहित कन्या। बैस = वयस, उम्र।

४९९—लच्छिमी = २० वर्ष तक की स्त्री।

५००—सरस्वति = ३५ वर्ष तक की स्त्री।

पैंतिस ऊपर नारि के और बैस को लाइ।
नहिं बरनत रस ग्रंथ में यह कवि कहत बनाइ ॥५०१॥
गौरी पूजन जोग है लछमी योग समर्थ।
बहुरि सरस्वति जानिय मतो पूछिए[1] अर्थ ॥५०२॥
ताहि लच्छिमी बैस मैं सुकिया तेरह जानि।
तामैं मुग्धा पाँच[1]···विधि[1]···भरत मते पहिचानि ॥५०३॥
पुनि मध्या है चारि बिधि प्रौढ़ा हूँ है[1] चारि।
सो इनि तेरह भेद मैं मुग्धा ये उर धारि ॥५०४॥
प्रथम अंकुरित यौबना तीन मास लौं होइ।
नवल बधू षटमास लौं यह निश्चै[1] जिय जोइ ॥५०५॥
बहुरि चौदहें बरस पुनि नव यौबना निवास।
नवलअनंगा पंद्रहें बरस करत परकास ॥५०६॥
होय सोरहे बरस मैं[1] पुनि सलज्ज रत नारि।
अब मध्या को बरन पुनि प्रौढ़ा कहौं[2] विचारि ॥५०७॥
मध्या नूढ़ा जोबना बरस सत्रहे . माह।
प्रकटै मदन अठारहें बरस कहे कवि नाह ॥५०८॥

५०२—१. १. बुझिए (१, २)।
५०३—१. पुनि (१)।
५०४—१. पुनि (२, ३)।
५०५—निःचै (१)।
५०७—१. पै (१, २), २, कहौं (२, ३)।
५०८—(२, ३) प्रतियों में यह नहीं है।

५०२—पूजन = पूजा करने के। मतो = मत, नहीं।
५०३—भरतमते = आचार्य भरत के मत से।
५०५—अंकुरितयौवना = वह स्त्री जिसमें यौवन के चिह्न प्रकट हो चुके हों।
५०६—बहुरि = फिर, पीछे, अनतर। नवलअनंगा = जिसके मन में नया नया काम जागा हो।
५०७—सलज = लज्जाशील।
५०८—कविनाह = कविनाथ, कवियों में श्रेष्ठ।

होत बरस उनईस में[1] प्रगलभ बचना आनि।
बहुरि बीसयें बरस मैं सुरति विचित्रा मानि ॥५०९॥
प्रौढ़ा लुब्धा इति[1] बहुरि इकईसे में होति[2]।
बाइसवें रति कोविदा जानत है सब[3] गोति[4] ॥५१०॥
तेइस में[1] बसि बल्लभा नाम धरत बुधिवंत[2]।
साढ़े चौबीस लौं बहुरि रहै सुभ रमा अंत ॥५११॥

द्वितीय भेद

वय के क्रम से—कथन

सात बरस लौं जानिये कन्या को परमान।
तेरह लौं गौरी बहुरि बाला वैस निदान ॥५१२॥
तरुनि कहैं तेईस लौं प्रौढ़ा पुनि चालीस।
यहि[1] बिधि तिय बय कोक मत बरनि गये[1] कवि ईस ॥५१३॥

५०९—१. वोनईस ये (१, २)।
५१०—१. पति (२, ३), २, होइ (१), ३. कवि (२, ३), ४. गोइ (१)।
५११—१. तेइस ये (२, ३) २. विधिवंत (१)।
५१३—१. ···१ इहि विधि तियवको कहति जे कहात (३)।

५०९—प्रगलभ बचना = प्रगल्भवचना, बोलने में चतुर और ढीठ।
५१०—रतिकोविदा = वह जो रति कला में प्रवीण हो। गोति = समूह।
५११—बल्लभा = प्रियतमा, प्यारी।
५१३—कोकमत = कामशास्त्र के मत के अनुसार, कोक कामशास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य थे।

नायक वर्णन

कही नायिका कहत हौं अब नायक[1] रसलीन[1]।
आलंबन मैं दूसरो जेहि कवि[2] कहत[2] प्रबीन ॥५१४॥

नायक-लक्षण

उपजै जेहि[1] नर निरखि कै नारिन[2] हिय रति भाय[2]।
ताही को नायक कहत[3] जो[3] प्रबीन कवि राय[4] ॥५१५॥

नायक-गुण कथन

धरे रूप गुन धन मनी सबल अमल रसखानि[1]।
दानो धीर गंभीर[2] तें नायक सागर जानि ॥५१६॥

नायक-उदाहरण

इंद्र रूप गुन ग्यान अरु रवि[1] तप सागर[1] दान।
काम कला धरि औतरे सो तुव होइ[2] समान ॥५१७॥

त्रिविध नायक-कथन

सुकिया परकीया पतिहि[1] पति उपपति है नाम।
सामान्या मित्रहि कहैं बैसुक[2] कवि अभिराम ॥५१८॥

५१४—१. ···१ नायिक रस बीन (२, ३), २···२ जिहि बरनत (२, ३), ।
५१५—१. जिहि (२, ३), २···२ नारिन ही प्रति भाव (२, ३), ३···३ कहे जे (२, ३), ४. राव (२, ३)।
५१६—१. रसपानि (२, ३), २. री भीर (२, ३)।
५१७—१. ···१ वितप सुसागर (३), २. होय (२, ३)।
५१८—१. प्रतिहि (२, ३) २. बैसिक (२, ३)।

५१५—भाय = भाव।
५१७—औतरे = अवतार ले।
५१८—बैसुक = वैशिक, वेश्या से सबंध रखनेवाला नायक।

पति का उदाहरण

जिनि चाही कुल कानि तिनि[1] धरी कानि[2] यह ल्याइ।
पति नीको[3] नहि पाइये बिनु[4] पति नीके पाइ ॥५१६॥

जब ते लालन रमनि[1] को गवनु[2] लै आये संग।
तब ते सिव[4] लौं आपनो करि राखी अरधंग ॥५२०॥

पति के चार भेद

इक तिय रति अनुकूल है दच्छिन[1] सील समान।
सठ कपटी मिठ बोलनो धृष्ट जो[2] ढीठ निदान ॥५२१॥

अनुकूल-उदाहरण

नये बसन जब हौं सजौ तब पिय भरम[1] लजाहिं[1]।
बिनु परुषे धुनि बचन के हेरि सकत है नाहिं ॥५२२॥

पातन लै पग तल[1] धरत करत सीस[2] पट छाहिं[3]।
यहि बिधि पिय प्यारी लिये बिहरत उपबन माँहि[4] ॥५२३॥

दच्छिण-उदाहरण

सागर दच्छिन दुहुन की सम बरनत हैं प्रीति।
वह[1] नदियन[2] यह तियन सों मिलत एक ही रीति ॥५२४॥

५१६—१. तिन (१), २. कान (२, ३) ३. नीकी (२, ३) ४. बिन।
५२०—१. रमन (२, ३), २. गमन (२, ३), ३. ले आये (२, ३), ४. स्यौ (१)।
५२१—१. दच्छिन (१), २. जे (१)।
५२२—१…१. भरि मिल जाहि (२, ३)।
५२३—१. लै (२, ३), २. सीसि (२, ३), ३. छाह (१), ४. माँह (१)।
५२४—१. छहन (२, ३), २. विपिन (२, ३)।

५२०—रमनि = रमणी, स्त्री। गवनु = गवन करा कर। अरधंग = आधी देह।
५२१—दच्छिन = दक्षिण, नायक का एक भेद। सठ = शठ, धूर्त, छली, दिखावटी प्रेम करनेवाला नायक।
५२२—भरम = भ्रम। परुषे = छूए, स्पर्श किये,।
५२३—पातन = पत्तों को। बिहरत = बिहार करता है।
५२४—दच्छिन = एक प्रकार का नायक।

सजि सिँगार आई तिया तनु[1] पिय दीप दुराइ।
बोल्यो हँसि हँसि निज करन ल्यावैं दिया जराइ ॥५२५॥

यौं बनितन[1] पिय बात सों अति आनद[2] सरसाँत।
ज्यों बेलिन[3] सुख होत है सुनि बसंत की बात ॥५२६॥

चहुँ दिसि[1] फेरत हैं बदन यौं रचि रास[2] अनूप।
मनहु[3.] तियन[.3] के हेत पिय धरयौ चतुरमुख[4] रूप ॥५२७॥

शठ-उदाहरण

हेरि हेरि मुख फेरि कत तानत भौंह निदान।
बानन बधि[1] कोऊ नहीं राखो चढ़ी कमान ॥५२८॥

रहत टूटि[2] कै बाल सों दृग दुख देत बनाइ।
ढूढ़ि रहेहूँ बाल कँह[2] नैनन अधिक सोहाइ ॥५२९॥

धृष्ट-उदाहरण

क्वाहि गयो ही आपु ही मोरि[1] रिसौहैं खाइ।
आज सीस जावक लिये फिर लोटत है पाइ ॥५३०॥

५२५—१. तन (१)।
५२६—१. बनि तनि (२, ३), २. अनन्द (२, ३), ३. बोलनि (२, ३)।
५२७—१. चहु दिशि (२, ३), चहु दिस (१), २. रचिराम (२, ३), ३ ..३. मानो तिय (१), ४. चतुर्मुख (१)।
५२८—१. सुधि (३)।
५२९—१. रूठि (२, ३), २. वत (१)।
५३०—१. सौरि (२, ३), २. लोटति (१)।

५२५—निज करन = स्वयं अपने हाथों से। दिया = दीपक।
५२६—बनितन = स्त्रियों को। बेलिन = बेलों, लताओं को।
५२७—रास = नृत्यक्रीडा। चतुरमुख = चार मुहो वाला, ब्रह्मा।
५२८—तानत = खीचती है। बानन = वाणों से।
५२९—बाल, = १—केश २—नायिका।
५३०—रिसौहैं = फटकारा, क्रोध भरी झडी। जावक = महावर।

पिय सौतिन के नेह मैं[1] घने सने हैं नैन।
याते पानिप लाज को केहू बिधि ठहरै न ॥५३१॥

अनुकूलादि भेद में

वैसिका से भी उपपति हो सकने का कथन

अनुकुलादिक ये चतुर भेद जो पति के आहिं।
उपपति[1] वैसक बीच हूँ बुधि बल सो ठहराहिं[1] ॥५३२॥

उपपति का उदाहरण

सुख बाघन[1] के मिलन को केहि बिधि बरनै कोइ।
चोरी को गुरु विदित यह निपट स्वाद को होइ ॥५३३॥

वंसो टेरो आइ हरि तिय देखन के चाइ।
खिरकी खोलतही[2] गिरी कछु फिरकी सी खाइ ॥५३४॥

यह विचित्र[1] तिय की कथा कहिये काहि सुनाइ।
मो घट आगि लगाय कै घट लै जल को जाइ ॥५३५॥

आयी वह पानिप भरी रमनो आजु अन्हान।
जिहि बूड़नि[1] निकसनि[2] लखै निकसत बूड़त प्रान ॥५३६॥

५३१—१. मे (१)।
५३२—१···१. २, ३. प्रतियो मे यह पक्ति नहीं है।
५३३—१. बानी (३), २. को (१)।
५३४—१. देखनि (१), २. बोलतहि (३)।
५३५—१. चरित्र (३)।
५३६—१. बूड़ति (२, ३) २. निकसति (२, ३)।

५३१—सने = लिप्त।
५३३—वा = उस। गुरु = गुड, मिठाई।
५३४—फिरकी = चकई, फिरहरी।
५३५—घट = हृदय। घट = घड़ा।
५३६—अन्हान = स्नान करने। बूड़नि निकसनि=डुबकी लगाना और पानी के बाहर निकलना।

उपपति

त्रिबिध भेद

उपपति तीनि प्रकार पुनि गूढ़ मूढ़ आरूढ़।
तिनको यहि[1] बिधि आनि कै बरनत है मति गूढ़ ॥५३७॥

गूढ़-लच्छण

परतिय सों मिलि नेह जो दुरये रहे बनाइ।
दिन दिन करहि विनोद अति सोइ गूढ़ कहि जाइ ॥५३८॥

उदाहरण

पिय निज तिय हिय बसत यों दुरये परतिय नेह।
मधुप मालती छकति ज्यौं करति कमल मैं गेह ॥५३९॥

मूढ-लच्छण

पर नारी के नेह को कहि निज घन के पास।
फिरि घन से रूसे भरै[1] हिय मौं मूढ़ उसाँस ॥५४०॥

उदाहरण

पर तिय हित निज नारि सों यौं कहि पिय पछिताइ।
कुमति चोर ज्यौं आपुनी[1] चोरी देत[2] बताइ ॥५४१॥

आरूढ़-लच्छण

सदा पराये गेह जो पर नारी[1] हित जाइ।
बंधनता[2] उनकौ[2] सहै यह आरूढ़ सुभाइ ॥५४२॥

५३७—१. यह (२, ३)।
५४०—१. भगै (२, ३)।
५४१—१. आपनी (२, ३), २. आप (२, ३)।
५४२—१. तरुनी (३), २···२नित बधन ता तिय (२, ३)।

५३७—उपपति = पर स्त्री से प्रेम करनेवाला पुरुष, यार।
५३८—दुरये = छिपे हुए।
५३९—गेह = निवास।
५४०—रूसे = रूठे।
५४१—कुमति = मूर्ख।

उदाहरण

कुलटनि के सँग पकरि कै मारी बाँधि अभीति[1]।
तउ[2] छूटै पर कहत हैं भई हमारी जीति[3] ॥५४३॥

बैसिक का उदाहरण

सुबरनबरनी द्वार पै बैठी पान चबाइ[1]।
पैंठी सी अखियनि[2] चितै जिय मैं पैठत जाइ[3] ॥५४४॥

लाल अधर हीरा[1] रदन जेहि सुबरन तन साथ।
दीजै केहि[2] धन लाइये कीजे जेहि धन हाथ[2] ॥५४५॥

कौन जतन करि राखिये ताको नित[1] हिय[2] लाइ।
अष्टापद[2] सो लेत कर[3] जाकै बिय पद जाइ ॥५४६।

बैसिक दो भेद

बैसिक है पुनि उभै बिधि प्रथम जानि अनुरत्त।
ताही को पुनि जानिये भेद दूसरो मत्त ॥५४७॥

५४३—१. अभीत (२, ३), २. कोऊ (२, ३), ३. जीत (२, ३)।
५४४—१. चबाति (२, ३), २. चखियन (२, ३), ३. जाति (२, ३)।
५४५—१. हियरँग (२, ३), २···२. किहि धन लाय के कीजै तिहि घर माथ (२, ३)।
५४६—१. ···१ निज हित (२, ३), २. अष्ट पदन (२, ३), ३. हौ (३)।

५४३—अभीति = बिना डर के, बिना भय के।
५४४—बरनी = बरनवाली, वर्णवाली, ।
५४५—लाल = १. लालरंग, २. माणिक ।
हीरा = १. श्वेत कांतियुक्त, २. एक बहुमूल्य रत्न।
सुबरन = १. सुंदर वर्ण, २. सोना।
धन = १. द्रव्य, २. स्त्री।
रदन=दशन, दाँत।
५४६—बिय = दो, ।
५४७—मत्त = मस्त, मतवाला। अनुरत्त=अनुरक्त।

अनुरक्त-लक्षण

होइ जो मन बच कर्म[1] सो गनिका ही सो लीन।
ताही सो अनुरक्त कहि भाषत है परबीन ॥५४८॥

उदाहरण

या मन मैं अब कौन बिधि दूजी आनि समाइ।
बार बिलासनि के रह्यौ[1] सदा बिलासिनि छाइ ॥५४९॥

मत्त-वर्णन

दूजौ बैसिक[1] मत्त है यह बरनत बुधिवंत[2]।
सोइ तीनि बिधि काम मत सुरा मत्त धन मत्त ॥५५०॥

काममत्त-लक्षण

फिरत रहत निन काम बस[1] कहूँ न नैकु[2] अघात।
दिन निज घर निसि पर घरहिं बारि नारि घरि प्रात ॥५५१॥

सुरामत्त-लक्षण

चंपक बरनि[1] सुबास तनि[2] निज धन कौ न सुहाइ।
बारबधुन के नित फिरे मदै[4] पियन[4] की चाइ ॥५५२॥

धन मत्त-उदाहरण

रूप गुनन मैं आगरी नगर नागरी ल्याइ।
बस के बल इन छुद्र यह बस कर लाइ[1] बनाइ ॥५५३॥

५४८—१. करम (२, ३)।
५४९—१. रहौ (१)।
५५०—१. बैसक (१), २. सुधितत्त (२, ३)।
५५१—१. बसि (२, ३), २. नैन (२, ३)।
५५२—१. बरन (२, ३), २. तन (१), ३. की (२, ३.), ४...४. मद पीवन (२, ३)।
५५३—१. करि लई (२, ३)।

५४८—मन बच कर्म = मन, वचन और कर्म। गनिका = वेश्या, धन के लोभ से नायक से प्रेम करनेवाली।
५४९—आनि = आकर।
५५२—तनि = तन, शरीर।
५५३—आगरी = आकर, खान, खजाना।— नगर नागरी = वेश्या।

नायक-त्रिबिध भेद

प्रकृत गुण के अनुसार

पति उपपति बैसिक[1] तिहूँ[2] उत्तमादि जिय जानि।
ग्रंथन को मतु[3] देखि कै बरनत हैं कवि आनि ॥५५४॥

उत्तमादि-लक्षण

उत्तिम[1] मनुहारिन करै मान न मानै आनि।
मध्यम सम ई अधम मिलि[2] अरथी निलज निदान ॥५५५॥

उत्तम नायक-उदाहरण

काजर दीने अरुनता भई बाल दृग माँहि।
समुझि ललाई मान की बिनै करत है नाँहि ॥५५६॥

तिय सखियन सौं[1] रिस किए बैठी भौंहनि तानि।
पिय[2] संकति कहि सकत है बात न मुँख ते आनि[2] ॥५५७॥

मध्यम नायक-उदाहरण

आवतहीं तिय मान तकि कछू न बोले लाल।
जब सिंगार साजन लगी तब भे लाल निहाल ॥५५८॥

बिनु पानिप आदर नहीं रहे राख मन माँहि[1]।
सुमुखि रूप पानिप लिये मिलति नारि सौं नाँहि[2] ॥५५९॥

५५४—१. बैसक (१, २), २. तहूँ (१), ३. मत (२. ३)।
५५५—१. उत्तम (२, ३), २. निज (२, ३)।
५५७—१. सो (२, ३), २ ··२. पिय सकत नहि कहि सकत याते मुँख
ते आनि (२, ३)।
५५८—१. तब ते (२, ३)।
५५९—१. माँह (१), २. नाँह (१)।

५५५—मनुहारिन = ऐसी मानवती नायिका जिसका मान छुड़ाने के लिए नायक द्वारा विनय की अपेक्षा होती है। अरथी = मतलबी।
५५६—दीनें = देने से।
५५७—संकति = संकोच करती है, डरती है।
५५८—साजन = सजाने, सज्जा करे। भे = भए, हुए।
५५९—पानिप = पानी, इज्जत, कांति, आब।

अधम नायक—उदाहरण

दई लाज बिसराइ जिन[1] लई कुटिलता[2] साथ।
दई दयौ है बाँधि कै ताहि निरदयी हाथ ॥५६०॥

निलज निठुर[1] निज आरथी जेहि[2] न हिताहित चेत।
ऐसे लंगर सों[3] सखी बनै कौन बिधि हेत ॥५६१॥

मानी नायक,
चतुर नायक—वर्णन

मानी नायक चतुरको सठ[1] मैं अंतर भाव।
तिन दोऊ के सकल[2] कवि[2] द्वै बिधि कहत सुभाव ॥५६२॥

मानी उदाहरण

जेहि हित बिनै अँकोर दै करत हुते कर जोरि।
तासों लाल कठोर ह्वै कहा रह्यौ[1] मुख मोरि ॥५६३॥

मानी नायक—भेद

मानी के द्वै भेद ये मन[1] मैं[1] लीजै जानि।
प्रथम रूपमानी बरन[2] गुनमानी पुनि आनि ॥५६४॥

रूपमानी—उदाहरण

खरी अगोर रहीं सबै लखी न तुम इक बारि[1]।
यहि कारी अन्हवारि[2] मै यतौ मान[3] बिस्तारि ॥५६५॥

५६०—१. जिनि (२, ३), २. कूरता (२, ३)।
५६१—१. निडर (१), २. जिहि (२, ३), ३. से (१)।
५६२—१. शठ (१), २···२. कल कवी (२, ३)।
५६३—१. रहे (१)।
५६४—१···१ बिधि (२, ३), २. बरनि (१)।
५६५—१. वार (१), २. अनुवारि मै यतौ नाहि (२, ३), ३. बिस्तार (१)।

५६१—आरथी = अर्थवाला, हितवाला, मतलब वाला। लंगर=ढीठ, शरारती।
५६३—अँकोर = भेंट, नजर, घूस।
५६४—गुनमानी = गुणवान।
५६५—अगोर = ध्यानपूर्वक देखना। कारी=करनेवाली। अन्हवारि=लानेवाली (दूती) यतौ = इतना।

बार बार हेरत कहा दरपन मैं[1] चित लाइ।
नैकु लखो निज बदन मैं राधे बदन मिलाइ ॥५६६॥

गुनमानी—उदाहरण

अहो निठुर निसि कित बसै इती बात सुनि कान।
कछु[1]···मिसि···[1] करि आपू[2] हरी[3] करयौ बाम सौ मान ॥५६७॥

चतुर नायक—लक्षण

निपुन होइ जो सकल बिधि सोई चतुर बखान।
बचन चतुर है एक पुनि[1] क्रिया चतुर पहचान[2] ॥५६८॥

बचनचतुर-उदाहरण

मिसि करि सब सों यौं कह्यौ हरि राधिकहि[1] सुनाइ।
लैहौं पाहन संग ही तौ तुव गाइ मिलाइ ॥५६९॥

कैसी बिधि चमकत हुती[1] अंबर मैं अभिराम।
लखी स्याम कोउ कामिनी नहीं दामिनी बाम ॥५७०॥

नायक स्वयदूत

चली कहाँ 'कीजै कृपा सघन कुंज की छाँह।
भुव अकास दोऊ जरत जेठ दुपहरी माँह ॥५७१॥

यह अँधियारी मैं पिया मिलि चलिये किनि आइ।
हम सहाइ तुम होइ तुम मुख दुति हमहि सहाइ ॥५७२॥

५६६—१. यो (१)।

५६७—१···१. कछु यक मिसि (२, ३), २. आप (२, ३), ३. हरि (२, ३)।

५६८—१. अरु (२, ३), २. पुनि जान (२, ३)।

५६९—१. राधि के (२, ३), २. सिलाइ (२, ३)।

५७०—१. हती (१)।

५६८—निपुन=कुशल, चतुर ।

५६९—पाहन=पत्थर ।

५७०—अंबर=आकाश ।

५७१—भुव=भू, आकाश ।

क्रियाचतुर-उदाहरण

बिप्र रूप धरि सौ जलै[1] जमुना के तट जाइ।
हरि टीको राधे बदन दयो सबन बहिकाइ ॥५७३॥
आजु लेरुवा देन मिसि मो उर[1] ढिग करि ल्याइ[2]।
उन चंचल यह अनछुई छतियाँ छुई बनाइ ॥५७४॥

प्रोषित नायक-लक्षण

जो तिय नर निजु देस तजि आन देस को जाइ।
तासों प्रोषित कहत हैं यह[1]... बरनत...[1] कबिराइ ॥५७५॥

उदाहरण

कनक छरी सोभाभरी दामिनि दीपति जाल।
अँमृत बेलि[1] जिवावनी मो ती[2] बिछुरी हाल ॥५७६॥
जब तें तिय तजि हौं परो[1] यह बिदेस मैं आइ।
तब तें इन बतियान सों जीजे[2] हिय दग लाइ ॥५७७॥
अगिन रूप बनि रे बिरह[1] कत जारत है[2]... मोहि...[2]।
तिय तन पानिप पाइकै बोरि[3] मारिहौं तोहि ॥५७८॥

अनभिज्ञ नायक-लक्षण

जो संज्ञा संकेत कौ[1] नैकु न राखै ग्यान।
सो नायक अनभिज्ञ है यह बरनत कवि जान ॥५७९॥

५७३—१. सों झुले (२, ३)।
५७४—१. उठ (३), २. लाइ (१)।
५७५—१...१. जे प्रबीन (२, ३)।
५७६—१. बोलि (२, ३), २. तिय (२, ३)।
५७७—१. पर्यौ (२, ३), २. जो जे (२, ३)।
५७८—१ १. रहत कत (२, ३), २. कत मोहि (२, ३), ३. बोर (३)।
५७९—१. को (२, ३)।

५७३—बिप्र = ब्राह्मण।
५७४—लेरुवा=लड़ुवा। अनछुइ=अस्पर्श, बिना छुई हुई।
५७६—जिवावनी=जिलानेवाली।
५७८—बोरि=बोरकर, डुबाकर।

उदाहरण

हँसि[1] हँसाइ अठिलाइ पुनि हगन चाइ करि ठेन।
पेठि कामिनि सैन पै लखी न मुरु अहुँ सैन...[1] ॥५८०॥

रस प्रधानता से चतुर्विध

नायक कथन

रस प्रधान ते नाम ये[1] नायक पावै चारि।
जो रस जामैं अधिक है ताको[2] कहौं विचारि ॥५८१॥
होत सिँगार प्रधान ते धीर ललित जग आइ।
भई रुधिर की अधिकई धीर उदित[1] कहि जाइ ॥५८२॥

धीर-उदात

धीर प्रधान लहै कहौ नायक धीर उदात।
धीर प्रसांत[1] सो जानु[2] जेहि सार[3] सांति[3] की बात[4] ॥५८३॥

धीरललित

भूषन बसन बनायबो उज्जलता प्रिय मित्त।
विषै[1] लालसा जानिये धीर ललित कौ[2] चित्त ॥५८४॥

धीरोधिता

रोज घने[1] लघु दोष तें गहिरो गर्व[2] अमर्ष।
निज मुख ज्रस अस्तुति किये धीर उधित को हर्ष ॥५८५॥

५८०—१...१

हँस हँसाय अँरलाय पुन हगन चाय करि ठैन।
पयौढी कामनि सैन पै लखि मूरष छन सैन ॥ (२, ३)

५८१—१. ये (२, ३), २. तामे (२, ३)।

५८२—१. उधित (२, ३)।

५८३—१. प्रधान (२, ३), २. जान (२, ३), ३. रस रसवत (२, ३), ४ सरसाति (१)।

५८४—१. विषय (२, ३), २. के (२, ३)।

५८५—१. घनी (२, ३), २. गरो (२, ३), ३. धीरोधित (२, ३)।

५८०—मुरु=मुरकर।

५८३—सार=तत्व। साँति=सत्व।

५८५—रोष=अमर्ष।

धीरोदात

दान दया सत[1] मान[1] सुभ काजन मैं उतसाह।
प्रिया प्रेम जस धर्म[2] मैं धीरउदातहि[3] चाह ॥५८६॥

धीर-प्रधान

तत्व[1] ज्ञान रुचि सत्य गुन धर्माधर्म[1] विवेक।
सोई धीर प्रधान[2] है सज्या की[3] जँह[3] टेक ॥५८७॥

दिव्यादिव्य नायक

लोक भेद से कथन

इन्द्रादिक ये[1] दिव्य[1] हैं मानुस जानि[2] अदिव्य[2]।
अरजुनादि[3] या जगत मैं जानहुँ[4] दिव्यादिव्य[5] ॥५८८॥

नायक की गणना

चारि भाँति पति हैं बहुरि उपपति तीनि[1] प्रमान।
द्वै बैसक[2] मिलि ये[2] सकल नौ विधि होत निदान ॥५८९॥
उतमादिक[1] मैं गुनत सो सत्ताइस पुनि होत।
गुने धीर ललितादि मैं है सत आठ उदोत ॥५९०॥

५८६—१...१. सत्यीन (१), २. धरम (२, ३), ३. धीरोदातहिं (२, ३)।

५८७—१...१. ततु ग्राम रुचि संतगुन धरमाधरम (२, ३), २. पर सत्य (३), ३...३. को जिहि (२, ३)।

५८८—१. योग्य (२, ३), २...२. जन आदिव्य (२, ३), ३. अरुजनादि (२, ३), ४. जानी (१), ५. दिव्यअदिव्य (१)।

५८९—१. तीन (२, ३), २. वैसिक लीन्हे (३)।

५९०—१. उत्तमादि (२, ३)।

५८७—सज्या = सत्य।

गने सकल ये भेद जब द्विव्यादिक मैं जात।
तब चौबिस अरु तीनि सै सब[1] नायक ठहरात[1] ॥५६१॥
जैसी बरनी नायका तैसै नायक नाहिं।
जे बरनन में उचित हैं तेई बरने जाहिँ ॥५६२॥

५६१—१…१. नायक है अवदात (१)।

दर्शन–चतुर्विध

रति आलम्बन होत है दम्पति दरसन पाइ।
याते दरसन को[1] धरौं आलंबन मैं[2] लाइ ॥५६३॥

सो दरसन ग्रंथन मते बरनत हैं कबि चारि।
श्रवन सपन अरु चित्र पुनि[1] सौतुष होत[2] बिचारि[2] ॥५६४॥

श्रवनन हीं दरसन बनै पै दंपति[1] जुत[1] आइ।
यह रति आलम्बन करत यातें[2] बरनो[3] जाइ ॥५६५॥

श्रवन दर्शन-उदाहरण

जब तें मोहि सुनाइ तूँ कही कान्ह की बात।
तब तें दृग मृग[1] लौं चले कानन ही को जात ॥५६६॥

तू तिय छबि मद जो दई श्रवन चषक को प्याइ।
सो[1] मो हिय अति छकित वै नैनन झलकी[1] आइ ॥५६७॥

स्वप्न दर्शन-उदाहरण

जागत जोरु जो पाइए दौरि लागिए साथ।
सपने को चितचोरु क्यौं आवै अपने हाथ ॥५६८॥

५६३—१. मों (२, ३), २ जुति (२, ३)।
५६४—१. मे त्यौ (२, ३), २. निरधारि (२, ३)।
५६५—१···१. दीपति जुति (२, ३), २. तातें (२, ३), ३. बरने (१)।
५६६—१. खिग (२, ३)।
५६७—१. ···१ मो सौही अति छकति कै नैनन फूली (२, ३)।

५६६—कानन = कानों, जंगल।
५६८—जोरु=प्रियतमा, स्त्री, जोड़ा, जोड़, जोर, ताकत। चितचोरु=चितचोर।

बाम चोरटी[1] की कथा कहिये काहि सुनाइ।
जागेहू नहि मिलत है सपनेहु[2] गई[3] चुराइ[4] ॥५६६॥

चित्र दर्शन-उदाहरण

चित्रहि चितवत चित्र लौं[1] रही एकटक जोइ।
मित्र बिलोकति[2] रावरी कहौ[3] कौन गति होइ ॥६००॥

निरखि निरखि जिहि चित्र हरि राखत हौं हिय लाइ।
तेहि[1] देखाइ[2] कै निज गरे डारे पाय[3] बनाइ ॥६०१॥

सौतुष दर्शन-उदाहरण

खिनि[1] पिय मन खिनि[1] पिया मन निरख जात यौं भोइ।
ज्यौ खिनि[1] नदि[2] जल[3] समुद जल नदी समुद जल[3] होइ ॥६०२॥

ज्यौं पिय दृग अलि भँवति तिय बदन कमल की ओर।
त्यौं पिय मुख ससि लखि भये तिय के नैन चकोर ॥६०३॥

५६६—१. चोरटी (२, ३), २. सुपने (२, ३), ३. गयौ (१), ४. चोराइ (२, ३)।

६००—१. त्यौं (२, ३), २. बिलोकत (१), ३. कहो (२, ३)।

६०१—१. तिहि (२, ३) २. दिखाय (२, ३), ३. रहो (३)।

६०२—१. खिन (१), २. ननदि (२, ३), ३. ३. जल समुद नदी समुद जल (२, ३)।

५६६—चोरटी=चुरानेवाली।

६०२—भोइ=मोह।

६०३—भँवति = घूमता है।

शृंगार रस

स्थायी उद्दीपन-वर्णन

आलंबन मैं नायिका नायक प्रथम बखानि[1]।
सखि दूती रितु आदि दै[2] उद्दीपन मैं आनि[3] ॥६०४॥

सखी-लक्षण

रहै सदा जो संग अरु करै काज सब[1] आनि।
हित अनहित कहुँना कहै सोइ सखी पहिचानि ॥६०५॥

सखी के चार विधि-कथन

सखी चारि हितकारिनी विग्य विदग्धा ल्याइ।
अंतरंगिनी और पुनि बहिरंगिनि कहि[1] जाइ[1] ॥६०६॥
सखि लच्छन मैं कैस हूँ बहिरंगिनि[1] न समाइ।
अंतरंगिनी जोर तें ग्रंथन बरनी जाइ ॥६०७॥

हितकारिनी सखी-उदाहरण

छिन बनाइ भषन बसन लखति दिठौना लाइ।
छिन बारति[1] धन सीस पै राई नोन बनाइ ॥६०८॥
चित चाहत अलि अंग तुव लहि दीपक परमान[1]।
लै लै जनम पतंग कौं सदा वारिये प्रान ॥६०९॥

६०४—१. बखान (२, ३), २. अब (२, ३), ३. आन (२, ३)
६०५—१. सम (२, ३)।
६०६—१. ···१ न समाइ (२, ३)।
६०७—१. बहिरंगिन (२, ३)।
६०८—१. बसन (२)।
६०९—१. परिमान (२, ३)।.

६०८—दिठौना=नजर बचाने के लिए बच्चों के मस्तक पर लगाया जानेवाला काजल का टीका। राइ नोन बनाइ = टोटका करके।
६०९—वारियै=निछावर कीजिए, जलाइये।

विज्ञ बिदग्धा-उदाहरण

गुंज लैन तू आपु[1] कत कुंज गई यहि[2] काल।
कंटक छत नख चाहि कै चख[3] नचाइ[3] कै बाल ॥६१०॥

लाल रंग फीको पर्‌यौ[1] लीन्हौ[2] मनो निचोइ।
मिलै जु बारी सुमन यह तौ बर नीको होइ ॥६११॥

अतरगनी-उदाहरण

मन मोहन ल्यावति[1] नहीं मोहन[2] ल्यावति धाइ।
कारे याहि डस्यौ नहीं कारे डस्यौ बनाइ ॥६१२॥

सबै आपने अर्थ को बिथा[1] न जानत कोइ।
प्यारी उर मैं पीर है जतन कछू नहिं होइ ॥६१३॥

बहिरगिनी-उदाहरण

पिय देखत ही काम तें गह्यौ कंप तिय आइ।
सीत जानि अलि अगिन[1] को ल्याई बेगि[2] जराइ ॥६१४॥

सखी का काम-कथन

मंडन सिच्छा दैन अरु उपालंभ परिहास।
सखी काज ये चारि[1] बिधि बरनत[1] बुद्धि निवास ॥६१५॥

६१०—१. आजु (२, ३), २. यह (२, ३) ३···३. चखन चाहि (२, ३)।
६११—परो (१), २. लीनों (२, ३)।
६१२—१. ल्यावत (१), २. सोहन (२, ३)।
६१३—१. बिना (३)।
६१४—१. अग्नि (२, ३), २. बेग (२, ३)।
६१५—१. ···१ जानि ए औरौ (१)।

६११—निचोई=निचोड़कर।
६१२—कारे=कृष्ण, साँप। डँस्यौ= काटा, डँस लिया।
६१३—जतन = यत्न, उपाय, उपचार।
६१४—जराइ=जलाकर।
६१५—मंडन = सजावट, शृंगार।

मंडन उदाहरण

सखिन[1] सँवारी[1] भावती निज निज कारज जानि।
मालिनि लै पुहुपाभरन[2] भई सामुहे आनि ॥६१६॥
सखिन[1] परी[1] है कठिन तब भूषन कनक बनाइ।
बार हार हेरत तऊ द्दगन लख्यौ नहिं जाइ ॥६१७॥

सिच्छा-उदाहरण

अपने घर बैठी रहौ बाहिर देहु न पाइ।
डरियत है चितवनि[1] हरी हरो न तुव[2] मति जाइ ॥६१८॥
जेहि[1] द्दग सों[2] द्दग लगि झरी अगिनि[3] हिये मैं आइ।
तेहि[4] तनु[5] पानिप माँह अब लीजै बेगि बुझाइ ॥६१९॥

उपालभ-उदाहरण

मोहि नहीं यह रावरी नोखी रीति[1] सुहाइ।
बाँधि रहो रिस मीच कौ[2] सील कपूर उड़ाइ ॥६२०॥

६१६—१. सखी सँवारी (२, ३), २. पुहुपा भवन (२ ३)।
६१७—१. ...१ सखिनि बनी (२, ३)।
६१८—१. चितवत (१), २. तव (२, ३)।
६१९—१. जिहि (२, ३), २. मै (२, ३), ३. अग्नि (२, ३), ४. तिहि (२, ३), ५. तन (२, ३)।
६२०—१. बानि (२),२. मिरिच सो (२, ३)

६१६—पुहुपाभरन=(पुहुप+आभरन) पुष्पाभरण, फूलों का गहना।
६१७—हेरत=ढूँढ़ती है।
६१८—बाहिर=बाहर। हरि=पीतम। हरी=हरण की हुई।
६१९—अगिनि=अग्नि।
६२०—नोखी=अनोखी, अद्‌भुत। सील=शील। कपूर=स्फटिकके रंग-रूप का एक गंध-द्रव्य जो रखने से कुछ दिनो मे उड जाता है।

जिन्हैं[1] आपनो जानि[2] तूँ ज्यायो[3] अमृत प्याइ।
तिन्है[4] मारियत बावरी बिष के बान चलाइ ॥६२१॥

परिहास

सखी का नायिका से

नेवर पिय श्रुति[1] लगन को सुख लीजै[2] भरि पूरि।
अबहीं दिन छुद्रावली बोलन के अति दूरि ॥६२२॥

लगे नखन लखि सखि[1] कह्यौ कर चलाइ कुच-हाल।
नख के सिर[2] लागत दई चख के सिर[3] यह बाल ॥६२३॥

परिहास

सखी का नायक के प्रति

एक सखी इक छोहरै[1] राधे रूप बनाइ।
रीतो मटुकी[2] सीस दै हँसी स्याम बहकाइ ॥६२४॥

तियन[1] मुकुट पट छीनि[2] कै होरी औसर जानि[3]।
सब सिंगारु ललीन[4] के करे स्याम तन आनि ॥६२५॥

६२१—१. जिनै (२, ३), २. जान (२, ३), ३. ज्यापो (३), ४. तिनै (२, ३)।

६२२—१. छुत (२, ३), २. लीजो (२, ३)।

६२३—१. कै (२, ३), २. सर (२, ३), ३. सर (२, ३)।

६२४—१. छोहरे (२, ३), २. मटकी (२, ३)।

६२५—१. त्रियन (१), २. छीन (२, ३), ३. आनि (१), ४. नारीन (१)।

६२१—मारियत=मारती है।

६२२—नेवर=नूपुर, घुँघरू। छुद्रावली=क्षुद्रघंटिका।

६२४—छोहरै=छोहरा, लड़का। रीती=रिक्त, खाली। मटुकी=छोटा मटका। बहकाइ=बहाली देकर, भुलावा देकर।

६२५—होरी=होली। ललीन=लड़कियों, नायिकाओं।

नायिका का परिहास

नायक के प्रति

चित्र चित्रिनी[1] चित्र तिलु दीन्हौं[2] अधिक सुजान।
चित्र और को मानि[3] तिय कियौ[4] मित्र सो मान ॥६२६॥

सोधा[1] लावत कंचुकी निज पिय चितयो[2·] बाल[2]।
निरखत भाजे[3] सकुच तें डारि कंचुकी हाल ॥६२७॥

नायिका का परिहास

नायक से

मुरली आपु लुकाइ कै पूछति[1] है[2] वृजनाथ।
कहाते हमारो हारहू धरयो हुतो तिहि साथ ॥६२८॥

लाइ बिरी मुख लाल तें खैंच लई जब बाल।
लाल रहे सकुचाइ तब हँसी सबै दै ताल ॥६२९॥

दूती-वर्णन

दूती-लक्षण

मिलि न सकत जो तिय पुरुष तिनि मैं हित उपजोइ।
छल बल आदि मिलावई दूती कहिये सोइ ॥६३०॥

जान दूती भेद

पठए[1] आवै और[2·] के दूती कहिये सोइ[·2]।
अपनी पठई हार सों जानु दूतिका जोई ॥६३१॥

६२६—१. चिचित्रिनि (२, ३), २. दीनो (२, ३), ३. सुमति (२, ३), ४. कियो (२, ३)।

६२७—१. सौंधो (२, ३), २···२. जियौ लाल (१), ३. भागी (१),

६२८—१. पूछत (२, ३), २. हूँ (१)।

६३१—१. परिये (३), २···२. होइ जो बानदूतिका सोइ (२, ३)।

६२६—चित्रिनी=(चित्रिणी) कामशास्त्र में माने हुए पद्मिनी आदि नायिका के चार भेदों में से एक। यह कलानिपुण और बनाव-सिंगार की शौकीन होती हैं।

६२७—सोधा= सुगंधि। हाल=शीघ्रतापूर्वक, तत्काल।

६२८—हारहू=हार भी।

६२९—सकुचाइ=संकोच कर के, लजाकर के।

६३०—हित=प्रेम। उपजोइ=उपजाकर, पैदाकर।

६३१—पठए=भेजने पर, पठाए जाने पर।

त्रिबिध दूती भेद-वर्णन

अनसिखई सिखई मिलै सिखई कहै बखानि[1]।
उत्तिम[2] मध्यम अधम यह तीन भाँति की जानि[3] ॥६३२॥

उत्तम दूती-उदाहरण

जिहिं[1] मानिक सो मन दयो आइ तिहारे हाथ।
तिहिं[2] यहि अपनो रूपहू चलि दरसैये नाथ ॥६३३॥
सिर कलंक कत लेति मुख ससि निकलंकी पाइ।
वह चकोर लौं[1] दिन भरति[2] बिरह[3] अँगारन खाइ ॥६३४॥

मध्यम दूती-उदाहरण

बेगि आइ सुधि लेहु यह अली कह्यौ[1] घनस्याम।
हौं देख्यौ वह चातिकी[2] रटति तिहारो नाम ॥६३५॥

अधमा दूती-उदाहरण

मोह कह्यौ कहि यौं उतै बन माली को पाइ।
नवल बेलि सीचें[1] "बिना[2] दिन प्रति सूखत[3] जाइ ॥६३६॥

नायक बचन-जान दूती के प्रति

जमुना तट ठाढो हुती पहिरि नील पट आइ।
वह घूंघुटवारी[1] मिलौं[2] तब[3] जिय की रट जाइ[4] ॥६३७॥

६३२—१. बखान (२, ३), २. उत्तम (२, ३), ३. जान (२, ३)।
६३३—१. जेंहि (१), २. तेहिं (१)।
६३४—१. लै (२, ३), २. भरत (२, ३), ३. ब्रिहत (३)।
६३५—१. कहौ (१), २. चातुरी (१)।
६३६—१···१. सी बाल वा (३), २. सूखी (२, ३)।
६३७—१. घृघटवारी (३), घूँघटवाली (१), २. मिले (१), ३. तौ (२, ३), ४. लाइ (१)।

६३२—अनसिखई=बिना सिखाई हुई। सिखई=सिखाई हुई ?
६३३—दयो=दिया। दरसैये = दिखाना।
६३४—निकलंकी=(निष्कलंकी) बिना किसी दाग के।
६३५—बेगि=तेजी से, जल्दी। रटति=दुहराती है।
६३६—नवल बेलि=नयी लता।
६३७—वारी=वाली। रट=बार बार की रटन।

मोहि कहत घनस्याम तौ[1] सुनि लीजै यह बैन।
बिन उर लाये दामिनी केहि बिधि राखौं[2] चैन ॥६३८॥

जान दूती का उत्तर

कौन मानुषी[1] जेहि[2] लिये एतो करत उपाइ।
तिल मैं जाइ तिलोत्तमै[3] नभ ते मिलऊँ ल्याइ ॥६३९॥

जान दूती—त्रिबिध भेद

हित की अरु हित अहित की अरु अहितों की बात।
कहै[1] सोहिता हिताहित अरु अहिता बिख्यात ॥६४०॥

हितावान दूती-उदाहरण

कीजै सुख घन स्याम हौं आजु[1] पवन के रंग।
वहि चपला[2] चमकायहौं ल्याइ[3] तिहारे अंग ॥६४१॥

हिता अहितावान दूती-उदाहरण

समय पाइ हौं देहुँगी[1] प्यारी तुम्हहि[2] मिलाइ।
बिनु घन कैसे बीजुरी[3] कहौ दिखाइ जाइ ॥६४२॥
आतुर होहुँ न[1] लाल अब जतन कीजियत[2] औरि[3]।
बिन फांदे मृग[4] मिलत नहिं जौ[5] उठि[6] कीजै दौरि[7] ॥६४३॥

६३८—१. जौ (३), २...२. बिनु लाये उर दामिनी किहि बिधि राखौं (२, ३)।
६३९—१. मानगी (२, ३), २. जिहि (२, ३), ३. तिलोतमा (१)।
६४०—१. कहै (२, ३)।
६४१—१. आज (२, ३), २. चपलै (२, ३), ३. आजु (२, ३)।
६४२—१. देउंगी (२, ३), २. तुमै (२, ३), ३. वाजुरी (३)।
६४३—१. हौं गुन (२, ३), २. कीजिओ (२, ३) ३. और (१), ४. मृग (२, ३), ५. जो (१), ६. उर (२, ३), ७. दौर (१)।

६३९—तिल मैं=छण भर में, पलक मारते। तिलोत्तमै=तिलोत्तमा नाम्नी अप्सरा को।
६४०—हिताहित=हित और अहित।
६४१—वहि=वह।
६४२—बीजुरी=बिजली।
६४३—आतुर=उतावला। फांदे=छलाँग लगाया।

अहितायान-दूती

लगत[1] बात ताकी कहा जाको सुच्छम[2] गात।
नैकु[3] सांस के लगत हीं पास नहीं ठहरात[4] ॥६४४॥
स्याम मधुप लौं जिनि फिरौ[1] वह चंपक[2] सी नारि।
रस नहि देहै कैसहूँ मुख की प्रीति निहारि ॥६४५॥

दूती के काज कथन

अस्तुति अरु निंदा विनै बिरह निवेदनु[1] जाइ[2]।
अरु परबोध मिलाइबो दूती जान सुभाइ[3] ॥६४६॥

नायिका की अस्तुति

निज तन जलसाई रहत[1] करि समुद्र आगार।
तिन[2] को मन पावत नहीं तुव तन पानिप पार[3] ॥६४७॥
दिपति देह छबि गेहकी केहि विधि बरनी जाइ।
जिहि[1] लखि चपला गगन ते छिति पर[2] फरकत[2] आइ ॥६४८॥
कसकि कसकि पूछति कहा चम्मकि मसकि अनुमान।
खसकि जायगी ठसकि यह नैकु[1] ससकि सुनि कान ॥६४९॥

६४४—१. लगति (२, ३), २. सलमल (२, ३), ३. नैक (१, २), ४. ठहिरात (२, ३)।
६४५—१. फिरो (२, ३), २. चपकली (२, ३)।
६४६—१. निवेदन (२, ३), २. न्याय (२, ३), ३. सुभाय (२, ३)।
६४७—१. कहति (२, ३), २. तिनि (२, ३), ३. पानप (२)।
६४८—१. जेहि (१), २...२. परकत नित (१)।
६४९—१. नैक (२, ३)।

६४४—बात=वायु।
६४५—जिनि=मत। चपक=चंपा, उग्र गंधवाला एक पुष्पवृक्ष।
६४६—अस्तुति = स्तुति, प्रार्थना।
६४७—जलसाई=जलशयन, पानी में लेटना। पानी से सिक्त आगार=खजाना, स्थान, घर।
६४८—फरकत=फड़कती है।
६४९—कसकि=कसककर, खटककर। चसकि=हल्की पीड़ा, टीस। मसकि=दरकने का। मसलने का। ठसकि=नखरा, ऐंठ।

नायक की अस्तुति

तिनके रूप अनूप की केहि[1] बिधि कहिये बात।
जिन[2] मोहन छबि मनधरै मन मोह्यो[3] सो जात ॥६५०॥

नायिका की निंदा

कहा आपने रूप पर[1] फूलि[2.] रही है[.2] हाल।
तोह्र ते अति आगरी केति[3] नागरी बाल ॥६५१॥

नायक की निंदा

सीस मुकुट कटि काछिनी फाटी साटी हाथ।
मिलन चहत यहि[1] रूप पर[2] राधाजू[3] के साथ ॥६५२॥

नायिका से विनय

कामिनि जेहि चितवत हनै[2] ये दृग बान चलाइ।
तेहि ज्यावन की जतन अब कीजै मुरि मुसुकाइ[4] ॥६५३॥

नायक से विनय

जाहि बचायो मेघ[1] तें करि गिरिवर की छांहि[2]।
ताहि स्याम जिनि[3] जारियो बिरहअनल[4] झरि[5] माँहि ॥६५४॥

६५० -- १. [illegible] (२, ३), २. जिनि (२, ३), ३. मोहो (१)।
६५१ -- १. [illegible] ([illegible], ३), २...२. फूलि कै रही (२, ३), ३. नगर
([illegible], [illegible])।
६५२ -- १. [illegible] (२, ३); २. सौं (२, ३), ३. राधे जी (१)।
६५३ -- १. [illegible] ([illegible], ३), २. हुती (२, ३), ३. चलाय (२ ३), ४, [illegible] (२, ३)।
६५४ -- १. [illegible] (२, ३), २. छाह (१), ३. जनि (१), ४. बिरहानल (२, ३), ५. झरि माह (१)।

६५१—आगरी=चतुर।
६५२—काछिनी=कछनी। फाटी=फटी हुई। साटी=छड़ी।
६५३—हनै=मारती है।
६५४—झरि—आग की लपट, ज्वालमाल।

नायिका का विरह-निवेदन

बाके ननिनि[1] रावरी बसी लोनाई[2] जाइ।
लोनखार असुँवान तें पायो भेद बनाइ ॥६५५॥

कहा कहौं[1] बाकी दसा जब खग बोलत राति।
पीय सुनति ह्रीं जियति है कहा सुनति मरि जाति ॥६५६॥

नायक का विरह-निवेदन

जब तें आई तड़ित लौं नीलाम्बर मैं कौंधि।
तब तें हरि चकृत भये चखन[1] लागि[1] चकचौंधि ॥६५७॥

परे सूम अरु सरप की एकै गति दरसाइ।
धनि[1] मनि[2] बिछुरे दुहुन की सीस धुनत निज[3] जाइ ॥६५८॥

नायिका के लिए प्रबोध

अब कीजै आनंद यह बनो ब्यौंत अनयास[1]।
तेरे मित अरु[2] कंत की दोउ[3] अटारी पास[4] ॥६५९॥

६५५—१. नैनन (१), २. लुनाइ (२, ३)।
६५६—१. कहो (२, ३)।
६५७—१···१. लगी चखनि (२, ३)।
६५८—१. धन (१), २. मन (३), ३. नित (२, ३)।
६५९—१. अन्यास (२, ३), २. मीतरु (२, ३), ३. दोऊ (२, ३), ४. अटा सुपास (२, ३)।

६५५—लोनखार=नमकीन। लोनाई=नमकीनपन।
६५६—पीय=प्रीतम (पपीहा 'पी कहाँ' की बोली बोलता है।)
६५७—तड़ित=बिजली। नीलाम्बर=नीलावस्त्र, आकाश।
६५८—सूम=कंजूस, कृपण। मनि=मणि। धुनत=पीटते हैं।
६५९—ब्यौंत=प्रबंध, उपाय। अटारी=कोठा, अट्टालिका।

नायक को प्रबोध

हरि चिंता नहिं कीजिए अपने मनमें ल्याइ।
या होरी के खेल में गोरी मिलिहै आइ ॥६६०॥

दंपति को मिलाना

रमनी रमनि मिलाइ यों दूती रहत बराइ।
घन दामिनि को जोरि कै ज्यौं समीर रहि जाइ ॥६६१॥

६६०—होरी=होली।
६६१—बराइ=दूर हटकर।

नायक-वर्णन

सखा-कथन

जो नायक सो नायिका नीके मिलवै आनि।
नरम सचिव तेहि नर[1] कहै सोइ चारि बिधि जानि ॥६६२॥

नाम—भेद

पीठिमर्द[1] बुधि बचन सों मानहिं देइ मिटाइ।
विट जो जानत[2] दुतपन कै[3] सब कला बनाइ ॥६६३॥
चेटक है वह जो करै औसर[1] देखि सुपास।
तौन विदूषक जो करै दंपति सो परिहास ॥६६४॥

पीठिमर्द—उदाहरण

है कोई देखत नहीं सकै जो तुव तन[1] आहि[2]।
पिय प्यारी तू कौन को राखति है परदाहि[3] ॥६६५॥
काह[1] भयौ है[2] कहत हौं कत तू[3] रही रिसाइ।
तेरे कोप करै कहौ[4] कोप करै नहिं पाइ ॥६६६॥

६६२—१. को (२. ३)।
६६३—१. मरद (२, ३), २. ठानत (१), के (१)।
६६४—१. अवसर (२, ३)।
६६५—१. जुव तन (३), २. आइ ३. (२, ३), हराइ (२, ३)।
६६६—१. कहा (२ ३), हों ३. (२, ३), तूँ ३. (४) कहो ३.।

६६३—विट=कामुक, वेश्यागामी, नायक के सखा का एक भेद।
६६४—चेटक=नायक को नायिका से मिलानेवाला चतुर सखा। सुपास=सुभीता।
६६५—परदाहि=पर्दा, आड़।
६६६—कोप=क्रोध।

विट—उदाहरण

सेत बसन तैं जोन्हि[1] मैं लखि न परत तव[2] गात।
यौं कहि बोलेउ[3] कामिनी आजु मिलन की घात ॥६६७॥

सखी[1] बीच नहिं[1] दीजिये मिलिये पिय सँग धाइ।
बाम बामता नहिं तज्यौ[3] अरी परेहूँ पाइ ॥६६८॥

चेटक—उदाहरण

पिय तिय सखियन मैं लखी जबै काम की सैन।
चलौ[1] बोलिहौं जाति[2] हौं देखन अपनी धेन[3] ॥६६९॥

पिय मधुकर तिय नलिनि[1] को लख्यौ आनि जब दाइ।
दुहुन[2] मिलाइ सखा चल्यौ साझ समैं लै जाइ[3] ॥६७०॥

विदूषक—उदाहरण

रमनी रमन मिलाइ[1] जब भयो कुंज की ओर।
जाइ आपु ही दूर तें बोल्यौ ज्यौं तमचोर ॥६७१॥

जब राधा को ल्याइ कै हरि सौं[1] दियो मिलाइ।
तब धरि जसुमति रूप कौ[2] हेरन लाग्यौ गाइ ॥६७२॥

६६७—१. जोन्ह (१), २. तुअ (१), ३. बोल्यौ (२, ३)।
६६८—१···१. सखिन बीच जिन (२, ३), २. आइ (२), ३. तजै (२, ३)।
६६९—१. चलो (२, ३), २. जात (२, ३), ३. धेनु (१)।
६७०—१. नलिन (२, ३), २. दूहूँ (१), ३. आइ (३)।
६७१—१. मिलाय (२, ३)।
६७२—१. को (१), २. को (३)।

६६८—परेहूं पाइ=पाँव पडने पर भी।
६६९—हौ=मैं। जातिहौ = जाती हूँ। धेनु=गाय।
६७०—मधुकर=भौंरा, चन्द्रमा। दाइ=दाँव, अवसर।
६७१—तमचोर (सं० ताम्रचूड)=मुरगा।
६७२—गाइ=गऊ, गाकर।

उद्दीपन रूप में

षटऋतु वर्णन

बसंत-वर्णन

कहुँ लावति[1] विकसत[2] कुसुम कहुँ डोलावति[3] वाइ।
कहूँ बिछावति चाँदनी मधुरितु दासी आइ॥६७३॥

यह मधुरितु मैं कौन कै बढ़त न मोद अनंत।
कोकिल गावत हैं कुहुकि मधुप गुंजरत[1] तंत॥६७४॥

औषधीस सँग पाइ अरु लहि बसंत अभिराम।
मनो[1] रोग जग हरन को भयो धनंतर[2] काम॥६७५॥

फूले कुंजन अलि भँवत[1] सीतल चलत समीर।
मानि जात काको न मनु[2] जात भानुजा तीर॥६७६॥

सरबर माहि अन्हाइ अरु बाग बाग भरमाइ[1]।
मंद मंद आवत पवन राजहंस के भाइ॥६७७॥

६७३—१. लावत (२, ३), २. विगसत (२, ३), ३. डोलावत (२, ३)।
६७४—१. जरावत (१)।
६७५—१. मानो (२, ३), २. धुरधंर (१)।
६७६—१. भ्रमत (२, ३), २. मन (२, ३)।
६७७—१. बिरमाइ (२, ३)।

६७३—वाइ=वायु। मधुरितु=बसंत ऋतु।
६७४—तंत=तारवाला बाजा।
६७५—औषधीस=औषधियों का मालिक, चंद्रमा। धनंतर=धनवंतरि वैद्य।
६७६—भँवत=मँडराता है, चक्कर लगाता है। भानुजा=यमुना।
६७७—सरबर=तालाब, सरोवर। भरमाइ=व्यर्थ घूमकर, बहककर। राजहंस=सोनापच्छी, हंस का एक प्रकार। भाइ=भाव।

कल्पवृच्छ तें सरस तुव[1] बाग द्रुमन कौं[2] जानि[3]।
सागर निकसौ लखन कौ[4] जल जंत्रन[5] मिसि आनि[6] ॥६७८॥

ग्रीष्म ऋतु-वर्णन

धूप चटक करि चेट अरु[1] फाँसो पवन चलाइ।
मारत दुपहर बीच मैं यह ग्रीषम ठग[2] आइ ॥६७९॥
छुटत न[1]' यै नल नीर जल जल सजि[1] छिति तें आइ।
निरख[2] निदाघ अनीति को चल्यौ[3] भानु पै जाइ ॥६८०॥
कोउ[1] उभकत[2] उछुरत[3] कोऊ[4] कोउ जल मारत[5]' धाइ[5]।
लखि नारिन जल केलि छबि पिय छकि रह्यौ[6]' लोभाइ[6] ॥६८१॥
पिय छीटत यौं तियन कर लहि जल केलि अनन्द।
मनो कमल चहुँओर[1] तें मुकुतन[2] छोरत चंद ॥६८२॥

पावस ऋतु-वर्णन

पावस मैं सुरलोक तें जगत अधिक सुख जानि।
इन्द्रबधू जिहि[1] रितु सदा छिति बिहरति[2] है आनि ॥६८३॥

६७८—१. तूँ (२, ३), २. कों (२, ३), ३. जान (२, ३), ४. सलिल कौ (२, ३), ५. जन्तुन (२, ३), ६. आन (२, ३)।
६७९—१. करि (२, ३), २. ढिग (२, ३)।
६८०—१...१. छूटत ये नलिनाल जल सजि सजि (२, ३), २. देखि (२, ३), ३. चलौ (१)।
६८१—१. कोऊ (२, ३), २. उभरत (२, ३), ३. उच्छुरत (२, ३) ४. कोउ (२, ३), ५...५. छिरकत आइ (२, ३), ६...६. रहौ बनाइ (२, ३)।
६८२—१. चहुँओर (२, ३), २. मुकुतिन (२, ३)।
६८३—१. जेहि (१), २. बिहरत (१)।

६७९—चटक=तेज। चेट=जादू, धोखाधडी। ग्रीषम = गरमी।
६८०—नल नीर = नल का पानी। छिति=पृथ्वी। निदाघ=ग्रीष्म। अनीति= अन्याय। भानु=सूर्य।
६८१—उभकत=उल्लसित होती है। धाइ=दौड़कर।
६८२—जलकेलि=जलक्रीड़ा।
६८३—इंद्रबधू = बीरबहूटी।

सुमन सुगंधन सों सनी[1] मंद मंद चलि आइ।
प्रौढ़ा लौं[2] मन को हरति[3] हिय लगि बरषा बाइ॥६८४॥
अरुन चीर तन मैं सजै यों बिहरति[1] है नारि।
मानो आई है सुरी बसुधा हरी निहारि॥६८५॥
झूलि झूलि तिय सिखति है गगन[1] चढ़न की रीति।
आजु कालिह[2] मंह[2] आइहैं सुर नारिन कों जीति॥६८६॥

सरद ऋतु-वर्णन

चन्द्र छत्र धरि सीस पै[1] लहि अनंग उपदेस।
कमल अस्त्र गहि जीति[2] जग लीन्हौं[3] सरद नरेस॥६८७॥
चन्द्र[1] बदन चमकाइ अरु खंजन नैन चलाइ।
सकल धरा को छलति[2] यह सरद अपछरा आइ॥६८८॥
दिन सोहित जल अमल मैं[1] निरमल कमल अनूप।
निसि[2] सोहत ही बाद बदि हिय मोहत ससिरूप॥६८९॥

हेमंत ऋतु-वर्णन

दिन निसि[1] रबि[2] ससि लहत है हेम सीत के जोग।
भरम[3] चकोरन भोग है, कोकन भरम[3] बियोग॥६९०॥

६८४—१. सने (२, ३), २. लो (२, ३), ३. हरत (१)।
६८५—१. बिहरत (१)।
६८६—१. राग (२, ३), २...२. काल मैं (२, ३)।
६८७—१. मैं (२, ३), २. जीत (२, ३), ३. लीनौ (२, ३)।
६८८—१. चद (२, ३), २. छरत (२, ३)।
६८९—१. है (२, ३), २. जोहत (२, ३)।
६९०—१. निस (२, ३), २. हबि (२, ३), ३. भर्म (२ १)।

६८४—बरषा बाइ = वर्षा ऋतु की वायु।
६८५—चीर=वस्त्र। सुरी = देवांगना। हरी=प्रसन्न, हरितवर्ण की।
६८६—सिखति = सीखती है। गगन=आकाश।
६८७—कमल अस्त्र = कमलरूपी या कमल का हथियार।
६८८—छलति = छलती है। अपछरा = अप्सरा।
६८९—बादबदि = झगड़ा करके।
६९०—कोकन = चकवा। भरम = भ्रम।

हेम सीत के डरन तें सकति न ऊपरि[1] जाइ।
रह्यौ[2] अगिनि[3] कौ पाइ कै धूम भूमि पै[4] छाइ ॥६६१॥

सिसिर ऋतु-वर्णन

प्रगट कहत या सिसिर[1] मैं रूख[2]॰ रूख के[2] पात।
बिछुरन को सीतहु घरे सुखि[3] जात हैं गात ॥६६२॥
मान न काहू को रहत ल्याइ दूतिका घात।
मिलै देति[1] या सिसिर की सीरी[2] सीरी बात ॥६६३॥

अन्य दूसरे उद्दीपन

निकसन षटरितु मैं बहुरि[1] उद्दीपन यह पाइ।
यातें फिरि 'बरन्यौ[2] नहीं, इन्हें भिन्न करि लाइ ॥६६४॥
धाम सेज रागादि मिलि यह उद्दीपन जानि[1]।
इहाँ कछू संछेप तें बरनन कीन्हौं[2] आनि[3] ॥६६५॥

अगज संभोग—उद्दीपन

आलंबन चुबंन परस मरदन[1] नख रद दान[2]।
यै अंगज संभोग मैं उद्दीपन परिमान ॥६६६॥

६६१—१. ऊपर (१), २. रहौ (१), ३. अग्नि (२, ३), ४. मैं (२, ३)।
६६२—१. सीत (२, ३), २···२. चूख रूत्र को (२, ३), ३. सुखत (२, ३)।
६६३—१. सिले देति (२, ३), २. सीसी (२, ३)।
६६४—१. बहुत (२, ३), २. बरनौ (१)।
६६५—१. जान (२, ३), २. कीनौ (२, ३), ३. आन (२, ३)।
६६६—१. मर्दन (१), २. जान (२, ३)।

६६१—धूम = धुआँ।
६६२—रूख रूख = वृक्ष, वृक्ष।
६६३—सीरी सीरी बात = सिहरावनी हवा।
६६४—बहुरि = लौटकर, पुनः। उद्दीपन = उत्तेजना।
६६५—परस = स्पर्श। मरदन = (मर्दन) मलना।
६६६—अंगज=शरीर संबंधी। रद=दाँत।

अनुभाव-कथन

कहि विभाव को कहत हौं अब अनुभाव प्रकास।
जो हियते[1] रतिभाव को[2] प्रकट करै अनयास[3] ॥६९७॥
कटाच्छादि सौं चारि बिधि अपने मन पहिचानि।
तिनिकौं कबि यहि भाँति सौं बरनत हैं जिय[1] आनि ॥६९८॥
कायक इक सो जानिये[1] मानसु[2] दूजो होइ।
आहारिज[3] है तीसरो चौथी सातुकि[4] जोइ ॥६९९॥
कर की गति आदिक सोई कायक मानु[1] बिसेखि।
मन को मोद पराग[2] किय[2] सो मानस अविरेखि ॥७००॥
नृत्त समाज बनाव ते कृष्ण[1] गोपिका ग्यान।
सो आहारिजै[2] जानिये बुध जन करत बखान ॥७०१॥
बहुरो सातुक[1] है सोइ स्वेदादिक ठहिरात।
इन[2] भावन के भेद ये चारि जानि अविदात ॥७०२॥

६९७—१. यहि ते (१), २. अनु (२, ३), ३. अन्यास (२, ३)।
६९८—१. निज (१)।
६९९—१. जानियौ (२, ३), २. मानस (२, ३), ३. आहारज (१),
४. सात्विक (२, ३)।
७००—१. मान (२, ३), २···२. प्रगट किये (२, ३)।
७०१—१. कुसन (२, ३), २. अहारज (२, ३)।
७०२—१. सात्विक (१), ई (१)।

६९७—अनयास = अनायास, बिना किसी प्रयास के।
६९८—कटाच्छादि = कटाक्ष आदि।
६९९—कायक = कायिक, शरीर संबंधी। आहारिज = वेशभूषा संबंधी।
सातुकि=सात्विक, सत्व (आत्मा) संबंधी।
७००—अविरेखि = सोचकर, देखकर, चित्रितकरके।
७०१—बुधगन = बुद्धिमान् लोग।
७०२—सात्विक = एक भाव (अनुभाव) जिसमें स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कंप, वैवर्य, अश्रु, और प्रलय—ये आठ प्रकार के विकार होते हैं।

तन बिबिचारिन[1] बिछुति है ये सब सातुक भाव।
थाई[2] परगट करन हित गने जात अनुभाव[3] ॥७०३॥
नारी औ नर करत है जो अनुभाव उदोत।
ते वै दूजो और कों नित उद्दीपन होत ॥७०४॥

अनुभाव-उदाहरण

स्याम सैन तिय नैन तकि निकरि[1] भीर तें आइ।
अधर आँगुरी धरि चली चित की चाह चिताइ[2] ॥७०५॥
मो मन भूल्यौ[1] है कहूँ कोउ न देत बताइ।
मृगनैनी दृग लखि हँसति इनहिन[2] परि ठहिराइ[3] ॥७०६॥
दृगन जोरि मुसुकाइ अरु भौंहें दुहुन[1] नचाइ।
औठन[2] आठ बनाइ यह प्रान उमेठति[3] जाइ ॥७०७॥
चितवत घायल करि हियो[1] हायल कियो बनाइ।
फिरि हँसि मायल कै लली चली तरायल भाइ ॥७०८॥

हाव-लक्षण

तथा

हाव-अनुभाव-विवेक-वर्णन

सम संजोग सिंगार की इहाँ[1] कहीयत[1] हाव।
अनुभव जानि विशेषि अरु ये[2] सामान्य सुभाव ॥७०९॥

७०३—१. बिभचारिन (२, ३), २. थाई (२, ३) ३. आभाव (२, ३)।
७०५—१. निसरि (२, ३), २. चेताइ (१)।
७०६—१. भूलौ (१), २. इनही (२, ३), ३. ठहराइ (१)।
७०७—१. दोऊ (२, ३), २. ओठनि (२, ३), ३. उमेठत (१)।
७०८—१. दियो (२, ३)।
७०९—१...१. ईहाँ कहियत (१), २. ये (२, ३)।

७०३—बिबिचारिन = व्यभिचारी भावो।
७०४—उदोत = प्रकाश, उत्पन्न।
७०५—चिताइ = याद दिलाकर, होशियार करके।
७०७—उमेठति = ऐंठती हुई, मरोडती हुई।
७०८—हायल = मूर्छित, बेकाम। मायल = अनुरक्त। तरायल = त्वरित गति से, जल्दी जल्दी। लली = लाडली, नायिका।

जहाँ बचन क्रम चेष्टा बरनत हैं कवि लोइ।
सो अनुभावनु[1] हाव है तहाँ भेद ये जोइ ॥७१०॥
जो रति भाव प्रगट करै सो अनुभाव बखान।
रति बढ़ि वहै सिंगार पुन हाव होत है आन ॥७११॥
बहुत हाव कछु हेत लहि होत न रति मैं आइ।
बरने सहज सुभाव लखि नारिन ही मैं ल्याइ ॥७१२॥

लीलादिक

हाव दसा-वर्णन

सुभावक-लक्षण

सो लीला पिय देखि[1] तिय निज तन राचै ल्याइ।
वह बिलास पिय लखि करै तिय मन हरन सुभाइ ॥७१३॥
चितवनादि त्रिय[1] आभरन फवनि ललित है सोइ।
रिस ते[2] निदरहि[3] भूषननि छबि बिच्छित्ति सम[4] होइ[5] ॥७१४॥
कपट निरादर गरब तें यह[1] बिब्बोक बिचारि।
पूरन होवै चाह जिहि[2] पिय संग बिहित निहारि ॥७१५॥

७१०—१. अनुभावऽरु (२, ३)।
७१३—१. भेष (१)।
७१४—१. क्रिय (२, ३), २. ले (२, ३), ३. निदरै (२, ३), ४. है (२, ३), ५. सोइ (२, ३)।
७१५—१. यहै (२, ३), २. जह (१)।

७१०—लोइ = लोग।
७११—आन = अन्य, आकर।
७१२—लहि = प्राप्तकर, देखकर।
७१३—राचै = रचती है, रंजित करती है। बिलास = (विलास) वे प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं। हाव-भाव, नाज-नखरा।
७१४—आभरन=(आभरण) सौदर्य बढानेवाले उपादान, आभूषण आदि। फवनि = (फबन) शोभा, छबि, सुंदरता।
७१५—बिहित = (विहित) जिसका विधान किया गया हो।

मोटायत[1] प्रगटै जो तिय ऐठिनादि ता पाउ[2]।
कलह करै जो केलि कै[3] सोइ[4] कुट्टुमित[5] हाउ ॥७१६॥
किलकिंचित रोदन हँसन रिस भय आदि गिनाइ[1]।
सो बिभ्रम उलटो तिया करै जो काज बनाइ ॥७१७॥

लीलाहाव-उदाहरण

आजु राधिका आप को हरि के[1] रूप बनाइ।
ब्रज बनितनि कौ लै गई बृज बनि तन बहकाइ ॥७१८।
स्याम भेस बनि कै गई राधा कुंजनि[1] धाम।
भूल्यो[2] भेस चकित[3] भई जित देखै तित स्याम ॥७१९॥

विलासहाव-उदाहरण

हगन जोरि अठिलाइ[1] अरु भौंहन को बिलसाइ।
कामिनि पिय हिय गोद मैं मोद भरेल सी जाइ ॥७२०॥
भौंह भ्रमाइ[1]* नचाइ*[1] हग अरु अधरन मुसुकाइ[2]।
पियहि अनन्द बढ़ाइ तिय चली मंद गरुवाइ ॥७२१॥

७१६—१. मोट्टाइत (१) २. तेचाउ (२, ३), ३. केल मै (२, ३), ४. सोई (२, ३), ५. कुट्टमित (२, ३)।
७१७—१. गुनाइ (१)।
७१८—१. को (२, ३)।
७१९—१. कुजन (२, ३), २. भूलौ (१), ३. चक्रित (१)।
७२०—१. अलसाइ (२, ३)।
७२१—१...१ नचाइ चलाइ (१), २. मुसकाइ (१)।

७१६—मोटायत—(मोट्टायित) साहित्य मे एक हाव जिसमे नायिका अपने आंतरिक प्रेम को कटु भाषण आदि द्वारा छिपाने की चेष्टा करने पर भी छिपा नहीं पाती। कुट्टमित = सभोग के समय स्त्रियो की मिथ्या कष्ट चेष्टा जो हावों द्वारा प्रकट होती है। प्रिय का बनावटी तिरस्कार।
७१७ = किल = निश्चय। किंचित = थोडा, कुछ।
७१८—ब्रजबनितनि = ब्रजकी बालाएँ।
७२०—अठिलाइ = ऐठकर, मदोन्मत्त होकर, मस्त होकर, नखरा करके।
७२१—गरुवाइ = गर्वित होकर।

ललितहाव–उदाहरण

रमनी तुव[1] अखियनि चितै अरु अधरन मुसुकाइ[2]।
मद[2] अनमद[3] दोऊ दये निज प्रीतम को प्याइ ॥७२२॥
ज्यौं पट भूषन के सजे अंग अंग छबि होति[1]।
त्यौं भूषन तें ह्वै रही पटभूषन की जोति[2] ॥७२३॥

विच्छित हाव–उदाहरण

बिना सजे भूषनन के कहा होत है नारि।
बिधि के सजे सिंगार सो तूँ नहि सकति उतारि ॥७२४॥
स्याम लाल इनि तिलक तुव[1] यह रंग कीन्हौं[2] बाल।
सौतिन[3] को रँग स्याम दै रँग्यौ स्याम को लाल ॥७२५॥
चाह नही[1] भूषनन को[2] तुव[3] अंगिनि सुकुमार।
हियौ झुलावनहार है तौ[4] हिय झूलनहार ॥७२६॥

बिब्बोक हाव–उदाहरण

बात होइ सो[1] दूरि ते दीजै मोहि सुनाइ।
कारे हाथनि[2] जनि[3] गहौ लाल चूनरो आइ ॥७२७॥
ज्यौं ज्यौं छकि छकि नेह[1] तें पगन परत है लाल।
त्यौं त्यौं रूसी यों[2] परति[3] कौतुक छकी[4] रसाल ॥७२८॥

७२२—१. तू (२, ३), २. मुसकाइ (१), ३...३. मंद अमंद (१)।
७२३—होत (२, ३), २. जोत (२, ३)।
७२५—१. इनि (२, ३), २. कीनों (२, ३), ३. सोतिन (२, ३)।
७२६—१. चाह तहीं (१), २. की (२, ३), ३. तूँ (१), ४. तुव (४)।
७२७—१. जो (१), २. हाथ न (२, ३), ३. जिन (२, ३)।
७२८—१. नाह (१), २. ये (२, ३)। ३. परत (१), ४. छके (२, ३)।

७२२—मद = अभिमान, गर्व। अनमद = मद या अभिमान का अभाव।
७२३—पटभूषन = जुगनू।
७२४—बिधि = ब्रह्मा।
७२५—स्याम = श्रीकृष्ण।
७२६—झुलावनहार = झुलानेवाला। झूलनहार = झूलनेवाला, माला।
७२८—जनि = मत, जिन।

विहित हाव–उदाहरण

लखि न सकति तिय नैन भरि घरी[1] सखिन की आनि।
पीपर भाँवर तन भरै पी पर भावरि प्रानि[2] ॥७२६॥
बात कहत हरि सों भई यह तिय की गति[1] आज।
ज्यों ज्यों खोल्यौ मदन मुख त्यौं त्यौं मूँघौ लाज ॥७३०॥

मोटायितहाव-उदाहरण

स्याम बिलोकत काम तें भो[1] यह बाम सुभाइ।
करन खुजाइ उठाइ कर अँगरानी[2] जमुहाइ ॥७३१॥

बिहित-हाव

तथा

मोटायित हाव भाव–दूसरे मत से

प्रगट भए चित चाव तिय पिय सों करै दुराव।
ताहि बिहित कोऊ[1] कहै कोउ[2] मोट्टायित हाव ॥७३२॥

उदाहरण

स्याम बिलोकत कामते भयो कम्प जो बाम।
सीत नाम लै लाज तें[1] बैठि गई तेंहि[2] ठाम[3] ॥७३३॥

७२६—१. घरे (१), २. प्रान (२, ३)।
७३०—१. गत (१), २. मूँदै (१)।
७३१—१. भ्यौं (२, ३), २. अँगिरानी (२, ३)।
७३२—१. कोउ (२, ३), २. कोऊ (२, ३)।
७३३—१. सो (१), २. तित (२, ३), ३. बाम (२, ३)।

७२६—पीपर = पीपल वृक्ष, एक लता जिसकी कलियाँ प्रसिद्ध औषधि हैं।
पी पर = दूसरे का पति।
७३०—मूँद्यौ = बन्द किया।
७३१—करन=कान। खुजाइ = खुजलाकर। अँगरानी = अँगड़ाती हुई, देह तोडती हुई।
७३२—दुराव = भेदभाव, कपट।
७३३—सीत = सर्दी,।

कुट्टमित हाव-उदाहरण

खिनि कुच मलकति खिनि[1] लजति[2] खिनि मुख लखति[3] बिसेखि।
छकित भयो पिय तिय हँसति[4] उचकति[5] ससकति[6] देखि ॥७३४॥
केहि[1] बिधि तिहि[2] उर लाइयत जाकी[3] पकरति बाँह।
एक सो करन मैं छयो अंग सीकरन माँह ॥७३५॥

किलकिंचित हाव-उदाहरण

सिव[1] सिर[2] कै ससि[3] लै[4] सिवा तकि निज छाँह भ्रमाइ।
हारि[5] छकी रोई बहुरि हँसी आपुको[5] पाइ ॥७३६॥

विभ्रम हाव-उदाहरण

बैठी अहन कपोल दै लाइ दिठौना भाल।
इहि बिधि केहि[1] मन हरन यह चली नवेली बाल ॥७३७॥

बोधिकादि दसहाव सुभावक का

लक्षण

सैन बुझावै करि क्रिया बोधक कहिये सोइ।
सोइ[1] मुगुधिता जानिकै[1] तिया अयानो[2] होइ ॥७३८॥

७३४—१. खिन (१), २. लजत (१), ३. लखत (१), ४. हँसत (१), ५. उचकत (१), ६. ससकत (१)।

७३५—१. किह (२, ३), २. तेहि (२, ३), ३. जाके (२, ३)।

७३६—१. शिव (१), २. ससि (२, ३), ३. सिर (२, ३), ४. मैं (२, ३), ५···५. डरि छरि रोई बहुरि हँसि हँसी कप को (२, ३)।

७३७—१. किहि (२, ३)।

७३८—१···१. मौगध सोइ पहिचानिए (२, ३), २. अपानो (२, ३)।

७३४—मलकति = मसलती है। लजति = लज्जित होती है। ससकति = सी सी करती है।

७३५—सी करन = 'सी' करने में। सीकरन = सीकड़ों मे, पसीनों की बूँदों से।

७३६—सिवा = (शिवा) पार्वती, गिरिजा।

७३८—मुगुधिता = मुग्धा। अयानो = अनजान, बुद्धिहीन।

हसत सरस रस उमँग ते पिय ढिग तिय मुसकानि[1]।
रूप तरुनता काम[2] ते गरब[3] सोई मद जानि[4] ॥७३९॥

कौनहु हित संताप तिय होइ तपन है सोइ।
सो बिछेप मंगन[1] भये हानि ग्यान[2] को होइ ॥७४०॥

चकित सुऔचक[1] चौंकिबो कछु अचिरज[2] को देखि।
पियहि रिझावै बेप[3] रचि सोइ केलि अविरेखि ॥७४१॥

कौतुक रचि बन उठि चले कौतूहल सौं गाइ।
बातन को बिस्तार जहँ[1] उद्दीपन कहि जाइ ॥७४२॥

बांधक हाव–उदाहरण

माँग बीच धरि आँगुरी ढापि[1] नील पट भाल।
अरध निसा ससि[2] छपति हीं सैन बताई बाल ॥७४३॥

पिय की चाह सखी कही फूल सुदरसन लाइ।
उत्तरु[1] दीन्हौं[2] नागरी जाती[3] फूल दिखाइ ॥७४४॥

७३९—१. मुसकान (२, ३), २. गास (२, ३), ३. गर्ब (१), ४. जान (२, ३)।

७४०—१. मगने (२, ३), २. गान (२, ३)।

७४१—१. सुऔचिक (२, ३), २. अचरज (२, ३), ३. केलि (२, ३)।

७४२—१. तह (२, ५)।

७४३—१. ढाँकि (२, ३), २. सी (२, ३)।

७४४—१. उत्तर (२, ३), २. दीनों (२, ३), ३. जोती (२, ३)।

७४०—संताप = मानसिक पीडा। बिछेप = (विक्षेप) मन का इधर उधर भटकना। मगन भये=मग्न होने पर, डूबने पर।

७४१—सु औचक = सहसा, अचानक। चौंकिबो = झिझकना, चकित होना।

७४२—कौतुक = खेल, तमाशा।

७४३—माँग = सीमंत, सर के बालों के बीच की वह रेखा जो बालों को विभक्त करके बनायी जाती है। भाल=माथा, सिर।

७४४—सुदरसन = सुदर्शन फूल। (दर्शन की कामना का संकेत)। नागरी = बाला, नगर की रमणी। जाती = मालती, चमेली (मालती कुंज स्थान का या चमेली के खिलने के समय का अर्थात् रात्रि का संकेत।)

मौगध हाव–उदाहरण

अधिक अयानी बन चली खेलि खेलि पिय साथ।
करका[1] बरसत मुकुत रहि धाइ गहत है हाथ[1] ॥७४५॥

हसित हाव–उदाहरण

सखिन ओर[1] मुख मोरि कै निज सोहाग[2] सुख पाइ।
बार-बार अँगराति सो भाग भरी मुसकाइ ॥७४६॥

मदहाव–उदाहरण

रूप गरब जोबन नगर[1] मदन गरब के जोर[1]।
लाल दृगन[2] मैं मदभरी आवत चली हिलोरि ॥७४७॥

तपनहाव–उदाहरण

जो[1] सोहाग[1] भूषन सजे तिय पिय सुनत पयान।
ते जरि कंचन ह्वै गिरे उपजत बिरह कृसान ॥७४८॥

ज्यामु[1] गई[1] जुग जामिनी स्याम न आये धाम।
ठाम ठाम तम[2] बाम ह्वै जारन त्यागौ[3] काम ॥७४९॥

७४५—१…१. कौन लता सो मुकुत मनि लागत है कहु नाथ (२, ३)।
७४६—१. डरी (२, ३), २. सुहाग (२, ३)।
७४७—१…१. गरब और मदन के जोरि (२, ३), २. द्रिगनि (२, ३), ३. हिलोरि (२, ३)।
७४८—१…१. जे सुहाग (२, ३), हूँ (१)।
७४९—१…१. जाम गई (२, ३), २. तब (२, ३), ३. ले लागेउ (१)।

७४५—करका = ओला, बिनौरी।
७४६—भाग भरी=भाग्यवती।
७४७—हिलोरि = तरंग, मौज।
७४८—पयान = गमन। कंचन=सोना। कृसान = आग, अग्नि।
७४९—ज्यामु = (याम) पहर। जामिनी = (यामिनी) रात्रि। तम = अंधकार। बाम=बिरुद्ध, प्रतिकूल।

बिच्छेप हाव—उदाहरण

सिगरी चितवत[1] है खरी नगरी तें न डराति।
गगरी भरिबो छाड़ि के तूँ कत[2] डगरी जाति ॥७५०॥

चकित हाव-उदाहरण

घन गरजत चकचौंधि यौं डरी नारि गहि नाह।
ज्यौं[1] दामिनि अति कौंधि कै डरै स्याम घन माँह ॥७५१॥

केलि हाव-उदाहरण

फगुवा मिसि तिय छीनि पट अचिरज[1] कियौ बनाइ।
नटनि[2] दैनि चलि फिरनि[2] मैं दीन्हौं[3] स्याम नचाइ ॥७५२॥

कौतूहल हाव-उदाहरण

अंग सिँगारत कान्ह सुनि यहि[1] बिधि दौरी[1] बाल।
कहुँ बेंदुलि[2] कहुँ उरबसी कहूँ गिरी मनिमाल[3] ॥७५३॥

उद्दीपन हाव-उदाहरण

हहा स्याम बेनी तज्यौ[1] बेनी तजियत बाम।
कौन अकामहि करत हौ प्यारी यह तौ काम ॥७५४॥

७५०—१. चितवनि (२, ३), २. कस (१)।
७५१—१. जिमि (२, ३)।
७५२—१. अचरज (२, ३), नटन दैन चल फिरन (१) ३. दीनें (२, ३)।
७५३—१···१. यौं दौरी वह (२, ३), २. बिंदुली (२, ३), ३. बनमाल (२, ३)।
७५४—१. तजो (२, ३)।

७५०—सिगरी = समस्त। नगरी = नगर, शहर। डगरी = रास्ता।
७५२—नटनि = इनकार द्वारा, नृत्य मे।
७५३—सिंगारत = शृंगार करते हुए। बेंदुली = टीका नामक आभूषण।
७५४—ह हा = घबराहट में निषेध की ध्वनि। बेनी = चोटी। अकामहि = व्यर्थ।

तीन हाव-मनोभाव-वर्णन

भाव[1] हाव[1] हेला तिहूँ मन ते उपजत[2] आनि[2]।
उरे प्रकट रस[3] अति[3] भरे तीनौं लीजे मानि[4] ॥७५५॥

भाव—लक्षण

मन की लगन[1] जो पहिलही सो कहियत है भाव।
चतुर सहेली जानियति एकै देखि सुभाव ॥७५६॥

भाव—उदाहरण

मन औरे सो[1] ह्वै गयो रही न तन मैं छाज।
मोही यो लागत कहूँ मोही है तूँ आज ॥७५७॥
मोही[1] है अँसुवान तें रही अरुनता छाइ।
काहू इन तुव दृगनि[3] मैं नेह दयौ है नाइ ॥७५८॥

हाव—लक्षण

दृग अंचल हेरै हँसै बोलैं मीठे बैन।
प्रेम चातुरी बरत जुत[1] हाव कहत तेहि[2] ऐन ॥७५९॥

हाव—उदाहरण

चलत साँकरी खोरि मैं हरि तन परसत बाम[1]।
बदन खोलि[2] कछु मोरि कै हँसि बोली तकि स्याम[2] ॥७६०॥

७५५—१...१. हाव भाव (२, ३), २...२. उपजे जान (२, ३), ३...३. अति रिस (२, ३), ४. मान (२, ३)।
७५६—१. लगत (१)।
७५७—१. से (२, ३)।
७५८—१. मोई (२, ३), २. दृगन (१)।
७५९—१. जरब जुति (२, ३), २. है (२, ३)।
७६०—१. बाल (२, ३), २...२. मोरि कछु बोलि कै हँसी लोल तकि लाल (२, ३)।

७५६—लगन = लगाव, निष्ठा।
७५७—छाज = साज। मोही = प्रेम में मुग्ध हुई है।
७५८—अरुनता = अरुणिमा, लाली।
७५९—अंचल = कोर। बरत जुत = दृढ निश्चय के साथ।
७६०—साँकरि = सँकरी, तंग। खोरि = गलियारा, कूचा।

तौ बसन्त कोऊ नहीं आनि[1] खेलि[1] है बाल।
मुख गुलाब कुच अरगजा जो गहि लावो लाल।७६१॥

हेला–लक्षण

प्रीत भाव प्रोढ़त्व मैं छूटै लासु सुभाव।
ठिठाइक कृत जो कामिनि सोइ हेला हाव॥७६२॥

हेला हाव–उदाहरण

चितवनि बान चलाइ अरु हास क्रिपान लगाइ।
उरज गुरज पिय हिय हनै भुज फाँसी गर ल्याइ[1]॥७६३॥

सात हाव ऐतनुज वर्णन

स्वाभाविक[1] कहि बीस[2] अरु कहे मनोभव तीन।
सात[3] ऐतनुज[3] जानि कै अब बरनत रसलीन॥७६४॥

रूप प्रकास से—

चतुर्विधि स्वाभाविक–लक्षण

रूप राजि[1] सी फबन[2] को रचभब[3] बरनै जानु[4]।
अंग झलक[5] अरु विमलता सोइ कांति परमानु[6]।७६५॥

७६१—१...१. अनित खेल (२, ३)।
७६२—२, ३. मे नहीं है।
७६३—१. लाइ (२, ३)।
७६४—१. स्वाभावक (१), २. तीस (१) ३...३. त्रात ऐजनज (२, ३)।
७६५—१. रूप रासि (२, ३) २. फवनि (२, ३), ३. सो भय (२, ३), ४. जान (२, ३) ५. झलकि (२, ३), ६. परमान (२, ३)।

७६१—अरगजा = केसर, कपूर चंदन के मिश्रण से बना एक द्रव्य।
७६३—क्रिपान = कृपाण। उरज = उरोज। गुरज = गदा। हनै = प्रहार करे।
७६४—एतनुज = ये शारीरिक।
७६५—रूपराजि = रूप की पाँत। फबन = शोभा। कांति = आभा, दीप्ति। माधुर = (माधुर्य) मधुरता।

कांतिहि को बिस्तार सों दीपति[1] चित मैं लाउ।
अतुल रूप की मधुरता सो माधुर जग[2] नाउ॥७६६॥

सोभा—उदाहरण

जित देखत तुव अंग दृग तित सुख लहत अपार।
मानो लीन्हौ[1] रूप ही नख सिख ते अवतार॥७६७॥
एक सखी कर लै छरी हँसत[1] चकोर न धाइ।
एक भौंर की भीर कौं मारत चौंर डुलाइ[2]॥७६८॥

काति—उदाहरण

मुकुर बिमलता लहि गहे कमल मधुरता बाल।
तौ तुव तन के मिलन की सुबरन राखै आस॥७६९॥
अमल हिये धून के परी लाल आइ यह छाँह।
जानि आपनी उर बसी कत भरमत मन माँहि॥७७०॥

दीपति—उदाहरण

चंद[1] छानि बिधि मुख रचे तन चपला सों ठानि।
तापरि ओप धरै खरी तौ तूँ[2] पूजै आनि॥७७१॥

७६६—दीपत (२, ३), २. माधुर्जग (१)।
७६७—१. लीनौ (२, ३)।
७६८—१. हरत (२, ३), २. डुराइ (२, ३)।
७७१—१. चद्र (१), २. तुव (२, ३)।

७६७—नख-सिख = सम्पूर्ण शरीर, एँड़ी से चोटी तक।
७६८—चौंर = चँवर।
७६९—मुकुर = दर्पण।
७७०—अमल = निर्मल।
७७१—छानि = छान कर। ठानि = अनुष्ठान कीं पूर्त्ति के लिए दृढ़ निश्चय करके। ओप = आभा, कांति, शोभा। खरी = अत्यन्त बढ़िया। पूजै = समानता करे।

माधुर्य–उदाहरण

कुमति चंद्र प्रति द्यौस बढ़ि[1] मास मास बढ़ि[1] आइ।
तुव मुख मधुराई लखै फीको पड़ि घटि जाइ ॥७७२॥
बिनु सिंगार तुव मधुरई प्रान देत घटि आनि।
मानो बिधि यह तन रच्यौ सुद्ध[1] सुधा सौ सानि ॥७७३॥

शोभा कांति, दीप्ति के लक्षण

दूसरे मत से

जोबन ते जो उपजई सोभा ताहि विचार।
जो कछु उपजै मदन तें सोइ कांति निरधार ॥७७४॥
कांतिहि[1] के बिस्तार कों दीपति जिय मैं जानि।
तिनहूँ के अब कहत हौं उदाहरन को आनि ॥७७५॥

शोभा–उदाहरण

आवत मदन महीप के जोबन आगुहि आइ।
औरं[1] और तन नगरियन राखी सरस बनाइ ॥७७६॥

कांति–उदाहरण

ज्यौं ज्यौं मनमथ आइ उर[1] मनदधि मथत बनाइ।
त्यौं त्यौं मदघृत बिदित ह्वै ठौरि ठौरि उतराइ ॥७७७॥

दीप्ति–उदाहरण

हाव भाव प्रति अंग लखि छबि को झलक निसंक।
भूलत ग्यान[1] तरंग सब ज्यौं[2] करछाल[2] कुरंग[3] ॥७७८॥

७७२—१. कढ़ि (२, ३)।
७७३—१. सुच्छ (१)।
७७५—१. कातहि (२, ३)।
७७६—१ २, ३ मे नही है।
७७७—१. उरि (२, ३)।
७७८—१. ज्ञान (२, ३), २. कर मन छाल (२, ३), ३. तुरंग (१)।

७७२—प्रति द्यौस = प्रतिदिन। मास मास = हर महीने।
७७६—महीप = महीपति, राजा।
७७८—करछाल=कुदान, उछाल।

प्रगल्भता, धीरता, विनय का—उदाहरण

प्रगलभता जोबन गरब चलै हँसै निरसंक।
पातिब्रत[1] अरु प्रेम दृढ़[2] सो धीरत को अंक ॥७७९॥
विनय[1] नवनि[2] जो सीलजुत रिस मैं रस अधिकाइ।
अब बरनत हौं तिहुँन के उदाहरन को ल्याइ ॥७८०॥

प्रगल्भता—उदाहरण

केसर आड़ लिलार दै बिना आड़ चलि आइ।
ठाड़ टोन सो मारि यह चाउ[1] भरी मुसुकाइ ॥७८१॥
निकसि तियनि के[1] जाल सो मुख तें घूँघट टारि।
अरी हरी मति इनि हरी फूल छरी सों मारि ॥७८२॥

धीरता—उदाहरण

किते सप्तरिषि लौं फिरत चहुँदिसि धरि धरि प्रेम।
तऊ न ध्रुव लौं[1] तजति[2] यह थिरताई कौ नेम ॥७८३॥
हनि हनि मारत मदन सर बैर तियन सों ठानि।
तऊ सुभट लौं मन[1] डरहिं पकरि[1] खेत कुलकानि ॥७८४॥

७७९—१. पतिब्रता (२, ३), २. ढिग (१)।
७८०—१. जिन्है (१) २. नौनि (१)।
७८१—१. चाउ (२, ३)।
७८२—१. की (१)।
७८३—१. ध्रुव लो (१), २. तजत (१)।
७८४—१. १ उर डरत पकर (१)।

७७९—धीरत = धीरता।
७८०—नवनि=नम्रता। रिस = क्रोध।
७८१—आड=१. स्त्रियों के मस्तक पर आड़ा टीका, २. परदा। लिलार= ललाट, माथा। टोन = टोना।
७८२—हरी=हरण किया, हरे रंग की।
७८३—सप्तरिषि = सप्तर्षि, उत्तर दिशा के सात तारे जो ध्रुवतारे की परिक्रमा करते हैं। ध्रुव = ध्रुवतारा।
७८४—हनि हनि= पूरी शक्ति से। बैर = शत्रुता। सुभट = योद्धा। खेत = रणक्षेत्र।

कत मारत मोहि[1] आनि[2] नित रे मनमथ[3] मति हीन।
मन तो मैं पिय बदन तजि मर्यौ न ह्वै[4] है लीन ॥७८५॥
दीप तिहारे नेह को बरत[1] रहत[1] हिय माँहि[2]।
बात चहूँदिसि की सहै बूझत कैसे हूं नाहिं[3] ॥७८६॥

विनय-उदाहरण

बाल यहै जग माहि जिन[1] बालन गहौ सुभाइ।
सीस चढ़ाये हूँ[2] सदा नैनै[3] परसत पाइ ॥७८७॥
पिय अपराध जनाइ सखि कितो[1] सिखावत मान।
सील भरे तिय दृग[2] तऊ[2] तजत न अपनी बान ॥७८८॥

औदार्य-लक्षण

इक बरनत है बिनय तकि औदारिज[1] को आनि।
ताहू की लच्छन सुनहुँ[2] अब हौं कहत बखानि ॥७८९॥
महा प्रेम रस बस परे औदारिज[1] कहि ताहि।
जीवन तन धन लाज की जहाँ नहीं परवाहि ॥७९०॥

औदार्य-उदाहरण

यह मति राधे की भई सुनि मुरली की तान।
तन कहँ धन कहँ लाज कहँ दैन चहो तवं प्रान ॥७९१॥
दई जो तुम बनमाल सो हिय लाई वह बाल।
ह्वै निहाल यहि हाल ही मोहि दई मनि माल ॥७९२॥

७८५—१. मुहि (२, ३), २. आइ (१), ३. मयक (१), ४. हूँ (१)।
७८६—१. १ बरनत रहि (२, ३), २. माँह (१), ३. नाह (१)।
७८७—१. जिय (२, ३), २. (२, ३) मे नहीं है, ३. नैनय (१)।
७८८—१. कतो (१), २. दृगन तउ (१)।
७८९—१. औदारज (२, ३), २. सुनौ (२, ३)।
७९०—१. औदारज (२, ३)।

७८५—मनमथ=कामदेव। लीन = डूबना।
७८६—बरत = जलता रहता है। बूझत = बुझता है, जानता है।
७८७—नैनै = नयकर, नत होकर। बान=आदत।
७८९—औदारिज = औदार्य, उदारता।
७९२—निहाल=गदगद, पूर्ण प्रसन्न।

प्राण निछावर करति है छन छन वा पै बाल।
जो जमुना तट पर दयो निजु बैजंती माल ॥७६३॥

हाव—गणना

स्वाभाविक[1] जे बीस अरु[2] मनो भव[3] त्रय अभिराम।
लहत सात स्वाभाव मिलि अलंकार हूँ[4] नाम ॥७६४॥
अलंकार नारीन के दीने तीस गनाइ।
लै बहु[1] ग्रंथन को मतो तेहि[2] राखहु चितलाइ ॥७६५॥

७६४—१. स्वाभावक (१), २. औ (१), ३. मनौ मौ तिय (१), ४. यहि (२, ३)।
७६५—१. वे (२, ३), २. ते (२, ३)।

७६४—अलंकार = आभूषण, नायिका का हाव, भाव एवं चेष्टा।

अनुभाव

व्यभिचारी-वर्णन

कहि अनुभावन हाव हूँ[1] बरने तेहि[2] सँग आनि।
अब बिबिचारिन[3] को कहौं[4] सो द्वै बिधि पहिचानि[4] ॥७९६॥

तिन द्वै भेदन माँहि जे तन बिबिचारी[1] आहि।
लहि अनुभाव प्रसंग को पहिले बरनौं ताहि[2] ॥७९७॥

तिनही बिबिचारीनि[1] को सातुक[2] कहिये नाम।
कहि लच्छन तिनके कहौं उदाहरन अभिराम ॥७९८॥

तन-व्यभिचारी

सात्विक-लक्षण

सुख दुख आदि जु भावना हृदै[1] माँहि कछु होइ।
सो बिन वस्तुन[2] परगटै[3] सातुक[4] कहियै सोइ ॥७९९॥

सत्य[1] सबद[2] प्रानी कह्यौ जीवत देह निहारि।
ताको जो कछु धरम है सो सातुक[3] निरधारि[4] ॥८००॥

७९६—१. हावन्ह (२, ३), २. तिहि (२, ३), ३. बिभचारिन (२), व्यभिचारिन (३), ४. कहौं (२, ३)।

७९७—१. विभिचारी (२), व्यभिचारी (३) २. जाहि (१)।

७९८—१. विभिचारी न (२), व्यभिचारिनि (३), २. सातक (२), सात्विक (३)।

७९९—१. हृदय (१, ३) २. बसत तन (१), ३. प्रगटै (२, ३), ४. सात्विक (२, ३)।

८००—१. सत (२, ३) २. सब्द (१), ३. सात्विक (२, ३), ४. उर धारि (१)।

७९७—प्रसंग = विषय ।

७९८—सातुक = सात्विक ।

८००—सबद = शब्द, वाणी । निहारि = देखकर ।

यै[1] प्रगटत थिर भाव को अरु ये हैं तन भाइ।
या तें कवि इनको गुनौ[2] अनुभावन मैं ल्याइ ॥८०१॥
भेद सिंगारनु भाव[1] अरु सातुक[2] मैं यह जानि।
वै प्रगटत रति भाव ये[2] सब थाइन को आनि ॥८०२॥
दुजो यह अनुभाव अरु सातुक[1] भेद उदोत।
वै बिनु[2] बस ते होत हैं ये निजु बस ते होत ॥८०३॥
सोई सातुक[1] आठ हैं[2] यह जानत सब कोइ।
तिनको बरनन करत हौं ग्रंथनि को[3] मति जोइ ॥८०४॥
सातौं[1] सातुक[2] नाम ते लच्छन प्रगट लखाइ।
आठौं लच्छन प्रलय को अब दैहौं समुझाइ ॥८०५॥

स्वेद–उदाहरण

घन आवत जे आदि ही चलत स्वेद तन आइ।
यौं[1] आवत यह कान्ह के स्रम जल रही अन्हाइ ॥८०६॥
बाम लखत तन स्याम को कढ़यौ[1] स्वेद यौं आइ।
ज्यौं तरपति ही बीजुरी बरखत[2] मेघ बनाइ ॥८०७॥

८०१—१. ये (२, ३), २. गनौ (२, ३)।
८०२—१. सिंगार न भाव (२, ३), २. सात्विक (२, ३) ३. मै (१)।
८०३—१. सात्विक (२, ३), २. निज (१)।
८०४—१. सात्विक (२, ३), २. ते (१), ३. सब ग्रथनि (२, ३)।
८०५—१. सातौं (२, ३), २. सात्विक (२, ३)।
८०६—१. त्यौ (१)।
८०७—१. झरयौ (१), २. बरषे (१)।

८०५—प्रलय = एक सात्विक भाव जिसमें किसी वस्तु मे तन्मय होने से पूर्व स्मृति का लोप हो जाता है।
८०६—स्वेद = पसीना। स्रम जल = पसीना।
८०७—तरपति = तड़पती है।

स्तंभ–उदाहरण

हरि के देखत ही कहा थकित भयो[1] तुव गात।
रई[2] रही[2] लै हाथ मैं[3] दही मथ्यो[4] नहि जात ॥८०८॥

पाग सजत हरि दृग परी जूरो[1] बाँधत बाम।
रहे पेच कर मैं परे और पेच मैं स्याम ॥८०९॥

रोमाच–उदाहरण

हौं तोही पै[1] आनि यह लखी अपूरब[2] बात।
जित मारत पिय फूल तित होत कटीले[3] गात ॥८१०॥

कान्ह[1] भयो रोमांच[2] यह जनि[3] अपने मन चेत।
रोम रोम ते तन उठ्यौ तव आदर के हेत ॥८११॥

सुरभग–उदाहरण

छकित करयौ मों प्रान तुव ये[1] नहिं नहिं ठहराइ[1]।
मानों निकसत है सुरा सीसी मुख ते आइ ॥८१२॥

अबहीं तुम गावत हुते भई कौन यह[1] बात।
सुरत रंग के लेत कत सुरत भंग[2] ह्वै जात ॥८१३॥

८०८—१. भये (१), २. रही रई (२, ३), ३. मे (३), ४. मथो (१)।

८०९—१. जूरे (२, ३)।

८१०—१. पर (२, ३)। २. अरपुब्र (२), ३ कटीलो (२, ३)।

८११—१. कान (२, ३), २. रोमान (२, ३), ३. जिन (२, ३)।

८१२—१. नहिं नहिं हिय ठहिराइ (२, ३), २. आव (२)।

८१३—१. पर (२, ३) २. सुरत रग (२, ३)।

८०८—रई = मथानी।

८०९—पाग = पगडी। पेच = १. लपेट, २. उलझन।

८१०—अपूरब = अद्‌भुत। कटीले = रोमांचित, पुलकित।

८११—रोमांच = आनन्द मे रोम रोम का खडा हो जाना।

८१२—सुरा = आसव, शराब।

८१३—सुरत भंग = काम चेष्टा का नाश।

कम्प-उदाहरण

लख्यौ न कहुँ घनस्याम अरु बोल सुन्यौ नहिं कान।
कहाँ लगी तूँ बेल सी बात चलत थहिरान ॥८१४॥

तन[1] घन[1] चंदन बदन ससि दुति[2] सीतलता[2] पाइ।
आजु[3] अंग ब्रजराज के कंप भयौ है आइ ॥८१५॥

विवर्ण-उदाहरण

कारो पीरो पट धरे बिहरत घन मन माँहि[1]।
याते निरमल गात मैं कारी पीरी छाँहि[2] ॥८१६॥

पद्‌मिनि[1] लखि रस लैनि[2] हित अति अनंग सरसाइ।
मधुप रीति हरि बदन पै भई पीतता आइ ॥८१७॥

आँसू-उदाहरण

पिय लखि नहि तिय चखन मैं सुख असुँवा ठहिराइ[1]।
आपुन भे[2] सीतल हियौ सीतल कंत[3] बनाइ ॥८१८॥

परत बाल मुँख छाँह[1] के द्दगन कूप[2] मैं आइ।
हरि के सुख असुँवाँ चलै पारद ह्वै[3] उफनाइ ॥८१९॥

८१४—१. घन तन (१), (२...२) सीतलता कौ (१), ३. आन (१)।
८१५—माँह (१), २. छाँह (१)।
८१६—पद्मिनि (३), २. लैन (१)।
८१८—१. ठहराइ (१), २. आपन ए (२, ३), ३. करत (२, ३)।
८१९—१. छाँहि (२, ३), २. रूप (२, ३), ३. लौं (२, ३)।

८१७—पद्‌मिनि = पद्मिनि नायिका। मधुप रीति = भौंरों की भाँति।
८१८—सीतल = ठंढा, उद्वेगरहित, शीतल।
८१९—पारद = पारा, अत्यत चंचल। उफनाइ = जलकर फेन के रूप में ऊपर उठना, जोश खाना।

प्रलाप-लक्षण

होत हरख दुख आदि तैं नष्ट चेष्टा ग्यान।
सुध न हिताहित की रहै सोइ प्रलाप पहिचान ॥८२०॥

प्रलाप-उदाहरण

तब तें सुधि[1] न सरीर की परी बाल बेहाल।
जब तें आए हैं लपटि कारे लौं डसि लाल ॥८२१॥

जरत[1] नहीं कछु आगि[2] तें जल तें नहिं सियरात[3]।
राधे देखत ही भई यह गति[4] हरि के गात[5] ॥८२२॥

आठों सात्विको का दोहों मे उदाहरण

पिय तक छुकि अधबर्न[1] कहि पुलक स्वेद ते छाइ।
है बिबरन कंपत[2] गिरे[3] तिय असुँवा ठहराइ ॥८२३॥

८२१—१. सुध (२, ३)।

८२२—१. डरत (२, ३), २. अग्नि (२, ३), ३. सियराति (२, ३)
४. मति (२, ३), ५. साति (२, ३)।

८२३—१. अध बरन (२, ३), २. कम्पति (२, ३), ३. गए (१)।

८२०—चेष्टा = शरीर के अंगों की गति।

८२१—कारे = काले, साँप। डसि = दंशन करना, डंक मारना।

८२२—सियरात = ठंढ लगने का भाव।

८२३—अधबर्न = आधी बात। बिवरन = (विवर्ण) बदरंग, वह भाव जिसमें भय, मोह, क्रोध आदि के कारण मुख का रंग बदल जाता है।

तेंतीस

मन–व्यभिचारी

वर्णन

बरने तन चर भाइ अब बरनी मनचर भाइ।
जे पाइन के होत हैं नित सहचारी आइ ॥८२४॥
रहत सदा थिर भाव मैं प्रगट होत यहि[1] रूप।
जैसे आनि समुद्र ते निकसत लहर अनूप ॥८२५॥
फिरत रहत सब रसन मैं इनको यहै सुभाव।
जा रस मैं नीको जुहै[1] तैसो[2] तहाँ बनाव ॥८२६॥
पहिले दै निरवेद को थाई माँहि[1] गनाइ।
पुनि अब राख्यौ आनि यह बिबिचारिन मैं लाइ ॥८२७॥
तत्व ग्यान[1] बिरहादि जे जहँ जग को अपमानं।
और निदरिबो आपनो सो निरवेद प्रमान ॥८२८॥
निज रस पूरन होन लौं थाई जानि[1] उदोत।
गयै रौद्र रस मैं वहै बिबिचारी[2] पुनि होत ॥८२९॥

८२५—१. यह (२, ३)।
८२६—१. जो है (१), २. तैस्यै (१)।
८२७—१. मॉह (१)।
८२८—१. ज्ञान (२, ३)।
८२९—१. जानु (१), २. व्यभिचारी (२, ३)।

८२४—तनचर = तनचारी। मनचर = मनचारी।
८२६—नीको = अच्छा।
८२७—निरवेद = वैराग्य शांत रस का स्थायी भाव।
८२८—निदरिबो = त्याग।

त्यौंहीं चिंता आदि जे धरे दसा दस माँहि[2]।
गये और ठौरन वहै विबिचारी[3] ह्वै जाँहि[3] ॥८३०॥

निर्वेद-लक्षण

ध्यान सोच आधीनता आँसु स्वाँस उसास।
उठि चलिबो सर्वस्व[1] तजि[1] ये अनुभाव प्रकास ॥८३१॥

निर्वेद-उदाहरण

यह जिय आवत है अली[1] तजि सब जगते आस।
बन माली के लखन कौ बन मैं लीजै बास ॥८३२॥
कत रोकत मोहि आइकै कछु बिवेक है तोहि।
स्याम रूप आगे कहौ कौन देखि[1] हैं मोहि ॥८३३॥

ग्लानि-लक्षण

रति गतादि ते निबलता नहि सँभार सो ग्लानि[1]।
छीन वचन कंपादि ते जानि[2] लेत हौं जाँनि[2] ॥८३४॥

उदाहरण

नये रसिक[1] ये गनति[2] हैं रति ही माहि[3] बिलास।
कहूँ सुन्यौ काहू लई मलिमलि[4] पुहुप सुबास ॥८३५॥

८३०—१. दै (१), २. मॉहि (१), ३. बिभचारी है जाँह (२, ३)।
८३१—१···१. सरबस तजी (२, ३)।
८३२—१. चली (१)।
८३३—१. देख (२, ३)।
८३४—१. गिलानि (१), २···२. जान लेत है जान (२, ३)।
८३५—संक (२, ३), २. गनत (२, ३), ३. मॉहि (१) ४. माली (२, ३)।

८३०—दसा = हालत, स्थिति।
८३१—सर्वस्व = सब कुछ।
८३४—गतादि = समाप्ति। ग्लानि = क्लेश, कष्ट। छीन = क्षीण।
८३५—मलिमलि = मसल-मसलकर।

छीजत हूँ मीजत कुचन[1] रीझत मूठि[1] बनाइ।
आली बानर हाथ मैं परयौ नारियर[2] जाइ ॥८३६॥

दीनता-लक्षण

दुख दारिद[1] बिरहादि ते होत दीनता आनि।
मन सो बच हा हा करत तन मलीनता[2] जानि ॥८३७॥

हरि भोजन जब ते दये तेरे हित बिसराइ।
दीन भये[1] दिन भरत हैं तब ते हाहा खाइ ॥८३८॥

तुव डर भजि बन बन भजत[1] अविनारिन[1] बिलखाइ।
जब पग[2] पति लागत हुते अब ये कंटक[3] आइ ॥८३९॥

शंका-लक्षण

निजु[1] ते कछु औगुन भये कै चवाउ[2] कछु देखि।
उपजै संका जानियै इत उत लखन बिसेखि ॥८४०॥

उदाहरण

जब[1] ते काहू है[1] लख्यौ तुम्है वाहि मुसकात।
तब ते जानत[2] जगत मैं होत मेरियै बात ॥८४१॥

८३६—१···१. कुचनि रीझति मूठ (१) २. नारी पै (२)।
८३७—१.[1] दारद (२, ३), २. मलीन ते (१)।
८३८—भयो (२, ३)।
८३९—१···१. फिरत अरिनारी (२, ३), २. पर (२, ३), ३. करंक (१)।
८४०—१. निज (२, ३), २. चवाव (२, ३)।
८४१—१···१. सकाहु है जब (२, ३), २. जाने (२, ३)।

८३६—छीजत = घटना, कम होना। मूठि = हथेली से अंग के पकड़कर दबाने की क्रिया।
८३८—दिन भरत है = समय काट रहा है।
८३९—भजि = भाग कर। अविनारिन = अविवेकी।
८४०—चवाउ = बदनामी, प्रवाद।
८४१—जगत=संसार, वायु, कुएँ का चौतरा, जागते हुए।

त्रास-लक्षण

त्रास भाव प्रगटै सदा घोर दरस सुधि[1] पाइ।
स्तंभ कंप धकधकहु ते तन मैं होत जनाइ ॥८४२॥

उदाहरण

हंसति[1] हँसति[1] तिय कोप कै पिय सों चली रिसाइ।
निरखि दामिनी[2] तरप कौ डरपि गई लपटाइ ॥८४३॥
देस देस के पुरुष सब चलत रावरी बात।
यौं काँपत[1] ज्यों बात ते रूख रूख के पात ॥८४४॥

आवेग-लक्षण

अरि दरसन उतपात लहि मित्र सत्रु जँह होइ।
सो आवेग लच्छन[1] तपन विभ्रम भ्रमु ते जोइ[2] ॥८४५॥

उदाहरण

परी हुती पिय पास तहिं गई सासु वँहु[2] आइ।
सटपटाइ सकुचाइ तिय भाजी भवन दुराइ[3] ॥८४६॥

८४२—१. धुनि (१)।
८४३—१. १. हँसत हँसत (१), २. किनारी (२, ३)।
८४४—१. काँपति (२, ३)।
८४५—१. खेलन (२, ३), २. होइ (२, ३)।
८४६—१. तहँ (१), २. कइ (२, ३), ३. डराइ (२, ३)।

८४२—त्रास=डर, भय, कष्ट। स्तंभ = जड़ता, एक प्रकार का संचारी भाव। कंप=कँपकँपी, सात्विक भावों में से एक। धकधकहु=धकधकी, भय से जी का धड़कना।
८४३—तरप=तड़पन।
८४४—बात=झंझा। रूख रूख=वृक्ष वृक्ष।
८४५—उतपात=हलचल। आवेग=तैश, रस के तैंतीस संचारी भावों में से एक।
८४६—भाजी=भागी।

सुनि तुव दल अरि तियन की ऐसी गति दरसात।
भजति[1] गिरति[2] गिरि गिरि[3] भजति[1] भजि भजि गिरि गिरि जात ॥८४७॥

गर्व-लक्षण

जौं काहू अधिकार तें अहंकार मन होइ।
पर निदरे[1] तै लखि परे गरब[2] रहत है[3] सोइ ॥८४८॥

उदाहरण

पीतम[1] पठई बेंदुली[2] सो लिलार झमकाइ[3]।
सौतिन मैं बैठी तिया कछु पेंठी सी जाइ ॥८४९॥

आँसू-लक्षण

परगुन दरब बिलोकि कै होत सु असुँवा[1] आनि।
दोष[2] कथन उप बचन तें प्रगट लीजिए जानि ॥८५०॥

उदाहरण

कमला हरि के उर बसे लह्यौ[1] उरबसी नाउ।
यहि गुन राधे उर बसी बैठी बाँधे पाँउ ॥८५१॥

अमर्ष-लक्षण

उपमानादिक ते कछू कोप अवै[1] सु अमर्ष।
कहियत बचन कठोर तहँ ताप[2] बढ़ै[2] घटि[3] हर्ष ॥८५२॥

८४७—१. भजत (१), २. गिरत (१), ३. फिरि (२, ३)।
८४८—१. निदर (१), २. गर्व (१), ३. कहावै (२, ३)।
८४९—१. प्रीतम (२, ३), २. बिंदुली (२, ३), ३. चमकाइ (२, ३)।
८५०—१. असैया (१), २. जोग (२, ३)।
८५१—१. लहौ (१)।
८५२—१. आव (२, ३), २ ··२. बढ़ै ताप (२, ३) ३. घट (२, ३)।

८४७—भजति=भागती है।
८४८—निदरे=निंदा करे।
८४९—झमकाइ=आभूषण धारण कर आकृष्ट करने के लिए उससे आवाज करना।
८५०—दोस कथन=ऐब का कहना। उपबचन=निंदा।
८५१—बैठी बाँधे पाउँ=दृढ़ता पूर्वक अवस्थित होना।
८५२—अमर्ष=क्रोध।

उदाहरण

जो दासी के बस भए जग कहाइ बृजराज।
तिनकी ये बतियाँ करत तुम्है न आवत लाज ।।८५३।।
कहा कहौं मो प्रभु नहीं दीन्हौं[1] सासन मोंहि।
ना तर रे राकस कछू हौं दिखावती तोंहि ।।८५४।।

उग्रता-लक्षण

अवराधादिक[1.] ते[.1] हियो जो निरदयता सोइ[2]।
सोइ उग्रता जानिये तरजन ताड़न होइ ।।८५५।।

उदाहरण

सीस फूल जेहि लाल को सौतिन करे बनाइ।
तेहि राखौंगी आजु हौं पायल माहिं लगाइ ।।८५६।।

उत्सुकता-लक्षण

सहि न सकै जो कालगति उतसुकता तिहि[1] जान।
उपजै औधि बिभाव सो बिकलाई ते मान ।।८५७।।

उदाहरण

पतिया पठवन कहि गए सो नहि पठई लाल।
ताही की अवसेरि[1] मैं बिकल भई है बाल ।।८५८।।

८५४—१. दीनों (२, ३)।

८५५—१···१. अपराधिक ते जो (२, ३), २. होइ (२, ३)।

८५७—१. ते (१)।

८५८—१. अवसेर (२, ३)।

८५३—दासी=सेविका (कुब्जा)। बतियाँ करत=बात करते हैं।

८५४—सासन=शासन, अधिकार देना, नियंत्रण। राकस=राक्षस।

८५५—अवराधादिक=रोकने या बाधा आदि डालने की क्रियाएँ। उग्रता=कठोरता। तरजन=भर्त्सना, डाँटना। ताड़न=मारना।

८५७—कालगति=समय का फेर। औधि=अवधि, निश्चित समय। बिकलाई=व्याकुलता।

८५८—पतिया=पत्र, चिट्ठी। पठवन=भेजने की क्रिया। अवसेरि=बिलंब होना, प्रतीक्षा होना।

दिन अवसेरत ही गयौ नहिं आये बृजनाथ[1]।
सजनी अब जिय जात है या रजनी के साथ[2] ॥८५६॥

स्मृति-लक्षण

लखै[1·] बसन मनि गन[·1] चितै फिर[2] वाकी सुधि होइ।
कै सुधि पूरब अर्थ कै सुमृति[3] कहिए सोइ ॥८६०॥

हरष सहित[1] अविलोकिबो मौहन[2] को संचार।
सिर कंपन अंगुरीन ते तरजन अरु भौचार ॥८६१॥

निकसत ही पटनील ते तेरे तन की जोति।
चपला अरु घनस्याम की हिये आनि सुधि होति ॥८६२॥

जमुना तट मोसों कही तूँ जु[1] बात मुसुकात।
सदा रहत चित मैं[2] चढ़ी भूलिहु बिसरि[3] न जात ॥८६३॥

चिन्ता-लक्षण

अनपाये प्रिय[1·] बचन को[·1] ध्यान माँहि चितु[2] जाइ।
सो चिंता जँहि[3] ताप अरु आँसू स्वाँस लखाइ ॥८६४॥

उदाहरण

दृगन मूँदि मौहन जुरै कर पै राखि[1] कपोल।
कौन सोचु[2] मैं बैठि तिय इहि बिधि भई अडोल ॥८६५॥

८५६—१. बृजराज (२, ३), २. साज (२, ३)।
८६०—१···१. लखी वस्तु को मन (१), २. फिरि (२, ३), ३. सिम्रित (२, ३)।
८६१—१. सहत (२, ३), २. मोंहन (१)।
८६३—१. जो (१), २. पर (२, ३), ३. बिसर (२, ३)।
८६४—१···१. पिय वस्तु जो (१), २. बित (२, ३), ३. जहँ (१)।
८६५—१. राख (२, ३), २. सोचि (२, ३)।

८६०—पूरब अर्थ = पहले का आशय। सुमृति = स्मृति, स्मरण, याद।
८६१—संचार = डोलना। भौचार = भूचाल, भवों का संचार।
८६३—चित मैं चढ़ी = ध्यान में बनी रहती है।
८६५—कपोल = गाल। अडोल = अचल।

तर्क-लक्षण

कहिये तर्क[1] बिचारि कै संसै तासु बिभाव[2] ।
सिर[3] चालन भृकुटी चपल ताको है अनुभाव[4] ॥८६६॥
संसै भई[1] बिचारि मैं इति त्रिय[2] अध्योसाइ[3] ।
चौथे विप्रितपत्य प[4] चारि तरक समुझाइ ॥८६७॥

संशयात्मक तर्क-उदाहरण

मन मोहन छबि लखत ही[1] भूलि गय सब ऐंठ[2] ।
अब जग गति लख[3] सो कहौ[3] हौं भूली की पैंठ[4] ॥८६८॥

विचारात्मक तर्क-उदाहरण

बोलत हैं इत[1] काग अरु फरकत नैन बनाइ ।
यातें यह जान्यौ[2] परत पीतम[3] मिलिहैं आइ ॥८६९॥

८६६—१. तरक (२, ३), २. बिभाउ (२, ३), ३. चिर (३), ४. अनभाउ (२, ३) ।
८६७—१. नहीं (२, ३), २. त्रय (२, ३), ३. अध्यवसाइ (२, ३) ४. बिप्रतिपत्ति मैं (२, ३) ।
८६८—१. हौ (२, ३), २. ऐठि (२, ३), ३. लाख्यौ कहै (२, ३), ४. पैठि (२, ३) ।
८६९—१. इति (२, ३), २. जानो (१, ३), ३. प्रीतम (२, ३) ।

८६६—तर्क = कारण देकर विचार करना । भृकुटी = भौंह ।
८६७—त्रिय=तीन । अध्योसाइ = अध्यवसाय, सतत उद्योग । विप्रितपत्य = विपरीत, परस्पर विरोधी ।
८६८—ऐंठ=अकड । भूली की पैंठ=भूले की खोज ।
८६९—बोलत'''काग = कौए का बोलना । शुभ लक्षण माना गया है जो किसी के शुभ आगमन का संकेत देता है । फरकत नैन=शुभ आगमन का संकेत नेत्र फडकने पर माना जाता है ।

अध्यवसायात्मक विप्रतिपत्यात्मक

तर्क-लक्षण

करि बिचार मेटै सकल सोई अध्यवसाइ।
परै न जहँ परतीति[1] सो बिप्रतिपतय[2] गुनाइ[3] ॥८७०॥

अध्यवसायात्मक तर्क

उदाहरण

रच्यौ काम यह मुकर कै कमल भयौ अबिदात।
किधौ चन्द्र भुव अवतरे[1] कछु जान्यौ नहि जात ॥८७१॥

विप्रति पत्त्यात्मक

उदाहरण

अनल[1] ज्वाल नहिं कहि सकत करत सीत यह अंग।
कला सरद ससि कहौ तो दिन ते कौन प्रसंग ॥८७२॥

मति-लक्षण

ग्यान जथारथ को जहाँ तहँ कहिये मति[1] भाव।
आगम सोच विभाव अरु सिक्छादिक[2] अनुभाव ॥८७३॥

उदाहरण

कोऊ बरने पुरुष[1] जसु कोऊ बरनै बाम।
सुकवि सकल तजि कै सदा बरनत हैं हरिनाम ॥८७४॥

८७०—१. परतीत (१), २. विप्रतिपत्ति (२, ३), ३. बनाइ (२, ३)।
८७१—१. अवतरयौ (२, ३)।
८७२—१. अनिल (२, ३)।
८७३—१. मत (१), २. शिष्यादिक (१)।
८७४—१. पुरिष (१)।

८७०—मेटे=मिटा देना, नष्ट कर देना। परतीति=विश्वास।

८७१—किंधौ=या। भुव=भूमि, पृथ्वी।

८७२—अनल=अग्नि। कला सरद ससि=शरद के चन्द्रमा की कला। प्रसंग=विषय।

८७३—जथारथ=यथार्थ, ठीक ठीक, वास्तविक। आगम=भविष्यत, आनेवाला समय।

८७४—हरि नाम=ईश्वर का नाम।

धर्म[1] नीति प्रभु भक्ति[2] जुत साधु प्रीति जँह[3] होइ।
चित हित पर उपकार मैं ग्यान[4] जानिये सोइ ॥८७५॥

धृति-लक्षण

धृत कहिये संतोष को सत्या तासु बिभाव।
दुख को सुख करि मानई धीरजादि अनुभाव ॥८७६॥

उदाहरण

हार्‌यौ मदन चलाइ सर ससि कर सेल लगाइ।
यह पिक कहि[1] रोतो कहूँ कहा डरावत आइ ॥८७७॥
कौन नवावत जगत को फिरै आपने माथ।
बाँध दई है जीविका दई जीव के हाथ[1] ॥८७८॥

हर्ष-लक्षण

हरष भाव पिय बसत[1] लखि मन प्रसाद जो[2] होइ[3]।
मन प्रसन्न पुलकादि लहि जानत है सब कोइ ॥८७९॥

८७५—१. धरम (२, ३), २. प्रीति (२, ३), ३. जह (३), ४. गान (२, ३)।
८७७—१. करि (२, ३)।
८७८—१. साथ (१)।
८७९—१. वस्तु (१), २. हू (२, ३), ३. जोइ (२, ३), ४. लोइ (२, ३)।

८७५—धर्म=वह कृत्य, आचरण, व्यवहार या विधान जिसका फल शुभ या श्रेयस्कर हो। नीति=सदाचार जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उचित बताया गया हो, आचरण के नियम। भक्ति=श्रद्धायुत प्रेम। साधु=संत, महात्मा, सज्जन। प्रीति=प्रेम, श्रद्धा।
८७६—धृत=धैर्य। सत्या=सत्यता।
८७७—सर=बाण। ससिकर=चंद्रकिरण, सेल=बरछा, भाला। रोतो=रीते।
८७८—नवावत=नमन करता हुआ। दई=ईश्वर।
८७९—पुलकादि=हर्ष आदि।

उदाहरण

तिय घट भरि उमगे[1] हरष यौं भेटत नंदलाल।
ज्यौं बरसत ही स्याम घन जल झिहरत भरि ताल ॥८८०॥
होत एक ही भवन मैं आनँद बन[1] मैं नन्द।
राम जनम ते चौदहौ भुवन भयो आनन्द ॥८८१॥

व्रीडा-लक्षण

जो काहू की आनि ते होत ढिठाई हानि[1]।
मखनावन[2] आदिक जहाँ ब्रीड़ा लीजै जानि[3] ॥८८२॥

उदाहरण

पिय कछु बाचन मिसि[1] दिया तिय तें लयो मँगाइ।
मुख छबि लखि इति ये छके उत वह मुरी लजाइ ॥८८३॥
सखिन संग खेलत हुती ठाढ़ी सहज सुभाइ।
पिय आवत औचकि चितै बैठि गई सकुचाइ[1] ॥८८४॥

अवहित्था-लक्षण

संगोपन[1] बेवहार[2] को सो अवहित्था भाव।
है विभाव हिय कुटलई वहिलावन अनुभाव ॥८८५॥

८८०—१. उभड्यो (२, ३)।
८८१—१. जन (२, ३)।
८८२—१. हान (२, ३), २. मुखनावन (१), ३. जान (२, ३)।
८८३—१. तै (२, ३)।
८८४—१. सिरु नाइ (२, ३)।
८८५—१. समगोपन (२, ३), २. व्यवहार (१)।

८८०—झिहरत=झरने का सा। ताल=जलाशय।

८८१—चौदहो भुवन=चौदहो लोकः—भू, भूर्व, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य एक के पश्चात दूसरे के क्रम से पृथ्वी के ऊपर के ये सात और पृथ्वी के नीचे के सात—अतल, सुतल, वितल, गभस्तितल, महातल, रसातल, पाताल-उसी क्रम से ये पुराणानुसार कुल चौदह भुवन है।

८८२—ढिठाई=धृष्टता। मखनावन = चिकनाना। ब्रीड़ा=लजा।

८८३—दिया = दीपक।

८८४—औचकि=सहसा, एकाएक।

८८५—संगोपन=छिपाना। बेवहार = व्यवहार, आचार। अवहित्था=गोपन। वहिलावन=फुसलाने का भाव।

उदाहरण

सौति सिंगार निहार[1] तिय घूँघट पट मुँख[2] लाइ।
खाँसी को मिस[3] ठानि कै हाँसी रही दुराइ ॥८८६॥

चपलता-लच्छण

राग द्वेषआदिकन[1] के होत[2] चपलता आइ।
किए सीघ्रता आदि तें तन मैं होत[2] लखाइ ॥८८७॥

उदाहरण

इत ते उत उत ते इतै[1] चमक जात वे हाल[2]।
लखिबे[3] को घनस्याम को भई दामिनी बाल ॥८८८॥

श्रम-लच्छण

रति[1] गति कै कछु[2] बल कियौ खेद होत जो आइ।
सोई श्रम स्वेदादि ते[3] मन मैं होत लखाइ ॥८८९॥

उदाहरण

निज काँधे तिय बाँह धरि तिय कटि तिय[1] धरि बाँह।
मंद मंद लखि सेज तें ल्यावत मंदिर माँह ॥८९०॥
तन तोरनि[1] नासा चढ़ै सीसी भरि अँगिरानि[2]।
अंग दबावत[3] बाल को दावि लेत मन आनि ॥८९१॥

८८६—१. बिहार (२, ३), २. रुख (१) ३. मिसि (१)।
८८७—१. द्वेषादिकन (१), २. होति (२, ३)।
८८८—१. इतहि (२, ३), २. जे हाल (१) ३. दिखबे (१, २)।
८८९—१. रवि (३), २. अति (२, ३), ३. जो (२, ३)।
८९०—१…१. धरि निज (२, ३)।
८९१—१. तोरति (२, ३), २. अँगरानि (१), ३. दबाबन (१)।

८८७—चपलता=चंचलता।
८९०—सेज = सैय्या, पलंग। मंदिर=घर।
८९१—तोरनि=तोड़ना। नासा चढ़ै=नाक चढ़ना।

निद्रा-लक्षण

सो निद्रा जो इन्द्रियन तजि मन तुचा समाइ।
स्रम आदिक ते होत लखि सप्नादिक[1] ते जाइ ॥८९२॥

उदाहरण

खिनिक होत तन[1] मैं पुलक खिनि अधरनि मुसकानि[2]।
याते स्रम[3] तिय को परति[4] पिय संग सोवन जानि[5] ॥८९३॥

सुपने में मिलि लाल सों रही बाल लपिटाय[1]।
बाँह चलावति[2] भुज गहति[3] बिहँसनि देति जनाय ॥८९४॥

स्वप्न-लक्षण

तूचह मन तजि जमपुरी[1] बसै सो स्वप्न बखानि[2]।
होत नींद ते परत है स्वपनादिक ते जानि[3] ॥८९५॥

नैन मूँदि बेसुधि परी सोवति बाल बनाइ।
साँस छुरी के बल रही बेसरि मुकुति[1] नचाइ ॥८९६॥

८९२—स्वपनादिक (२, ३)।
८९३—१. मन (१), २. मुसकान (२, ३), ३. अब (१), ४. परत (१), ५. जान (२, ३)।
८९४—१. लपटाइ (१), २. चलावत, (१), ३. गहत (१), ४. जनाइ (१)।
८९५—१. यमपुरी (१), २. बखान (२, ३), ३. जान (२, ३)।
८९६—१. मुक्त (१)।

८९२—इन्द्रियन=विषय ज्ञान की शक्ति और उसके ६ अवयव—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मन तथा कर्म के पाँच अवयव या साधन हाथ, पैर, जीभ, उपस्थ और गुदा। प्रथम छः ज्ञानेन्द्रिय और दूसरी पाँच कर्मेन्द्रिय कुल ग्यारह इन्द्रियाँ मानी जाती है। तुचा=त्वचा, शरीर पर का चमडा। सप्नादिक=स्वप्न आदि।
८९५—जमपुरी=यमलोक, यमपुरी।
८९६—तूचह=त्वचा। छुरी = छुरी।

वैपथ–लक्षण

वैपथ[1] जागि बिजानिये नींद छुटे ते होइ।
दृग मूँदनि[2] अँगरान अरु जिम्हादिक[3] ते जोइ।।८९७।

उदाहरण

दृगन मींजि[1] अलसाय पुनि अग मोरि अँगिराइ[2]।
बाम जगत[3] तजि स्याम कौ दीन्हौं[3] काम जगाइ।।८९८।।

पिय आहट लखि[1] बाल दृग यों जगि[2] उघरे प्रात।
ज्यौं रवि दुति सनमुख लखे बध्यौ[3] कमल खुलि जात।।८९९।।

आलस–लक्षण

व्याधि खेद गरबादि[1] तें आलस उपजै आनि।
उठिबे को सामरथता[2] तेहि मन[3] लीजै जानि।।९००।।

उदाहरण

तिय लावत ही लेत[1] पिय प्यालौ लियौ उठाइ।
गरभ भार ते उठति[2] नहिं[3] माँगति[4] हा हा खाइ।।९०१।।

कौन छक्यौ[1] छबि सो भरो यह ऐड़ानि बिसेखि।
अरु मग ढीलो डग भरन अरिसीली[2] को देखि।।९०२।।

८९७—१. विबुध (१), २. मूँदन (२, ३) ३. जोभादिक (१)।

८९८—१. मूँदि (२, ३), २. अँगराइ (२, ३), ३…३. जागहू स्यामतन दीनो (२, ३)।

८९९—१. लहि (२, ३), २. जुग (२, ३), ३. मुद्यौ (२, ३)।

९००—१. गर्भादि (१), २. असमर्थता (१), ३. तन (१)।

९०१—१. तेल (३), २. उठत (१), ३. रहि (१), ४. माँगत (१)।

९०२—१. छको (२, ३), २. अरस लली (२, ३)।

८९७—वैपथ=कँपन, कँपकँपी। जिम्हादिक=जीभ आदि।

८९८—जगत=जागते हुए।

८९९—आहट=आगम ध्वनि, आने का शब्द।

९००—सामरथता=क्षमता।

९०१—गरभ=गर्भ।

९०२—ऐडानि=बदन तोडना।

मद-लक्षण

मदिरा बिद्या दर्बि[1] ते जोबन आये गात।
उपजत है मदभाव तहँ[2] कढ़त अलसगत बात ॥६०३॥

उदाहरण

छिनक रहति कर लै चषक छिन मुख रहति[1] लगाइ।
आपु करति[2] मद पान पै[3] छकवति[3] पी को जाइ ॥६०४॥

जब ते कामिनि[1] कान्ह कौ तके मद भरे नैन।
तब ते वै बिनु मद छके छके रहत रस पैन ॥६०५॥

मोह-लक्षण

मद भय[1] आदि बिभाव तें चित जो बेचित[2] होइ।
वहै मोह अग्यानता ते लहियत है सोइ ॥६०६॥

उदाहरण

लकुटि[1] गिरी छुटि हाथ तें मुकुट परयौ[2] झुकि पाइ।
मोहन की यह गति[3] करी राधे बदन दिखाइ ॥६०७॥

उन्माद-लक्षण

दर्बि[1] हांनि बिरहादि यै[2] है उन्माद बिभाव।
बिनु बिचार आचार[3] अरु बौराई अनुभाव ॥६०८॥

६०३—१. दरब (२, ३), २. तिइ (२, ३)।
६०४—१. रहत (१), २. करत (१), ३. पर (३), ४. छकवत (३)।
६०५—१. कामिन (१)।
६०६—१. भै (१), २. बेचत (३)।
६०७—१. लकुट (१) २. गिरौ (१), ३. मति (३)।
६०८—१. दरब (२, ३), २. ये (२, ३), ३. आगार (१)।

६०३—कढ़त=निकलती है। अलसगत=आलस्ययुक्त, सुरतगत।
६०४—चषक=प्याला। छकवति=परेशान करती है, तंग करती है, तृप्त करती है।
६०६—बेचित=बेचैन, व्याकुल, चेतनाहीन।
६०७—लकुटि=छड़ी। मुकुट=ताज।
६०८—आचार=आचरण।

उदाहरण

खिनि[1] रोवति खिनि[1] बकि उठति खिनि[1] गहि तोरति[2] माल।
जमुना के तट जाति[3] यह भयौ बाल को हाल ॥६०६॥

अपस्मार-लक्षण

जच्छ रच्छ ग्रह भूत अरु भय दुख आदि विभाव।
अनुभव वैपथ फेन मुख अपसमार को भाव ॥६१०॥

उदाहरण

कहा बजायो बेनु यह नारिन को जिय लेन।
फर फराति वह[1] छिति[1] परी मुख मैं आयो फेन ॥६११॥
कत दिखाई कामिनि[1] दई[1] दामनि को यह[2] बाँह।
थर थराति[3] सीतन फिरै फरफराति[4] घन माँह ॥६१२॥

जडता-लक्षण

ग्यान घटै अरु गति थकै निरनिमेष रहि जाइ।
प्रिय अप्रिय देखै सुनै सोई जड़ता भाइ ॥६१३॥

६०६—१. खिन (१), २. तोरत (१), ३. जात (१)।
६११—१...१. छित वह (२, ३)।
६१२—१...१. कामिनि को (२, ३), २. वह (२, ३), थर थरात (१), ४. फर फरात (१)।

६०६—बाकि उठति=बकवास कर उठती है।
६१०—जच्छ=यक्ष, देवयोनि में गिनाये हुए एक प्रकार के प्राणी जो कुबेर के सेवक तथा उनकी निधियों के रक्षक माने जाते है। रच्छ=रक्ष, राक्षस। ग्रह=नक्षत्र, दिक करने वाला। भूत=शैतान, जिन। फेन=झाग। अपसमार=मिरगी, मूर्च्छा।
६११—बेनु=बंशी, मुरली।
६१२—फरफराति=तड़फडाती हुई।
६१३—निरनिमेष=अपलक, एकटक।

उदाहरण

पिय लखि यौं लागत अचल तिय दृग तारे स्याम।
मनु थिर ह्वै बैठे भँवर कमलन[1] को करि धाम ॥९१४॥

बाट चलति[1] ननदी कह्यौ कहाँ गिरी तुव माल।
हिये ओर तकि चकित ह्वै थकित ह्वै रही बाल ॥९१५॥

विषाद-लक्षण

चाह्यौ[1] ह्वौ[2] इन अनचह्यौ[3] भये देखि दुख होइ।
सो विषाद अनुभाव कहि[4] तीनि भाँति जिय[5] जोइ ॥९१६॥

उत्तिम[1] ढिग[2] ह्वै कै हिये सोचे कछुक उपाय।
मद्धिम[3] जो अनमन किये ढूढ़ै कोउ सहाय ॥९१७॥

अधम बदन अति सुखि[1] कै पीरो होइ निदान।
भरि भरि लेत उसास अरु करै भाग अपमान ॥९१८॥

उदाहरण

चली स्याम पै बाम तहँ मिली ननद[1] पथ[2] आइ।
यहि सोचति[3] किहि छन्द छलि[3] हरि सौं मिलिये जाइ ॥९१९॥

९१४—१. कमलनि (२, ३)।

९१५—१. चलत (१)।

९१६—१. चाहौ (१), २. हौं (२, ३), ३. अनचह्यौ (२, ३), ४. तिह (२, ३), ५. यह (१)।

९१७—१. उत्तम (२, ३), २. दृढ़ (२, ३), ३. मध्यम (२, ३)।

९१८—१. सूख (२, ३)।

९१९—१. ननदि (२, ३), २. पथि (२, ३), ३ ··३. सोचति केहि छंद छल (२, ३)।

९१४—अचल=अडिग। भँवर=भ्रमर।

९१६—अनचहौ=बिना चाहा हुआ।

९१८—भाग=भाग्य, किस्मत।

९१९—छन्द छलि=चाल चलकर।

व्याधि–लक्षण

काम कलेस भयादि ते ब्याधि जुरादिक होइ।
कर चरनन को फेरिबो धीर[1] दहादिक होइ ॥६२०॥

उदाहरण

निरखि निरखि तिय की बिथा थकित भये सब लोग।
समुझि न परति बियोग है कै कछु डारयौ जोग ॥६२१॥

अरी बाल[1] छबि स्याम की यौं परयंक लखाइ।
मानौ कागद पै लिखो मसि की लीक बनाइ ॥६२२॥

मरण–लक्षण

कछुक ब्याधि वा घात तें मरन होत है आनि।
दग मूँदन[1] स्वाँसा चलनि[2] हिलकत[3] ते रहि जानि ॥६२३॥

उदाहरण

तरफि तरफि रन[1] खेत मैं तुव बौरिन के लोग।
कोउ[2] मरै कोऊ मरत कोऊ मरिबे जोग ॥६२४॥

६२०—१. धीक (१)।
६२१—१. बाम (२, ३)।
६२३—१. मूदत (१), २. जलन (२, ३), ३. हिक्का (२, ३)।
६२४—१. तुव (२, ३), २. कोऊ (२, ३)।

६२०—कलेश=क्लेश, मानसिक कष्ट। जुरादिक=ज्वर आदि रोग। धीक=ताप। दहादिक=दाह आदिक, जलन आदि।
६२१—जोग=टोना, टोटका।
६२२—परयंक=चारपायी। मसि= स्याही। लीक=लकीर।
६२३—घात=प्रहार। हिलकत=हिंचकी।
६२४—तरफि=तड़प। रन खेत=रण क्षेत्र, युद्ध का मैदान।

शृंगार-वर्णन

कहि थिर[1] भाव विभाव[1] पुनि[2] अनुभै अरु चर[2] भाव।
अथ बरनत[3] सिंगार पुनि[4] जिहि सुनि बाढ़त चाव ॥६२५॥

शृंगार-रस-लक्षण

लहि विभाव अनुभाव चर भाउ[1] जबै रति भाव।
पूरन प्रगटे रस[2] कहत तिहि[2] सिंगार कवि राव ॥६२६॥

पहले उपजत परस्पर दंपति को[1] रस[2] भाव।
रितु आदिक उद्दीप[3] ते पुनि चितु[4] बाढ़त चाव ॥६२७॥

पुनि रति हो तै आइ कै प्रगट होत अभिलाख।
पुनि प्रगटत अभिलाष ते चिंता यह मन राख ॥६२८॥

चिंता ते प्रगटत सकल मन बिबचारी[1] आनि[1]।
तिन को सहकारी कहैं यह[2] मन मैं पहिचानि[3] ॥६२९॥

जब रति[1] करि अनुभाव कौ बाहिर देति लखाइ।
तब निकसत हैं संग ही यै[2] सहकारी आइ ॥६३०॥

६२५—१...१. त्रिभाव अनुभाव (२, ३), २...२. पुनि रूचिर हाव अरु (२, ३), ३. बरनन (२, ३), ४. घन (२, ३)।
६२६—१. भाव (२, ३), २. कहत है तेहि (१)।
६२७—१. दीपति के (२, ३), २. रति (२, ३), ३. उद्दिपन (२, ३), ४. चित (२, ३)।
६२९—१...१. बिभचारी आइ (२, ३), २. कवि (२, ३), ३. ठहराइ (२, ३)।
६३०—१. गति (२, ३), २. ये (२, ३)।

६२५—अनुभै = अनुभाव।
६२७—रितु=ऋतु, मौसम।
६२८—अभिलाख=आकांक्षा।

ये[1] मन में रति भाव को ज्यौं सब करत सहाव।
रति अनुभाव न सहकरति त्यौं इनिके[2] अनुभाव ॥६३१॥
पुनि[1·] भै जब[·1] अनुभाव ते ये सहकारी आनि।
तब अति पर[2·] परगट भए[·2] रति के[3] यह जिय जानि ॥६३२॥
पूरन ह्वै रति भाव जब यहि विधि प्रगटै[1] आइ।
ताही में मन मगन भै[2] रस सिंगार कहि जाइ ॥६३३॥

श्रृंगार रस–उदाहरण

मोहन मूरति लाल[1] की कामिनि देखि लुभाइ।
रीझि छकी मोही थकी[2] रही एक टक लाइ ॥६३४॥
पिय तन निरखि कटाच्छ सों यौं तिय मुरी लजाइ।
मनौ[1] खिची मन मोन कौ लीन्हौं बंसी लाइ[·1] ॥६३५॥
पास आइ मुसकाइ कै अति दीनता दिखाइ[1]।
नेह जनाइ बनाइ हरि मो मन लियो लुभाइ[2] ॥६३६॥
तरुनि बरन सर करन को जग में कौन उदोत।
सुबरन जाके अंग ढिग राखत कुबरन· होत ॥६३७॥
लाल पीत सित स्याम पट जो पहिरत दिन रात।
ललित गात छबि छाय कै नैनन में चुभि जात ॥६३८॥

६३१—१. वे (२, ३), २. इनके (१)।
६३२—१···१. भाव जवै (२, ३), २···२. परगट कार ते (२, ३), को (२, ३)।
६३३—१. परगट (१), २. मो (२, ३)।
६३४—१. स्याम (२, ३), २. जकी (२, ३)।
६३५—१···१. (२, ३), मे यह पंक्ति नहीं है।
६३६—१. दिखाय (२, ३), २. लुभाय (२, ३)।

६३१—सहकरत=सहयोग करना।
६३४—कटाच्छ=कटाक्ष।

श्रृंगार रस–भेद–कथन

कहैं सँजोग बियोग द्वै[1.] गनि[1] सिँगार सब लोग।
मिलन कहत संजोग अरु बिछुरन कहत वियोग ॥६३६॥

जानु संजोग दरसऽरु रस[1] बाहिर की रीति।
दंपति हिय के मोद को करि संजोग प्रतीति[2] ॥६४०॥

सजोग श्रृंगार–उदाहरण

निजु[1] चावन सौं बैठि कै अति सुख लेत नवीन।
दोऊ तन पानिपन मैं दोऊ के दृग मीन ॥६४१॥

लै रति सुख बिपरीत ज्यौं रची प्रिया अरु मीत।
दोऊ नूपुन[1.] पर[1] भई इक रसना की जीत ॥६४२॥

राते डोरन तैं लसत चख चंचल इहि भाय।
मनु बिबि पूना अरुन मैं खंजन बांध्यौ आय ॥६४३॥

मिलन स्थान–बर्णन

सखी सदन सूने सदन उपबन विपिन[1] सनान[2]।
और ठौर हूँ द्वै सकति दंपति[3] मिलन स्थान[4] ॥६४४॥

६३६—१···१. गनि द्वै (२, ३)।
६४०—१. बस (२, ३), २. अतीति (२, ३)।
६४१—१. निज (१)।
६४२—१. १. नुपुर परि (२, ३)।
६४४—१. मिलन (२, ३), २. स्नान (१), ३. दीपति (२, ३), ४. सथान (२, ३)।

६३६—संयोग=मिलन। बियोग=बिछुड़न।
६४१—चावन=लालसा, अभिलाषा।
६४२—नूपुन=नूपुर।
६४४—सदन=घर। सनान=स्नान, नहाना।

सखी-सदन का मिलन

कान्ह बनाइ कुमारिका, सखी गेह[1] में ल्याइ।
चोरमिहिचुनी[2] मैं[2] दई लै राधकहि[3] मिलाइ ॥६४५॥

सूने सदन का मिलन

घनि सूने घर[1] पाइ यों[2] हरि लीन्हौं[3] उर लाइ।
सूने गृह लहि लेत हैं ज्यों धन चोर उठाइ ॥६४६॥

उपवन का मिलन

फिरति हुती तिय फूल के भूषन पहिरि अतूल।
हरि लखि उपबन कूल मैं[1] भई और ही फूल ॥६४७॥

विपिन का मिलन

हरि को लखि यहि[1] राधिका ठहिराई यह भाइ।
मनु तमाल तरु को गई पुहुपलता लपटाइ ॥६४८॥

स्नान-स्थल का मिलन

दोऊ सरबर न्हात अरु फिरि फिरि चुभकी लेत।
परसि लहर जल परसपर सुरति[1] परस[2] सुख देत ॥६४९॥

चुभकी लै लै मिलत अरु उठित दूरि नित जाइ।
परस[1] कंप रोमांच इनि[2] दुरयौ सरोवर न्हाइ ॥६५०॥

६४५—१. ग्रेह (१), २. .२ चोर मिहचुनी तै (२, ३), ३. राधिके (२, ३)।
६४६—१. घरि (२, ३), २. सो (१), ३. लीनो (२, ३)।
६४७—१. फूल मै (२, ३)।
६४८—१. कै (२, ३)।
६४९—१. सुरत (१), २. परम (२, ३)।
६५०—१. धरसि (२, ३), २. इन्हि (२, ३)।

६४५—कुमारिका=अविवाहित १० से १२ वर्ष की कन्या। चोरमिहिचुनी=आँख मिचौनी का खेल।

६४७—कूल=किनारा, समीप।

६४९—सरबर = सरोवर, तालाब। परसि=स्पर्श करके। परसपर=परस्पर आपस मे।

६५०—चुभकी=डुबकी।

वियोग-शृंगार

उदाहरण

इत लखियत यह तिय नहीं उत लखियत नहिं पीय।
आपुस[1] माँहि[2] दुहुन मिलि पलटि लहै[3] हैं जीय ॥६५१॥

वियोग-शृंगार-भेद

पुनि वियोग सिंगार हूँ[1] दीन्हौं[2] है समुझाइ।
ताही को इन चारि बिधि बरनत हैं कबिराइ[3] ॥६५२॥

इक पूरुबअनुराग[1] अरु दूजो मान बिसेखि।
तीजो[2] है परवास अरु चौथो करुना लेखि ॥६५३॥

पूर्वानुराग-लक्षण

जो पहिलै सुनि कै निरख बढ़ै प्रेम की लाग।
बिनु मिलाप जिय[1] विकलता सो पूरुबअनुराग[2] ॥६५४॥

उदाहरण

होइ पीर जो अंग की कहिये सबै[1] सुनाइ।
उपजी पीर अनंग की कही कौन बिधि जाइ ॥६५५॥

६५१—१. आपस (२, ३), २. माँह (१), ३. गये (२, ३)।
६५२—१. जो (२, ३), २. दीनों (२, ३), ३. कवि लाइ (२, ३)।
६५३—१. पूरबानुराग (२, ३), २. तीजै (१)।
६५४—१. जो (२, ३), २. पूरबअनुराग (२, ३)।
६५५—१. सबनि (२, ३)।

६५१—आपुस=आपस। पलटि=घूमकर।
६५३—पूरुबअनुराग=पूर्वानुराग, पहले का प्रेम। परवास=प्रवास, विदेशवास।
६५४—मिलाप=मिलन।

पूर्वानुराग मध्य

सुरतानुराग—उदाहरण

जाहि बात सुनि कै भई तन मन की गति आन[1]।
ताहि दिखाये कामिनी क्यौं रहि है मो प्रान ॥६५६॥

पूर्वानुराग मध्य

दृष्टानुराग—उदाहरण

आप ही लाग[1] लगाइ दृग फिरि रोवति यहि[2] भाइ।
जैसे आगि लगाइ कोउ जल छिरकत है आइ ॥६५७॥
हिये मटुकिया[1] माहि मथि दीठि रई सो ग्वारि।
मो मन माखन लै गई देह दही सो[2] डारि ॥६५८॥

मान में लघुमान उपजने का

उदाहरण

और बाल को नाउ[1] जो लयो भूलि कै नाह।
सो अति ही विष ब्याल[2] सौं[3] छलो[4] बाल हिय माह ॥६५६॥

मध्यमान—उदाहरण

पिय सोहन सोहन[1] भई भुवरिस धनुष उतारि।
रस कृपान[2] मारन लगी हँसि कटाछ सो नारि ॥६६०॥

६५६—१. आनि (२, ३)।
६५७—१. लागि (२, ३), २. यह (२, ३)।
६५८—१. मटकिया (२, ३), २. को (२, ३)।
६५६—१. नाम (२, ३), २. बाल (२, ३), ३ ज्यौ (२, ३), ४. छयो (२, ३)।
६६०—१. हा ह्वै (१), २. कुसान (२, ३)।

६५७—लाग लगाइ=स्नेह लगाकर। छिरकत=बिखेरती है।
६५८—मटुकिया=मिट्टी की गगरी। ग्वारि=ग्वालिन।
६५६—नाउ=नाम। ब्याल=सर्प।
६६०—सोहन=सुहावना, सुंदर लगनेवाला, सौगंध। भुवरिस=काम जन्य क्रोध।

गुरुमान–उदाहरण

पिय दृग अरुन चितै भई यह तिय की गति आइ।
कमल अरुनता लखि मनों ससि दुति घटै बनाइ ॥६६१॥
लहि मूँगा छवि[1] दृग मुरनि यह मन लह्यौ प्रतच्छ।
नख लाये तिय अनखइ[2] पियनख[3] छाये[3] पच्छ[4] ॥६६२॥

गुरमान छूटने का उपाय

स्याम[1] जो मान छोड़ाइये[2] समता को समुझाइ।
जो मनाइये दै कछू सो है दान उपाइ ॥६६३॥
सुख दै सकल सखीन को करिके आपनि[1] औरि[2]।
बहुरि छुड़ावै मान सो भेद जानि सब ठौरि[3] ॥६६४॥
मान मोचावन[1] बान[2] तजि कहै और परसंग।
सोइ उत्प्रेक्षा[3] जानिये बरनत बुद्धि उतंग ॥६६५॥
उपजै[1] जिहि[1] सुनि भावभ्रम[2] कहिये यहि बिधि बात।
सो प्रसंग बिध्वंस है बरनत बुधि अविदात ॥६६६॥
जो अपने अपराध सो रूसी तिय को पाइ।
पाँइ परे तेहि[1] कहत है कविजन प्रनत[2] उपाइ ॥६६७॥

६६२—१. छनि (२, ३), २. अख इनै (२, ३), ३···३. पियन छपाये (२, ३), ४. पत्त (१)।
६६३—१. साम (१), २. छुटाइये (२, ३)।
६६४—१. अपनी (२, ३), २. बोर (१), ३. ठौर (२, ३)।
६६५—१. सुचावइ (२, ३), २. मान (१), ३. उपेष्या (२, ३)।
६६६—१···१. उपजि परै (२, ३), २. बितिक्रम (२, ३)।
६६७—१. तिहि (२, ३), २. प्रनित (१)।

६६२—प्रतच्छ=प्रत्यक्ष, सामने। पच्छ=पक्ष।
६६३—उपाइ = उपाय, व्यवस्था।
६६४—औरि=ओर, तरफ। ठौरि=(ठौर) स्थान।
६६५—मोचावन = छुडाने के लिए। बान = आदत।
६६७—रूसी = रूठी हुई। प्रनत = विनत।

सामोपाय–उदाहरण

हम तुम दोऊ एक हैं समुझि लेहु मन माँहि।
मान भेद को मूल[1] है भूलि[2] कीजिये नाहि ॥६६८॥

दानोपाय–उदाहरण

इन काहू सेयो नहीं पाय सेयती नाम।
आजु भाल[1] बनि चहत तुव कुच सिव सेयो[2] बाम ॥६६९॥
पठये है निजु करन गुहि[1] लाल मालती फूल।
जिहि[2] लहि तुव हिय कमल तें कढ़ै मान अति[3] तूल ॥६७०॥

भेदोपाय–उदाहरण

लालन मिलि दै हितुन मुख दहियै सौतिन प्रान।
उलटी करै[1] निदान जनि[2] करि पीतम[3] सो मान ॥६७१॥
रोस अगिन की अनल तें तूँ जनि[1] जारे नाँह।
तिहि[2] तरुवर दहियत नहीं रहियत जाकी छाँह ॥६७२॥

उत्प्रेक्षा उपाय–उदाहरण

बेलि चली बिटपन मिली चपला घन तन माँहि।
कोऊ नहि छिति गगन मैं तिया रही तजि नाँहि ॥६७३॥

६६८—१. मोलु (१), २. मूल (२, ३)।
६६९—१. काल (२, ३), २. सरूयो (२, ३)।
६७०—१. गुह (२, ३), २. जेहि (२, ३), ३. अलि (२, ३)।
६७१—१. करिहि (२, ३) २. जिन (२, ३), ३. प्रीतम (२, ३)।
६७२—१. जिन (२, ३), २. तेहि (१)।

६६८—मूल = जड। भूलि=गलती, त्रुटि।
६६९—सेयती=(सेवन) = सफेद गुलाब का फूल, (सेवति) = स्वाति।
भाल=ललाट, तेज, अंधकार। सेयो = सेवा की।
६७०—गुहि=गूँथकर। उलटी= गलत।
६७२—अनल = आग। तिहि=उसे, उस।
६७३—चपला=चचल (स्त्री), बिजली।

प्रसंग बिध्वस–उदाहरण

कहत पुरान जो रैनि को बितबति[1] हैं करि मान।
ते सब चकई होहिगीं[2] अगिले जनम[3] निदान ॥९७४॥

प्रनत उपाय–उदाहरण

पिय तिय के पायन परत लागतु[1] यहि[2] अनुमानु[3]।
निज मित्रन के मिलन को मानौ आयउ भानु[4] ॥९७५॥
पाँव गहत यों मान तिय मन ते निकर्‍यो हाल।
नील[1] गहति[2] ज्यौं कोटि[3] के निकसि जात कोतवाल ॥९७६॥

अगमान छूटने की बिधि

देस काल बुद्धि बचन पुनि[1] कोमल धुनि सुनि कान।
औरो उद्दीपन लहै सुख ही छूटत मान ॥९७७॥

प्रवास बिरह–लक्षण

त्रितिय बियोग प्रबास जो पिय[1] प्यारी द्वै देस।
जामे नेकु सुहात[2] नहि उद्दीपन को लेस ॥९७८॥

९७४—१. वितवत (१), २. होइगी (१), ३. जन्म (१)।
९७५—१. लागत (२, ३), २. यह (२, ३), ३. अनुमान (२, ३), ४. भान (२, ३)।
९७६—१. नीउ (१), २. गहत (२, ३), ३. कोट (२, ३)।
९७७—१. पुन (२, ३)।
९७८—१. प्यौ (१), २. सोहात (१)।

९७४—बितबति=बिताती हैं।
९७५—आयउ = आया।
९७६—नील = कलंक। कोतवाल=गढ़पाल।
९७८—लेस = अल्प, थोड़ा।

उदाहरण

नेहभरे[1] हिय मैं परी अगिनि[2] बिरह की आइ।
साँस[3] पवन की पाइ[4] कै करिहै कौन बलाइ ॥९७९॥
सिवौ[1] मनावन[2] को गई बिरिहिनि[3] पुहुप मँगाइ।
परसत पुहुप भसम भए तब दै सिवहिं चढ़ाइ ॥९८०॥

करुना बिरह-लक्षण

सिव जार्यौ जब काम तब रति किय अधिक बिलापु[1]।
जिहिं बिलाप महँ तिनि सुनी यह धुनि नभ ते आपु[2] ॥९८१॥
द्वापर में जब होइगो आनि कृष्ण अवतार।
तिनके सुत को रूप धरि मिलि है तुव भरतार ॥९८२॥
यह सुनि कै जो बिरह दुख रति को भयो प्रकास।
सोई करुना बिरह सब जानैं[1] बुद्धि निवास ॥९८३॥
पुनि याहू करुना बिरह बरनत कवि समुदाइ।
सुख उपाय ना रहे जो[1] जिय निकसन[1] अकुलाई ॥९८४॥
जासो पति सब जगत मैं[1] सो पति[1] मिलत न आइ।
रे जिय जीबो बिपत कौ क्यौं यह तोहि सुहाई ॥९८५॥

९७९—१. नेह भरी (२, ३), २. अग्नि (२, ३), ३. स्वाँस (२, ३), ४. आइ (२, ३)।

९८०—१. सिवा (२, ३), २. मनावनि (२, ३), ३. बिरहनि (२, ३)।

९८१—१. बिलाप (२, ३), २. आप (२, ३)।

९८३—१. बरनत (२, ३)।

९८४—१...१. जिय निकसन को (२, ३)।

९८५—१...१. सो पति मो (२, ३)।

९७९—बलाइ = (बला) आपत्ति, उत्पात।

९८०—परसत=स्पर्श करते ही।

९८१—धुनि=ध्वनि, आवाज़।

९८४—निकसन=निकलने के लिए।

९८५—जासो = (जासु) जिसका।

सुख लै संग जिहि जियत ज्यौं पियतन[1] रच्छक काज।
सोऊ अब दुख पाइ कै चलो चहत है आज ॥६८६॥

वियोग–श्रृंगार

दसदसा–कथन

धरे[1] बियोग सिंगार मैं कवि जो दसादस ल्याइ।
लच्छन सहित उदाहरन तिनके सुनहु[2] बनाइ ॥६८७॥
मिलन चाह उपजै हियै सो अभिलाष बखानि[1]।
पुनि मिलिबे को सोचु कौ चिंता जिय मैं जानि[2] ॥६८८॥
लखै सुनै पिय रूप कौ सौरे[1] सुमिरन सोइ।
पिय गुन रूप सराहिये वहै गुन कथन होइ ॥६८९॥
सो उद्वेग जो बिरह ते सुखद दुखद ह्वै जाइ।
बकै और की और जो सो प्रलाप ठहिराइ[1] ॥६९०॥
सो उनमाद जो मोह ते बिथा[1] काज कछु होइ।
कृसता तन पियराइ अरु ताप व्याधि है सोइ ॥६९१॥
जड़ता बरनन अचल जहँ चित्र अंग ह्वै जाइ।
दसमदसा[1] मिलि दस दसो होत बिरह तें आइ। ६९२॥

६८६—१. पिया न (२, ३)।
६८७—१. धर्यो (२, ३), २. सुनो (२, ३)।
६८८—१. बखान (२, ३) २. जान (२, ३)।
६८९—१. सुमिरै (२, ३)।
६९०—१. ठहराइ (१)।
६९१—१. बृथा (२, ३)।
६९२—दसदसा (२, ३)।

६८६—चलो=चलना।
६८८—अभिलाष=इच्छा, प्रिय से मिलने की इच्छा, चाह।
६८९—सौरे= सौरना, श्रृंगार करना।
६९०—और की और = कुछ का कुछ।
६९१—तापव्याधि=उष्णता का रोग।
६९२—दसमदसा = (दशम दशा) बिरह की अंतिम स्थिति जिसमें वियोगी प्राण त्याग देता है।

अभिलाष—उदाहरण

अलि[1] ही है वह घोस[1] जो पिय बिदेस ते आइ।
बिथा पूछि सब बिरह कौ लैहैं अंग लगाई ॥९९३॥
जेहि लखि मोहू सो बिमुख भै चकोर है नैन।
रे बिधि क्यौंहू[1] पाइहौं तेहि तिय मुख[2] लखि[2] चैन ॥९९४॥

चिंता—उदाहरण

इत मन चाहत पिय मिलन उत रोकति[1] है लाज।
भोर साँझ को एक छिन किहि बिधि बसै[2] समाज ॥९९५॥
कौन भाँति वा ससिमुखी अमी बेलि सी पाइ।
नैनन[1] तपन[1] बुझाइ के लीजै अंग लगाइ ॥९९६॥

स्मरण—उदाहरण

खटक[1] रहौ चित अटक[2] जौ[3] चटक भरी बहु[4] आइ।
लटक मटक दिखराइ कै सटकि गई[5] मुसक्याइ[6] ॥९९७॥
कहा होत है बसि रहै आन देस कै कंत[1]।
तो हौं[2] जानौ जो बसौ मो मनते[3] कहु 'अंत[4] ॥९९८॥

९९३—१···१. अति है है बहु दोस ज्यों (२, ३)।
९९४—१. केहू (१), २···२. लखि मुख (१)।
९९५—१. रोकत (२, ३), २. बनै (२, ३)।
९९६—१···१ बैनन नैन (२, ३)।
९९७—१. खटकि (१), २. अटकि (१), ३. ज्यौ (१), ४. वह (१) ५. गयौ (१), मुसकाइ (२, ३)।
९९८—१. अत (२, ३), २. मैं (२, ३), ३. मन मै (२, ३), ४. कत (२, ३)।

९९३—घौस=दिन, दिवस।
९९४—क्यौहूँ = कभी भी ?
९९५—इत=इधर। उत = उधर।
९९७—बहु= बहू, दूलहन। लटक मटक = नखरा। सटकि गई = धीरे से खिसक गईं।
९९८—अंत=अन्यत्र।

लखत होत सरसिज नमन आली रवि के ओर।
अब उन आँनदचंद हित नयन करयो चकोर ॥ ६६६ ॥
चन्द निरखि सुमिरत बदन कमलबिलोकत पाइ।
निसि दिनि ललना की सुरति रही लाल हिय[1] छाइ ॥१०००॥
बिछुरनि[1]· खिन के दृगनि·[1] मैं भरि असुँवा ठहरानि।
अरु ससकति घन गर[2] गहन कसकति[3] है मन आनि ॥१००१॥
या पावस रितु मैं कहौ कीजै कौन उपाइ।
दामिनि लखि सुधि होति है वा कामिनि की आइ ॥१००२॥

गुणकथन–उदाहरण

दिन दिन बढ़ि बढ़ि[1] आइ कत देत मोहि दुख द्वंद।
पिय मुख[2] सरि[3] करि है न तू अरे कलंकी चंद ॥१००३॥
जिहि तन चंदन बदन ससि कमल अमल[1] करि पाइ।
तिहि रमनी गुन गन गनत क्यौं न हियौ[2]· लहराइ·[2] ॥१००४॥

उद्वेग–उदाहरण

जरत हुती हिय[1] अगिन[2] ते तावैं चंदन ल्याइ[3]।
बिंजन[4] पवन डुलाइ इनि दीन्हौं[5] अधिक जराइ ॥१००५॥

१०००—१. दृग (२, ३)।
१००१—१···१. बिछुरन खिनि के दृगन (२, ३), २. गल (२, ३), ३. कसकत (१)।
१००३—१. घटि (२, ३), २. सुख (२, ३), ३. सठ (२, ३)।
१००४—१. जमल (२, ३), २···२. हिये सियराइ (२, ३)।
१००५—१. ही (२, ३), २. अग्नि (२, ३), ३. लाइ (१), ४. बिजैन (१), ५. दीनौं (२, ३)।

१०००—ललना=स्त्री, कामिनी।
१००१—गर=गरदन। गहन = गहना।
१००३—कत=क्यों। सरि=समता, बराबरी।
१००४—लहराइ=कंपित होता है।
१००५—बिंजन=(व्यंजन) पंखा।

कमलमुखी बिछुरत भये[1] सबै जरावन हार।
तारे[2] ये[3] चिनगी भए चंदा भयो अँगार ॥१००६॥

प्रलाप-उदाहरण

स्याम रूप घन दामिनी पीतांबर अनुहार[1]।
देखत ही यह ललित छबि मोहि[2] हनत कत मार[3] ॥१००७॥
तू[1] बिछुरत ही बिरह ये[2] कियो लाल को हाल।
पिय कँह[3]· बोलत·[3] यह कहत मोहि पुकारत बाल ॥१००८॥

उन्माद-उदाहरण

खिनि[1]·· चूमति खिनि उर धरति बिन दृग राखति·[1] आनि।
कमलन[2] को तिय लाल के आनन कर पग जानि ॥१००९॥
कमल पाइ[1]· सनमुख धरत पुहुपलतन·[1] लपटाइ।
लै श्री फल हिय मैं गहत सुनत कोकिलन जाइ ॥१०१०॥

ब्याधि-उदाहरण

बिरह तचो[1] तन दूबरी यौं परयंक[2] लखाइ।
मनु[3]· सित घन की सेज[3] पै[4] दामिनि पौढ़ी आइ ॥१०११॥

१००६—१. भई (२, ३), २. तारा (२, ३), यो (२, ३)।

१००७—१. अनुवारि (२, ३), २. मोह (२, ३), ३. मारि (२, ३)।

१००८—१. तुव (२, ३), २. यह (२, ३), ३···३. पपिहा बोलियत (२, ३)।

१००९—१···१ खिन, चूमत खिन उर धरत खिनि दृग राखत (२, ३), २. कमलनि (२, ३)।

१०१०—१···१. कमलइ सनमुख धरत वह पुलकत तन (२, ३)।

१०११—१. चित्र (१), २. पटपख (१), ३··३. मनौ स्याम घन सेज (१), ४. कै (२, ३)।

१००६—जरावनहार = जलानेवाले, इर्ष्या उत्पन्न करनेवाले।

१००७—अनुहार=ओहार।

१०१०—पुहुपलतन=पुष्प लताओ को।

१०११—तची=संतप्त हुई, तपी हुई। पौढ़ी=मस्ती से लेटी।

मन की बात न जानियत अरी स्याम को[1] गात।
तो सों प्रीत लगाइ कै पीत होत[2] नित[2] जात ॥१०१२॥

जड़ता—उदाहरण

नेक न चेतत और बिधि थकित भयो[1] सब गाँउ।
मृतक सँजीवन मंत्र[2] है वाहि[2] तिहारो नाँउ ॥१०१३॥

तुव बिछुरत ही कान्ह को यह गति भई निदान।
ठाढ़े रहत पखान ते राखे मोर पखान ॥१०१४॥

दसदमा—उदाहरण

बिदित बात[1] यह[1] जगत में बरन गये प्राचीन।
पिय बिछुरे सब मरत हैं ज्यों जल बिछुरत[2] मीन ॥१०१५॥

पाती—वर्णन

बिथा कथा लिखि[1] अंत की अपने अपने पीय।
पाँती दैहैं और सब हौं दैहौं यह जीय ॥१०१६॥

पिय बिन दूजो सुख नहीं पाती के परिमान[1]।
जाचत बाचत[2] मोद तन बाँचत बाचत प्रान ॥१०१७॥

नैन पेखबे को चहै प्रान धरन को हीय।
लहि पाँती झगरयौ परयौ आनि छुड़ावै पीय ॥१०१८॥

१०१२—१. के (१), २···२. भये जिन (२, ३)।
१०१३—१. भयउ (१), २···२. मृत्यु है जाहि (२, ३)।
१०१५—१···१. अहै या (२, ३), २. बीछुरे (२, ३)।
१०१६—१. तिय (१)।
१०१७—१. परमान (१), २. यांचत (२, ३)।
१०१८—१. झरयौ (२, ३)।

१०१२—पीत=प्रीति, नेह। पीत=पीला।
१०१३—मृतक सजीवन=मरे को पुनः जिलानेवाला। नाउ=नाम।
१०१४—पखान=(पाषाण) पत्थर। पखान=पंखे।
१०१५—बरन गये=वर्णन कर गये। मीन=मछली। प्राचीन=पुराने विद्वान।
१०१८—पेखबे=देखने।

सदेशा-वर्णन

पकरि बाँह जिन कर दई बिरह सत्रु के साथ।
कहियो री[1] वा निठुर सों ऐसे गहियत हाथ॥१०१६॥
कहियो री वा[1] निठुर सों यह मेरी[2] गति[2] जाइ।
जिन[3] छुड़ाइ निज अंग ते दई अनंग मिलाइ॥१०२०॥

१०१६—१. यो कहियो (२, ३)।
१०२०—१. यो कहियो (२, ३), २...२, गति मेरी (२, ३), ३. जिनि (२, ३)।

वियोग में

बारहमासा–वर्णन

चैत्र–वर्णन

धनुष बान दोऊ नए दै फूलन कै चैत।
जैतवार सब जगत को कियो काम कमनैत ॥१०२१॥
स्याम संग काके[1] सुनत बाढ़त मोद तरंग।
सो बिहंग धुनि करत या चैत माह[2] चित भंग ॥१०२२॥

वैसाख–वर्णन

लाखु जतन कहि राखिये करै जार तन राख।
साख साख ज्यों ढाक[1] की फूल रही बैसाख ॥१०२३॥
पुहुप रूप इनि[1]-दूमनि मैं आगि[2] लागि[3] है आइ।
तामैं[4] जरि ये भँवर सब कारे भये बनाइ ॥१०२४॥

बसत समीर–वर्णन

प्राननाथ बिन आइ इन को राखै गहि हाथ।
पवन प्रान सो[1] गोतु गनि[2] लिये जात निज साथ ॥१०२५॥

१०२२—१. जिहि के (२, ३), २. माहि (२, ३)।
१०२२—१. ढाय (२, ३)।
१०२४—१. इन (१), २. अगिनि (१), ३. लगी (२, ३), ३. जामै (२, ३)।
१०२५—१. कौ (२, ३), २. गनि (२, ३)।

१०२१—जैतवार = जीतनेवाला, विजेता। कमनैत = कमान बाँधनेवाला, तीरंदाज़।
१०२३—जार=जलाकर, परस्त्री से प्रेम करने वाला। ढाक=पलाश।
१०२४—दूमनि=द्रुमों, पौधों, वृक्षो। भँवर=भौरा।
१०२५—गोतु=वंश। गनि=गणना करके।

जेठ-वर्णन

बिंजन लै करि मैं धरति[1] बाहर[2] देति न पाइ।
वृष आतप बिनु[3] स्याम घन दासी करयौ बनाइ ॥१०२६॥
जेठ पवन करि गवन यह दीन्हीं[1] अवनि जराइ।
बिनु[2..] घन स्यामहि दवनि[..2] सहि केहू भवन न जाइ ॥१०२७॥

आसाढ़-वर्णन

कठिन[1]. परयौ बिन प्रानपति अब तन रहिबौ प्रान।
मारुत चक्र असाढ़ के मारत चक्र समान[..1] ॥१०२८॥
हरि[1] बिन फेरत आइ ब्रज गरजि गरजि ललकार।
ये असाढ़ घन तड़ित को बाडि धरो तलवार[1] ॥१०२६॥

सावन-वर्णन

हाथ सरासन बान गहि[1] मघवा सासन मानि।
मन भावन बिन प्रान इन सावन लीन्हीं[2] आनि ॥१०३०॥
ज्यौं सागर सलिता[1] लता द्रुमन लगाई अंग।
त्यौ सावन[2..] मिलवत न क्यौं मो मन भावन[..2] संग ॥१०३१॥

१०२६—१. धरत (१), बाहिर (२, ३), ३. बिन (।)।
१०२७—१. दीनौ (२, ३), २ ‥२. बिन स्याम घन दवनि (२, ३)।
१०२८—१ ‥१. (१, २, ३), मे नहीं है।
१०२६—१‥‥१. (१, २, ३), मे नहीं है।
१०३०—१. लै (२, ३), २. लीनें (२, ३)।
१०३१—१. सरिता (२, ३), २ ‥२. सागर मिलवत क्यौ सोतनभावनि (२, ३)।

१०२७—गवम=गमन, गौना। अवनि=धरती, आवाँ। दवनि=अग्नि।
१०२८—चक्र=बवंडर। चक्र=काल का पहिया।
१०२६—बाडि-बिजली।
१०३०—मघवा=इंद्र।

भादों-वर्णन

भादों के दिन कठिन बिन जादव मोहि बेहाइ[1]।
तापै छनदा की तड़ित छिन छिन दागति आइ ॥१०३२॥
री[1] दामिनि घनस्याम मिलि[2] कत मो सनमुख आइ।
हनन[3] लगी[3] है सोति लौं अपनी चटक दिखाइ ॥१०३३॥

कुवार-वर्णन

मुकुत[1] भये हैं पितर[2] सो वेऊ आवत धाम।
तेहि कुँवार मैं जाइ कै अंत बसे हैं स्याम ॥१०३४॥
आजु कलंकी चन्द यह दोषा को संग पाइ।
दिन सी जोन्हि[1] कुँवार की जिय मारति है आइ ॥१०३५॥

कार्तिक-वर्णन

सबै प्रभात[1] अन्हाय[1] को यहि कातिक मों जात[2]।
मैं अपने अँसुवानि सों बैठा सदा अन्हात ॥१०३६॥
और देत हैं दीप सब जिनके कंत समीप।
इम बारे हरि नेह ते[1] रोम रोम मैं दीप ॥१०३७॥

१०३२—१. सहाय (२, ३)।
१०३३—१. ऐ (१), २. मिल (२, ३), ३...३ हुनहुन लगि (१)।
१०३४—१. कुमति (२, ३), २. पित्र (२, ३)।
१०३५—१. जोनि (२, ३)।
१०३६—१...१. प्रमाति अन्हान (२, ३), २. न्हात (२, ३), ३ अँसुवान (२, ३)।
१०३७—नहनो (२, ३)।

१०३२—जादव=यदुकुल का (कृष्ण)। छनदा=रात्रि।
१०३३—घनस्याम=श्रीकृष्ण, कालेबादल। हनन=मारना।
१०३४—मुकुत=मुक्त, मृत। पितर = मृत पूर्वज।
१०३५—जोन्हि=जुन्हाई, चाँदनी।
१०३६—अन्हाय = स्नान।
१०३७—बारे=जलाये हुए हैं।

अगहन–वर्णन

अंत कहै यह[1] आपने लोपन काज निदान।
आयो अगहन नाम धरी गहन तियन के प्रान ॥१०३८॥
कठिन परयौ है अवधि लौं अब तन रहिबो सांस।
प्रान संग हरी लै गये मास हरत[1] हरि मास[2] ॥१०३९॥

पूस–वर्णन

भान तेज सब तें सरिस जगत माहि दरसाइ।
सोउ[1] जाइ धन रासि[2] मैं छुप्यो सीत डर पाइ ॥१०४०॥
सीत अनीत निहारि कै तजी प्रान तें आस।
मित्र होत धन रासि[1] मैं जौन मित्र धन पास ॥१०४१॥

माघ–वर्णन

माघ[1] सीत यह मीत बिन[2] करि अनीत लपटात।
यातें प्रतिनिति[3] अगिनि[4] मैं तन सोधत ही जात[5] ॥१०४२॥
माघ[1] मास लैं तब[2] तहीं यह दुख भयो अनंत।
क्यौं बसन्त अब खेलि हैं कंत[3] बसे हैं अंत[3] ॥१०४३॥

१०३८—१. एह (१)।
१०३९—१. रहत (२, ३), २. आस (२, ३)।
१०४०—१. सोऊ (२, ३), २. रास (२, ३)।
१०४१—१. रास (२, ३)।
१०४२—१. माह (२, ३), २. बिनु (२, ३), ३. निसिदिन (२, ३) ४. अग्नि (२, ३) ५. जाइ (२, ३)।
१०४३—१. माह (१), २. लहि ते (२, ३), ३...३. बसे अंत है कंत (२, ३)।

१०३९—हरिमास=अगहन।
१०४०—धनरासि=प्रिया की गोद, (धनु) मेष आदि बारह राशि मे से एक। सामान्यत: पूष मास में पडता है।
१०४१—जौन=जो।
१०४२—सोधत=(सोधना) शुद्ध करता। भारतवर्ष में यह माना गया है कि स्त्री यदि परप्रेमी से प्रेम करती है तो उसे अपने सतीत्व को परीक्षा अग्नि में तप कर देनी पडती है। इसलिए अग्नि तापने का आशय शरीर शुद्धि से लिया गया है।

फाल्गुन-वर्णन

भागभरी अनुराग सों हिलिमिलि गावत राग।
मोहिं अभागिनि फागुही[1] बिधि दीन्हौं[2] बैराग ॥१०४४॥

मन मोहन बिनु बिरह तें फाग रच्यौ इन चाल।
पोरो रँग अंगन छयो असुँवन भरत गुलाल ॥१०४५॥

सामान्य एव मिश्रित शृंगार वर्णन

नहि संजोग बियोग जँह ज्यौ पिय बैठे द्वार।
तहँ सामान्य सिंगार है कविजन कियो विचार ॥१०४६॥
जह सँजोग में बिरह के बिरह माझ[1] संजोग।
तह मिश्रित सिंगार कहि बरनत है कवि लोग ॥१०४७॥
सौतुक[1] अरु सपने निरखि सुनि पिय बिछुरन बात।
दंपति को चित[2] आइ कै सुख में दुख ह्वै जात ॥१०४८॥
त्यौंही सगुर्न संदेश अरु पाँतोहू[1] को पाइ।
अनुरागिनि[2] को बिरह में हरष होत है आइ ॥१०४९॥
उदाहरन इन दुहुन के निज में मैं अविरेखि।
गमिषितिपतिका[1] माहि अरु आगमिषित[2] मैं देखि ॥१०५०॥

वाक्य-भेद

तिय पिय सो[1] पिय तीय सों[1] तिय सखी सों सखि तीय।
सखि सखि सों सखि पीय सों कहै सखो सों पीय ॥१०५१॥

१०४४—१. फागही (२, ३), २. दीनौ (२, ३)।
१०४७—१. माह (१)।
१०४८—१. सौतुख (१), २. तिन (२, ३)।
१०४९—१. पत्री हूँ (१), २. अनुरागन (२, ३)।
१०५०—१. गमिष्यपतिका (२, ३), २. आगमिष्यत (२, ३)।
१०५१—१. मो (२, ३)।

१०४४—भागभरी = भाग्यवती।
१०४५—पीरो = पीला। गुलाल=अबीर।
१०४७—माझ=में, बीच में।
१०४८—सौतुक = (सौतुख) सम्मुख, सामने।

कहुँ[1] प्रस्न उत्तर कहूँ[1] प्रस्नोत्तर कहुँ होइ।
सौ तिनि सँभवै होत कहुँ[2] बक पतै[3] विधि[4] जोइ ॥१०५२॥

———

१०५२—१...१. कहुँ प्रश्नोत्तर होत कहुँ (२, ३), २. तिहि (२, ३)
३. बाकपती (२, ३), ४. निधि (२, ३)।

१०५२—बक=बकने की क्रिया; बकवास,।

अन्य-रस

हास्य रस आदि आठ अन्य रसो का वर्णन

कहि सिंगार अब कहत हौं आठो रस सब ल्याइ।
जिनते[1] पूरन होत हैं नौ[2] रस गिनती आइ ॥१०५३॥
ज्यौं थाई सब रसन की न्यारी न्यारी होति[1]।
त्यौं आलंबन हूँ सदा भिन्न भिन्न उद्दोति[2] ॥१०५४॥
आलंबन अंकित विषै उद्दीपन ह्वै[1] जात।
बहुरि होत अनुभाव हूँ भिन्न भिन्न अविदात ॥१०५५॥
सातुक[1] तमचर भाव को सब ते अनुभव जानु[2]।
मन बिबचारिन[3] को सदा सहकारी पहिचानु[4] ॥१०५६॥

हास्य-रस

लक्षण

परिपोषक[1] जो हाँस्य[2] को सोइ हास-रस जानि[3]।
बिकृत बच क्रम संग तें नित उपजत हैं आनि[4] ॥१०५७॥

१०५३—१. जिनिते (२, ३), २. नव (२, ३)।
१०५४—१. होत (१), २. उद्दोत (१)।
१०५५—१. ह्वौ (१), २. अवदात (१)।
१०५६—१. सातिक (२, ३), २. जान (२, ३), ३. बिबिचारिन (२, ३), ४. पहिचान (२, ३)।
१०५७—परपोषक (१), २. हँसी (२, ३), ३. जान (२, ३), ४. आन (२, ३)।

१०५४—थाई=स्थायी भाव।
१०५५—अविदात=(अवदात) गुणविशिष्ट।
१०५६—सातुक=सात्विक भाव।
१०५७—परिपोषक=पुष्ट करनेवाला, वृद्धि करनेवाला।

मुख अरुनत ···[1] परसन्नता ···[1] ते[2] अनुभाव बिसेखि[3] ।
ब्रह्म देव तेहि कहत कवि बरन सेत अवरेखि[4] ॥१०५८॥

हास्य के स्थायी भाव का उदाहरण

बात कहत पिय भूलि फिरि लीनो बरन सँभारि ।
प्रान बली सुनि कै कछु मन मैं हँसी बिचारि ॥१०५६॥

त्रिभेद

दसन खुलत नहि मंद मैं धुनि मद्धिम मैं होइ ।
बहु हँसिबो अति हाँस मैं हाँस तीनि बिधि जोइ ॥१०६०॥

मद-हास-उदाहरण

ग्वालिनि[1] भेस बनाइ हरि मिले[2] तियन मैं आनि ।
गरुये मन तब चित बसो हरुवे हँसि[3] ,पहिचानि ॥१०६१॥

मद्धिम हास्य-उदाहरण

भूलि चले जब पीत पट तब सुझाइ ढिग लाल ।
हमैं दयौ यह बचन कहि कल धुनि सो हँसि बाल ॥१०६२॥

हास्य-उदाहरण

जो मेरे हित अचर घर ल्याये काजर प्रात ।
तो मुख लावन को लला मेरो मन अकुलात ॥१०६३॥

खाइ चुनौ तोको गयो[1] पानन मैं जब स्याम[2] ।
देखत हो तब हँसि परो खिलखिलाय कै बाम[3] ॥१०६४॥

१०५८—१ ···१ अनुनत प्रसन्नता (२, ३), २. तव (१), ३. विसेख (२, ३),
४. अवरेख (२, ३) ।
१०६१—१. ग्वारिनि (२, ३), २. मिलो (१) । ३. हित (२, ३)
१०६४—१. तिनको (१), २. लाल (२, ३), बाल (२, ३)

१०५८—बरन=वर्ण, रंग । सेत=श्वेत, सफेद ।
१०६०—दसन=दाँत ।
१०६१—गरुये = गंभीर । हरुवे=धीरे धीरे ।
१०६२—कलधुनि = (कलध्वनि) कोमल, मधुर ध्वनि ।
१०६४—चुनौ = चूना ।

करुणा-रस

लक्षण

परिपोषक जो सोक को करुना रस सो होइ।
इष्ट नास बिपतादि सब ये बिभाव जिय जोइ ॥१०६५॥
भ्रमन[1] तपन[2] बिलपन[3] स्वसन जानि लेहु अनुभाव।
जम सो देवता कहत हैं बरन कपोत सुभाव[4] ॥१०६६॥

करुणा-रस के स्थायीभाव शोक का उदाहरण

बिनु तुव दल सनमुख भये अरि नारी बिलखाइ।
करुन बीज उर में बयो आगे ही ते ल्याइ ॥१०६७॥

करुणा-रस के स्थायी भाव करुना का उदाहरण

तूँ[1] अरि सोकन तिय लई साँस[2] अरनि[3] दृग वार।
कहुँ जारत[4] बन को[5] फिरै बोरत[6] कहूँ पहार ॥१०६८॥
बिलखि कहति मंदोदरी गहि दसमुख को गात।
बीस करन हूँ राख तुम सुनत न मेरी बात ॥१०६९॥
सौंपि[1] जागिबो आपुनो मो नैननि के साथ।
लै सब इनकी नींद को सुख सोये तुम नाथ ॥१०७०॥

रौद्र-रस

लक्षण

परिपोषक जो कोप कै वहै रौद्र रस जानु[1]।
दुसह बैर बैरी लखन यो बिभाव पहिचानु[2] ॥१०७१

१०६६—१. भूमि (१), २. पतन (२, ३), ३. बिपतन (२, ३), ४. सहाव (२, ३)।

१०६८—१. तुव (२, ३), २. स्वाँस (२, ३), ३. अगिन (१), ४. गाहत (२, ३) ५. मै (१), ६. जोहत (२, ३)।

१०७०—१. सोइ (२, ३)।

१०७१—१. जान (२, ३), २. पहिचान (२, ३)।

१०६८—अरि = कामदेव, शत्रु। अरनि = जलावन। बोरत=डुलाती है।

१०६९—करन = हाथ।

कंप धरम आवेग धृत[1] वर्म अंसु अनिभाउ[1]।
रुद्र देवता जानिए बरन अरुण[2] चिता लाउ[3] ॥१०७२॥

रौद्र-रस के स्थायी भाव कोप का उदाहरण

पिय औगुन सुनि जो जगेउ[1] रिस अंकुर मन आइ।
सो बिनु बढ़ि निकसे अधर तिय[2] मुखते न लखाइ ॥१०७३॥

रौद्र-रस का उदाहरण

निकसत[1] जावक भाल पर पावक सी ह्वै बाल।
अपने उर[2] ते तोरि के पीय हिय दीन्हौं[3] माल ॥१०७४॥
मुकतन[1] सेलन पंथ[2] ही गहि गहि क्रोधन[3] सथ्थ[4]।
मींजु बालुका[5] हाथ तैं करत जात दसमथ्थ[6] ॥१०७५॥

वीर-रस

लक्षण

परिपोषक उत्साह को सोइ बीररस लेखु[1]।
पूरब की असमर्थता[2] सो विभाव अविरेखु[3] ॥१०७६॥
उग्रताइ परसन्नता[1] पुलकादिक अनुभाव।
जानु[2] देवता इंद्र को गौर बरन तिहि गाव ॥१०७७॥

१०७२—१ ..१. भ्रिन बरम अंसु अनुभाव (२, ३), २. अरुन (१), ३. चाव (२, ३)।

१०७३—१. जग्यौ (२, ३), २. गुन (२, ३)।

१०७४—१. निरखत (२, ३), २. हिय (२, ३), ३. दीनौं (२, ३)।

१०७५—१. मुकता (२, ३), २. पथ्थ (१), ३. बोधन (२, ३), ४. सत्थ (२, ३), ५. बालका (२, ३), ६. दसमत्थ (२, ३)।

१०७६—१. लेख (२, ३), २. असमरखता (२, ३), ३. अविरेख (२, ३)।

१०७७—१. अरु प्रसनता (२, ३), २. जान (२, ३)।

१०७४—जावक=अलक्तक,।

१०७५—सेलन = मालाएँ। दसमथ्थ=दशानन रावण।

वीर-रस के स्थायी भाव उत्साह का उदाहरण

सत्य दयारत[1] दान को जब अवसर नियराइ।
उदय करत हैदर हियौ हरखहि आगे आइ ॥१०७८॥

वीर-रस का उदाहरण

चतुर्विधि

बीर चारि जग प्रकट भे सत्त[1] दयारत दान।
धरम[2] तनय सिव राम बल[2] इत्यादिक ते जान ॥१०७९॥
प्रगटे[1] चारो[2] बीर जे[3] चारि पुरुष को पाइ।
सो चारो[4] पूरन भये हैदरनतन[5] मैं आइ ॥१०८०॥

सत्यवीर का उदाहरण

तिनि सर नाये पगन पर जिन[1] जिय धरो मरोर[1]।
करयौ नबी ने[2] जगत सब एक सत्य कै जोर[3] ॥१०८१॥
हैदर ते जीतै न कोउ यह जानत सब कोइ।
धरमहि ते जय होत है पापहि ते छय होइ ॥१०८२॥
भज्यौ बहत्तर बार जो जुद्ध माहि[1] मुख मोरि।
हैदर ने मुख बोलि हित दियो राज तिहि छोरि ॥१०८३॥

१०७८—१. दयारन (१)।

१०७९—१. साँच (१), २ ··२. धर्म तनै शिवराम बलि (१)।

१०८०—१. प्रकट जे (२, ३), २. चायो (२, ३), ३. जो (२, ३), ४. चारी (२, ३), ५. दुरत न मन मै (२, ३)।

१०८१—१···१. जिनि जिनि धरी मरोरि (२, ३), २. नबीनो (२, ३), ३. सोरि (२, ३)।

१०८३—१. माँह (१)।

१०७९—प्रकट=प्रत्यक्ष।

१०८१—नबी = ईश्वर का दूत, पैगम्बर, गुलाम नबी 'रसलीन'।

१०८२—हैदर = हजरत अली।

दयावीर का उदाहरण

घेरि लये[1] सुलमान[2] जब गरजि[3] सिंह चहुँ ओरि[4]।
साहनसाह उमाह सो लिय[5] बचाइ बरजोरि[5] ॥१०८४॥

रणवीर का उदाहरण

यौं[1] सुभटन संग लरत[2] है हैदर धारि[3] उछाह।
ज्यौं नारिन संग आइ कै होरी खेलत नाह ॥१०८५॥
जेहि[1] खैबर ते जाइ कै आये सब मुख मोरि।
हैदर ने तिहि द्वार को बिहसत डार्यौ तोरि ॥१०८६॥
निकसन को[1] अरि अंग ते हाथ रावरे पाइ।
नेजा की पोरी रही सबै होड़ सी लाइ ॥१०८७॥
तुव दल चढ़[1] काँपत[1] जगत सत्रु[2] अत्र[2] गिरि जात।
टूटत[3] अगम अखंड गढ़ लखी[4] न किन[4] यह बात ॥१०८८॥

१०८४—१. लिये (२, ३), २. मिलैमान (२, ३), ३. गरज (१), ४. बोरि (१), ५...५. लीन्हे तिनहि जोरि (१)।
१०८५—१. जो (१), २. चलत (२, ३) ३. धरै (२, ३)।
१०८६—१. जह (२, ३)।
१०८७—१. निरसनि ते (२, ३)।
१०८८—१...१. चढत कपत (२, ३), २...२. अस्त्र शस्त्र (२, ३), ३. टूढ़त (२, ३), ४...४. लखि न कौन (२, ३)।

१०८४—सुलमान = (सुलैमान) दाऊद का बेटा, यहूदियों का तीसरा बादशाह जिसने यरूशलम नगर का निर्माण करवाया और जिसकी गणना विश्व के बहुत बडे मनीषियों में की जाती है। उमाह = उत्साह, उमग, आनंद।

१०८६—खैबर = एक दरवाज़ा जिसे हैदर ने फतह किया था। (दे० परिशिष्ट की टिप्पणी।)

१०८७—नेजा = भाला, राजाओं का निशान। पोरी = फल।

१०८८—अत्र = अस्त्र।

दानवीर का उदाहरण

तिन हैदर के दान को को करि सकै सुमार।
जो परहित चित चाव सो बिके बहत्तरि[1] बार ॥१०८९॥

भयानक-रस

लक्षण

परिपोषक भय भाव को सोइ भयानक जानि।
बसत[1] घोर धुनि घोर[2] लहि सदा होत है आनि ॥१०९०॥
मुख सूखन[1] हिय धकधकी कम्पादिक[2] अनुभाव।
स्याम बरन अरु देवता काल कहत कबिराव ॥१०९१॥

भयानक-रस के स्थायी भाव भय का उदाहरण

रावन के हैं दस बदन और बीस हैं बाँह।
यह सुनि कै हिय भै कछू भयो राम दल माँह ॥१०९२॥

भयानक-रस का उदाहरण

भभरि राम दल के भये बदन पीत ज्यौं धूप।
जब रावन को औचिका[1] लख्यौ डरावन रूप ॥१०९३॥

१०८९—१. बहत्तर (२, ३)।
१०९०—१. बस्तु (१), २. घेर (१)।
१०९१—१. सूखैन (१), २. कॉपादिक (१)।
१०९३—१. औचका (१)।

१०८९—सुमार = गिनती।
१०९०—घोर=भयानक।
१०९३—औचिका = अचानक, यकायक, आश्चर्यजनक।

वीभत्स-रस

रस-लक्षण

परिपोषक घिन को सोई रस बीभत्स गनाइ।
घिन मैं बसत[1] बिभाव को नित उपजत हैं आइ ॥१०६४॥
बिरुचि नींद अरु थूकिबो मुख फेरिन अनुभाव।
महाकाल है देवता बरन नील तेहि गाव ॥१०६५॥

वीभत्स-रस के स्थायी भाव घृणा का उदाहरण

हरि सुमिरत हीं राधिका रंग रूप गुन आनि।
सतभामा कछु मोरि मुख रही ग्वारिनी[1] जानि ॥१०६६॥

वीभत्स-रस का उदाहरण

परधन रति सो आसु चलि[1] नैकु न उर लपटाइ।
स्याम निहोरत है[2] तिया नाक सिकोरति[3] जाइ ॥१०६७॥
कहुँ आमिष कहुँ हाड़ अरु कहूँ चाम दरसात।
[1]तेहि सदना घर कौन बिधि तुम्है[2] बन्यौ हरि जात ॥१०६८॥

१०६४—१. बस्तु (१)।
१०६६—१. ग्वालिनी (१)।
१०६७—१. चल (२, ३), २. तिहु (२, ३), ३. सिकारत (२, ३)।
१०६८—१. तिहि (२, ३), २. हमै (२)।

१०६४—घिन=घृणा, नफरत।
१०६५—महाकाल = शिव का संहारकारी रूप, रुद्र।
१०६६—सतभामा = (सत्यभामा) सत्राजित की एक कन्या और कृष्ण की आठ सखियों में से एक। ग्वारिनी = ग्वाल बाल।
१०६७—आसु = (आशु) तेज, तेजी से, फौरन।
१०६८—सदना = (सदन) एक भक्त कसाई।

अद्भुत-रस

लक्षण

परिपोषक आश्चर्य को[1] अद्भुन रस वहि जानि ।
नई बात कछु देखि सुनि उपजत है नित आनि ॥१०९९॥
बिनु बूझे[1] जो चकि[2] रहै सोइ[3] जानि अनुभाव ।
पीत बरन अरु देवता ब्रह्म चित्त मैं ल्याव[4] ॥११००॥

अद्भुत रस के स्थायी भाव आश्चर्य का उदाहरण

पूँछि जारि कै पवन सुत दी सब लंक जराइ ।
हिये[1] राछसन के दर्‌यौ अचरिज[2] सो धा लाइ ॥११०१॥
ल्याइ सँजीवनि[1] मूरि जब ज्यायो लछमन फेरि ।
सब राक्षस चकृत भए यह अचिरिज[2] को हेरि ॥११०२॥
जो दल चढ़ि लंका गयो आयो रावन मारि ।
सो लरि कै सरि को करै द्वै[1] लरिकन सो हारि ॥११०३॥
प्रगट देखियत जो सकल जग के पोषनहार[1] ।
ठाढ़े हाथि पसार कै माँगत बलि के द्वार ॥११०४॥

शान्त-रस

लक्षण

परिपोषक निरवेद को सांत कहत है सोइ ।
उपजनि याकी गुरु कृपा देव कृपा तें होइ ॥११०५॥

१०९९—१. जिहि (२, ३) ।
११००—१. पूछे (१), २. थकि (१), ३. वहै (२, ३), ४. लाव (२, ३)
११०१—१. हियो (२, ३), २. अचरज (२, ३) ।
११०२—१. सजीवन (२, ३), २. अचिरज (२, ३) ।
११०३—१. है (२, ३) ।
११०४—१. पालनिहार (२, ३) ।

११००—चकि = चकित, चौंक ।
११०२—हेरि=देखकर ।
११०३—द्वै लरिकन = राम के दो लड़के लव और कुश ।
११०५—निरवेद = (निर्वेद) शांत रस का स्थायी भाव, वैराग्य ।

छमा सत्त सूर पूजिबो जोगादिक अनुभाव।
श्री नारायण देवता चन्द बरन तेहि गाव ॥११०६॥

शात रस के स्थायी भाव निर्वेद का लक्षण

निजानन्द गुनगान लहि जग ते होइ उदास।
सो निरबेद जो सांत को थाई है परकास ॥११०७॥

शान्त के स्थायी भाव–निर्वेद का उदाहरण

जग आन्यौ जेहि भजन को अरु फिरि वासो काम।
रे मन सुमिरत है नहीं एको दिन तेहि नाम ॥११०८॥

खिन हरि ढूँढ़त आप मैं खिन ढूँढ़त असमान।
घर को भयो न घाट को ज्यौं धोबी को स्वान ॥११०९॥

रे मन हाथ न लगत कछु जगमें लोभ लगाइ।
ज्यौं ज्यौं फटकै खोखरो त्यौं त्यौं उड़ि उड़ि जाइ ॥१११०॥

रे मन अलि सँग भ्रमत कत खोवत द्यौस निकाम।
चरन कमल बिनु राम कै पै हैं नहिं विश्राम ॥११११॥

शान्त-रस का उदाहरण

होत न कछु न्यारो[1] भये अरु मिलि बैठे साथ।
तिन्है बन भवन एक है है जिनके मन हाथ ॥१११२॥
सुख दुख थिर[1] कोऊ नहीं यह निहचै जिय जोइ।
दिन बीते निसि होत है निसि बीते दिन होइ ॥१११३॥
लाभ हानि की बिधि दोऊ एकै चित ठहिराहिं।
लहै न लेखो है कछू गए परेखो नाहिं ॥१११४॥

१११२—१. न्यारे (१)।
१११३—१. बिन (२, ३)।

१११०—खोखरो = (खोखला) भीतर से खाली, पोला।
१११४—परेखो = परीक्षा किया गया।

प्रभु राचे ते आनि कै यह गति करति[1] उदोत।
भोग जोग मैं होत है जोग भोग मैं होत ॥१११५॥

भाव-संधि

उदय शात सबल प्रौढौक्ति–वर्णन

अब यहि[1] भावन कौ सुनौ संधि उदै अरु साँत।
और सबल[2] प्रौढ़ोक्ति जुत अपनी अपनी भाँत ॥१११६॥

त्रास एवं शका भाव की सधि

बालम बारे सौति के आवन गये सुनाइ।
हरष संक के बीच तिय पैंठी सी दरसाइ ॥१११७॥

भास एव रोस भाव की सधि

इत प्रभु की आज्ञा नहीं उत रावन अभिमान[1]।
त्रास रोष के बीच ही थकित भयो[2] हनुमान ॥१११८॥

ब्रीड़ा एव प्रीति भाव की संधि

इत निज कुल की लाज उत मोहन प्रीति निहारि[1]।
अहि निसि[2] नेमऽरु प्रेम मधि संध्या[3] हेरे[3] नारि ॥१११९॥

गर्व भावोदय

तुम जो हँसि वा बाम को बेंदी दीनो राति।
सीस चढ़ाये[1] सबन के चढ़ी सीस पै जाति ॥११२०॥

१११५—१. करत (२, ३)।
१११६—१. अथये (२, ३), २. सबै (२, ३)।
१११८—१. आख्यान (२, ३), २. भये (२, ३)।
१११९—१. निहार (२, ३), २. अति (२, ३), ३···३. सदेहै नारि (२, ३)।
११२०—१. चढायो (२, ३)।

१११५—राचे = रचकर ।
१११६—भावन=भावों ।
१११८—त्रास = भय, खौफ ।
११२०—चढ़ी सीस पै जाति=सिर पर चढ़ी जाती है ।

मान भाव मे शान्ति का उदय

पिय हँसि गूँदे[1] सोस जो भयो गरब[2] तिय आइ।
सो कर जावक अरुनता देखत मिट्यौ[3] बनाइ ॥११२१॥

अन्तरिज भावोदय शान्त

अटा दारि[1] मैं निरखि हरि कौंधा कैसी[2] छाँह।
चकृत ह्वै समुझे बहुरि लखि राधे को बाँह ॥११२२॥

सबल—लक्षण

मिटये निज निज आदि को आवै भाव जो अंत।
बिनु[1] अन्तर इक काल में सोई सबल कहंत ॥११२३॥

भाव सबल का उदाहरण

को[1]· भो को कुल·[1] लाज यह बहुरि देखिबो ताहि।
रे मन थिर ह्वै को धनी यह तिय मिलिहै जाहि ॥११२४॥
करत प्रथम तुक[1] मैं दुतिय कै उर संक बिशेषि।
तृतीय माहि[2] धृत चौथ मैं चिंता चित अवरेषि ॥११२५॥

प्रीतिभाव की प्रौढोक्ति

पीतम[1]· बँसुरी·[1] को सरिस[2] सब जग ते करि ध्यान।
अधर लगै हरि के जियति[3] बिछुरे बिछुरै प्रान ॥११२६॥

११२१—१. हूँ दै (२, ३), २. गर्व (१), ३. मिटो (२, ३)।
११२२—१. दुरी (२, ३), २. की सी (२, ३)।
११२३—१. बिन (१)।
११२४—१. सौ को कुल को (२. ३)।
११२५—१. तुकि (२, ३), २. मॉह (२, ३)।
११२६—१···१. प्रीतम बँसुरी (२, ३), २. सरस (२, ३), ३. जियत (२, ३)।

११२२—कौंधा = चमक।
११२६—बिछुरै = अलग होता है, छूटता है।

स्वकीया विषय भाव की प्रौढोक्ति

बिछुरे पिय[1] सपने निरखि तिय बिदेस अनुमानि।
चौंकि परी थहरी खरी[2] पुरुष दूसरो जानि ॥११२७॥

नेम-कथन

सबै[1]·प्रच्छन्न·[1] प्रकास है वहै प्रगट उद्दोत।
भूत भविष्य वर्तमान पुनि भयो होइगो होत ॥११२८॥
सब बिसेख सामान्य है लच्छन सकल विशेखि।
होइ कछू कुल लछनि ते सो सामान्य ऽबरेखि ॥११२९॥
जो रस उपजै आपसों सो सुनि सत जिय जानि।
होइ और के हेत तें सो पर निसत बखानि ॥११३०॥
है लच्छन जँह पाइये तिनि मैं अधिक जु होइ।
ताही को यह कहत हैं यह बरनत कबि लोइ ॥११३१॥
एक ओर की प्रीत अरु तिय आगे नर प्रीति।
अधम पूज्य सो प्रीति अरु चोरो सों रस रीति ॥११३२॥
हाँसी गुरुजन सिरि अरु उत्तम बधु उत्साह।
चोप बघनि मैं सोक पै रसाभास सब चाह ॥११३३॥
भाव न पूरन है जहाँ भावाभास है सोइ।
कृष्ण छाड़ि कै प्रीत ज्यौं और देव सों होइ ॥११३४॥
जैसै नायक नायिका इनहूँ कै आभास।
जेहि इनको सी रीति तें औरौं कहैं प्रवास ॥११३५॥
पितु सुत बालक बालकहि बंधु बंधु सो नेह।
थाई भाव जहाँ दया बात सत्य रस एह ॥११३६॥

११२७—१. सजन (२, ३), २. परी (१)।
११२८—१···१सब प्रच्छिन्न (२, ३)।

११२७—थहरी = काँपती हुई।
११२८—प्रच्छन्न = ढका हुआ, आच्छन्न।
११३०—निसत=मिथ्या, असत्य।
११३१—लोइ = लोग।
११३३—चोप = गहरी चाह, इच्छा, चाव।
११३४—पूरन = पूर्ण।

रसजनित रस-वर्णन

होत हाँस सिंगार ते करुन रौद्र ते जान।
बीरजनित अद्भुत कह्यौ बीभतस हित भया न ॥११३७॥

रस-शत्रु-वर्णन

रिपु बीभत्स सिंगार को अरु भय रिपु रस बीर।
....॥११३८॥

प्रस्तावक

जो जैसो[1] गुन करत है तैसो पावत भोग।
चख मुख कारज[2] के उचित अधर पान के जोग ॥११३९॥
बड़े चातुरन ते सखी बड़े न पैयत[1] भाग।
दृगन मोत काजर भयो माँगन मोत सुहाग ॥११४०॥
रे मन तेरो जगत मैं बिधि के हाथ निबाह।
दुखी मीन तन धरति हैं नित चुपरी को[1] चाह ॥११४१॥
मैं जब देखौं मुरज लौं नीच नरन को बात।
ज्यौं ज्यौं मुख मैं मारिये त्यौं त्यौं बोलत जात ॥११४२॥
है सत्रुन के भिरत यौं होत लघुन को चाउ।
ज्यौं कूकुर[1] कूकुर लरै कौवा पावत दाउ ॥११४३॥

सान्तरस को प्रस्तावक

ससि न धरत निज देत सो रंग रूप परवेष।
त्यौं ही आप अभेष पुनि देत[1] सबन को बेष ॥११४४॥

११३९—१ जैसे (२), २. राज (२)।
११४०—१. पैयत (२)।
११४१—१. को (२)।
११४३—१. कूकर (२)।
११४५—१. देख (२)।

११३७—भयान = भयानक।
११३९—चख = चखना, आँख। पान=पीना, ताम्बूल।
११४१—चुपरी=स्निग्ध पदार्थ।
११४२—मुरज = मृदंग, पखावज।

यौं आयो प्रभु जगत में जब प्रभु जान्यौ नाहि।
ज्यौं रवि को जानत न दिन रवि आवत दिन माहिं ॥११४५॥
फेल रह्यौ सब जगत मैं देखि सकत नहिं कोइ।
रवि दिखाइ अधि रैनि को सो अब झूठो होइ ॥११४६॥
ऐसी बिधि सब जगत में प्रभु को सहित लखाइ।
ज्यौं दिनकर प्रति विंब गुन दरपन देत जनाइ ॥११४७॥
ना पावत गुरु[1] ज्ञान तें निगम अगम ते बात।
नारायन को नाम लै पारायन ह्वै जात ॥११४८॥
भले बुरे सब रावरें सुनि लीजै यह नाथ।
रचे आपुने हाथ सो लाज तिहारे हाथ ॥११४९॥

ग्रंथ की पूर्णता वर्णन

पूरन कीनो ग्रंथ मैं लै मुख प्रभु को नाम।
जा प्रसाद ते होत हैं सकल जगत को[1] काम ॥११५०॥
सुधरयौ बरन बिगार है कुमति कुदूषन ल्याइ।
ठौरि ठौरि लखि रीझि हैं सुमति सरस रस पाइ ॥११५१॥
लिख्यौ ग्रंथ यह आगेहू लोकन[1] करि हित बुद्धि।
पै अब यासों सोधि कै ताहि कीजिये सुद्धि ॥११५२॥
ग्यारह सै चौवन सकल हिजरी संवत पाइ।
सब ग्यारह सै चौवन ने दोहा राखे ल्याइ ॥११५३॥

इति श्री हुसैनी बासती बिलगिरामी सैयद बाकर सुत
सैयद गुलामनबी
विरचित रस प्रबोध ग्रथ समाप्तम ॥

—०—

११४८—१. गुर (१)।
११५१—१. मों (२, ३)।
११५३—१. लोगन (२, ३)।

११४६—अधिरैनि = आधीरात।
११४८—पारायण=समाप्ति, समय बाँधकर किसी ग्रंथ का आद्योपांत पाठ।
११५०—रावरें = आपके, अपने।

रसप्रबोध

विषयानुक्रम

छंदानुक्रम

विषयानुक्रम

छंदानुक्रम

अंगदर्पण

गुलामनबी 'रसलीन'

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

मंगलाचरण

राधापद[1] ''बाधाहरन साधा करि रसलीन।
अंग अगाधा लखन को कीन्हों मुकुर नवीन'''[1] ।१।

सो पावै[1] या जगत मों[2] सरस नेह को[3] भाय।
जो तन मन तें तिलन लौं[4] बालन हाथ बिकाय ॥ २ ॥

बार-वर्णन

मोर पच्छ[1] जो[2] सिर चढ़ै बारन तें अधिकाय।
सहस चखन लखि धनि[3] कचन परे मान छिन पाय ॥ ३ ॥

बेनी-वर्णन

बेनी बधि इक ठौर ह्वै अहि सम राखत ठौर।
बिथुरि चँवरि से कच करत मन बिथोरि धरि चौंर ॥ ४ ॥

१—१. १—(२, ३) मे नहीं है।
२— १—पावत (२), २—में (१,३), ३—के (३), ४—लो (१)।
३— १—पच्छ (३), २—यो (३), ३—तब (२,३)।
४—(२ ३) मे नही है।

१—साधा=सिद्ध किया। अगाधा=अथाह, दुर्बोध। मुकुर=दर्पण, आईना।
२—सरस=रसमय। भाय=भाव, आशय, अर्थ। बिकाय=वशवर्ती होकर।
३—चखन=आँखें। कचन=बाल। मान=आदर, प्रतिष्ठा।
४—बेनी=चोटी। अहि=सर्प। बिथुरि=बिखरे हुए। चँवरि=बालों का गुच्छा। चौंर=चँवर, झालर।

जे हरि रहे त्रिलोक मों[1] कालीनाथ कहाइ[2]।
ते तुव बेनी के डसे सब जग हँसे[3] बनाइ[4] ॥ ५ ॥

भनत न कैसैहू[1] बनै या बेनी को[2] दाय।
तुव[3] पीछे गहि जगत के पीछे परी बनाय[5] ॥ ६ ॥

मैमद-वर्णन

मानिक मनि ये[1] नहिं जरे[2] मैमद झबियन लाय ।[3]
फनि[4] तजि मनि पीछे परे[4] तुव बेनी कै आय[5] ॥ ७ ॥

मैमद झबियन मुकुत लखि यह आयो[1] जिय[1] जागि।
ससि हित पीछे राहु के नखत रहे हैं लागि ॥ ८ ॥

जूरा-वर्णन

चंदमुखी[1] जूरो[2] चितै[3] चित लीन्हों[4] पहिचानि।
सीस उठायौ[5] है तिमिर ससि कौ पीछो[6] जानि ॥ ९ ॥

५—१—मा (३), मे (१), २—कहाय (१), ३—हँसत (३) ४—बनाय (१)।

६—१—कैसेऊ (३), २—के (२), ३—तू (१), ४—जे (१) ५—बनाइ (३)।

७—१—पै (३), २—जरी (३), ३—लाइ (३), ४···४—मनि तजि फुनि पीछे लगी (३), ५—आइ (३)।

८—१—१—आयी जिय (२, ३)।

९—१—चन्द्रमुखी (३), २—नूरो (३), ३—चितौ (३), ४—लीनी (१), ५—उठावै (२, ३), ६—पीछो (३)।

५—हरि=शिव या विष्णु। कालीनाथ=शिवापति या कृष्ण।

६—भनत=कहते हैं। बेनी=चोटी। दाय=स्थान।

७—मैमद=मद का नशा, ममता। झबियन=बाजूबंद आदि में लटकने वाली कटोरी। फनि= सर्प।

८—नखत=नक्षत्र।

९—जूरो = जूड़ा, सिर के बालों की एक साथ सुन्दर ढंग से बाँधी गई गाँठ। चितै=देखकर। तिमिर=अंधकार।

यों बाँधति[1] जूरो तिया[2] पटियन को चिकनाय[3]।
पाग चिकनिया सीस की यातें[4] रही लजाय[5] ॥ १० ॥

पाटीयुत माँग-वर्णन

माँग लगी ते बधिक तिय पाटी टाटी ओट।
दोऊ दृग पच्छीन को हनत एक ही चोट ॥ ११ ॥
अरुन[1] माँग पटिया नहीं मदन जगत को मारि।[2]
असित फरी पै लै धरो रकत भरी तरवारि[3] ॥ १२ ॥

भाल-वर्णन

पाटी दुति जुत भाल पर राजि रही यहि साज।
असित छत्र तमराज जनु[2] धर्‌यो सीस द्विजराज ॥ १३ ॥
वा रसाल को लाल किन देखत होंहि निहाल।
जाहि भाल तकि बाल सब कूटति हैं निज भाल ॥ १४ ॥
जोरि सकत रसलीन तिहि भाल साथ को हाथ।
चद कलंकी करि दयो[1] बिधि सोहाग[2] जिहिं माथ ॥ १५ ॥

१०–१ बाधत (३), २—त्रिया (३), ३—चिकनाइ (३), ४—जाते (२, ३) ५—लजाइ (३)।
१२–१—लाल (१), २—मार (१), ३—तरवार (१)।
१३–१—राजत है (२, ३), २—मनु (१)।
१५–१—कै दियो (३), २—सुहाग (३)।

१०–पटियन=माँग। पाग=पगड़ी। चिकनिया=चिकन की, (रेशम एव सोने के तार से बुना हुआ महीन बस्त्र); छैला, बाका।
११–बधिक=बहेलिया, बध करने वाला। टाटी=बाँस की फट्टियों, घास-फूस एवं सरकडों से बना हुआ ढांचा जो परदे के लिए बनाया जाता है, टट्टी, चिक। ओट=आड। चोट=मार।
१२–असित=काली। फरी=ढाल। रकत=रक्त, खून।
१३–जुत=युक्त। भाल=ललाट। राजि=लकीर पंक्ति। छत्र=छाता, छतरी। तमराज=सूर्य, चंद्रमा। द्विजराज=ब्राह्मण, चन्द्र।
१४–किन=क्यो नही। निहाल=सब प्रकार से सतुष्ट होना, प्रसन्न होना। कूटति हैं=पटकती हैं, कोसती है। भाल=भाग्य।
१५–सोहाग=सिंदूर, अहिवात, सौभाग्य।

ढुरे मांग ते भाल लौं लरके[1] मुकुत निहारि।
सुधा बुंद मनु[2] बाल ससि पूरत तम हिय फारि ॥ १६ ॥

टीका-वर्णन

बारन निकट ललाट[1] यों सोहत टीका साथ।
राहु ग्रहत···[2] मनु चन्द में[2] राख्यौं सुरपति हाथ ॥ १७ ॥

लाल बिन्दी-वर्णन

लाल सुबेंदुली[1] भाल तकि जग जानी यह रीति।
तेरे सीस प्रतीति कै बसी मोत की प्रीति ॥ १८ ॥

पीत बिन्दी-वर्णन

सोहत बेंदी पीत यों तिय लिलार[1] अभिराम।
मनु सुर-गुरु को जानि के[2] ससि दीनों[3] सिर ठाम ॥१९॥

स्वेत बिन्दी-वर्णन

यहि बिधि गोरे भाल पै बेंदी सेत[1] लखाय[2]।
मनो अदेवन हित अमी लेत सुक्र ससि आय[3] ॥ २० ॥

१६-१—लुरके (३), २—मनो (३)।
१७-१—लिलार (३), २···२ गहति मनो चंद पै, (२, ३)।
१८-१—बेदुली (२, ३)।
१९-१—लिलाट (२, ३,), २—गुरु (३), ३ दीन्हो (२, ३)।
२०-१—स्वेत (१), २—लखाइ (२, ३), ३—आइ (२, ३)।

१६-ढुरै=ढुलकना, लहराना, लुढ़कना। लरके-लड़ियों का। पूरत = पूर्ण करना, कमी या त्रुटि को पूरा करना।

१७-सुरपति = इन्द्र, विष्णु।

१८-सुबेंदली=बिंदी, टीका नामक गहना। तकि=देखकर। प्रतीति= जानकारी निश्चय, विश्वास।

१९-अभिराम=मनोहर, प्रिय। ठाम=जगह, स्थान।

२०-अमी=अमिय, अमृत। अदेवन=असुर। सुक्र = शुक्र, चमकीला ग्रह जो पुराणानुसार दैत्यों का गुरु कहा गया है; शुक्रतारा।

स्याम बिन्दी-वर्णन

दई न बाल[1] लिलार पै बेंदी स्याम सुधारि[2]।
माँग स्यामता उरग लौं बैठ्यो[3] कुण्डल मारि[4] ॥ २१ ॥

आड-वर्णन

तुव[1] लिलार[2] इन आड़ किय निज गुन बिदित निदान।
अड़ि राखत[3] है आड़ ह्वै आड़[4] आड़[4] जग प्रान ॥ २२ ॥

खौर-वर्णन

सूधी पटिया माँग बिनु माथे केसर खौर[1]।
नेह कियो मनु[2] मेघ तजि तड़ित चंद सों दौर[3] ॥ २३ ॥

नारी केसर[1] खौर[2] यह प्यारी माथे मांह।
झाँकी[3] दरपन भाल मधि सीस किनारी छांह ॥ २४ ॥

श्रवण-वर्णन

सीप स्रवन[1] ··या रमनि की[1] कैसे होय[2] समान।
जा प्रसंग तजि मुकुत गन यामैं बसैं[3] निदान ॥ २५ ॥

२१-१—बाम (३), २—सुधार (१), वैठी (३), ४—मार (१)।
२२-१—तू (३) २—लिलाट (२, ३), ३—अड़िए (३), ४—आडि (३)।
२३-१—खौरि (२, ३), २—मनौ (३). ४—दौरि (२, ३)।
२४-१—के सिर (३) २—खौरि (३), ३—डारी (२, ३)।
२५-१—१ वर मानि के (३), २—होत (३), ३—बसत (३)।

२१-उरग=साँप। कुंडल = मेंडरी, फेंटी।
२२-आड़=ओट, परदा। अडि=रोक, अरि।
२३ खौर=चन्दन, टीका, स्त्रियो के सिर का एक गहना। केसर=कुकुम, मौल सिरी। दौर=तेजी से आगे बढ़कर।
२४-मांह = बीच, अन्दर। मधि=मध्य, बीच।
२५-रमनि=रमणी। प्रसग = विषय।

मुकुतायुत श्रवण-वर्णन

मुकुत भए घर खोइ कै बैठे ··[1] कानन[1] आय···[2]।
अब[1] ··घर खोवत कौन के[1] कीजे आन उपाय॥ २६॥

तरौना-वर्णन

जटित तरौना स्रवन मैं यहि बिधि करत बिलास[1]।
पिता तरनि कीनो मनो पुत्र करन घर बास॥ २७॥

खुटिला-वर्णन

ठग तस्कर[1] स्रुति सेइ[2] के लहत[3] साधु परमान।
ये[4] खुटिला स्रुति सेइ के खुटिला रहे निदान॥ २८॥

कर्णफूल-वर्णन

करनफूल दुति धरन[1] बिबि करन लसत इहि भाय[2]।
मनों बदन ससि के उदै[3] नखत दुहूँ दिसि आय[4]॥ २९॥

२६–१···१—कानन बैठै (२, ३), २—जाइ (३), ३···३—घर खोवत है और को (३)।

२७–१—निवास (३)।

२८–१—तसकर (२, ३), २—सोइ कै (२, ३), ३—लहै (३) ४—यहि (३), ५—रहौ (२, ३)।

२९–१—धरनि (३), २—भाइ (३), ३—उवै (३), ४—आइ (२, ३)।

२६-मुकुत = स्वतंत्र, मुक्ता, मोती। कानन = जगल, श्रवण।

२७–जटित=जड़ा हुआ। तरौना = कर्णफूल, ताटक। तरनि = सूर्य। करन=कर्ण।

२८–तस्कर = चोर; कर्णफूल। स्रुति = कान, वेद। परमान = प्रमाण। खुटिला = करनफूल नामक कान का गहना। सेइके=निरंतर वास करके। खुटिला=खोटा।

२९–करनफूल=कर्णफूल। बिबि = दो। बदन=मुख।

भौंह-वर्णन

नाप नाप चुपचाप[1] ह्वै[2] अतनु[3] छाप धनु[4] आप।
आय[5] गह्यो[6] भव[7] चाप अव[8] पर्‌यो[9] जगत के[10] पाप ॥३०॥

तजि[1] सिंहासन राज अरु डासन[2] रंक विसेखि।
छुटै[3] न आसन कौन को भौंह सरासन देखि ॥३१॥

भौंह-मरोर-वर्णन

पेंठे ही उतरत धनुष यह अचरज[1] की बान[1]।
ज्यौं ज्यौं पेंठाति भौं[2] धनुष त्यों त्यों चढ़ति[3] निदान ॥३२॥

पलक-वर्णन

यों तारे तिय दृगन के सोहत पलकन साथ।
मनो मदन हिय[1] सोस बिधु[2] धरे लाज के हाथ ॥३३॥

३०-१—चुपचापि (२, ३), २—ही (३), ३—अतन (३), ४—धन (३), ५—आइ (३), ६—गहे (१), ७—भू (३), ८—अबु (३), ९—परौ (३), १०—को (३)।

३१-१—तज्यो (३), २—रासन (२, ३), ३—छुट्यो (३)।

३२-१…१—अजुक्ति की जान (३), २—भ्रुव (३), चढत (१, २)।

३३-१—यहि (३), २—बिधि (२, ३)।

३०-नाप=परिमाण, माप, पैमाइश। अतनु = अनग, कामदेव। छाप = मुद्रा। धनु=धनुष, चार हाथ की माप।

३१-आसन=बिछावन, गद्दी। सरासन=शरासन, धनुष।

३२-बान=बाण, लत, बनावट। निदान=अंत।

३३-बिधु=चद्रमा।

बरुनी वर्णन

कारे[1] ''अनियारे खरे कटकारे ''[1] के भाव[2]।
झपकारे[3] ' बरुनी करत झप झपकारे घाव ''[3] ॥३४॥

नेत्र-वर्णन

अमी हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इकबार ॥३५॥

कारे कजरारे अमल पानिप ढारे पैन।
मतवारे प्यारे चपल तुव[1]. ढुरवारे नैन ॥३६॥

तुरँग दीठि आगे धर्‌यो[1] बरुनी दल के साथ।
तेरे चख मख के[2] जगत कियो चहत है[3] हाथ ॥३७॥

३४–१'''१—कारी अनियार खरी कटकारिनि, (३), २—भाय (३)
३ ''३—झपकारी बरुनी करै झप झपकारी घाय (३)।

३५–नहीं है (२, ३)।

३६–१—तव (१)।

३७–१—धरे (३), २—कह (३), ३—सबु (२, ३)।

३४–अनियारे = नुकीला, धुरदार, तीक्ष्ण। कटकारे=फौज, सेना। झपकारे=पलक का गिरना, झपटना। बरुनी=पलक के किनारे पर के बाल। घाव=चोट, जख्म।

३५–अमी = अमृत। हलाहल=जहर। मद=मदिरा। रतनारे=सुर्खी लिए हुए कुछ लाल। चितवत = देखती है।

३६–कजरारे=काजल के समान काले। अमल=निर्मल, स्वच्छ। पानिप= कांति; आब। ढारे = ढले हुए, तेज, धारदार। ढुरवारे=झुकते हुए।

३७–तुरँग = घोड़ा, चित्त। मख=यज्ञ।

पुतरी-वर्णन

तन सुबरन के कसत यों लसत पूतरी स्याम।
मनौ नगीना फटिक मैं जरी[1] कसौटी काम ॥ ३८ ॥

जो 'रसलीन' तियान मैं रहे बीचित्र कहाय[1]।
ते पाहन पुतरी भये लखि तुव[2] पुतरी भाय[3] ॥३९॥

कोया-वर्णन

कोयन सर "जिनके"[1] करे सो इन[2] राखे ठौर।
कोयन लोयन ना हनों कोयन लोयन जोर ॥४०॥

काजर-वर्णन

रे मन रीति विचित्र यह तिय नैनन के[1] चेत।
विष काजर निज खाय[2] के जिय औरन के[3] लेत ॥४१॥

दृग दारा लखि ज्यों लह्यो दीपक जातक भाय।
जग के घातक पाय के लागत पातक धाय ॥४२॥

३८–१ जडी (३)।
३९–१—कहाइ (३), २—जव (३), ३—भाइ (३)।
४०–१…१—सरि इनकी (२, ३), २—सोयन (१)।
४१–१—की (३), २—खाइ (३), ३—को (३):
४२–नही है (३)।

३८–लसत=शोभायमान। कसत=फिट होना। नगीना=रत्न, मणि। फटिक=स्फटिक। जरी=सोने आदि के तारो से काढा हुआ रेशमी कपडा, जडा हुआ। कसौटी = काला पत्थर जिस पर रगड कर सोने के शुद्धता की परख की जाती है।

३९–रसलीन=रस मे लीन, कवि का नाम। तियान=स्त्रियों।

४०–कोयन=आँख का कोना। लोयन=आँख, लावण्य। हनो=मारना।

४१–चेत=चित्तवृत्ति।

४२–दारा=पत्नी।। जातक= नवजात। पातक=पाप, गुनाह।

काजर-कोर-वर्णन

तिय काजर कोरें बढ़ी पूरन किय[१]···कवि[१]···पच्छ।
लखियत[२]···खजन पच्छ की पुच्छ अलच्छ[२] प्रतच्छ ॥४३॥

नेत्र-डोर-वर्णन

अंजन गुन दौरत नहीं लोयन लाल तरंग।
कोरन पगि डोरन लगत[१], तुव[२] पोरन को रंग ॥४४॥

राते डोरन ते लसत चख चंचल इहि[१]·· भाय[१]।
मनु बिधि पूना[२] अरुन में[३], खंजन बांध्यों[४]···आय[४] ॥४५॥

चितवन-वर्णन

गहि दृग मीन प्रवीन को[१] चितवनि बंसी चारु।
भवसागर में करति है नागर नरनु[२] सिकारु ॥४६॥

औचक ही मों तन चितै दीठि खीच[१] जब लीन।
विधन[२] निसारन बान लों दोऊ बिधि दुख दीन ॥४७॥

४३–१ ··१—करि करि (२, ३)। २···२—देखियत खजन अच्छकी पुच्छ अलच्छ (३)।

४४–१—लगै (३), २-तू (३)।

४५–१···१—याते भाइ (३), २—छौना (३), ३—मय (३), ४···४—बीधे आइ (३)।

४६–१—की (२ ३,), २—नरन (२, ३)।

४७–१—खैचि (३), २—बधन (३)।

४३–पच्छ = विषय, सिद्धान्त। पच्छ=पक्षी।

४४–अंजन=काजल। कोरन=कोना। पगि=प्रेम मे सनकर। पोरन = उगुली की छोरे।

४५–पूना = धुनी हुई रूई की पूरी हुई बत्ती।

४६–प्रवीन=निपुण, कुशल, प्रवीण। बंसी=मछली को फँसाने का कंपा। चारु=सुन्दर। नागर=चतुर।

४७–विधन=बेधना, चोट करना। निसारन = निकालना बाहर खींचना।

कटाक्ष-वर्णन

बान बेधि[1] सब बधे को खोज करति है धाय[2]।
अद्भुत बान कटाक्ष जिहिं[3] बिध्यो लगे संग जाय[4] ॥४८।
तिरछी चितवन ते चखन, चितवन किनों दोय[1]।
लागत[2]...तिरछी तेग जब, कटत बेग नहिं होय[2] ॥४६॥

कपोल वर्णन

मुकुर विमलता, चन्द दुति, कंज मृदुलता पाय[1]।
जनम लेइ जो मंजु ते[2], लहे कपोल सुभाय[3] ॥५०॥
आयो[1]...समता[1] बोल कहि लहि कपोल सुकुमार।
मुकुट परथोता[2]...ते परयो[2] मुकुर बदन में छार ॥५१॥

स्वेदकण-वर्णन

अमल कपोलन स्वेद कन, दृगन लगत इहि[1] रूप।
मानो कंचन कंबु में मोती जड़े अनूप ॥५२॥

४८-१—बिंधे (३), २—जाइ (२, ३), ३—को (२, ३), ४—धाइ (२, ३)।

४६-१—दोइ (३), २ ..२—लगी तिरीछी तेग जब काटत वेगिहि होय (३)।
५०-१—पाइ (३), २—नौ (२, ३), ३—सोभाइ (३)।
५१-१.. १ आयो समिता (३), २...२—विमलता ते परी (३)।
५२-१—यह (३)।

४८–कटाक्ष=तिरछी चितवन, तिरछी नजर।
४९–तेग=खड्ग। बेग=शीघ्रता, आनन्द।
५०–मुकुर=दर्पण। कंज=कमल। मृदुलता=कोमलता, सुकुमारता। मंजु=सुंदर। कपोल=गाल।
५१–परथौता=परछाईं।
५२–अमल=स्वच्छ। स्वेदकन=पसीने की बूंदे। अनूप=सुंदर, जिसकी उपमा न हो।

तिल-वर्णन

जाल[1]...घुँघट...[1]अरु दंड भुव[2]नैनन मुलह बनाय[3] ।
खैंचति खग जग दृग तिया तिल दीनों[4] दिखराय ॥५३॥
सब जगु पेरत तिलन को को न थके[1]...इहि...[1] हेरि[2] ।
तुव कपोल के[3] एक तिल डार्यो[4] सब जग पेरि ॥५४॥

अलक-वर्णन

बांध्यों[1] अलकन प्रान तुव, बांधत कचन बनाय[2] ।
छोटन को अपराध यह, पर्यो[3] बड़न पहँ[4]...जाय[4] ॥५५॥
बिबि[1] कपोल की लटक तिय, अद्भुत गति यह कौन ।
ऐंचा खैंची डारि कै, दोऊ[2] ..बिधि[2] जीय[3] लीन ॥५६॥

५३–१...१—जल घूँघट (२, ३) २—भू (३), ३—बनाइ (३) ४-दोनो (३) ।
५४–१...१ ठगो यहि (३), २—देखि (३), ३—को (३), ४ डारो (३) ।
५५–१—बाधे (२, ३), २—बनाइ (३); ३—परो (३) ४...४—पै जाइ (३) ।
५६–१—बिश्र (३), २ ..२—दुविधा में (३), ३—जीउ (३) ।

५३–मुलह = वह पक्षी जो दूसरे पक्षियों को फँसाने के लिए पाँव बाँधकर जाल मे डाल दिया जाता है । दिखराय = दिखला दिया ।
५४–पेरत = किसी चीज को ऐसा पीसना कि रस निकल जाय । हेरि = खोज कर, ढूँढ़कर ।
५५–अलकन = लच्छेदार मुख पर लटकते बाल, लट । बाँधत = बाँधना, बंधन ।
५६—बिबि = दोनों । ऐंचाखैंची = खींचाखींची, अपने अपने पक्ष का आग्रह ।

नासा-वर्णन

नासा कंचन तरु भए[१] मरकत पत्र पुनीत।
पलक फूल दृगफल भए, सुरतरु कामद मीत ॥ ५७ ॥
छाकि[१] · छाकि[१] तुव नाक सों यों[२] पूछत सब गांव[३]।
किते निवासिन[४] नासिके, लह्यो नासिका नाव[४] ॥ ५८ ॥

नासा-वेध-वर्णन

नासा अतन तुनीर की, तीर नहीं दरसाय[१]।
बेधउ पर के सरन को सर लों बेधत जाय[२] ॥ ५९ ॥

नथ-वर्णन

नथ[१] ··मुकुतन में लालरी तकि जग लह्यो प्रकास।
मुकुतन के सग नाक में रागी हिय को बास[१] ॥ ६० ॥
नत्थ[१]···मुकुत अरु लालरी सतगुन रजगुन रंग।
प्रकट कहां ते करत यह[१], सकल तमोगुन ढंग···[१] ॥ ६१ ॥

५७-१—भुवै (३)।
५८-१—छाक (१), २—या (३), ३—गाउ (३), ४—निवासी (३), ४—नाउ (३)।
५९-१—दरसाति (२, ३), २—जाति (२, ३)।
६०-६१—१···१—क्रम ६१ का ६० है और इस प्रकार है (३)।

नथ मुकुतन मो लालरी सतगुन रजगुन रग।
प्रकट कहाँ ते करत ये सकल तमोगुन ढग ॥
तकि जग लहै प्रकास, मुकुतन के सग नाक मे।
रागी ही कौ बास नथ मुकुता अरु लालरी ॥

५७—नासा=नासिका। मरकत = पन्ना। मरकत पत्र = पाचीलता। पुनीत = पवित्र। कामद = मनोकामना पूरी करने वाला।
५८—छाकि = रोक रोक कर। नासिके = नासिका, नाक; नाश करके।
५९—अतन = कामदेव। तुनीर=तरकस। तीर=बाण। सरन = बाण।
६०—नथ = नाक का एक गहना। लालरी = लालिमा। रागी = अनुरागी, प्रेमी।
६१—सतगुन = सतोगुण। रजगुन = रजोगुण। तमोगुन = तमोगुण।

लटकन-वर्णन

ठग[1] लटकन नथ फांस लै, पाय नासिका साथ।
मारि मरोर्‌यो[2]… जगत इन[2] नट नट डोलें[3] हाथ ॥ ६२ ॥

पनारी-वर्णन

ललित पनारी कलित[1] यों, ललत अधर[2] सुकुमार।
मनु[2] ईवी भासत[3] पर्‌यो[4] चिन्ह आंगुरी भार ॥ ६३ ॥

अधर-वर्णन

लिखन चहत रसलीन जब तुव[1] अधरन की बात।
लेखनि की बिधि जीभ बंधि मधुराई ते जात ॥ ६४ ॥
जो भा अधरन तरुनि के सोभा धरत न कोय[2]।
याही विधि इनके[3] 'पर्‌यो[3] नाम अधर विधि जोय[4] ॥ ६५ ॥

६२–१—ठिग (३), २—२ मरो के सो जग तऊ (२, ३), ३—डोलत (३)।

६३–१—लसत (३), २—सुधर (३), २—मन (३), ३—भासित (३), ४—परो (३)।

६४–१—तव (३)।

६५–१—तरुन (३), २—कोइ (३), ३…३—इनको धरो (३), ४—जोइ (३)।

६२–लटकन = नाक मे पहनने का एक गहना। मरोर्‌यो = मरोड़ना। नट = इनकार करना।

६३–पनारी = नाली, रेखा। कलित = सुन्दर। ईवी = आनन्द के समय सी सी करना। भासत = कहते।

६४–लेखनि = कलम, लेखनी। बात = बाबत।

६५–जो भा = जो आया, जो भाव। सोभा = शोभा, वह भाव। अधर = ओठ, जो न धरा जा सके।

तेरस[1] दुतियाँ[2] दुहुन मिलि एक रूप निज ठानि[3]।
भोर साँझ गहि अरूनई, भए अधर तुव आनि[4]।६६॥
लाल बाल के अधर ढिग, लाल बात जनि चाल।
लाल बात सुनि सुनि मुकुत[1] करत बात में लाल।६७।

तमोल-वर्णन

तरुनी अधरन अरुन पर यों रंग चढ़त[1] तमोल।
ज्यों रग जेठी कुसुम को रातत लाल निचोल॥६८॥
चीन्हौं रंग तमोल को[1] दीन्हौं अधरन बाल।
कीन्हीं विद्रुम सुरँग[2] पै मानो मीनो लाल॥६९॥

दसन-वर्णन

लाल चलन जिहिं ठौर वा बाल दसन[1] की बात।
स्रवन सुनत ही सीप लौं[2] मुकुतन तें भरि जात।७०॥
मोल लेन जो जगत जिय, विधि जौहरी प्रवीन।
राखे विद्रुम के डबा ले द्विज मुकुत[1] नवीन॥७१॥

६६–१—तेरसि (२, ३), २—ससि (२, ३), ३—ठान (३),
४—आन (३)।
६७–१—मुकुति (३)।
६८–१—धरत (१)।
६९–१—जो (३), २—संग पर (३)।
७०–१—बदन (३), ३–यो (३)।
७१–१—मुकुत (३)।

६६–तेरस=त्रयोदशी। दुतिया = दूज।
६७–ढिग = समीप, पास। बात = बचन, तत्क्षण।
६८–तमोल = पान। जेठी=जेठका, मजेठी। रातत=अनुरक्त होना, रंगा जाना। निचोल = स्त्रियों की ओढ़नी या चादर।
६९–विद्रुम=मूँगा, मुक्ताफल। मीनो = रंग बिरग, मीनाकारी करना।
७०–दसन=दाँत। सीप = सीपी।
७१–जौहरी=हीरा मोती का पारखी। डबा = डब्बा, छोटा बक्स। द्विज= चद्रमा।

अरुन दसन-वर्णन

दसन झलक मैं अरुनता, लख आवत मन माह।
परी रदन पर आय[1] कै, अधर[2]···रंग[2] की छांह ॥७२॥

अरुन दसन तुव बदन[1] लहि को नहिं लह्यो[2] प्रकास।
मंगलसुत आये पढ़न बिद्या बानी पास ॥७३॥

स्याम दसन-वर्णन

स्याम दसन अधरान[1] मधि सोहति[2] है इहि[3] भांति।
कमल बीच बैठी मनो अलि छवनन की पाँति ॥७४॥

मुस्कान-वर्णन

अधरन बसि मुसुकानि[1] तुव, तजि[2]··परकीर्ति[2] निदान।
ज्यों[3] कृपान अमृत धरे तऊ[4] मारिहै प्रान ॥७५॥

बिजुरि बोज रदनन में अमी बदन में आनि।
याही तें दामिनि भई कामिनि की मुसुकानि[1] ॥७६॥

७२–१—आइ (३), २···२—अधरन रँग (३)।
७३–१—दवन (३), २—करे (१)।
७४–१—अधरानि (२, ३), २—सोहत (१), ३—यहि (३)।
७५–१—मुसकान (१), २···२—तजति न प्रसति (३), ३—जो (३), ४—तेऊ (३)।
७६–१—मुस्क्यानि (३)।

७२–लख=देखकर।
७३–मंगलसुत=क्षेम गान करनेवाले बंदी सूत सूक्त, आनद से उत्पन्न।
७४–अलि = भौंरो। छवनन=सुत, (छौना)।
७५–परकीर्ति=दूसरों का यश। कृपान=खड्ग, कृपाण। मारिहै= मारेगा।
७६–बिजुरि=बिजली। बीज=जड, बीज। रदनन=दशनों, दांतों। दामिनि= बिजली।

सुदँती[1] के मुसकात यों अधरन आभा होति।
मानहु[2] ··मानिक[2] पै परी आइ दामिनी जोति ॥७७॥

हास-वर्णन

ललन कपट सौतिन[1]···गरब हास कियो···[1] सब नास।
चंद्रहास सम भासई चंद्रमुखी को हास ॥७८॥
दंतकथा वा हसन[1] की अवर[2] कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटत[3] जब हँसि हँसि बोलति[4] बात ॥७९॥

रसना-वर्णन

नाव[1] सप्तसुर[2] सिंधु की बचन मुक्ति[3] की सीप।
कै रसना सब रसन की पोथी गिरा समीप ॥८०॥

वाणी-वर्णन

अद्भुत रानी परत तुव मधुबानी स्रुति[1] माँहि।
सब ग्यानी ठवरे[2]···रहै···[2] पानी माँगत नाँहि ॥८१॥

७७—१—सुदुती के (३), २···२—मानो मनिकन (३)।
७८—१ ··१—ते नगर बस काटि कियो (३)।
७९—१—दसन (१), २—और (३), ३—चहत (२, ३,),
४—बोलत (३)।
८०—१—नाम (१, २), २-सप्तसर (३), ३—मुक्त (३)।
८१—१—सित (३), २···२ ठौरै रह्यो (३)।

७७—सुदँती = सुंदर दांतवाली। आभा = कांति।
७८—चद्रहास=खड्ग (एक इस प्रकार का अस्त्र जो द्वितीया के चंद्रमा की भाँति का होता है और गला काटने के काम आता है।)।
भासई=प्रकट होती है, लगती है।
७९—दंतकथा=किंवदंतियाँ। अवर=दूसरी। फूलझरी = फुलझडी, आतिशबाजी।
८०—सप्तसुर=सगीत के सप्तस्वर षड्ज, ऋषम, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। रसना=जिह्वा। रसन=रसो। गिरा=वाणी।
८१—परत=पडती है। मधुबानी=मृदुरससिक्त स्वर। स्रुति=श्रुति, कान।
ठवरे=अपने स्थान पर।

मुख-बास-वर्णन

अगर अतर[1] के नगर में कहूँ रही नहिं[1] चाह।
बगर बगर सब डगर में तुव मुख बास प्रवाह ॥८२॥
नथ मुकुतन के झलक में[1] मो मन लह्यो प्रकास।
करत नाकबासी मुकुत आसु[2] तिया मुख बास ॥८३॥

चिबुक-वर्णन

आए ठोढ़ी सर करन[2], बवरे[3] अम्ब निदान।
कोई जर कोइर[4] भए, कोइ[5] सुख पाक पिरान[5] ॥८४॥

चिबुक-गाड-वर्णन

मन पारा दृग कूप तें उफन बाल मुख छाहिं[1]।
परयो चिबुक के गाड़ में, कबहूँ निबरत नाहिं[2] ॥८५॥

चिबुक-तिल वर्णन

अंध भवन जल में[1] धसें जे हरि केलि[2] निधान।
तीय[3] चिबुक तिलके परें लागे चुबकी खान[3] ॥८६॥

८२—१…१—अगर बगर की जगत मे काहू रही न (३), इसका क्रम ८३ के बाद है।

८३—१—झुनक ते (३), २—आस (३)।

८४—१—आयो (२, ३), २—सरिकरन (३), ३—वोरे (३), ४—कायर (३), ५…५ कोइ पाकि पियरान (३)।

८५—१—छाह (१), नाह (१)।

८६—१—मो (३), २—बोलि (२, ३), ३…३—तियते चुबकी के परे लागे चिबुकी बान।

८२—बगर बगर = घर घर। डगर=राह, रास्ता। बास=सुगध।

८३—लह्यो=प्राप्त किया। आसु=शीघ्र।

८४—ठोढ़ी=ठुड्डी। कोइर = कोयल। सुख = आराम, सुखकर। पाक= पककर, पगकर। पिरान=पीताभ, पीले।

८५—पारा=चाँदी के समान उज्वल एक चंचल द्रव। उफन=उबलकर। चिबुक=ठुड्डी।

८६—केलि=क्रीडा, रति। निधान=आश्रय, घर। चुबकी = डुबुकी।

होम कुंड तुव नाभि पर धूम रोम की रेख।
ताहि कालिमा देखि के[1] चिबुक माह तिल भेख ॥ ८७ ॥

मुख मण्डल-वर्णन

नैन छके अति ही लखे तिय तुव बदन उदोत।
याके[1]...दीपत दीप ही...[1]फूंक मुकुर मुख होत ॥ ८८ ॥
कवन[1] जोति नैनन[2] लगे वा सुन्दरि[3] मुख तूल।
या[4] दीपत में होत है, चन्द चांदनी फूल ॥ ८९ ॥
नहिं मृगंक भू[1]...अंक यह...[1] नहिं कलंक रजनीस।
तुव मुख लखि हारी कियों[2] घसि घसि कारी सीस ॥ ९० ॥
चन्द नही यह बाल मुख, सोभा देखन काज।
बारी कारी रैन मों[1] महताबी द्विजराज[2] ॥ ९१ ॥

मुख चीर-वर्णन

इहिं[1] बिधि गोरे बदन पर लसत डोरिया[2] सेत।
ज्यौं[3]...लहरीलों...[3] सरद घन ससि पर सोभा देत ॥ ९२ ॥

८७—१—देखिए (३)।
८८—१—जाकी दीपति दीपती (३)।
८९—१—को न (२, ३), २—नैननि (३), ३—सुंदर (२, ३), ४—जा (३)।
९०—१...१—नभु अंक वह (३), २—करो (३)।
९१—१—मे (१), २—दजराज (३)।
९२—१—यहि (२, ३), २—रोरिया (३), ३...३—मनो लहिर लौ (१)।

८७—होम कुंड=हवन करने के लिये बना हुआ। नाभि=ढोढ़ी। धूम = धुवा। भेख = वेष।
८८—उदोत = काति, ज्योति। दीपत = चमक, शोभा।
८९—तूल=समान। चाँदनी = चन्द्रिका।
९०—मृगंक=चन्द्रमा का धब्बा। रजनीस=चन्द्रमा। घसि=रगड़कर।
९१—महताबी=एक प्रकार की आतिशबाजी। जिसके छूटने पर सफेद रोशनी निकलती है। द्विजराज=चन्द्र।
९२—डोरिया=एक प्रकार का धारीदार कपड़ा।

रंग[1] लहरिया चीर में गोरे मुख को देख[2]।
मानों कला असेष ससि बैठो है परवेख ॥ ९३ ॥

किनारी-वर्णन

सुकिनारी सारी चितै सबन[1] बिचारी बात।
गात रूप पर बाल के जातरूप बलि जात ॥ ९४ ॥

ग्रीवा-वर्णन

जब धरती ख[1] कपोत सब नटे देखि ग्रिव भेख।
तब उन पापिन कंठ बिधि दियो पाप की रेख[2]। ९५ ॥

दर्पन से वा कण्ठ सम कंचन[1]दुति कित होत।
दुलरी जाके लगत ही जगत चौलरी होत ॥ ९६ ॥

कंठत्रयरेख-वर्णन

जब मोहे तिहुलोक सब तिहूँ ग्राम लै ठीक।
तब दीने तुव कंठ बिधि ये[1] त्रय[1] मोहन लीक ॥९७॥

९३—१—रंगे (३), २—देखि (३)।
९४—१—सबनि (२,३)।
९५—१—धारि तेज (३), २—वेष (२, ३)।
९६—दर्पन (२, ३)।
९७—१—त्रि (३)।

९३—लहरिया = रंगबिरंगी लहरवाला कपड़ा। परवेख=बदली के समय चन्द्रमा के चारों ओर का मण्डल।

९४—सुकिनारी=सुंदर किनारी। सारी=साड़ी, धोती। गात=शरीर, वस्त्र। जातरूप=कनक।

९५—ख=शून्य, आकाश। कपोत = कबूतर। नटे=हठ किए। रेख = रेखा, निशान।

९६—दुलरी = दो लर वाली, प्यारी, लाडली। चौलरी=चार लरवाली।

९७—मोहन=मुग्ध करने वाली। लीक=रेखा, निशानी।

कंबु[1] कंठपर धरत यों कनक चोलरी जोति।
चतुर भाल जनु दीप की डगमग डगमग होति ॥९८॥
चंपकला मोतिन जड़ित[2] तरे ढरे[3] बहुगूद।
सहस किरन रवि ते मनो चुवत सुधा की बूंद ॥९९॥

चौकी-वर्णन

लाल चुनी में हरित नग यों उरबसी सोहाय[1]।
मानों चंद्रबधून में इद्रपुत्र[2] दरसाय[3] ॥१००॥

हार-वर्णन

अदभुत मय[1] सब जगत यह अदभुत जुगति[2] निहार[3]।
हार बाल गर परत ही पर्यो लाल गर हार ॥१०१॥
हार सितासित नगन के लखि मन पायो चैन।
पर्यो[1] मैन के चैन ते गरे इन्द्र के नैन ॥१०२॥

हमेल-वर्णन

निजगुन जंत्र दिखाय के तिय हमेल हिय पाय[1]।
कलिजुग साधन रीति गल डारत जेल बनाय[2] ॥१०३॥

९८—९९—क्रम विपर्यय है। १—कनक (२, ३), २—जटित (२,३), ३—धरे (३)।
१००—१—सोहाइ (३), २—इन्दुबधू (३), ३—दरसाइ (३)।
१०१—१—मै (३) २—जुगत (१), ३—निहारि (३)।
१०२—१—परे (३)।
१०३—१—पाइ (३), २—सनाइ (३)।

९८—कबु=शंख। भाल=शिखा।
९९—सहस=सहस्र। चुवत=ढरना। गूँद=गूंथकर।
१००—चुनी=चौकी (एक गहना)। उरबसी=नायिका, हृदय मोहिनी; एक गहना। चन्द्रबधून=चन्द्रमा रूपी बहुएँ.बाल बधूटी। इंद्रपुत्र =चद्रमा।
१०२—सितासित=श्वेत तथा अश्वेत। नगन=रत्नों के।
१०३—हमेल=गले का एक गहना। जेल=जजाल, कैद।

बाँह-वर्णन

चलत हलत नित बाह तुव देत कोटि जिय दान।
याही ते सब कहत है सुधा लहर[1] परिमान ॥१०४॥
सुधा लहर[1] तुव बांह के कैसे होत समान।
वा चखि पैयत प्रान को या लखि पैयत प्रान ॥१०५॥
कित दिखाइ कामिनि दई दामिनि की[1] यह बांह।
तरफरात[2] सीतल फिरै फरफरात घन मांह ॥१०६॥

भुज-वर्णन

छाई चख भाई[1]...हिया[1] ल्याई चित को चाय[2]।
भाई भाई भुजन पै सांई क्यों न लुभाय[3] ॥१०७॥

पहुँची-वर्णन

लालन के मन हगन को रही चोप यह आन[1]।
पहुँची बन पहुँची कहूँ प्यारी के पहुचान[3] ॥१०८॥
अंगुरी दिपति मरीचिका चंद[1] हथेरिन साथ।
तम सौतिन[2] जिनि ठेलि पिय पिय चकोर किय[3] हाथ ॥१०९॥

१०४—१—लहरि (२, ३)।
१०५—१—लहरि (३)।
१०६—१—को (३), २—थरथरात (३)।
१०७—१—भाई ते हिय (३), २—चाइ (३), ३—लुभाइ (३)।
१०८—१—आनि (२, ३), २—पहुचानि (२, ३)।
१०९—१—चंद्र (३), २—सौतै (३), ३—करि (३)।

१०५—चखि=स्वाद लेकर।
१०६—तरफरात=तड़फड़ाती, व्याकुल होती। फरफरात=फर फर कर फहरती हुई।
१०७—चख=आँख। चाय=चाह। साईं=स्वामी, मालिक। भाई भाई=अच्छी लगी हुई।
१०८=चोप=चाह। पहुँची=स्त्रियों का हाथ मे पहनने का एक गहना। पहुँची=पचना। पहुँचान=बाह।
१०९—मरीचिका=मृगतृष्णा। हथेरिन=गदोरी। ठेलि=ढकेलकर।

करअगुरी-वर्णन

मोहन सोषन वसिकरन[1] उनमादन उचटाय[2]।
मदन सरन गुन तरुनि कर[3] अंगुरिन लयो[4...] छिनाय[4] ॥११०॥

अंगुरीपोर-वर्णन

तिय प्रति[1] अंगुरिन फलन[2] मैं त्रयत्रय[3] पोर सुहाय[4]।
तीन[5] लोक बसकरन को बीज बये[6] हैं आय[7] ॥१११॥

नखयुन अगुरी-वर्णन

यों अंगुरी तिय करन को लागत नखन समेत।
औषधीस गुन[1] अमिय मनु जीवन मूरिन देत ॥११२॥

मेहदी-वर्णन

बारह मंगल रास गुनि[1] सोई सब मिलि आय[2]।
उभय[3] हथेरिन दस[4] नखन[4] मेहदी भई[5] बनाय[6] ॥११३॥

११०—१—बसकरन (३), २—उचटाइ (३), ३—के (१), ४...४—लई छिनाइ (३)।

१११—१—पति (३), २—फलनि (३), ३—त्रिय • त्रिय (३), ४—सोभाइ (३), ५—तीनि (३), ६—भये (३), ७—आइ (३)।

११२—१—औषधि के संधानि (३)।

११३—१—गनि (३), २—आइ (३), ३—उभै (३), ४-४—दसौ नख (३), ५—भये (३), ६—बनाइ (३)।

११०—मोहन = संमोहन, कामशर मे से एक। सोषन=कामशर में से एक। उनमादन =कामदेव के पाँच बाणों मे से एक, उन्माद। उचटाय=काम के पंच बाण मे से एक। बसिकरन = पंचशर मे से एक।

१११—पोर=गुल्ला, उँगली का वह भाग जो दो गाँठो के बीच मे हो। बए = बोया है।•

११२—औषधीस = वैद्य, चन्द्रमा। मूरिन=बूटी, जडी; अमृत।

११३—गुनि=गिनकर, चिंतन करके।

दिपति हथेरिन की[1] दिपति यो मेहदी के संग।
लाली सावन सांझ में ज्यों सूरज के रंग[2] ॥११४॥
यों मेहंदी रंग में लसत नखन झलक रसलीन।
मानों लाल चुनीन तर दीन्हों[1] डाक नवीन ॥११५॥

बाजूबन्द-वर्णन

सुबरन बाजूबंदजुत बांह[1] लसत इहिं[2] भाय।
मनु दामिनि पै चाइके नखत बसे हैं आय ॥११६॥
यों बजुबंद[1] की छबि लसी छबियन फुंदन घौर[2]।
मानों झूमत[2] हैं छके अमी कमल तर भौर[2] ॥११७॥

भुजटार-वर्णन

बसुधा में भुज टार की उपमा बुधान[1] चेत।
बाल सुधाकर[2] सुधाधर सुधा लहर सो लेत ॥११८॥

११४—१—कै (३), २—अंग (३)।
११५—१—दीन्हें (३)।
११६—१—दृगन (२, ३), २—यहि।
११७—१—बाजूबंद (३), २—भौरु (३) ३.. ३.. झकलत हैं झुके जरित कमल तर (३)।
११८—१—सुधान (३), २-छुधेधर (३)।

११५—चुनीन=चुँदरी। डाक=छाप।
११६—बाजूबंद=बाँह पर पहनने का एक गहना, भुजायठ, भुजबद। भाय=भाँति। चाइ=इच्छा करके, चाह करके।
११७—फूंदन=फूल का बन्द आकार; शोभा के लिए बनाया गया फूलों का झलरा। घौर=फलो का गुच्छा।
११८—टार=टड़िया (स्त्रियो की बाह मे पहनने का एक गहना)। बुधान=बुद्धिमानों। सुधाकर=चद्रमा। सुधाधर=जिसके अधर पर अमृत हो।

चूरी-वर्णन

रंग विरंग चूरीनहीं लखि रवि कंकन[1] भेख।
हरि सन बिनय बली[2] मनों कर परसन परवेख ॥११६॥

गजरा-वर्णन

तुव[1] गजरन के फुंदना मनिगन की दुति पाय।
चित चोरत है जगत को अनगन दीप[2] जराय ॥१२०॥

आरसी छुला-वर्णन

जड़ित[1] आरसी कीर्तिका सोहत अंगुठा साथ।
छुले[2] नखत[3] जे अवर तें छुले बने हैं हाथ ॥१२१॥

आरसी मुखछाह-वर्णन

मुकुत[1] जरी[2] कर[3] आरसी तामें मुख को छांह।
यो लागत मानो ससी उड़गन मंडल मांह ॥१२२॥

११६—१—किंकिनि (२, ३), २—बलै (३)।
१२०—१—तू (३), २—दिया (३)।
१२१—१—जटित (२, ३), २—लखे (३), नछत (३)।
१२२—१—मुक्त (२, ३), २–जड़ी (३), ३—वर (१, ३)।

११६—कंकन=कलाई मे पहनने का आभूषण, कंकन, वलय। परसन = स्पर्श। परवेख=चन्द्रमंडल, चंद्रमा के चारो ओर का घेरा।

१२०—गजरन=फूलो का मोटा हार। फुंदना=फूलो का गुच्छा, झालर। चोरत=चुराते हैं।

१२१—कीर्तिका=कृतिका नक्षत्र, इसमे तारो का एक समूह छल्ले के आकार का होता है।

१२२—जरी = जड़ा हुआ। आरसी=मुकुर, एक गहना। उड़गन=नक्षत्रों का समूह।

गात-वर्णन

सकुचत[1]...चंपा...[1] गात लखि संपा नहिं ठहराय[2]।
याको तन कंपा भयों झंपा गगन बनाय[3] ॥१२३॥

तरुनि[1].. बरन[1] सर[1] करन को[2].. जग में कवन[2] उदोत।
सुबरन जाके अंग ढिग राखत कुबरन होत ॥१२४॥

देह दीपति छबि गेह की किहिं बिधि बरनी जाय[1]।
जा लखि चपला गगन ते छिति फरकत निज आय[2] ॥१२५॥

सुकुमारता-वर्णन

क्यों वा तन सुकुमार तनि[1] देख न पैयत नीठि।
दीठि परत यों तरफरति मानो लागी दीठि ॥१२६॥

लगत बात लाको कहा जाको सूछम गात।
नेक स्वास[1] के लगत ही पास नहीं ठहरात ॥१२७॥

१२३—१...१—को चंपा वा (३), २—ठहराइ (२, ३), ३—बनाइ (३)।

१२४—१—तरुनी बरनन सरि (३), २...२–छवि दिति कौन (३)।

१२५—१—जाइ (३), २—आइ (३)।

१२६—१—सुकुमारि तन (३)।

१२७—१—पास (३)।

१२३—सपा=विद्युत; बिजली। कपा=बास की तालियाँ जिसमे लासा लगाकर बहेलिया चिडियाँ फँसाते है। झपा=परदा, चिक।

१२४—सरकरन=बराबरी, स्पर्धा, नीचा दिखाना। सुबरन=सुन्दर वर्ण और सोना। कुबरन=असुंदर वर्ण।

१२५—चपला=विद्युत्। छिति=पृथ्वी।

१२६—सुकुमारतनि=कोमल तनवाली। नीठि=किसी किसी तरह से। दीठि=दृष्टि। तरफरति=तड़फडाना। दीठि= नजर।

१२७—बात=हवा। नेक=तनिक।

अंगवास वर्णन

नैन रंग ते सुख लहत नासा बास तरंग।
सोनो और[1] सुगन्ध है बाल सलोनो अंगो ॥१२८॥

इत उत जानन देत छिन फाँसि लेत निज[1] पास[2]।
मीन नासिका जगत की बंसी[3]··· है तुव बास[3] ॥१२९॥

कुच-वर्णन

उठि जोबन में तुव कुचन मो मन मार्‌यो घाय।
एक पंथ[1]··· दुई[1] ठगन ते कैसे कै बचि जाय ॥१३०॥

कठिन उठाये[1] सीस इन उरजन जोबन साथ।
हाथ लगाये[2] सबन को लगे न काहू हाथ ॥१३१॥

निरखि निरखि वा कुचन गति चकित होत को नाहिं।
नारी उर ते निकरि[1] कै पैठत नर-उर माँहि ॥१३२॥

कुचस्यामता-वर्णन

गोरे उरजन स्यामता दृगन लगत यहि[1] रूप।
मानों कंचन घट धरे मरकत कलस अनूप ॥१३३॥

१२८—१—ओर (३)।
१२९—१—ज्यों (३), २—वासु (३), ३···३—बसी है तु आवासु (३)।
१३०—१ · १—पथी द्वै (३)।
१३१—१—उठावै (३), २—लगावै (३)।
१३२—१—निकसि (३)।
१३३—१—यह (३)।

१२८—तरग=लहर। सलोनो=सुंदर, नमकीन।
१२९—जानन=जाने देना। पास=बंधन। मीन=मछली। बंसी=मछली फँसाने की बंसी।
१३०—जोबन=यौवन। कुचन=उरोज।
१३२—निरखि निरखि=देख, देखकर। गति=लीला।
१३३—स्यामता=कालिमा। दृगन=आँखों को, दृष्टि को। मरकत=पन्ना। कलस=घड़ा।

रोमावलीयुत कुचस्यामता-वर्णन

रोमावलि कुच स्यामता लखि मन लह्यो[1] विचार।
समर भूप[2] उर सीस पर धरी फरी समरार ॥१३४॥

स्वेत कचुकी-वर्णन

कनक बरन तुव कुचन की[1] अरुन अगर के संग।
धरत कंचुकी स्वेत में[2]··· बने···[2] फूल को रंग ॥१३५॥

नील कचुकी-वर्णन

नील कंचुकी में लसत यों तिय कुच की छाँह।
मानों केसर[1] रँग भरे मरकत सीसी मांह ॥१३६॥

अरुण कंचुकी-वर्णन

बिधु बदनी तुव[1] कुचन की पाय कनक सी जोति।
रंगी सुरंगी कंचुकी नारंगी सी[2] होति ॥१३७॥

हरित कचुकी वर्णन

हरित चिकन[3] की कंचुकी पाय[4] कुचन के थान।
हरत हराई तें हियो बूढ़न[5] लूटत प्रान ॥१३८॥

१३४—१—लहै (३), २—धूप (३)।
१३५—१—को, २···२—पै बिनै (३)।
१३६—१—केसरि (३)।
१३७-१३८—क्रम विपर्यय है। १—तव (३), २—रग (२,३),
३—चिनक (३), ४—पाइ (३), ५—बूटन (२,३)।

१३४-समरार = समर, राढ़।
१३५-अगर = चन्दन। कचुकी = चोली।
१३७-विधुबदनी = चन्द्र बदनी, चन्द्रमुखी। सुरंगी = सुंदर रंगवाली।
१३८-चिकन = बहुत महीन कपडा। थान = कपड़े का लपेटा हुआ टुकड़ा, स्थान।

पीत कंचुकी-वर्णन

पीतांगी पर यों रही बिन्दी[1] कनक सुहाय।
मानों कंचन[2] कलस[3]. पै लैसिम[4] किन्हों लाय[5] ॥१३६॥

कंचुकी जाली-वर्णन

जाली अंगिया बीच यों चमक कुचन की होति।
झझरी कै[1] ··तुम्बन ··[1]लसै ज्यों दीपक की जोति ॥१४०॥

रोमावली-वर्णन

रोमावलि रसलीन वा उदर लसति इहि भाँति।
सुधा कुंभ कुच हित चली मनो पिपिलिका पांति ॥१४१॥
अमल उदर वा सुघर पै[1] रोमावलि को पेख[2]।
प्रकट देखियत[3]. स्याम[3] को अवागवन[4] की रेख ॥१४२॥

नाभीयुत उर-त्रिबली-वर्णन

मो मन मंजन को गयो उदर रूप सर धाय[1]।
परयों सुत्रिबली[2] भँवर[3] ते नाभि भँवर[4] मैं जाय[5] ॥१४३॥

१३६—१—बेदी (३), २—कोमल (३), ३—कुचन (३), ४—भस्म (३), ५—लाइ (३)।

१४०—१···१—तुंबन मै (२,३)।

१४२—१—के (३), २—भेष (३), ३···३—देखाई सस (३), ४—अवागवनि (३)।

१४३—१—धाइ (३), २—सो त्रिबली (३), ३—छोर (३), ४—भौंर (३), ५—जाइ (२ ३)।

१३६–पितागी = पीली अङ्गिया। लैसिम = लहसुनियाँ। (धूमिल रंग का पत्थर जो लाल; हरा, पीला इन सभी रंगो मे होता है।)

१४०–झझरी = जाली। तुंबन = तुम्बा।

१४१–उदर = पेट। कुंभ कुच = घडे के समान उरोज। पिपिलिका = चीटी।

१४२-पेख = दृश्य। अवागवन = आने जाने की। रेख=रेखा, पगडंडी।

१४३--मजन=स्नान। रूपसर=रूपका जलाशय। भंवर=भुरभ, काला।

एक बली के जोर ते जग मो बास न होय[1]।
तुव त्रिवली के जोर तें कैसे बचिहैं[2] ··कोय ·[2] ॥१४४॥
उदर बीच मन जाय के बूड्यो नाभी माँहि[1]।
कूप सरोवर के परे कोऊ निकसत नाहिं[2] ॥१४५॥

नाभीअंतर-वर्णन

मधुप मनोरथ नाभि तर निकट जात थहराय[1]।
याते चंपकली भली अली हिये ठहराय[3] ॥१४६॥

नीवी-वर्णन

सोहत नीबो नाभि पर उपमा कहै न कौन।
मनो अतनु सिर पुहुप धरि बैठै[1] अपने भौन ॥१४७॥
निरखत[1] नीबी पीत को पल न रहते हैं चैन।
नाभी सरसिज कोस के भौंर भए हैं नैन ॥१४८॥

उदर किंकिणी वर्णन

उदर सुधा सर चंद[1]· पै[1] लसत[2] कमल की भाँति[3]।
ता पीछे किंकिनि परी कनक भँवर की पाँति[4] ॥१४९॥

२४४—१—होइ (३), २· ·२—बसि है कोइ (२,३)।
१४५—१—माह (३), नाह (३)।
१४६—१—थहराइ (२, ३), २—पाहन (३), ३—ठहराइ (३)।
१४७—१—बैठो (३)।
१४८—१—निरषति (३)।
१४९—१···१—बुंदसी (३), २—बिलसत (३), ३—पाँति (१), ४—भाँति (३)।

१४४-बली=विरोचन का पुत्र दैत्यराज। त्रिवली=पेट की सिलवट, तीन बली।
१४५-सरोवर=तालाब।
१४६—मधुप=भौंरा, मधुकर। मनोरथ—मनोकामना। थहराय=काँपता है।
१४७—नीबी=फुँफती, धोती की गाँठ, इजारबंद। पुहुप=पुष्प।
१४८—पल=क्षण। कोस=भांडार, पराग।

पीठ-वर्णन

इक तरु दुइ[1] दल होत हैं यह अचिरज[2] की बात।
दुइ[1] तरु कदली जंघ में पीठ एक ही पात ॥१५०॥
जोरि रूप सुबरन रची विधि रुचि पचि तुव पीठ।
कीन्हीं[1] रखवारी तहाँ ब्याली बेनी दीठ ॥१५१॥

पीठ-पनारी-वर्णन

नहीं पनारी[1] पीठ[2] तुव कीन्हें[3] दीठ बिचार।
धसकि गई यह भार ते बेनी के सुकुमार ॥१५२॥

कटि-वर्णन

सुनियत कटि सूच्छम[1] निपट निकट न[2] ''देखत[2] नैन।
देह भए[4] यों जानिये ज्यो रसना[5] में[5] बैन ॥१५३॥
सूच्छम[1] कटि वा बाल की कहौं[2] कवन[3] परकार।
जाके ओर चितौत ही परत[4] दृगन में[5]'''बार''[5] ॥१५४॥

१५०—१—द्वौ (३), २—अचरज (१)।
१५१—१—कीन्हे (३)।
१५२-१-पनरी (३), २—पीठि (३), ३—कीन्हो (३)।
१५३-१-सुछम (३), २.२-नहि देखत है (३), ४-मध्य (३), ५-मो (३)।
१५४-१-सूछम (३), २—लहौ (३), ३—कौन (३), ४—परौ (३), ५ ''५—को मार (३)।

१५०-दल = पत्ता, डाली। अचरिज = आश्चर्य। कदली = केला।
१५१-रुचि पचि = सच्चा बनाकर, शिव। ब्याली = सर्पणी।
१५२-पनारी = नाली, पीठ के बीच की नाली। धसकि = धँसना।
१५३-निपट = बिल्कुल। रसना = जिह्वा। बैन = वाणी।
१५४-कहौं = कहूँ। परकार = प्रकार। चितौत = देखते ही।

कटि-वर्णन

सत्य[1]...सीलता[1] हरि करी, जगत आपने रंग।
रमनि लंक गढ़ बंक गहि रावन भयौ अनंग ॥१५५॥

नितंब-वर्णन

सुबरन सुवृत[1] नितंब जुग यौं सोहत[2] अभिराम।
मनु[3]... रति रन जीते...[3] धरे उलटि नगारे काम ॥१५६॥
वा नितंब जुग[1] जंघ के[2] उपमा को यह सार।
मानौं[3]... कनक तमूर दोउ[3] उलटि धरे करतार ॥१५७॥

जंघा-वर्णन

सीस जटा धरि मौन गहि खड़े रहे इक[1]... पाय।
ये तो तप केदली तऊ लहै[2] न जंघ सुभाय ॥१५८॥
गौरे ढोरे जंघ तुव बोरे सुबरन माँह।
कोरि निहोरे नाह पै गए निहोरे नाँह ॥१५९॥

१५५—१...१—सत्या सीता १।
१५६—१—सुकृत (१), २—सोभा (२, ३), ३...३—मनो रती रन जित (३)।
१५७—१—जुत (३), २—की (३), ३...३—जनु कंचन तंबूर (३)।
१५८—१...१—येक पाइ (३), २—भये (३)।

१५५—रमनि=रमणी। लक=लंका, कमर। बंक=दुर्गम, कुटिल। अनंग = कामदेव, मृत। रावन=रावण, रमन करनेवाला।
१५६—सुवृत=सुंदर गोली। नितंब=पुट्ठा, चुतड। अभिराम=सुंदर, रम्य। रतिरन = काम क्रीडा, युद्ध।
१५७—सार=साराश, तत्व। तमूर=तानपुरे। करतार=ब्रह्मा।
१५९—ढोरे-ढारे हुए। बोरे=डुबाये हुए। नाह=नाथ। निहोरे= उपकार।

उरु-वर्णन

प्यारे[1] उरु तकि[1] तक दिपति अंबर मे[2] न समाय।
दीप सिखा फानुस लौं न्यारे[3] झलकत आय। १६० ॥

पद-वर्णन

तुव पद समतन[1] पदुम[2] को कह्यो कवन[3] विधि जाय[4]।
जिन राख्यो निज सोस पर तुव पद को पद लाय[5]। १६१॥

पगलाली-वर्णन

लिखन चहौं मसि बोरि जब अरुनाई तुव पाय[1]।
तब[2]...लेखनि के सीस के...[2] ईंगुर रंग ह्वै जाय[3] ॥१६२॥

एडी-वर्णन

जो हरि जग मोहित[1]...करीं[1] सो हरि परे बेहाल।
कोहर सो एड़ीन सो[2] को हरि लियो न बाल ॥१६३।

पदतल वर्णन

तुव पगतल मृदुता[1]... चितै[1] कवि बरनत सकुचाहिं[2]।
मन में[3] आवत जीभ लौं मत[4] छाले परिजाहिं[5] ॥१६४॥

१६०—१...१—न्यारी ऊरुन की (३), २—लौं (३), ३—बाहिर (३)।
१६१—१—समित (३), २—पद्म (३), ३—कौन (३), ४—जाइ (२,३) ५—लाइ (२,३)।
१६२—१—पाइ (३), २...२—लेखनी के तब सीस पर (३), ३—जाइ (३)।
१६३—१...१—में हित को (३), २—ते (३), ३—माल (३)।
१६४—१...१—मृदुलता (२,३), २—सकुचाइ (३), ३—ते (३), ४—मति (३), ५—परिजाइ (३)।

१६०—उरु=जंघा। अंबर=आकाश, एक प्रकार की किनारीदार धोती। फानुस = बडी कंडील।
१६१—पदुम=कमल। पद को पद=पाँव का निशान, पाँव।
१६२—मसि=स्याही, रोशनाई। लेखनि=कलम। ईंगुर रंग=लाल, सुर्ख।
१६३—कोहर=पके हुए कुनरु, लाल। हरि=हरण कर लिया।

पद अंगुरी-वर्णन

रद कीनों[1] तुव जुगल पद सब मद जीवन मूरि।
दसम दसा दस दिसन[2] की करि दस अंगुरिन[3] दूरि ॥१६५।

पदनख-वर्णन

दुति वा उदित नखन की भनै[1] कवन कवि ईस।
पाय[2]... परत छिति जाहि के...[2] भयो चंद पोयसीस[3] ॥१६६॥

जावक-वर्णन

मन भावक जावक[1] सखिन सौतिन पावक ज्वाल।
सीस नवावक लाल[2] को तुव पद[3]...जावक बाल[3] ॥१६७॥

चूरा-वर्णन

गुँजरी चूरा कनक तुव ऐसी बनी[1]...सुहाय...[1]।
मनु ससि रवि निज रंग कर[2]... ल्याए पूजन पाय...[2] ॥१६८॥

१६५—१—कीन्हे (३), २—दससी दिन (३), ३—अंगुरि (३)।

१६६-१-भजै (३), २...२—पाइ परछत जासुको (३), ३—बकसीस (३)।

१६७—१—पावक (३), २—केति (३), ३... ३—पग जावक लाल (३)।

१६८—१ ...१—बनक सुहाइ (३), २...२—रबिकर ल्यायो। पूजन पाइ (२,३)।

१६५—रद=दाँत। मूरि=मूल। दसमदसा=दसवी अवस्था, मृत्यु। दसदिसन=दसो दिशाएँ।

१६६—उदित = उज्वल, प्रकट, स्वच्छ। कवि ईस=कवीश्वर।

१६७—जावक=आलता, महावर। ज्वाल=ज्वाला, लपट। नवावक=नवाने वाला, झुकाने वाला। जावंक=जायमान।

१६८—गुँजरी=सुदरी, गुंजा, घुघची। चूरा=चूडामणि, कडा। कनक=नाग केसर, सोना। पाय=पाँव।

नूपुर-वर्णन

अम्बुज पद भूपर धरत नूपुर नहिं बांजत[1]।
साधुन के मन भौर है बाँचत रच्छा जंत ॥१६६॥

पायल-वर्णन

पायन पायल के परत झुनकायल सुनि कान।
मायल करि घायल करत मुरछायल[2...] ज्यों तान ॥१७०॥

अनवट-वर्णन

सुबरन अनवट चरन को बरन करत यह मूल।
नवल कमल पर विमल मनु[1] सोहत गेंदाफूल ॥१७१॥

ओट करन[1...]हित[...1] जात हैं केहूँ इनके चोट।
विधि याही विधि ते[2] धरयो इनके नाम अनोट ॥१७२॥

कलस[1] सात बिछियान के विधि अति सुबुध[1] बनाय[2]।
सप्तदीप राजान के मुकुट धरे तुव पाय[3] ॥१७३॥

१६६-१७०-क्रम विपर्यय है। १-बजत (३), २...२—करछायल त्यो (३)।
१७१—१—मन (३)।
१७२—१...१—करि नही (३), २—सो (३)।
१७३—१—कमल (३), २—बनाइ (३), ३—पाइ (३)।

१६६—नूपूर=पैजनी। बांजत=घुंघुरू बजाना, आवाज करना। साधुन=निष्काम सज्जन। बाँचत=बाचना। रच्छाजंत=रक्षा मंत्र।

१७०—पायल=पाजेब, स्त्रियों के पाँव का गहना। झुनकायल=झनक की आवाज। मायल=मिलकर, लगकर। मुरछायल=अचेत।

१७१—अनवट=पैर के अगूठे मे पहनने का छल्ला। नवल=नवीन, अभिजात।

१७२—ओट=आड, रक्षा। विधि=ब्रह्मा, इस प्रकार। अनोट=अनवट।

१७३—बिछियान=पैर के अगूठे का गहना। सप्तदीप=सातो दीपों, पृथ्वी के सातोखंडो।

गति-वर्णन

तुव गति लखि गज खेह सिर डारै कौन लोभाइ।
जा सीखत ही हंस के लोहू उतरत पाइ ॥१७४॥

सम्पूर्ण नायिका-वर्णन

नवला अमला कमल सी चपला सी चल चारु[1]।
चंद्रकला सी सीतकर कमला सी सुकुमारु[2] ॥१७५॥

मुख ससी[1] निरखि चकोर अरु तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर होत[2] नयन रसलीन ॥१७६॥

हाव-भाव-वर्णन

हाव भाव प्रति अग लखि छबि की झलकन संग।
भूलत ग्यान तरंग सब ज्यों कुरछाल कुरंग ॥१७७॥

वसन वर्णन

लाल पीत सित स्याम पट जो पहिरत दिनरात।
ललित[1] गात छवि छायके नैनन में चुभि जात ॥१७८॥

सिखनख पूर्णता वर्णन

ब्रजवानी[1]...सीखन रची...[1] यह रसलीन रसाल।
गुन सुबरन नग[2] अरथ लहि हिय धरियो ज्यों माल ॥१७९॥

१७४—(१,२) मे नही है।
१७५—१—चार (३), २—सुकुमार (३)।
१७६—१—छबि (१), २—होति (३)।
१७८—१—लसत (३)।
१७९—१...१–वृजआनी नखसिख रच्यौ (३), २—गन (३)।

१७५—नवला=युवती। अमला=निर्मला, लक्ष्मी। सीतकर=सुधाधाम, चन्द्रमा। कमला=लक्ष्मी, रूपवती स्त्री।

१७६—रसलीन=रसलीन कवि, रस मे लीन।

१७७—झलकन=उफान। कुरछाल=उछाल, छलाग मारना। कुरग=मृग, हिरन।

१७९—ब्रजवानी=ब्रजभाषा। रसाल=रसपूर्ण। गुन=चिंतन, गुण-धर्म। सुबरन=सुन्दर वर्ण, स्वर्ण। नग=स्थिर, नगीना।

अंग अंग को[1] रूप सब यामें परत लखाय[2]।
नाम अंग दरपन धर्यो याही गुन ते ल्याय[3] ॥१८०॥
सत्रह[1] सौ चौरनबे सम्वत में अभिराम।
यह[2] सिख नख पूरन कियों ले श्री[3] प्रभु को नाम ॥१८१॥

॥ इति श्री सुकवि सिरमौर रसलीन बिलगिरामी विरचित
अंगदर्पण समाप्त ॥

१८०—१—के (३), २—लखाइ (३), ३—लाइ (३)।
१८१—१—सोरह (१), २—या (३), ३—मुख (३)।

१८०—परत=पड़ता है। अंगदर्पण=इस पुस्तका का नाम।
१८१—सिखनख=सिर से पैर तक के सभी अंग।

अंगदर्पण

* विषयानुक्रम
* छंदानुक्रम

विषयानुक्रम

———

छंदानुक्रम

विविध-कविताएँ

गुलामनबी 'रसलीन'

मुत्तफ़र्रिक कवित्त

॥ 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम्' ॥

शांतरस कवित्त

तेरेई मनोरथ को होत है सपनलोक
तूँ ही ह्वै अकास करे नखत उदोत है।
तूँ ही पाँचो तत्व सैल तरु पसु पंछी होत
तूँ ही ह्वै मनुख पूजे गोत अवगोत है।
तूँ ही बन नारी फिर ताके रसलीन होत
तूँ ही ह्वै के सत्रु लेत आपन तें पोत है।
जाग परै झूठो ज्यों सपन लोक होत त्योंही
आतमा[1] बिचार लोक जागत को होत है ॥ १ ॥

नबी की स्तुति

नूर इलाह तें अव्वल नूर मुहम्मद को प्रगट्यो सुभ आई।
पाछें भये तिहुँलोक जहाँ लग ऊ सब सृष्टि जो दृष्टि दिखाई।
आदि दलील को अंत की कै रसलीन जो बात भई पुनि पाई।
तौ लौं न पावै इलाही कों कैसेहुँ जौ लौं मुहम्मद में न समाई ॥ २ ॥

पुनः नबी की स्तुति

जीभ चखै तुव नाम को अमृत औरन नाम को पावत फीको।
खाटी मही कहि क्यों मुख भावत जाको गयो पन खात है घी को।
चाह्यो न आज लौं काहू सो काज की आवत लाज यहै नित जी को।
तो बिनती करि औरन पास कहाइके आप गुलाम नबी को ॥ ३ ॥

---

१. (१) आत्मा।

---

१. नखत = नक्षत्र, तारा। उदोत = प्रकाशित। गोत = गोत्र, वंश। अवगोत = भिन्न गोत्रवाला।

२. अव्वल = प्रथम। नूर = प्रकाश। ऊ सब = वह सब।

३. मही = मट्ठा। नबी = पैगंबर, ईश्वर का दूत।

पुनः नबी की स्तुति

जानत अंतर की गति को तुम याही तें मुख से न बकौं।
कबहूँ न छोड़त घेरो जो पाप कै राह तें मो मन के रब कौं।
आज कृपा करि आन छुड़ाइए राखि दया अपने कब कौं।
जग जानत है एहि बात को होत है दास की लाज तो साहब कौं॥४॥

हजरत अली की वंदना

बिधि मना कियो खानौं आदम कौं सोई दानौं,
हैदर न मुख आनौं सब लोक गायो है।
मूसा कौं न राख्यो छिन जान के अजान जिन
सोई खिज्र आप तिन हैदर सिखायो है।
ईसा जनमायो निज भौन तें निकार कर
तिन प्रभु हैदर आप घर लै जनायो है।
ऐसो साह आलीजाह बाहुबली दीपनाह
सेर अल्लह अली नाँह फातिमा ने पायो है॥५॥

पुनः अली की वंदना

भूप आस बाहक हो जग के निबाहक हो,
जाचक के थाहक हो जस के निधान जू।
भव सिंधु थाहक हो पापिन के दाहक हो,
बिघन बगाहक हो साहब सुजान जू।
दीनन के गाहक हो; सेवक के चाहक हो;
दया के बलाहक हो बरसिए दान जू।
धर्म अवगाहक हो नबी के सलाहक हो,
फातिमा के ब्याहक हो साह मरदान जू॥६॥

४. (१) के।
५. (१) जन्मायो।
६. (१) अस। (२) बरसई।

४. रब = ईश्वर।
५. आलीजाह = उच्च पदस्थ। दीपनाह = द्वीपपति। नाँह = नाथ, स्वामी।
६. बगाहक = नाशकारी। बलाहक = बादल।

पुनः अली की वदना

प्रभु आस के बँधैया औ सनाह के सजैया,
दुलदुल[1] के चढ़ैया × रूप दरसाइए।
दल के घसैया जुर जंग के लरैया,
पर पीर के हरैया तुम्हैं बिनती सुनाइए।
भेद के बतैया, दीन पंथ के दिखैया,
औ मुहम्मद के भैया दास रावरे कहाइए।
जग के मथैया भवसिंधु के खिवैया,
सबलोक के तरैया मेरी नैया पार लाइए॥ ७॥

पुनः अली की वदना

प्रभु कों जवौं न आन मन मेरे एक छन,
बेद औ पुरान को[1] फिर न चित चाव रे।
तजि[2] द्वार ईस को नवावो सीस मानुस को,
पेट ही के काज सब लाज छोई वावरे।
ऐसो है नदान जाहि आज लौं न आयो ग्यान,
कबौं ना तजै अज्ञान आपनो सुभाव रे।
भरो अपराध नऊ डरत न निज आध[3],
साह मरदान जू भरोसे एक रावरे॥ ८॥

पंजतन की स्तुति

प्रथम गन रसूल, करता के मकबूल,
जगत के मूल सब जानत लौ लाक तें।
दूजे गन अली साह सेर अलह नरनाह,
दीन के भए पनाह जाह वाह ढाक तें।
तीजे हैं बुतूल[1], चौथे हसन इमाम गन,
पाँचवें हुसैन पुन हूजे जिन ताक तें।

---

७. (१) दूलदूल। दल दल।

८. (१) के। (२) तज। (३) आधि, औंत्र अऊ।

---

७. सनाह = कवच। दुलदुल = वह खचर जिसे मिस्र के हाकिम ने मुहम्मद को भेंट में दिया था।

८. चाव = आकांक्षा।

थांच देख्यो प्रान जाँच, लागिहै न तिन्हैं आँच ,
राचे है जो लेई साँच पाँच तन पाक तें ॥ ६॥

पुनः पंजतन की स्तुति

प्रथम मुहम्मद के नाम जपै आठो जाम,
पाप के जिन आइ सकल भूम सों[1]।
पुन अली शाह[2] को सुमिरन रसलीन कीजे,
सुन के मगन मदनी गदीरे खूम सों।
जन्नत - खातून पुन हसन हुसैन ध्यान,
कीजै जिय[3] लै यकीन ला असाल कूम सों।
कहा करै सुरनाथ[4] छकौ जौ तिहारी छाक,
पंजतन पाक मेरी ताक लागी तूम सों ॥१०॥

द्वादश इमामों की स्तुति

आदि दै अली पुनि हसन कों जस सुनि,
जाहिर हुसैन गुनि जाने खासो आम के।
पुन जैन आबदीन बाकर महाप्रबीन,
जाफर से हैं अमीन काजिम कलाम के।
अली रजा के समान तकी अली नकी जान,
अकसरी तैं बखान मेंहदी[1] तमाम के।
दूर कै सकल काम ध्यान धरि आठो जाम,
जपत हौं सदा नाम द्वादस इमाम के ॥११॥

---

६. (१) बुतूल गन ।
१०. (१) इस चरण में पद्रह के स्थान पर तेरह ही वर्ण हैं।
(२) मुरतुजा । (३) जीह । (४) सुरनाक ।
११. (१) महदी ।

---

६. रसूल = पैगंबर । पनाह = शरण ।
१०. छाक = प्रेम का नशा ।
११. खासोआम = प्रमुख और गौण । कलाम = वचन ।

चौदह मासूमों की स्तुति

आदि नबी अली जान जन्नत[1] खातून आन,
हसन हुसैन जान मारे जे जुलूम के।
जैन आबिदीन पुनि बाकर जाफर सुनि,
काजिम है मन भेदी सकल उलूम के।
अली रजा तकी फुनि, नकी असकरी गुनि,
साहबे जमन हैं हरन पाप भूम के।
योंहीं जिन धूम कीन्हौं पाइहौं न भेद टोम,
धाइ पग चूम आन चौदह मासूम के ॥१२॥

हसन - हुसैन की स्तुति

आये जब भूम तब तिहूँ लोक परी धूम,
सब जग पग चूम लीन्हें सुख चैन हैं।
नाने जिनके रसूल पिता अली मकबूल,
माई हैं बुतूल जिन जाये अच्छी रैन हैं।
ऐसो कुल सुभ जाको कौन सरबर ताको,
मेरो मन सदा छाको बोलत पी[1] बैन है।
जाके दर दरमादे होइ जात साहजादे,
दीन दुनी को खुजादे हसन हुसैन हैं ॥१३॥

स्तुति अब्दुल कादिर जीलानी

गौस सम दानी महबूब सुबहानी कहो,
तुम बिन दूजो कौन जाको ध्यान धरिए।
रावरे चरन दुख हरन सरन तजि,
सूझत न और जाके द्वार जाइ परिए।

---

१२. (१) जन्नत की।
१३. (१) ये।

---

१२. उलूम = विद्याएँ।
१३. सरबर = समान, तुल्य। दरमादे = फकीर। दुनी = दुनियाँ।

इतनी अरज मेरी मानि लीजे सुखदानि
मोहि अपनोइ जान संकट को हरिए।
पापिन की भीर मध भयो हौं जो भीरु[1] ससा,
पीर दस्तगीर आनि[2] मेरी रच्छा करिए ॥१४॥

स्तुति मुईनुद्दीन चिश्ती

पाहन बुलाइ राजा एक छन मैं नवाजा,
जोगी हार कर लाजा भयो तप लीन है।
राज सुता आइ सब ओंठ ताकि लाइलब,
प्रान को बचाइ तब कीने परबीन है।
आली जिनके जनाब हिंद को दई है आब,
हिंदुलवली खिताब बिधि बानी दीन है।
दीन कै नगारे बाजे जब इसलाम गाजी
आए अजमेर काजी रुवाजा मोनदीन हैं ॥१५॥

स्तुति शाह लद्धा बिलग्रामी

नूर भरो सोहै दरबार पोर पोर, किधौं
तूर के तजल्ली को जुहूर आन छायो है।
मूसा लखि वाहि भए चेत तैं अचेत यातें,
चेत ह्वै अचेतन सकल भेद पायो है।
ताहि तजि भूल मत कुमत अली की गत,
अछत रहत कत[1] कद पै भुलायो है।
पतित पनाह यह लुत्फ उल्लाह यह,
मीर लद्धा साह यह जग माँहि[2] आयो है ॥ १६ ॥

---

१४. (१) मीर। (२) दस्तगीरान।
१६. (१) मालत अछत कत। (२) माँह।

---

१४. सुबहानी = ईश्वरीय। ससा = खरगोश। दस्तगीर = सहायक।
१५. नवाजा = कृपा की। हिंदुलवली = भारत का सम्राट्। गाजी = काफिरों का विजेता।
१६. तूर = मध्य एशिया का एक पर्वत। तजल्ली = दिव्य ज्योति। कत = क्यों।

पुन. स्तुति शाह लद्धा बिलग्रामी

देखत ही दरबार शाह लद्धा जू को सुख आँखिन को भए[1]
और तन पुरुसत्त[2] पाए।
स्रवन को भयो सुख नाद स्तुति सुनैं तें और नासा सुख
भयो जस गंधन[3] पाए।
रसना भयो है सुख आयत परसादहि अच्छो कहाँ लौं
बखानौं अबलै सुखदै गनाए।
जैसे इंद्रबन[4] सुख पाए रसलीन तैसे चाहो मन मेरे[5] निस-
दिन सुख छाए ॥१७॥

पुनः स्तुति शाह लद्धा बिलग्रामी

नूरानी दरबार शाह लद्धा जू को नित रचित देत अनंद।
दिन-निस देखत पंथ तहाँ को जहाँ न सूरज चंद॥
बिनय करत रसलीन दुवारे काटे जग के फंद।
दुख दंदन के तिमिर हरन को दीजे जोति अमंद॥१८॥

पुन. स्तुति शाह लद्धा बिलग्रामी

ईमान दीन को जो तू चाहै मन
तो चल देख साह लद्धा जू के चरन।
रौसन दोऊ जहान जिंद पीर सुर ज्ञान
जाके देखे ही से दृष्टि दालिद्दर हरन॥१९॥

स्तुति शाह सैयद बरकत उल्लाह बिलग्रामी

चहुँ दिसान बाग बने सुंदर तरु बनैं
मन चीते फल देत रीत पारजात के[1]।

---

१७. (१) भये। (२) परसत। (३) सुगंधहि, जसगंधहि। (४) इंद्रीन, इंद्रियन। (५) रहे।

---

१७. पुरुसत्त = पौरुष, शक्ति।

१८. तिमिर = अंधकार।

१९. रौसन = प्रकाशित। दालिद्दर = दरिद्रता।

ताके मध मंद यह अनूप जोति रूप सोहै
पंथ को दिखैया औ बतैया बात घात के[२]।
सकल कलेस दुख कलह[३] बिमुख कर
स्यावत बिपख सुभ[४] गति सुख सात के[५]।
आनँद उछाह लहै भूल जात मुक्ति चाह
देखे दरगाह यह साह बरकात के[६] ॥२०॥

स्तुति शाह यासीन बिलग्रामी

माला हाथ धर गुन गन[१] जपै सदा मन,
लागी है लगन तुव सुमिरन लीन है।
देव औ अदेव दब जात सुनैं नाम जब,
घरन सरन सब नरन को दीन है।
अष्ट सिद्धि. नव[२] निधि पावत हैं बाल बृद्ध,
पूरन प्रसिद्ध बुद्धि बेद बिधि कीन है।
देखत प्रबीन जाके होत हरि रसलीन,
सूरत यासीन मानो सूरत यासीन है ॥२१॥

स्तुति मीर तुफैल मुहम्मद

देस बिदेसन के[१] सब पंडित सेवत हैं पग सिष्य कहाई[२]।
आयो है ज्ञान सिखावन कों सुर को गुरु मानुस रूप बनाई[३]।
बालक बृद्ध सुबुद्धि जहाँ लग बोलत हैं यह बात सुनाई[४]।
गौ मन मैल गहे सुभ केल तुफैल तुफैल मुहम्मद पाई[५] ॥२२॥

---

२०. (१) पारिजात की। (२) की। (३) कलकहि। (४) सुभ्र।
(५) की। (६) की।
२१. (१) गन गन। (२) नवौ, नौ।
२२. (१) ये। (२) कहाए। (३) बनाए। (४) सुनाए।
(५) पाए।

---

२०. रीत = समान। पारजात = कलपवृक्ष। बिपख = विपक्ष, विरुद्ध।
दरगाह = मकबरा।
२१. यासीन = कुरान की एक सूरत।
२१. तुफैल = जरिया, संबंध।

स्तुति भागीरथ गंगा

बिस्नु जू के पग तें निकसि संभु सीस बसि,
भगीरथ तप तें कृपा करी जहान पैं।
पतितन तारिबे की रीति तेरी परी गग,
पाइ रसलीन इन्ह तेरेई प्रमान पैं।
कालिमा कलिंदी सुरसती[1] अरुनाई दोऊ,
मेटि-मेटि कीन्हें सेत आपने विधान पैं।
त्यों ही तमोगुन रजोगुन[2] सब जगत कों,
करिके सतोगुन चढ़ावत बिमान पैं ॥२३॥

स्तुति समाप्त।

अथ सुकीया बरनन

चितवन छोर नैन कोर तें चलैं न आगे,
बन धन बोल सदा लेखन लौं[1] भाखी है।
निकसै न दंत मुक्त आभा सीप ओंठन तें
हँसिबे की चाव जो हिये में अभिलाखी है।
पूरन सनेह रसलीन घट भर राख,
रूखे जे सुभाव खली सभ दूर नाखी है।
और मुख जानि के कलंकी चंद नैन आनि,
पिय मुख भान[2] के कमल करि राखी है ॥२४॥

पुनः सुकीया बरनन

चमक चमक चारु चपला सी चमकत,
लपक लपक जात चाल पहिचानी है।
आँखन कटोरे प्यारी धरत दँबाला नारी,
नथुनी की सोभा भारी नैनन समानी है।

---

२३. (१) सरसुती। (२) तमगुन रजगुन।
२४. (१) यौ। (२) भानु।

---

२३. सुरसती = सरस्वती। अरुनाई = लाली।
२४. मुक्त आभा = मोती की कांति। और मुख = दूसरों के मुख। नाखी = फेंक दिया।

लाल हीरा मूठ मैं बिराजे सुभ रूप जात,
भुजनि[१] की भाई छबि चित्त ठहरानी है।
देस देस जानी रघुनाथ हाथ की बिकानी,
सिद्ध की कृपानी कीधौं[२] मेरी सीता रानी है ॥२५॥

पुनः सुकीया बरनन

बदन जलज सोहै रदन जलज सोहै,
पदन जलज सोहै मोहि मन लेत है।
कोल जान रंभा सम बोल जाल रंभा सम,
लोल तान रंभा सम सोभा को निकेत है।
दुति चीन सारंग ज्यौं कटि छीन सारँग ज्यौं,
लटरी निसा रँग ज्यों करत अचेत है।
मति बुद्धि जानकी सी गतिबुद्धि जानकी सी,
सतबुद्धि जानकी सी पति सुख देत है ॥२६॥

नवोढ़ा बरनन

बैठी हुती सखियन मैं सुंदर नवेली बाल
गुरुजन लाज तें छिपाए[१] सब अंग को।
तहाँ आइ रसलीन देखिबे की आस पास
पास की सखीन पाए हास के प्रसंग को।
घूँघट को टारि[२] चितवायो पिय ओर[३] त्योंही
डीठि[४] को उचाय लीनो यों[५] मन अनंग को।
कुलही उतारत ज्यों पीछे ते उचक गहि
बेग ही झपटि के लपटि तकि लंग को ॥२७॥

विश्रब्ध नवाढ़ा बरनन

औचक ही आइ बाल नैनन निहारि लाल
बैठि गई तेही काल आपको छिपाइ के।

---

२५. (१) भुजान। (२) कैधौं।
२७. (१) छिपाइ। (२) टार। (३) औरं। (४) डीठ।
(५) योन।

---

२६. रदन = दाँत। सारँग = सिंह। चीन सारँग = चीनांशुक।

चंचल चितौन चुभै हरि रसलीन (करि),
गौन करि[1] करै केलि भौन मुरझाइ के।
ताहि छन पीह पास आइ आइ सखियन[2],
आवन बताके यौं रही है छबि छाइ के।
बधिक ज्यों चोट कै दुरति फिरै ओट ओट,
मृग लोट पोट भए खोजहि लुटाइ[3] के।।२८।।

मध्या को सुरतांत

पाटी गई सरकि[1] करकि[2] कर चूरी गई,
दरकि[3] गई है उत आँगी कुच चारु[4] पै।
छूटि[5] गए बार सब टूटि[6] गए उर हार,
मिटि[7] गई रसलीन बेंदुली लिलार पै।
काजर न नैन ठीक, लागी है कपोल पीठ,
पान की रही न लीक ओठ सुधा सार पै।
रति[8] मानि कै निहारि[9] सोभा वारैं सब नारि,
सगरे सिँगार तेरे बिगरे सिँगार पै।।२९।।

मध्या को मान

केते दिन भए मोहैं तोहैं समझावत हीं,
मानत न कैसेहुँ बात यौं ही भुरावई।
रसलीन पीतम से एती लाज है भली न,
कौन जाने कोऊ कहा पी के जिय[1] आवई।
तू है चंदमुखी रीति चंद कै निहारि[2] सोचि,
समुझि[3] बिचारि[4] के हिये मैं क्यों न लावई।

२८. (१) कर। (२) सखियन के। (३) लेत जाइ।
२९. (१) सरक। (२) करक। (३) दरक। (४) उदय आँगी कुच चारु पै। (५) छूट। (६) टूट। (७) मिट। (८) राति। (९) निहारि।

२८. पीह = प्रिय। बधिक = व्याध, शिकारी।
२९. बेंदुली = बिंदी।

तनक तनक परत निस को निसार एक
पाख ही मैं पूरन बदन दरसावई ॥३०॥

उत्तर

तैं जो है कहत सो हौं नीके करि[1] जानति[2] हौं,
सकुच कहाहि तासों आपनो जो कंत[3] है।
पै हौं एक बात तोसों पूछति हौं मेरी आली,
जो ही कछू आन बसे मेरे चित अंत है।
चदमुखी मोहैं नित बोलै रसलीन लाल,
तू हूँ साखि[4] देके कही प्यारी यह तंत[5] है।
चंद के लाज मैं रहे ते जोति बाढ़त है,
पूरन दरस दीन्हैं पावत घटंत है ॥३१॥

प्रौढा बरनन

चाहत सदा ही देखो तुश्र मुख चंद ही को,
भरे अनुराग सौं चकोर सम आँखिए।
बिन देखे लीलत अगार बिरहानल के,
चंद्रिका सी जोति बिधि आनन की चाखिए।
याते[1] मते[1] कहां जैा सुजान तुम्हैं जान अब,
आइए जो मन कछू सोई[2] अब भाखिए।
ऐसोई उपाय कोजै आवन न भानु दीजे,
दिन दाबि दूबि[3] लीजे रैन गये राखिए ॥३२॥

---

३०. (१) नीके जिह। (२) निहार। (३) समुझ। (४) बिचार।
३१. (१) कर। (२) जानत। (३) जोगंन, कर गिनत। (४) साख। (५) तंत्र।
३२. (१) याती मति। (२) सोई। (३) दाब दूब।

---

३१. साखि = साची।
३२. आनन = मुख।

प्रौढ़ा मान

होरी अवसर में

फागुन के औसर मैं मान है करत कोऊ,
तू है प्यारी पी की, पिय[1] रावरोई[2] मीत है।
जो वे रंग केसर के[3] डारिहैं तो तेरे अंग-
अंगन-पर ह्वै हैं रग परम पुनीत है।
और तैं जो पिचकारी केसर की मारिहै तो,
उन पैं चढ़ैगो गोरी थारो रंग पीत है।
या ते[4] चल गोरी होरी खेलैं रसलीन जू सों,
तो कों एक बिधि लाभ, दूजे बिधि जीत है ॥३३॥

उत्तर

सकल सुवन होइ रदन सुनो बतान[1],
काम नहीं आवत है बचन बनाइबो।
प्रीत को निबाह एक ओर तें तो होत नांहि,
ज्यों न एक हाथ होत तारी को बजाइबो।
जैसे कि बिटप देत पानिप पुहुप तैसे,
पुहुप करत सोभा बिटप बढ़ाइबो।
टूटे ते परसपर[2] छाज न रहत राज,
आवत है कौन काज वाही को कहाइबो ॥३४॥

मध्या धीरा बरनन

रात को बिताय ज्योंही प्रात आए रसलीन,
त्योंही[1] बोली बाल सकुचात लखि प्यारे कों।

---

३३. (१) पीइ। (२) रावरोइ। (३) केसर को। (४) तनि।
३४. (१) बिना पेम। (२) परस्पर।

---

३३. थारो = तुम्हारा।
३४. पानिप = ज्योति, काति। पुहुप = पुष्प।

नैन सनमुख[२] मिलि दिवसहु[३] दीजै सुख,
कोक सम टारि रैन बिरह हमारे कों।
तब आन कीन्हे घात नैन मेरे हैं पिरात[५],
कैसे करि[६] हेरों तुव मुख के उज्यारे कों।
बाम कह्यो जाने हम इंदिरा हुतीं सो अब,
चंद्रमा भई हौं[७] दृग कँवल तिहारे कों ॥३५॥

नायिका को सयन

देखो रसलीन आइ कौतुक सुभेख नेकु,
जाकी छबि मेरे दृग माँहि अब यों फिरै।
ऐसी जामिनी मैं एक भामिनि सुहावनी सी,
सोवत है चाँदनी में मंदिर के बाहिरै।
दूपटा नवीन सेत डारें पग ते गरे लों,
ताकी उपमाहि आनि मन में यहो थिरै।
मानो छीर सागर की तनुजा उजागर सी,
आन छीर सागर के बीच उलटी तिरै ॥३६॥

पुनः नायिका को सयन

पौढ़ि[१] परजंक[२] पर सोवति[३] मयंकमुखी,
बाम पांय को पसारि[४] दच्छुन सिकोरि[५] के।
त्यों ही रसलीन एक हाथ हिय तरें धरे,
दूजो हाथ सीस ढकि[६] राखे मुख मोरि[७] के।
डालो नैन छोर सिर ऊपर बिराजे जोर,
आँचर को ओर उर[८] रह्यो छबि[९] छोरि के[१०]।

---

३५. (१) तिहि काल। (२) संमुख। (३) दिवस हो तो। (४) टार।
(५) परात। (६) कर। (७) भयेहू।

---

३५. कोक = चक्रवाक पत्ती। इंदिरा = लक्ष्मी।

३६. जामिनी = रात्रि। छीर सागर की तनुजा = चीर सिंधु की कन्या, लक्ष्मी।

नैन ते निरखि[11] यह सैन भाव भाँवती को
मैन बरजोर चित चैन लीन्हों चोरि[12] के ॥३७॥

सुकीया को मान

मान की चाह चितै रसलीन सो रूसी प्रिया तजि संग लला को।
भौंहें मरोरि तरेरि के तेवर न्हारि[1] रही पग के अँगुठा को।
कोप के भाव सभै लखिए तऊ देत सुभाव कहे यह वाको।
टेढ़े भए पिय सों सब अंग पै सूधो रहो मन एक तिया को ॥३८॥

परकीया बरनन

चंचल चपल चारु जामैं कर बेलि सम,
देखत हीं चख चित मचक सी खात है।
रंचक दिखाइ के दुरत स्याम अंबर में,
उदित अनूप जातरूप सब[*] गात है।
कारी भारी अँधियारी[1] रैन करि पून्यों सम,
पावस की रितु मधि[2] अधिक सुहात है।
देखे कोऊ भामिनी रसाल काम कामिनी सी,
नाही रसधामिनी जो दामिनी की बात है ॥३९॥

---

३७. (१) प्रौढो। (२) प्रजंक। (३) ओरन। (४) पगार। (५) सिकोर। (६) टक। (७) मार। (८) ओर। (९) छित। (१०) छोर। (११) निरख। (१२) चोर।

३८. (१) निहार।

३९. (१) कारे भारे अँधियारे। (२) मघ।

---

३७. पौढ़ि = सोकर। परजक = पर्यंक, शय्या। मयंकमुखी = चंद्रमा के समान मुखवाली। दच्छन = दाहिना। तरें = नीचे। सैन = शयन। भाँवती = प्रिया। मैन = मदन, कामदेव।

३८. रूसी = रूठ गई। न्हारि = निहार कर, देखकर।

३९. बेलि = लता। अंबर—वस्त्र। पून्यो = पूर्णिमा। कामकामिनी = रति। रसधामिनी = रस को आगार। दामिनी = बिजली।

परकीया को मान

जाहि के सनेह नीके नेह तोरि[1] नैहर को,
हेत सब सखिन को प्रानन तें छोलिए।
जाहि के सनेह ग्यान गुन को न ध्यान कीजे,
गर्ब रूप जोबन को तिलहू न तोलिए।
जाहि के सनेह लाज छांड़ि[2] कुल लोकन की,
छांह की सी रीति नित सग लागी डोलिए।
आली तजि[3] मोहि मन औरै कोई नारि[4] मोहि,
ऐसो निरमोही[5] सों कबहूँ नहि[6] बोलिए ॥४०॥

परकीया बरनन

स्यामल सारी सजी उत[1] राधिका ठाढी भई निज पौरि सुहाए।
कान्हउ[2] तौ इत द्वार मैं आइ खड़े भए पामरी पीत रँगाए।
चातुरता रसलीन कहा कहि आपने भेद न काहू जनाए।
जो रँग बोर[3] रहे घट सों चित के पट दोऊ दुहून दिखाए ॥४१॥

पुनः परकीया बरनन

सारी रैन स्याम बाम बसे हैं सहेट धाम,
बीति गयो[2] चारो जाम भयो परभात है।
बिदा ह्वै चले मुरारि[2] त्यौंहि ओट कै किवारि,
ठाढ़ी भई सुकुमारि देखन के घात है।
आहट तिया को पाइ रसलीन ललचाइ,
ता छन को भाय[3] मो पै बरनो न जात है।

---

४०. (१) तोर। (२) छाड़। (३) तज। (४) नार। (५) निर्मोही।
(६) न।
४१. (१) अति। (२) कान्हो। (३) पूर।

---

४०. नैहर = मातृगृह, पीहर।
४१. पौरि = द्वार, ड्योढ़ी। पामरी = उपर्णा, ऊर्ध्व वस्त्र।

लाल के वियोग उत[४] बाल पछताति ठाढ़ी,
बाल के बिछोह इत[५] लाल पछतात है।४२॥

ऊढ़ा बरनन

सीप के सुभव बाढ़ो कानन कौं चाव यह,
मुकुत से बैन[१] रसलीन जून के लहिए।
द्गन चकोरन को चौंव यह कौंहुँ[२] देखो,
चंद सो बदन दुख कदन को चहिए।
अंतर की बिथा न जनाई जात औरन सों,
तोहि हितू जानि सखी बात यह कहिए।
ऐसो ही उपाय कछु दीजिए बताय मोहि
जाते बेग जाइ पिय दोऊ पाय गहिए।।४३।

अनुसयना नायिका बरनन

कान्ह चले बन को तब बाल को सास ने काज कहे घर ही के।
बेगही बेग तिन्हें करिके जब जान लगी मिल कै[१] ढिग पी के।
ताछन आइ गए रसलीन गहे[२] जिव[३] में अभिलाख जो जी के।
लाल लखें सुख[४] होत है त्यों लखि लाल को आन
भयो दुख ती के ॥४४॥

सामान्या बरनन

भावै सबही के पूरे करे काज जी के,
धनी उर बसे नीके[१] उरबसी बनी है।

---

४२. (१) गए। (२) मुररि। (३) आइ। (४) इत। (५) उत।
४३. (१) मुकुत वचन। (२) ऐसो हि। (३) पीह।
४४. (१) मस्के। (२) रहे। (३) जिय। (४) मुख।

---

४२. सहेटथल = वह गुप्त स्थान जहाँ नायक परकीया नायिका से मिलता है। घात = मौका, सुअवसर।
४३. मुकुत = मोती। चौंव = चाह, उत्कट अभिलाषा। कदन = नाशक। बिथा = व्यथा, पीड़ा।
४४. ताछन = उसी समय।

रूप सुबरन एक रति हू न पूजे नेक,
घनी है मनी अनेक जाके आगे भनी[3] है।
दीखै जो रतन कोटि खान रसलीन जोति,
सोई कै सु पट ओट दीपक लौं छनी है।
आनन सरस बेधे[5] पाहन से प्रान घने
देखत के नैन यह हीरा की सी कनी है ॥४५॥

पुनः सामान्या बरनन

बसन बसाइ लट आनन में लटकाइ,
काजर लगाइ चख, पान मुख खाइ के।
ताल झनकाइ बीन मृदंग मिलाइ नृत[1]-
कारिन[2] बुलाइ सुभ संगति रचनाइ के।
हाथन उठाइ कटि ग्रीव लचकाइ दोऊ
भौंहन नचाइ अति नैन मटकाइ के।
नूपुर[3] बजाइ जब भाय सों धरत पाँव
लागत है गति आइ तेरे पग धाइ के ॥ ४६ ॥

॥ पुनः सामान्या बरनन ॥

सुंदर सुरूप रसलीन है अनूप अति,
मेनका के रूप मोहै भूप सुरपति को।
तान की तरंग संग मृदंग अतग अंग,
किन्नर गंधर्ब की करत भंग मति को।

४५. (१) उरबसी के नीके। (२) नहीं। (३) भए मन। (४) जाकी जोत पट ओट। (५) आनन मे सरस बोधे। (६) की नहीं।
४६. (१) नृत। (२) करन। (३ नेउर। (४) धाई।

४५. उरबसी = उर्वशी अप्सरा; एक आभूषण जो गले में पहना जाता है। सुबरन = सोना; गौर वर्ण।
४६. चख = चक्षु, आँख। नृत = नृत्य, नाच। भाय सों = भावपूर्ण मुद्रा में।

तीछन कटाच्छ अच्छ हाव भाव लच्छ लच्छ,
देखि कै प्रतच्छ भूली भारती सुरति को।
भनत बनत न निकाई तेरी सगति की
पति गति देते तेरे पग पति गति को ॥४७॥

पुनः सामान्या बरनन

लागी रहै ऊ अगौन निस दिन जाके भौन,
पाहन की बनी जौन कैधौं[1] गढ़ी जूप की।
छुनक न छूटै जग हन हन कोटि कीन्हीं,
टूटै औ न फूटै परी ज्यो गंदे कूप की।
स्वेद से पसीज रही काम जल भींज रही
निपट गलोज ऐसी जैसी नादी धूप की।
कहाँ लौं बखानौं रसलीन उपमानै कोऊ
आनो बीसवा को चढ़ी[2] मानो खाक रूप की ॥४८॥

अष्ट नायिका लच्छन

प्रोषित कहत तासौं जाको है बिदेस ईस,
खंडित को कंत नित पर घर बसावई।
कलहंत्र सो है जो किए कलह पछताइ[1],
बिप्रलब्ध नाँह को सहेट मैं न पावई।
उत्कंठ करै तर्क काहें तें न आए नांह,
बासक पी आवन तें आपको सजावई।
स्वाधीनपतिका[2] पति के सदा ही आधीन रहै;
अभिसार साहस[3] कै पीतम पै न जावई ॥४९॥

---

४८. (१) जो केधों। (२) कढ़ी।
४९. (१) पछताए। (२) स्वाधीन पति के। (३) साहसि।

---

४७. प्रतच्छ = प्रत्यक्ष, आँखों के सामने। भारती = वाणी।
४८. जूप = यज्ञ में गाड़ा जानेवाला खंभा, काष्ठ। उपमान = तुलना, समता।
४९. कलहंत्र = कलहांतरिता नायिका। बासक = वासकसज्जा नायिका। अभिसार = अभिसारिका नायिका।

प्रोषितपतिका

औधि गए हरि कै रसलीन सो बीती[2] हिए घन आग नई है।
ताहि समै[1] हरि आइ अचानक देखत ही सियराइ गई है।
भोरहि फेरि चले तिनकै अब तो गति ऐसी बिचारि लई है।
मानो मसाल बुझी बरि कै फिर नेह में बोरि[3] जराय
दई है ॥५०॥

पुनः प्रोषितपतिका

आय के तीसरी संबत में उन आपनो रूप को रूप दिखायो।
औरन के दिन छीनि[1] लिए अपने रितु को अति पोख बढ़ायो।
औधि जो कीने[2] हुते रसलीन सो टारि[3] के मार हमें तरसायो।
जानि पर्‌यौ इन बातन तें जग यौं[4] मलमास ही लौंद कहायो ॥५१॥

पुनः प्रोषितपतिका

जब ते गवन रसलीन कीन्हों तबही तें
एक तो बिरह बैरी मोपै दंड डार्‌यो है।
दूजे षटरितु हूँ सहाय[1] करि ताको पुनि
दीन्हों है जो दुख कवों जात न बिचार्‌यो है।
आसरे अवधि के हौं जीवित रही हुती[2] सो
अब ताके बीच पर प्रभु बीच पार्‌यो है।
हा हा करि टार्‌यो तऊ कबहूँ[2] टरत नाँहि
देखो इन लौंद आनि[3] कैसो रौंद मार्‌यो है ॥५२॥

---

५०. (१) सुने। (२) समय। (३) बीर।
५१. (१) दीने। (२) कीनी। (३) टार। (४) लौ।
५२. (१) हुते। (२) कैसे हू। (३) इन लौ निदानि।

---

५०. औधि = अवधि, समयसीमा। सियराना = संकुचित होना। बोरि = डुबोकर। नेह = तेल; स्नेह, प्रेम।

पुनः प्रोषितपतिका

जब तें सिधारे परदेस रसलीन प्यारे
तब तें तनिक लेस सुख को न लहिए[1] ।
बिरह कसाई दुखदाई भयो आवै नित,
मेरो प्रान लेन यह कासों बिथा कहिए[2] ।
एते पर पंचबान बान मैं गहे कमान
मारै तक तक बान कैसे के निबहिए[3] ।
पथिक निहारे कहौ नवल किसोर जू सों
तुम बिन जोर कौन कौन को न सहिए[4] ॥५३॥

आगतपतिका

आगमही[1] सुनि[2] मनभावन को धन मन चायन चोप चढ़ै ।
जिय के हुलास के प्रगटत खन खन (आनन) ओप बढ़ै[3] ॥
चुरियाँ करकत नैनहुँ तरकत अँगिअन[4] जोबन रहत मढ़ै ।
कंचन सी काया लसत ऐसी लसत मनो बिरह ते
ताप[5] कढ़ै ॥५४॥

नायक को बिरह

जैसे तेरो गात नए[1] पातिन रह्यो है रात,
तैसै मेरे गात पेम रात रंग[2] पायो है ।
जैसै तू पियन संमुख बैठत है[3] आइ आइ,
तैसै मोको मदन ही संमुखन छायो है ।
जैसै तोहि गरे पर प्रफुल्लित पद्तिय[4] घात,
तैसै मोहि प्यारी पद मोद अति लायो है ।

---

५३. (१) लहे । (२) कहे । (३) निबन्ही । (४) कौन सहै ।
५४. (१) मिगामही । (२) जिइ के हुलास के प्रगटन खन ~~खन~~ ओप बढ़ै ।
(३) अंगिआ (४) ताइ ।

---

५३. पथिक = परदेश जाने वाला ।

हौं तो एक बानि[5] तौं या भेद मोंसो कीन्हों आनि[6]
मो ससोक जानि तू[7] असोक जग आयो है ॥५५॥

नायक को परिहास

लाइ महावर टीको लिलार दै ओठन काजर कै दृग पीकै।
आए जबै रसलीन लला तब देखत छाइ गए रिस[1] ती कै।
ताहि समय ढिग भामिनी आइ जनाये सखी[2] रसवाद हरी कै।
नैनन में मुसकाइ कह्यो इन बातन तें जनु लागत नीकै ॥५६॥

शठ नायक

काय बचो मन तें बसी हौं जिय[1] संग निकारइ जो कछु तेरे।
हाथ के माथे धरे कुच संभु के काय के सौंह को देत सबेरे।
नाभि के कुंड में सीरी के सौंह को[3] मो मन हौं रसलीन जो तेरे।
बात की जो परतीति नहीं मुख को ए धरो अब जीभ में मेरे ॥५७॥

धृष्ट नायक

भोर उठि आए झूंठी बातन बनाए दोऊ,
हाथ सिर ल्याइ परि पाय मोहि छरिगो।
साँझ गए रसलीन यातें सब भूल काहु
कुलटा[1] कलंकिन के जाय पग परिगो।
औरो तो परेखो कछु आवत न मोको एक,
भय[2] अद्भुत आनि मेरे हियें[3] भरिगो।
अब ही तो माथे को महावर न छूटो है है
परी इन्हीं[4] पायन को परिबो बिसरिगो ॥५८॥

---

५५. (१) नई। (२) राव रग। (३) बैठत। (४) पर तिय फल पद खात।
(५) बान। (६) आन। (७) मोहि सोक जानतो।
५६. रस। (२) सखिन।
५७. (१) जिइ। (२) माथ। (३) सीरे सौह को।
५८. (१) कुल्टा। (२) कही। (३) मेरे हिए। (४) इतहीं।

---

५५. रात, राते = लाल। पर-तिय-घात = दूसरी स्त्री के चरण का प्रहार।
५७. परतीति = प्रतीति, विश्वास।
५८. छरिगो = छल गया। कुलटा = व्यभिचारिणी स्त्री। परेखो = परीक्षा, प्रतीक्षा।

सखी बचन नायक प्रति

हरि कौतुक देखी है आन इतै जग माँह कहावत हो रसिआ ।
तुमसे ठहराव की नेक नहीं यह कान्हर कान्ह करौ बतिआ ।
पग सेवत हो नित ही रहिहौ तजि[1] के अभिमान भरो जो हिआ ।
तिहि बैठि झरोकहि मैं झमकै जिमि कातिक मास
अकास दिआ ॥५९॥

सखी को सिच्छा

आवन भयो है रसलीन मनभावन को,
चावन सों चित माँह चोप उपजाइए ।
बसन मलीन दुख दूर कै बिमल पट
मोद तन मन मांह आछी भाँति छाइए ।
ऐसो दिन पाइ क्यों[1] रही है सकुचाइ, बात
हित की[2] बनाइ अब क्यों न चित ल्याइए ।
जैसे आँसुवन सिवकुच जलसाई कीन्हें,
तैसे अब हँसि हँसि फूलन चढ़ाइए ॥६०॥

दूती मनाइबो मानिनी

बदन है चंद त्यौंही[1] राहु बार दीखियत,
नैंन मृग पालव अधर तहाँ आहिए ।
नासा कीर ढिग रसलीन दंत[2] दारिमी हैं,
मोर ग्रीव रोमराजी नीके ही सराहिए ।
कटि सिंघ गज गति[3] ही ने पेखि परगट,
याते यह बात हिए आनि अवगाहिए ।
ऐते सब सत्रु तुव तन आनि मित्र भए,
तो को निज मित्र संग सत्रुता न चाहिए ॥६१॥

---

५९. (१) तज ।
६०. (१) गयो । (२) के ।
६१. (१) वहाँ । (२) दाँत । (३) पति ।

---

६०. मनभावन = प्रियतम, पति । चावन = उत्कंठा । चोप = उमंग ।
जलसाई = जलमय, जल सिक्त ।
६१. बार = केश । पेखि = देखकर । अवगाहिए = अवगाहन कीजिए ।

पुनः दूती मन इवो मानिनि को

[पुनः दूती की सिच्छा]

तन गत बात भई पतो कोऊ तन गत,
तेरे तन गति देखे मन को डिढ़ाइए।
कब की मनावति हौं मानति न मेरो कहो,
बारे ही जो बार-बार सक लौं बढ़ाइए।
आये रसलीन लाल पूजी तेरी साध बाल,
बृथा मान ठानि बाल[1] हठ न पढ़ाइए।
जैसे आँसुवन सिव कुच जलसाई कीने,
तैसे हँसि हँसि अब फूलन चढ़ाइए॥६२॥

दूती को बचन

भैरों कैसो सोहै रँग गोरी अंग छाया संग,
सोहनी तरग देत मेघ की बहार मैं।
दीपक की[1] नाक कत[2] गुन करी फूलै बाँक[3]
मारो नैन झाँक बस्यो सारँग पहार मैं।
धनासरी राग झाँझ गावत ललित तान
झूलत हिंडोले स्याम गहन[4] फुहार मैं।
परभाती[5] नाम बाम आइ भास रहे ठाम
पती सुगराई[6] राम करी वा कुमार मैं॥६३॥

पुनः दूती को बचन

देखत ही रुचि बाढ़ी महा, रसलीन सबै नवता गुन छायो।
बाँधे हूँ पाछो तिहारो तजै नहिं, नेम यहै जिय मैं ठहरायो।

६२. (१) जाल।

६३. (१) सी। (२) गत। (३) हाँक (४) स्याम घन। (५) प्रभावती। (६) सुकराई। (७) आँधे हो।

६२. तनगत = रुष्ट होता है। डिढ़ाइए = दृढ़ कीजिए। साध = कामना। सिव कुच = कुच रूपी शिव।

६३. सारँग = खजन। गहन = घना।

छोर तें आइ चहैं परो[2] पायन कैसे छिपै यह भेद छिपायो।
केसन के ढँग लीने हैं केसव री[3] जब तें तौ सनेह[4] लगायो ॥६४॥

पुनः दूती को बचन

काहू को आवत हीं मग माँह गरें निज बीचन मैं[1] उरझायो।
काहू सों स्याम सरूप हीं सो रसलीन ठगोरी से डारि[2] लुभायो।
सार मही[3] बरजोर हीं लेत हैं नेक न काहू को मानैं डरायो।
केसन के ढँग सीखे हैं केसव री जब तें तौ सनेह[3] लगायो ॥६५॥

पुनः दूती को बचन

कच री[1] बराबरी कौं चामर न भात नीको,
सोहनी[2] मौं गोरा[3] प्यारे बनौं रघोई मैं।
गुलगुलात[4] तासे को चूर मोहि कर डारो,
चपलक मलाई सो मिस्री-मलोई मैं।
पाय परत[5] रोइ परे दूरी सोवा डार कर
कमरखाचार फिर नीके रस भोई मैं।
पूरी के हलोई मोहन भोग काज पोइ-पोइ
मन मोहि सोइ सो सोहै[6] जो है रसोई मैं ॥६६॥

पुनः दूती को बचन

आवै कहै सुरबानी जबै तब भाखा कहा मुख तें कोउ भाखै।
छावै मधुव्रत[1] मालती फूल तो कुंद[2] के चोंप न कैसहुँ राखै।

---

६४. (१) नवतागुन (२) जिह। (३) परो नहैं। (४) किसारी। (५) स्नेह।
६५. (१) करे निज बचन सों। (२) डार। (३) मही। (४) स्नेह।
६६. (१) गजरे। (२) मोहनी। (३) सोहै भू ग्वारा। (४) गुलाब। (५) पापरत। (६) सोई है।

---

६४. रुचि = कांति। नवता गुन = नवीनता। पाछो = पीछा। छोर = किनारा। केसव = कृष्ण। सनेह = स्नेह, प्रेम; तेल।
६५. बीचन = लहरो। ठगोरी = जादू। सार मही = मक्खन और दही।
६६. कच री = (१) केश अरी (सखी)। (२) कचरी = कचौरी। चामर = चौंर। कमरखाचार = कमरख और अचार।

खावै निरंतर पान को आन सो काहे को दाँतनि लावै री लाखै।
पावै जोऊ मुख चंद की जोति चकोर तो चंद्रिका भूल न चाखै ॥६७॥

बसंत ऋतु नायिका

जाही जोई जाने है सो दरस[1] सदा ही चाहै,
रूप मंजरी के सर केवल निकाई है।
सौहै कुच गेंद पै सिंगार हार मालती के
मोतिया से दंत कुंद केतक लजाई है।
सेवत हजार मखमल में कमल पद,
रसलीन पछतानी दाऊदी सुहाई है।
चाँदनी सी सेत सारी चंपक बरन प्यारी
बनवारी पास फुलवारी बनि[2] आई है।६८॥

पुनः—बसत ऋतु नायिका

पंचरग चूनरी सुमन सब फूले तामैं
भूषन के फुंदन भँवर छबि पाई है।
मुकुत स्रवत ते रसाल बौर देखियत,
रसलीन कठ ध्वनि कोकिल[1] लजाई है।
करन कै पल्लो[2] नव पल्लव समान लसैं,
स्वाँस कै सुबास पौन दच्छिन सुहाई है।
कियो जागे मन मनमथ पार ऐसो तत[3]
प्यारी आज कंत पै बसत बनि[4] आई है ॥६९॥

---

६७. (१) मधूव्रत। (२) कद।
६८. (१) दरसन। (२) बन।
६९. (१) धुनि कोकिला। (२) पल्लव। (३) कियो जाके यह मत मथ पात ऐसे तंत। (४) बन।

---

६७. सुरबानी = देववाणी, सस्कृत भाषा। मधुव्रत = भौंरा। कुंद = कमल। लाख = लाह, लाचा, लाल रग।
६८. दाऊदी = गेहूँ, गेहुँआँ रग। सेत = श्वेत, उज्ज्वल।
६९. करन के पल्लो = हथेली। सुबास = सुगंध। मनमथ = कामदेव।

पुनः बसत ऋतु नायिका

तरुनाई आगम ऋतु बरनन

आवत बसत तरुनाई तरु तरुनी के,
बात गात अरुनाई दौरत पुनीत है।
बिकसैं सुमन मन सफल उरोज होत
भवन[1] भँवर मन राख रस प्रीत है।
घोरो कंठ भास बास अंग अग कै सुबास
परम प्रकास कर लेत आन जीत है।
रति बीस[2] किये तें न भावैं रसलीन दोऊ
जोबन की रीति सोई[3] जो बन की रीति है ॥७०॥

बसंत-ऋतु समीर बरनन

बासर मैं छार छार छार को बहार[1] डार,
धार घर[2] ल्याइ बार धरा छिरकाई है।
रजनी निहार सब कन कन घन[3] टार,
चंद को निकार आन चाँदनी बिछाई है।
सुमन सुगंध सार आछी भाँति हूँ सँचार,
ताहि[4] कों बिचार रसलीन अब आई है।
करै मुनहार सी बयार चेरी बार बार,
आज की बहार में बहार[5] सुखदाई है ॥७१॥

---

७०. भवत। (२) बेस।
७१. (१) बुहार। (२) धाराधर। (३) गगन ते। (४) रितु, रति।
(५) बिहार।

---

७०. तरुनाई = युवावस्था। तरुनी = युवती। बात = पवन। गात = शरीर।
सफल = फलयुक्त। सुबास = सुगंध। जोबन = (१) जवानी,
(२) जो + बन।
७१. सँचार = संचरण। बहार = (१) वसंत ऋतु, (२) आनद।

पावस ऋतु बरनन

कोप करि इंद्र कस पाछिली सो प्रान[1] अब,
बना कर घर[2] जाली प्रकट जनाई है।
दुंदुभी गरज, धुरवाहीं धजा रसलीन
पवन हरोल बन आगे उठि धाई है।
धनुक[3] कमान कर बूँदन के बान साधि
चहुँधान देखो[4] यह कैसी झर लाई है।
बिज्जु छटा हिय गहि पटा ब्रज लटा देखि
कटा करिबे को फौज घटा चढ़ि आई है ॥७२॥

पुनः पावस ऋतु बरनन

साँची बात मेरी रसलीन ए न मानति हैं,
उलटे के मोहि समुझाय रहीं भोर तें।
धूर जल भरे पोन बीजुरी को संग धरे
आवत नहीं लै[1] गगन[2] घन घोर तें।
अवधि के बीते हूँ न छाँड़ी यह देह यातें
गहि के मरोर मेरे आनन[3] कठोर तें।
मनो कर जोर पाँचो तत्व एक ठौर ह्वै (के)
आस लेन आपने कों धाये चहुँ ओर तें ॥७३॥

सरद ऋतु मध्य चाँदनी बरनन

कोऊ कहै धोइबे को अक[2] के मयक आज,
बिधि तें बिनै कै जग छीरधि भरायो है।

---

७२. (१) आन। (२) गिरघर। (३) धनुख। (४) कहाँ ते।
७३. (१) ये। (२) प्रानन। (३) अस।

---

७२. बना = बाना, भाले के आकार का एक शस्त्र। धुरवाहीं = बादल की घटा के आने के पहले आकाश में उड़ती हुई धूल। धजा = ध्वजा, पताका। हरोल = सेना का अगला भाग। धनुक = धनुष। चहुँधान = चारों ओर। बिज्जु = बिजली। कटा = काटना, मारना।

७३. आस = असु, प्राण।

कोऊ कहै गरब सुधाधर के तोरिबे कों,
बिधा[2] सुधा मध सब लोक अन्हवायो है।
कोऊ कहै पारा कूप बारा[3] रूपवती देख
उत अपनाइ[4] कै जगत छहरायो है।
मेरी जान औषदेस[5] काहू जरी रस ही सों
देस कों बिसय मस चाँदी[6] को दिखायो है ॥७४॥

पुनः चाँदनी बरनन

उज्जल बसन तन मंजुल सुबास जुत,
मोतिन के भूखनन तारा छबि पाई है।
चंद सो बदन दृग सौहैं रसलीन मृग,
हंसन दरस कै मरीचिका दिखाई है।
ओस के सुमानिक झरत श्रम सेद कन[1],
मंद मंद सीत बात लावत सुहाई है।
सरद समय के निस चंद्रिका न होइ यह
धरा को छलन कोऊ छरा[2] चली आई है ॥७५॥

पुनः चाँदनी बरनन

कोउ काँपि काँपि थहरात[1] बूड़िबे को[2] डर,
काहू ढाँपि ढाँपि मुख ओटन कै लीन्हों है।
कोउ धाइ-धाइ कै चढ़त सैल ऊँचे जान,
काहू धाइ धाइ कै निपट पाय दीन्हों है।

---

७४. (१) अग। (२) विविधा। (३, गोपदारा। (४) अति अफनाइ।
(५) औषधीस। (६) दिवस कों बिसै मिसि दिनेस।
७५. (१) स्वेद कन। (२) कोऊ अवछरा।

---

७४. अंक = चिह्न। मयंक = चंद्रमा। छीरधि = चीरसागर। औषदेस = चंद्रमा।
७५. सेदकन = पसीने की बूँदें। सीत बात = शीतल पवन। छरा = अप्सरा।

इंद्र के प्रलै सों रसलीन प्रान दान दीजै
ना तो सब जनन को जीव जात चीन्हों है।
बेदन तें सुने जग नीरमय[3] ह्वै है बेरि
सो तो आज चंद सब छीरमय[4] कीन्हों है ॥७६॥

पुनः चाँदनी बरनन

साजि सारी स्याम रंग भूषन पहिरि संग,
नखत[1] कै अंग अंग अधिक सुहाई है।
चाँदनी की चादर सजे हैं[2] ओढ़ि रसलीन,
सुधाधर बिषै बहु सोभा दरसाई है।
सीरी सीरी बात लावै बार बार समझावै,
मन को मनावै करै प्रेम अधिकाई है।
ऐसे रूप गुन छाइ देखि मन जान पाइ,
राका रैन माई आज दूती बनि भाई है ॥७७॥

पुनः चाँदनी बरनन

चोरन तें दिढ़मत[1] चोरी कै छुड़ाइ[2] नित,
साहन के मन अति आनंद बढ़ायो है।
कुलटन सों हित कै रति कै अपितन[3],
पतनी[5] के संग पतियन लै मिलायो है।
देख कै अमीत[6] रीति मीत चंद चाँदनी की,
उपमा पुनीत रसलीन चित लायो है।
टारि तमो गुन को सँवारि रजो गुन आज,
दुजराज जग कों सतोगुन पै छायो है ॥७८॥

---

७६. (१) थहरात। (२) के। (३) नीरमय। (४) छीरमय।
७७ (१) नखतन। (२) ससीन।
७८. (१) दुरमति। (२) छुड़ाए। (३) रति कै। (४) रति उपपतिन। (५) तियन। (६) अमीत।

---

७६. थहरात = काँपते हैं। नीरमय = जलमय।
७७. सुधाधर = चंद्रमा। सीरी सीरी = ठंढी ठंढी। राका रैन = पूनो की रात।
७८. दिढ़मत = दृढ़ता के साथ। साहन = सच्चे, ईमानदार। पतनी = पत्नी। अभीत = निर्भय। दुजराज = चन्द्रमा।

फाग बरनन

फाग समय रसलीन बिचारि[1] लला पिचकी तिय आवत लीनें।
आइ जबै दिढ़[2] ह्वै निकसी तब औचक चोट उरोजन कीनें।
लागत धार दोऊ कुच में सतराइ चितै उन बाल नवीनें,
झटाक दै तोर चटाक दै माल छुटाक दै लाल के गाल
में दीनें ॥७९॥

हाव उदाहरण

नाह के सैन निहारि[1] प्रिया मिस[2] काज को ठान नहीं ढिग जाती।
देखि[3] चरित्र बिचित्र तिया को उठे कर स्याम बिलोकन ताती।
चाहत लोगन दीठि बचाय करै छल सों गहि खेल सुहाती।
ज्यों ज्यों बसाय नहीं कछु लाल के त्यों त्यों फिरै घर में
मुसुकाती ॥८०॥

पुनः उदाहरण

नाँह के सैन निहारि[1] प्रिया सुखभौन की ओर नहीं नियराती।
घात न लागत लोगन के ढिग कैसे करै पिय केलि सुहाती।
एक तो पीतम[2] को बहरावइ[3] पती पै बात कही नहीं जाती।
ज्यों ज्यों बसाय नहीं कछु लाल के त्यों त्यों फिरै घर में
मुसुकाती ॥८१॥

---

७९. (१) बिचार। (२) ढिग।
८०. (१) निहार। (२) मस। (३) देख। (४) केलि।
८१. (१) निहार। (२) प्रीतम। (३) भर आवइ, बहरावई।

---

७९. उरोजन = कुचों पर।
८०. सैन = शयन; सकेत। दीठि = दृष्टि।
८१. नियराना = निकट जाना। सुखभौन = केलिगृह। बहराना = भुलावे में डालना।

पाती बरनन

(उद्दीत हाव उदाहरण)

बेनी तजो रसलीन नागरि नवीन बेनी,
तजि कै प्रबीन मुक्ति कैसे अनुमानिए।
मुक्ति न मिलत पर बाम[1] के मिले तें स्याम,
बाम को मिलन बाम-पारायन जानिए।
आलिन के आगें नेक सकुच तो कीजिए औ[2]
सकुच के किए क्यों सो कुच उर आनिए।
कोऊ बरजौरी कहूँ होत प्रीत बरजोरी,
गोरी प्रीति बरजोरी जग में बखानिए ॥८२॥

पूर्वानुराग

देखी मैं एक अनूपम बाल तियान के जाल में जात सनीनों।
सोने सी देह दिपै[1] रसलीन लगै मुख देखत चंद मलीनों।
सोभा के भार लचै कटि छीन[2] खुल्यो अलि सीस ते पाट नवीनों।
घूँघट ओट के छूटतहीं दृगचोट[3] चलाइ के लूट सी लीनों ॥८३॥

पाती बरनन

पाती जबै दुख काती[1] सी आई तबै रँग राती तें[2] छाती लगाई।
देखत नैन भयो अति चैन मनों पिय मूरति आन दिखाई।
आगम कौ हौं सुनौं जब स्त्रौन हियो सुख भौन भयो अति माई।
आखर दंड को कागद[3] पै बिरहा गज को मनों साँकर आई ॥८४॥

---

८२. (१) बान। (२) और सकुच के कैसे कियो उर आनिए।

८३. (१) रपै। (२ क्षीण। (३) चोर।

८४. (१) स्याही। (२) ने। जो कागर।

---

८२. बरजोरी = (१) [बरजो+री] अरी ! मना करो; (प्रेम के) बल से जुड़ी हुई।

८३. तियान = स्त्रियों। जाल = समूह।

८४. काती = काटने वाली। रँगराती = प्रेम में डूबी हुई, प्रेम से रँगी हुई। आगम = आना। स्त्रौन = कान। साँकर = श्रृंखला, लोहे की जंजीर।

पुनः पाती बरनन

प्रथम बिरह ताप जरनि तरनि फुनि[1]
कीरति बरन सुमिरन चद टोहई[2]।
अनुराग धरानंद[3] बुद्ध बद्ध छंद बंद
पीत रंग जो अमंद देवगुरु सोहई[4]।
कागद प्रमान आन[5] सुक्र भयो जीह[6] जान
सनि तो[7] निदान मसि[8] बान अवरोहई[9]।
सात बार पाती मों निहारि यह पायो सार,
सात बार पाती तुव सातो बार जोहई[10]।।८५।।

प्यारी को रूसिबो

भोर तें भई है साँझ सखिन मनावति हैं
कैसहूँ न मान्यो प्यारी अति हीं रिसाइ कै।
तब पिय भेख लै सखी को सखि आपुन दै,
घात लाइ बैठे ढिग भामिनो के जाइ कै।
सखी कों समुझ लाल बाल मुख मोरत हीं
लागी ज्यों गहन सखी त्यों ही सतराइ कै।
नेह सों निहारि कर झारि[3] झिझकारि[4] नारि
रसलीन गरें मैं लपट गई[5] धाइ कै।।८६।।

सोहिल विवाह सैयद नूरुलहसन पुत्र सैयद मुहम्मद मुहसिन

गनपति आराधि आदि उत्तम सगुन साधि सुभ घरो घरी लगन।
गावत गुनीन गायन मोहत नर नारायन इंद्रादिक सुन सुन
होत मगन।।

---

८५. (१) मुनि। (२) टोहै। (३) भूभिनंद। (४) मधु से मधुर बीन दिवोकर सोहै। (५) भयो है आन। (६) तिय जूट। (७) के। (८) मिस। (९) अवरोहै। (१०) जोहै।

८६. (१) भामिनी। (२) निहार। (३) झार। (४) झिझकार। (५) लपेट गए।

---

८५. धरानंद = मंगल। देवगुरु = बृहस्पति। मसि बान = काले रंग के। सातोवार = सातोदिन।

८६. सखिआपन = सखीपना। सतराना = क्रोध करना।

जर कसे जोर तोरे कचन घोरे देत जाके जोन जटित नगन।
मुहम्मद मुहसिन नंद बखत बलंद बनाँ नूरुल हसन जोउ जोलै
दुहू गगन ॥८७॥

दुलहिन सिगार बरनन—रागिनी रामकली के भैरों

सुघर बने के काज आओ बनी को बनावैं,
आछे सगुन सों सब नारी मिलि[1] आनंद मंगल गावैं।
तेल फुलेल मेल उबटन मैं सकल अंग उबटावैं;
लाइ गुलाब नीर चंदन की चौकी पर अन्हवावैं।
कोमल करन चरन[2] में रचि पचि[3] मेंहदी सुरँग रचावैं,
अगराग अँग लाइ लाइके रंग जोत उपजावैं।
चदन डारि[4] सँवारि[5] सुगधित बारन तेल लगावैं,
सतरँग पटियाँ काय[6] सात लौ चोटी चार कहावैं।
मिसी लगाइ खवाइ[7] पान मुख दसनन रँग जमावैं;
कजरारे नैनन काजर दै सोभा को अधिकावैं।
गाइ बजाइ बसन ब्याहो सब दुलही को पहिरावैं,
ज़टी जराइ अनूप भखनन ठौर ठौर छवि छावैं।
फूलन कुरसी डारि[8] गरे मैं सेहरा सीस बँधावैं,
एँहि विधि सकल सिँगार साजि[9] कै ऊपर सारि[10]
उढ़ावैं।
तब सुभ घरी बिचारि बनी को बनरे आनि मिलावैं,
लखि रसलीन जो बनरा रीझै तब मन मैं सुख पावैं
॥८८॥

समधिन बरनन—राग ललित

लाज भरी समधिन सुनि[1] के अति समधी के मन भाए,
रहस खेल रस रेल करन कौ सुभ दिन न्योत बुलाए।

---

८८. (१) मिल। (२) चरनन। (३) रच बच। (४) डार। (५) सँवार।
(६) काली। (७) खाइ। (८) डार। (९) साज। (१०) सार।

---

८७. बखत बलद = भाग्यशाली।
८८. बने = दूल्हे। बनी = दूल्हन। सुरँग = लाल। बनरा = दूल्हा।

समधिन हाथी को नहि[1] चाहै ना रथ चहै[2] अमोला,
  समधिन चाहै बाँस चढन को लाये रँगीले डोला।
समधिन तोन लगाये आगे तोन कँहरवा पाछे,
  तब काँधे धरि पाँव उठावै डोला को ले आछे।
समधिन के आगे डारत है रँग अति गाय नचैया,
  छाती खोलि[4] देत तब हाथन भर भर मुहर रुपैया।
समधिन मुख मीठो पाये तें समधी बतियन लोभा,
  यातें डारत हैं सब समधिन के मुख मीठो चोभा।
समधँहि आन धर्यो समधिन को हँस हँस बीरा[5] हाथ,
  समधिन मेलि[6] दियो सब अपनी लै मुख चावन साथ।
जिन्ह कारन समधिन के गारी सुन सुन भयो अनंद,
  सो रसलीन जगत मों जीवैं जब लौं सूरज चंद ॥८९॥

नौमासा बरनन

लाडली बहू का गावो नौमासा।
नबो अली का करम हुआ है पूजी मन की आसा ॥९०॥

पालना बरनन

ऐसो रे लला मेरो खेलत सुहावै।
पैयन तें दुख दलिद्दर ठेलि[1] सुख संपति गरे सों[2] पिलावै ॥९१॥

पुनः पालना बरनन

यह लछमन घर[1] आये।
रहस रहस सब मिलि[2] गावौ आनंद बढ़ाये[3] ॥९२॥

---

८९. (१) सुन। (२) नहीं। (३ चाहै। (४) खोल। (५) बैरा। (६) मैल।
९१. (१) ठेल। (२) कर ही सों।
९२ (१) घर मे। (२) मिल। (३) बधाए।

---

८९. रहस = एकांत। अमोला = अमूल्य। गाय नचैया = गाकर नाचने वाले।
  छाती खोलि = दिल खोलकर। चोभा = सुगंधित द्रव्य।
९०. करम = कृपा।

अछवानी बरनन

कैसहुँ बहू अछवानी न पीवत केतो खरी ढिग सास निहोरै।
हाथ लिये चमचा झिझकै मुख लावत ओंठ औ नाक सिकौरै।
सोंठ लगी गरवैं तबहीं भरि नैनन मैं अँसुवा मुख मोरै।
एरी लखो यहि रूप सुहावन नारिन को मन कों यह चोरै ॥६३॥

छट्ठी बरनन

आज छठी की रात रहस रहस सब आन जगायो[1]।
रँग उपजायो धूम मचायो आपने चाव तें[2] मंगल गायो[3]।६४॥

मुख मंडल बरनन

बदन अनूप वाको हरत सरोज रूप
अधर ललाई कों बँधूक[1] न धरत हैं।
रूप गरबोली मुख मानिक हँसीली भौंह,
कुटिल कँटीली रसलीन कों हरत हैं।
झपकीली पलकें दाँत दारिमी से झलकें मुख
छूटी रहैं अलकें तें कैसे निसरत[2] हैं।
प्रेम मध छाकी करै निपट चलाकी वाकी,
बाँकी बाँकी आँखियाँ[3] कजाकी सी करत हैं ॥६५॥

नेत्र बरनन

पहिरैं गुदरी तन सेत असेत तिहूँ[1] जग कों नितही निदरैं।
हरि रूप अनूप के चाहन को बरने[2] करि हाथ सों आँगी धरैं।

---

६४. (१) जगावो। (२) अपने अपने चावन। (३) गावो।
६५. (१) बधूक। (२) बिसरत। (३) आँखें तो; आँखिन।

---

६३. अछवानी = प्रसूता स्त्रियों को दिया जाने वाला एक प्रकार का अवलेह।
६४. छट्टी = जन्म का छठा दिन।
६५. बँधूक = बंधूक, गुलदुपहरिया का फूल जो लाल रंग का होता है। मध = मधु, सुरा, शराब। कजाकी = दगा, फरेब।

बरजो कोऊ केतो निरादर कै रसलीन तऊ नहिं टारे टरैं।
सो देखौं लजीली मेरी अँखियाँ पलको न लगैं टकटोई करैं[3] ॥६६॥

सिख-नख बरनन

बेनी नाग, पाटी घन, माँग बिज्जु, भाल चंद,
स्रौन[१] भौहैं दुहुन नयन बान चेरी हैं।
नासा कीर, दरपन कपोल, बिंब लीन मन,
दंत मोती, ठोढ़ी अंब, कंठ कंबु, घेरी हैं।
भुज पास, हाथ पल्लौ, कुच बेल, पेट पान,
पीठ रभादल,[२] कटि भरम के फेरी हैं।
बनितन तंत जंघ केलि खंभ, पग कज,
एतों चेरा चेरी तेरे अँगन के हेरी हैं ॥६७॥

बसी बरनन

बंसी ह्वै छुड़ावत है बंस तैं न रीत कछू,
बंसी सम लेत प्रान मीन को निकारि[१] के।
अधर सुधा मैं लग उगलत हैं बिख एतो,
अद्भुत भयो है यह जगत निहारि[२] के।
मोहै मन देव औ अदेव रसलीन जब,
पसु पंछी थके मानो डारि[३] दई[४] मारि[५] के।
यातें बिधि मेरे जान सेस को न दीन्हों कान,
सेस तन[६] तान दीन्हों धरती[७] को डरि[८] के ॥६८॥

---

६६. (१) तिन्हूँ। (२) बरनन। (३) तकिबोई करैं।
६७. (१) सेत। (२) पेठ। (३) कंभ।
६८. (१) निकार। (२) निहार। (३) डार। (४) दिए। (५) मार।
(६) सुन। (७) देतो धरनी। (८) डार।

---

६६. आँगी = अँगेथा, चोली। चाहना = देखना। टकटोना = एक टक देखना।
६७. अंब = आम। कंबु = शंख। पास = पाश। केलि खंभ = क्रीडा स्तंभ। चेरा चेरी—दास दासी।
६८. बंसी = मछली पकड़ने की कँटिया।

स्फुट दोहे

(विभिन्न हस्तलेखों मे ये ८६ दोहे प्राप्त हुए हैं ।)

भाव लक्षण प्रथम वर्णन का कारण

बिषचारी थाई दोऊ फैलौ जिहि जिय जान।
पहले लच्छन भाव को बरनन कीन्हौं आन ॥ १ ॥

रतिभाव उदाहरण

बात कहति ज्यों फूल झरि लीन्हों कुचन सम्हार।
प्रान लिये सुनके कछू बिगँसे मन में मार ॥ २ ॥

नायिका गुण वर्णन

रति सर करनि अनूप अरु बानी परम सुजान।
कमला सो मन को हरै यहि नायिका बखान ॥ ३ ॥

नायिका गुण कथन

सुकिया पत पति की धरे परकीया रसलीन।
सो स्वाधीना नायिका जो धन के आधीन ॥ ४ ॥

ज्ञातयौवना-वर्णन

त्वरित नैन सीखी मटक राखत पाय सम्हार।
बारंबार निहार पिय अचरा लेत सँवार ॥ ५ ॥

मुग्धा का मान

मेरे घर काढ्यो कबौं पिय के कहत पुकार।
मान छाँड़ि बोली तिया आवत कहैं नकार ॥ ६ ॥

२—बात…फूलि झरि = बातों से फूल झरना, रसात्मक बातें। कुचन = स्तन। मार = काम, घात।

३—सरकरनि = नीचा दिखानेवाली। अनूप = जिसकी उपमा न हो, अतुल्य। सुजान = चतुर, ज्ञानपूर्ण। कमला = लक्ष्मी।

४—पत = प्रतिष्ठा, सम्मान। रसलीन = कवि का नाम और रस में तल्लीन। धन = संपत्ति।

५—त्वरित = चंचल। मटक = मानपूर्वक अंग से हाव-भाव-प्रदर्शन। सम्हार = सम्हाल कर। बारंबार = बारबार। अचरा = अंचल, धोती का वक्षस्थल को ढकने वाला अंश।

६—काढ्यो = बिताया। नकार = इनकार।

मध्या उन्नतकामा

लाज हिए बैठे लिए संग छरी कर माँह ।
लेन देत नहिं नैन भर प्रीतम मुँख के छाँह ॥ ७ ॥

मध्या प्रगल्भवचना

रैन बढ़ै अब माँह ते तुम जानत मन माँह ।
बसर लाज इन देख निसि तजत संग नहिं छाँह ॥ ८ ॥

मदनमदमाती प्रौढ़ा

बचन लजीले मुख करत किते रसीले घात ।
निरख कसीले बदन को छुईमुई ह्वै जात ॥ ९ ॥
ताके नयनन में रमन लखत अरज के घात ।
जा घन के मन हितनु तनु मह् मह् महके बात ॥ १० ॥

धीराखडिता विवेक-प्रसंग-वर्णन

जो धीरादिक खडिता में नहिं मानत भेद ।
तिनके इनके भेद मैं परत नहीं कछु खेद ॥ ११ ॥
जिन बिबेक में आपनों चित दीन्हौं है न्याय ।
तिन राखो इन भेद सों भिन्न भिन्न ठहराय ॥ १२ ॥
व्यंगादिक धीरादि को मूल कहत सब कोय ।
सुरचि चिन्ह खडितादि को मूल धरत कबि लोय ॥ १३ ॥
यातें बरनत हैं नहीं बेगि खंडिता माँहि ।
सुरति चिन्ह धीरादि में कबिजन मानत नाहि ॥ १४ ॥

७—प्रीतम = प्रियतम, नायक ।

८—रैन = रात्रि । माह = महीना, माघ मास । बसर = गुजारा । निसि = रात । छाँह = परछाईं, छाया ।

९—कसीले = कसकपूर्ण । घात = चोट । छुईमुई = लजाधुर, लाजवंती ।

१०—अरज = निवेदन । मह मह = सराबोर होकर । बात = वायु ।

११—परत = पड़ता है । खेद = शका ।

१४—सुगमता = सरलता । मानत = रखते हैं, उपस्थित करते हैं ।

मध्याधीरा

अधरन सो मुख स्याम के बाँध दिए तुम नैन।
याते अधरन मौन हैं नैन करत हैं बैन ॥ १५ ॥
लच्छन तिन्ह को कहि सके कोमल हिया रसाल।
जो मद होत कठोर तो कैसे उपटत भाल ॥ १६ ॥

प्रौढ़ा अधीरा

भयो फूल के हस्त में पट सुख फूल बनाय।
गवन करेउ रन भामिनी मन ही मन पछताय ॥ १७ ॥

उद्बोधिता

रे पंथी जानत न तू परत चुरान्ह गाँव।
अप्पन हित मैं देत हूँ तोहि द्वार पै ठाँव ॥ १८ ॥
पथिक जात घर निसि भए मो घर अच्छे ठौर।
पटके पलका पौढ़िए जन धन धरिए और ॥ १९ ॥

क्रियाविदग्धा

पाछे ह्वै नंदलाल को बोल सुनत हैं बाल।
द्वार हने ते लाल को निसकर हेरत लाल ॥ २० ॥

परकीया सुरतात

कुंजन तजि निज भवन को चलिए स्याम सुजान।
रैन घटे ससि हूँ डुबे चाह्यो भयो बिहान ॥ २१ ॥

स्वकीया अनुरागिनी

लाल रदन छत जो लख्यौ मन रोचत तिय आय।
कर मुदरी के मुकुर में तिन देख्यौ जिन जाय ॥ २२ ॥

सुरतिदुःखिता

लखत न परतिय चित्र हूँ ये जानत अपवित्र।
सखी हमारे मित्र की है यह रीति बिचित्र ॥ २३ ॥

१५—बाँध दिए = चुप कर दिया, जकड़ दिया। अधरन = जो न धारण कर सके, जो न धारा जा सके। बैन = बात।

१६—उपटात = प्रकट होना, उपजना। भाल = मस्तक।

१८—पंथी = पथिक, राही। चुरान्ह = चोरों के। अप्पन = अपने।

१९—ठौर = स्थान, जगह। पौढ़िए = आराम से फैलकर लेटिए।

२०—मुदरी = अँगूठी। मुकुर = दर्पण।

गुनगर्विता

अपने पनघट बैठिए हो अभीर बेपीर।
कत रोकै मगु काज बिनु बढ़े कलन की भीर ।। २४ ।।
कंत किए बहु घत जलद जोहति तब नित आय।
नाव बदल बोलाय तुव तऊ न परत लखाय ।। २५ ।।
सो हित सकल सकार हूँ गोपन भेष बनाय।
अधरन धरिहौ यै सोई मन से अधरन ल्याय ।। २६ ।।

वियोग मानकथन

है बियोग के भेद में मान रहे जिय जानि।
निजबिय को ठनगन समझ यहाँ धरे कबि आनि ।। २७ ।।

वासकसज्जा

यौं पिय मग कुंजन लखत प्रिय दृग रूप लखाइ।
मनौ भँवरि चहुँदिसि रही बेलि बेलि मड़राइ ।। २८ ।।

उत्कंठिता

प्रात महावर नव अरुन यह अब आनन आइ।
नवल बधू मुख मुदवत भयो चंद के भाइ ।। २९ ।।

प्रौढ़ा खंडिता

पिय तन नख लख यौं दुरो यह नग आयो आय।
मनु मधुकर मकरंद को ओखलि में फिर खाय ।। ३० ।।

पद्मिनी उदाहरण

धनि तन लख दृग दूर ते भ्रमत रहत ज्यौं भौंर।
मनो सकल जग रूप रस आन भयौ इक ठौर ।। ३१ ।।

गुनमानी नायक

निज बंसी के सुर में भूले नंदकिसोर।
लखत नहीं दृग कोर ते काहू तिय की ओर ।। ३२ ।।

२५--घत = घात, छोटापन। जलद = बादल। लखाय = दिखाई देते हैं।
२६--सकार = तड़के।
२९--मुदवत = ढकना।
३०-ओखलि = पात्र, कुंडी।
३१--बंसी = बाँसुरी। कोर = किनारा।

नायिका बरनन

तिय में रति की नायिका, मनमथ हाथ अधीन।
बातन हित चित लायके, तिहिं बरनत रसलीन ॥३३॥

मध्या धीरा में बुधजन आकृति गोपना

बुध जन आकृति गोपिता, और सादृश बिसेख।
मध्या धीराधीर में, बरनत आनि बिसेख ॥३४॥

साध्या असाध्या बरनन

ऊढ अनूढ़ा दुहुन में होत असाध्या आन।
सुखसाध्या सब ऊढ़ में, कोऊ दुहुन में जान ॥३५॥

अन्य स्फुट दोहे तथा टूट आदि

हरत नाहि पे कपि कोऊ, क्यों दधि बेचत जाय।
चौंथ बसन नख लाय तन परकी लेत छुटाय ॥३६॥

औरन के ढिग फूल लखि, निंदित होत जिय बाल।
तेरे हित हूँ ल्यायहौं, कु जन तें गुहि माल ॥३७॥

ढरत मानिनी दृगन तें, अँसुवा बूँद बिसाल।
मनो मानसर कमल तें, झरत मुकुत की माल ॥३८॥

चुवत असु तिय दृगन तें, यों सुखमा अवदोत।
धोखे चुँगे पचे न मनु उगलत खंजन जोत ॥३९॥

---

३३. मनमथ = कामदेव ।

३४. आकृतिगोपिता = प्रेम के भाव को छिपानेवाली ।
आनि = लाकर ।

३५. ऊढ़ = ऊढ़ा, विवाहिता । अनूढ़ा = अविवाहिता । असाध्या = जो सरलता से वश में न हो । सुखसाध्या—सरलता से वश में आनेवाली ।

३६. चौंथ = फाड़कर ।

३७. निंदित = संकुचित, लज्जित ।

३८. मानसर = मानसरोवर ।

३९. असु = आँसू । सुखमा = शोभा । अवदात = उज्ज्वल । जोत = प्रकाश ।

पर तिय देखत पिय चितै, नाम सुनत ही कान।
चिन्ह लखें तिय होत है, लघु मद्धिम गुरु मान ॥४०॥

लघु छूटत है सहज ही, मद्धिम सौंहन माहिं।
भेद मान गुरु छूटि पुन, सामादिक तें जाहिं ॥४१॥

धन पर तिय तन लखत ही, पिय आँखिन लहि सैन।
रहे कोप आरोप के, सदन ओप दे मैन।४२॥

पिय टोकत बोले न तिय, तब रसलीन निदान।
खैचत बांह कमान के, छुट्यो बान ज्यों मान ॥४३॥

धरम अवस्था जाति गुन, भेद तीन के होत।
धरम सुभाव अरु जाति गुन, नायक भेद उदोत।४४॥

एक प्रोखन को आनके, बरनत हैं कबिलोय।
और अवस्था में नहीं, कोऊ बरनबे जोग।४५॥

हरि राधा, राधा हरी, होत रूप चख आज।
फिर समझत हीं आपको, निरखि निरखि निज साज।४६॥

जा तिय सों नहिं नायिका, कछू छुपावे बात।
औ 'राखे निज पास नित, सोई सखी उदात।४७॥

बोलत ही पर नारि सों, तजि पिय देखे आन।
याहू तें गुरू मान तिय, मन उपजत जिय जान ॥४८॥

बात कहत तिय और सों, तज प्रीतम को पाय।
कँवल बदन तिय को गयो, बातहि में कुम्हलाय।४९॥

साम बात समुझाइबो, दाम दीन्ह कछु ल्याय।
भेद सखिन अपनाइबो, भय दीबो डरपाय।५०॥

---

४०. मद्धिम = मध्यम। गुरु = बड़ा, भारी।
४१. सौंहन = शपथों से। सामादिक = साम आदि मेल की नीतियों से।
४२. ओप = आभा। मैन = कामदेव।
४४. उदोत = प्रकाश; शोभा।
४५. प्रोखन = प्रोक्षण, छिड़काव। कविलोय = कविजन।

मान मचावन बुधि तजत, भय उपजाय अग।
सो प्रसंग बिघस जहाँ, कहे और प्रसंग ॥५१॥

पाय परन को कहत हैं, प्रनत सकल को ग्यान।
ये सब सात उपाय हैं, तिनको करौं बखान।५२॥

जिहिं तन पानिप में भए, मीन रहत हैं नैन।
तिहिं बिच मन अब कौन बिधि, कहो राखिए चैन ॥५३॥

आयो धनी बिदेस तें, मिलत रोइ हँसि बाल।
अँसुवन से ढारत मुकुत दसनन मानिक माल ॥५४॥

तिनके भेद अनेक हैं, बरनन करै बनाय।
इहिं बिधि गनना तियन की, बहुत भाँति बँधि जाय ॥५५॥

ज्यों गहरे अनहात अरु, धोवत मलि मलि गात।
त्यों ही मो मन बाल तन, पानिप माँहि अन्हात ॥५६॥

तिय तन अति पानिप गहि, चख चंचल लहि रूप।
थर थर ह्वै फर फर करत, हरि मन कल कल रूप ॥५७॥

चलो इहाँ से यह भलो, ल्याये स्वांग बनाय।
फिर ताके उलटे कहा, बिनु पाथ उतराय ॥५८॥

को न भई काके नहीं, जोबन आयो गात।
तोहिं अनोखी अति लगी, सुनत न चोखी बात ॥५९॥

नैन फेरिबो भ्रू चलन, मुख चख तें मुसकान।
मधुर बचन भुज डोलन—यह अनुभाव बखान ॥६०॥

कर आए हो आप हीं, पिय की सकल बनाय।
छलो चितै कर रावरे, छलो निकोऊ जाय ॥६१॥

---

५३. पानिप = कांति, शोभा; बल ।

५४. मुकुत = मोती । दसनन = दाँतों से ।

५८. उतराया = ऊपर ही तैरना है ।

५९. जोबन = युवावस्था । चोखी = अच्छी, लाभदायी ।

६०. भ्रू = भौंह ।

६१. छलो = भ्रम से; छलित, छला हुआ ।

यह अनुभाव अरु हाव मैं, दूजो भेद अवदोत।
वे/दिप स्वभाविक होत नहिं, ये स्वभाविक होत ॥६२॥

अंग अंग पर आभरन, पहरे ललित सो होय।
बिनु अभरन के ठोरई, छबि बिच्छुत में होय ॥६३॥

भ्रू बसन चितवन हँसन, अरु बोलन मृदु बानि।
यह तेरी गति कौन की, हरत नहीं मन आनि ॥६४॥

जदपि चली है आभरन, सबे साज तू आज।
तदपि अधिक मनहरन है, तिय नूपर को बाज ॥६५॥

इन सिँगार बिनु तन सजें, प्रीतम को अपनाय।
सौतन के भूखन सखल, दूखन खरे बनाय ॥६६॥

एक एक तें सरिस सज, ऐन सकल सिंगार।
तोऊ गई हिय हार के, लखि तुव हरि को हार ॥६७॥

बात होय सो दूर तें, दीजे मोहि सुनाय।
कारे हाथन जनि गहो, लाल चूनरी आय ॥६८॥

लखि निसंक पिय नैन भरि, धरी सखिन की आन।
पीपर भाँवर तन भरे, पिय पर भाँवर प्रान ॥६९॥

मिलन हमारो जो सदा, चाहत हो मन माँह।
तो इन कुंजन में सदा, जनि पकरो मम बाँह ॥७०॥

अरथ मोटई को प्रकट, यामें होत लखाय।
ता मैं मन में आनि यह, मोटायत ठहराय ॥७१॥

स्याम को साथ तिया लखि, निज छाँह भरमाय।
डरी झकी रोई छकी, हँसी आप को पाय ॥७२॥

---

६३. आभरन = भूषण। ललित=सुंदर।

६६. भूखन = भूषण, गहना। सखल = सकल, सब। दूषन = दोष।

६७. ऐन = ठीक ठीक; भवन। हार = हारना; कंठ का गहना।

७१. मोटई = मोट्टायित नामक हाव।

७२. झकी = झकने लगी, बड़बड़ाने लगी, रुष्ट हो गई। छकी = नशे में हो गई।

पिय की चाह सखिन कहीं, फूल सुदरसन पाय।
ऊतर दीनो नागरी, छाती पुहप लगाय ॥७३॥

दोऊ बिधि इन नैन कों, सुख को नहीं प्रसग।
बिछुरे तरफत हैं सबै, भेंटत होत ·· ॥७४॥

रति बढ़ि भए सिगार सब, हाव होत हैं आन।
पुनि ताही के अति बढ़े, हेला मन में जान।७५॥

ललन बसन किए तोर के, सौतन के अभिमान।
बिन सिगार तुव मधुरता, भई सिगार समान ॥७६॥

हौ अहीर सिसुपाल नृप, ताहि तज्यो कत तीय।
धर अचेत रुकमन परी, सुनत गयो उड़ि जीय ॥७७॥

बिसनादिक तजि देवता, कहा बर्यो मोहि आय।
सिव बोलत यह भूमि पै, गिरी सिवा मुरझाय ॥७८॥

अथ मन बिभचारी बरनन।

प्रेम रु भय बिरहादि तें, मुँह सों कहे न भाव।
तन बेदन तें रोग कहि, बरनत बेद सुभाव ॥७९॥

मान ग्यान कुल कानि सब, सीस नहीं क्यों जाय।
सखी स्यामघन की सुरत, मो हिय तें जनि जाय ॥ ८०॥

तिय लखि पिय चख तुव परी, अचल भई अभिराम।
मनु भितरहुँ बैठे भँवर, कमलन को कर धाम ॥ ८१ ॥

पुनि बियोग के भेद ये, द्वै बिधि किए प्रकास।
प्रथम पूर्बानुराग अरु, द्वितिय जान परिहास ॥८२॥

बहुरि कहत रसलीन द्वै, बिधि पूरबानुराग।
एक सुने दूजे लखे, गहे प्रेम के लाग ॥८३॥

---

७७. धर = धरती। रुकमन = रुक्मिणी।

७८. बिसनादिक = विष्णु आदि। सिवा = पार्वती, उमा।

७९. बेदन = वेदना, व्यथा।

८१. धाम = स्थान; घर।

८३. पूरबानुराग = पूर्वराग नामक वियोग श्रृंगार।

निपट निलज यह जलज सुत, जिहिं न नेह को ग्यान।
हरि मुख निरखत नैन बिच, पलक रचे जिन आय ॥८४॥

गोगन गोहन जात बन, मोहन सोहन स्याम।
पलक कलप सम कलप ज्यों, बलि बीतत इहिं नाम ॥८५॥

दुतिय बियोग परिहास जो, पिय प्यारी द्वै देस।
जामें नेक सुहात नहिं, उद्दीपन को लेस ॥८६॥

---

८४. जलजसुत = ब्रह्मा। नेह = प्रेम।
८५. गोगन = गायों का झुंड। गोहन = चराना। सोहन = सुंदर।
८६. दुतिय = द्वितीय, दूसरा। द्वै देस = दो स्थानों पर। नेक = तनिक भी।

फुटकल कबित्त और स्फुट दोहे

विषयानुक्रम

छंदानुक्रम

विषयानुक्रम

स्फुट दोहों का विषयानुक्रम

छंदानुक्रम

कुछ और पाठांतर,

(रामपुर, लंदन एवं हैदराबाद की प्रतियों के आधार पर)

२—प्रथम पंक्ति—'निरंकार निर्गुन अखिल पावन प्रभु करतार।'

७—ते भई (नैन भए)।

२०—कासिम (कादिर)। सैयद (तैयब)।

५४—भय (भये)।

६२—सबन (रसन)।

७१—रति (अतन)। जाहि (जासु)।

७२—नायका अरु नायक (हू कह्यौ)। इस दोहे की दूसरी पंक्ति का पाठांतर इस प्रकार है: 'भावे मन मे नायिका अरु नायक पहचानु।'

१३०—रहि जाइ (दरसाय)।

१४८—धरि (धन)। औतरै (औतरी)।

२३६—छल छंद पढ़ि (जो छंद पढ़ि)। तान (बानि)।

४०८—मीन (पीक)। जिमि (जिय)।

४१२—ललाइ (लखाइ)।

४२०—रस (जल)।

४३६—होइ (होन)।

४४३—प्रान को (मन बिखैं)।

४४६—बिलास (हुलास)

४५०—नेहन हीं (नेहमई)।

४५३—ते (पैं)।

४६६—द्वितीय पक्ति इस प्रकार है: 'ये सुभाय अब कचन के घन में होत लखाय'।

४६७—पानिय (पानिप)।

४७०—सुचि (बच)।

४६१—द्वितीय पंक्ति का पाठातर इस प्रकार है:
'ये सब बरने नायिका जिनकी बुद्धि उतंग।'

५०१—यह (फिर)। बनाइ (नसाय)।

५०७—बरन (बरनि)।

५१७—सो तुव होइ (तोऊ न तोहि)।

५३०—क्वाहि (कालिह) । मोरि रिसौहैं (मो सिर सोहैं) ।

५४२—बंधनता उनकौ (ताड़न बंधन) ।

५७३—सौ बलै (सौह ले)

५८३—धीर ललित सिगार कहि बरनत हैं कवि लोय (द्वि० पं०) । सात रीति अति होय (द्वि० पं०) ।

६५८—सूम (स्याम) ।

८२१—तव (तन) । आए हैं लपटि (आई है पलटि) ।

८६०—बसन (बसत) ।

८६४—बचन (बस्तु जो) ।

८६७—मई (मय) । इति त्रिय (तृतीय) ।

८६८—लख सो कहौ (यो लखि कहै) ।

८९०—तिय (दे)

८९१—आनि (प्रान)

८९७—बोध जागिबो जानिए (प्रथम चरण) ।

९२०—कराहादिक तें जोय (च० च०) ।

९५९—बिष व्यालु (लघु मान) । छलो बाल (छूटौ द्वार) ।

९९०—सोहन सोहन भई (सोहै ताहि) । रस कृपान (रिस कृपान)

९९१—अरुन चितै (चितवन ही) । यह तिय की (तिय मुख की) ।

९९२—लहि मूगा छबि दग मुर्गनि (लखि परकच्छ अँसुआ धरन) । लह्यौ (भयौ) । नख (मुख) । पिय (तकि) । पच्छ (बच्छ) ।

१०२०—कहियो री (कौन कहै) । जाइ (आय) । अंग (अंक) । मिलाइ (मिलाय) ।

अलंकार निर्देश

१—दृष्टांत अलंकार—वर्ण्य और अवर्ण्य दोनों सधर्म हैं और दोनों में परस्पर प्रतिबिंबन है।

३—विरोधाभास—सब मे रहता भी है और सब से न्यारे भी है।

४—निरुक्ति अलंकार—'अलह' नाम में अन्यार्थ की कल्पना को गई है।

५—हेतु अलंकार।

६—असंभवालकार।

८—दृष्टातालंकार।

६४—कारक दीपक—एक नायिका अनेक कार्य करती दिखाई गई है।

६७—प्रथम हेतु।

६८—श्लेष से पुष्ट अभेद रूपक।

७६—श्लेष (रसलीन) से पुष्ट रूपक।

७८—रूपकालंकार।

८३—सावयव रूपकालंकार।

८६—दृष्टातालकार।

८६—अभेद रूपक।

६४—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तास्पदा।

६४—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तास्पदा।

६५—उपमालंकार।

६८—रूपक-तद्रूप।

१०१—कारक दीपकालंकार।

१०२—भ्रातिमान् और उपमा।

१०४—यमक और रूपक की संसृष्टि।

१०५—दृष्टातालंकार।

११०—हेतूत्प्रेक्षा—सिद्धास्पदा।

१११—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

११२—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्ता।

११३—दृष्टातालंकार।

११५—उपमा।

११६—वस्तूत्प्रेक्षा—अनुक्तास्पदा।

११९—पूर्णोपमा।

१२३—हेतूत्प्रेक्षा—सिद्धास्पदा।

१२४—उदाहरणालकार।

१२५—श्लेष से पुष्ट रूपक।

१३३—गम्योत्प्रेक्षा।

१३९—दृष्टांत या उदाहरण।

१४३—सावयव रूपक।

१४८—असंभवालंकार—'असम्भवोऽर्थनिष्पत्तेरसम्भाव्यत्ववर्णनम्।—कुवलय

१५४—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तास्पदा।

१५५—पचम विभावना—'विरुद्धात्कार्यसम्पत्तिः···'।—कुवलय

१६७—यमकालंकार।

१८६—पर्याय प्रथम।

१९०—(१) अनुप्रासालंकार। (२) हेतु प्रथम।

१९२—(१) दृष्टात, (२) समुच्चय प्रथम : 'समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके।'—साहित्यदर्पण

१९५—दृष्टातालकार।

१९६—श्लेष से पुष्ट उपमा।

२०१—उपमा।

२०५—उदाहरण।

२०७—द्वितीय पर्यायोक्तालंकार।

२१२—श्लेष से पुष्ट उपमा।

२१५—विभावना पंचम।

२१७—श्लेष।

२१८—विभावना प्रथम।

२२२—सावयव रूपक।

२२७—विभावना तृतीय।

२२८—काव्यलिंग अलंकार : इस दोहे का प्रथम वाक्य समर्थनीय है जिसका समर्थन दूसरे वाक्य से किया गया है।

२२६—द्वितीय पर्यायोक्त ।

२३४—उपमा ।

२३७—विकल्पालंकार ।

२४४—श्लेष ।

२४५—व्याजोक्ति ।

२४६—श्लेष ।

२४७—श्लेष से पुष्ट उपमा ।

२५३—व्याजोक्ति ।

२५४—व्याजोक्ति ।

२६७—अनुप्रास, श्लेष और व्याजोक्ति ।

२६९—यमकालंकार ।

२७०—यमकालंकार ।

२७७—रूपकातिशयोक्ति ।

२७८—रूपकातिशयोक्ति ।

२७९—श्लेष ।

२८१—रूपक ।

२८२—उदाहरण या दृष्टांत ।

२८३—श्लेष से परिपुष्ट उपमा ।

२८६—काव्यलिंग ।

२९१—सांग रूपक ।

२९३—यमक ।

२९४—छेकोक्ति ।

२९६—अनुप्रास; श्लेष; तद्रूप रूपक ।

२९७—पर्याय प्रथम ।

२९८—उदाहरण ।

२९९—सामान्यालंकार : 'सामान्यं यदि सादृश्याद्विशेषो नोपलक्ष्यते ।'—
कुवलय० । यमक; छेकोक्ति ।

३००—उपमा ।

३०१—कारकदीपक ।

३०४—छेकोक्ति ।

३०८—काव्यलिंग ।

३०६—श्लेष से पुष्ट सावयव रूपक ।

३२४—यमक; छेकोक्ति ।

३३६—पर्यायोक्त प्रथम ।

३४२—काव्यलिंग ।

३४४—(१) यमक अभंगपद—प्रथम पंक्ति में, भंगपद द्वितीय पक्ति मे । (२) अर्थापत्ति ।

३४५—असंगति प्रथम—'विरुद्धं भिन्नदेशित्व कार्यहेत्वोरसगतिः ।'—कुवलय

३७०—उपमा ।

३७३—सावयव रूपक ।

३७८—प्रथम पर्यायोक्त ।

३६६—मीलित;उन्मीलित,उपमा ।

३६७—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया ।

४०८—भ्रांतापह्नुति और तद्गुण ।

४१७—सांगरूपक से परिपुष्ट विशेषोक्ति ।

४२४—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया ।

४२७—साग रूपक ।

४३०—निरुक्ति से पुष्ट रूपक ।

४३५—सम-अभेदरूपक ।

४४२—पूर्णोपमा ।

४४७—पूर्णोपमा ।

४५२—अभेदरूपक—सम ।

४५३—पूर्णोपमा ।

४५७—परंपरित रूपक ।

४५८—परंपरित रूपक ।

४५६—परपरित रूपक ।

४६१—विशेषोक्ति ।

४६५—पूर्णोपमा ।

४६८—विशेषोक्ति—'कार्याजनिर्विशेषोक्तिः सति पुष्कलकारणे ।'—कुवलय

४७१—काव्यलिंग ।

५१६—भंगपद यमक ।

५२०—पूर्णोपमा।

५२७—हेतूत्प्रेक्षा।

५३१—परंपरित रूपक।

५३३—निदर्शना प्रथम : 'वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना।'
—कुवलय०

५३५—यमक।

५३६—उदाहरण।

५७०—छेकापह्नुति।

५७४—पर्यायोक्त—द्वितीय : 'व्याजेनेष्टसाधनम्।'

५७८—परंपरित रूपक।

६००—अर्थापत्ति।

६१८—यमक।

६१६—श्लेष से परिपुष्ट उपमा।

६२०—अभेद रूपक।

६४२—दृष्टांत।

६४५—उपमा—परंपरित।

६५१—रूपक

६५७—श्लेष से परिपुष्ट उपमा।

६६१—दृष्टांत।

६६७—मीलित : मीलितं यदि साद‍ृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते।'—कुवलय

६७३—अभेद रूपक; कारकदीपक:—'क्रमिकैकगतानां तु गुम्फः कारकदीपकम्।'—कुवलय

६७५—हेतूत्प्रेक्षा।

६७७—पूर्णोपमा।

६७८—कैतवापह्नुति।

६७६—अभेद रूपक।

६८२—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

६८३—काव्यलिंग।

६८७—अभेद रूपक।

६८८—अभेद रूपक।

६९१—गम्योत्प्रेक्षा।

६९७—अनुप्रास।

७०८—कारकदीपक।

७१८—भगपद यमक।

७२७—श्लेष से पुष्ट प्रथम पर्यायोक्त।

७२९—यमक।

७३१—सूक्ष्म : 'सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञेतरसाकूतचेष्टितम्।'—कुवलय

संलक्षितस्तु सूक्ष्मोऽर्थ आकारेणेङ्गितेन वा।
कयापि सूच्यते भङ्ग्या यत्र सूक्ष्मं तदुच्यते।—सा० द०

७३३—युक्ति।

७३४—समुच्चय।

७४४—सूक्ष्म।

७५१—दृष्टांत या उदाहरण।

७६७—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

७७२—गम्योत्प्रेक्षा।

७७७—परंपरित रूपक।

७८२—यमक; अनुप्रास—वृत्ति।

७८३—विशेषोक्ति।

७९१—पर्यायोक्त।

७९२—अनुप्रास—वृत्ति।

८०७—दृष्टात या उदाहरण—'चेद्बिम्बप्रतिबिम्बत्व दृष्टातः...'।—कुवलय

८११—शुद्धापह्नुति।

८१३—भगपद यमक।

८३३—व्यक्ताक्षेप।

८३६—छेकोक्ति।

८४७—कारकदीपक।

८५७—सहोक्ति।

८६५—स्वभावोक्ति : 'स्वाभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम्।'—कुवलय।

८६६—संभावना।

८८३—स्वभावोक्ति ।

८९६—श्लेष—रूपकगर्भ।

९१४—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

९२२—उत्प्रेक्षा से पुष्ट अत्युक्ति।

९३५—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

९३७—काव्यलिंग।

९४१—श्लेष से पुष्ट रूपक।

९४३—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।

९७२—लोकोक्ति।

९७३—पर्यायोक्त।

९९८—असभव : 'असम्भवोऽर्थनिष्पत्तेरसंभाव्यत्ववर्णनम्।'—कुवलय

१००३—तृतीय प्रतीप।

१००४—वृत्त्यनुप्रास, रूपक और अर्थापत्ति।

१००५—(१) लेश, 'लेशः स्याद् दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम्।'—कुवलय
(२) व्याघात : 'स्याद्व्याघातोन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत्।'—कुवलय। (३) विषम द्वितीय :'विरूपकार्यस्योत्पत्तिरपरं विषमं मतम्।'—कु० (४) विषम तृतीय : 'अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात्।'—कु०

१००६—काव्यलिंग।

१००७—प्रत्यनीक।

१००९—भ्रांतिमान्।

१०१०—भ्रांतिमान्।

१०१४—यमक।

१०१५—तुल्ययोगिता प्रथम।

१०२०—परिकरांकुर।

१०२२—व्याघात—प्रथम : 'स्याद् व्याघातोन्यथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत्।'—कुव०

१०२८—यमक से पुष्ट उपमा।

१०३१—व्याघात—प्रथम।

१०३४–विशेषोक्ति ।

१०३५–परिकर ।

१०३८–निरुक्ति ।

१०४४–व्याघात ।

१०६९–विशेषोक्ति ।

१०७०–परिवृत्ति : 'परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः ।'—कुवलय

१०८५–उदाहरण ।

१०८८–चपलातिशयोक्ति : 'चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे ।'—कु०

११०४–विषम—प्रथम : 'विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयोः'—कुवलय

११०९–लोकोक्ति ।

१११३–अर्थांतरन्यास ।

१११९–रूपक ।

११२१–विषादन ।

११२६–काव्यलिंग ।

११४७–उदाहरण ।

———

अंगदर्पण

१—वृत्त्यनुप्रास, श्लेष ।

२—श्लेष (नेह और बालन में); उपमा; लोकोक्ति ।

४—उपमा ।

६—लोकोक्ति ।

७—शुद्धापह्नुति ।

८—उत्प्रेक्षा ।

९—उत्प्रेक्षा ।

१२—शुद्धापह्नुति ।

१३—वस्तूत्प्रेक्षा ।

१४—(१) श्लेष, (२) वृत्त्यनुप्रास, (३) अवज्ञा : 'ताभ्यां तौ यदि न स्यातामवज्ञालंकृतिस्तु सा ।'—कुवलय]
(४) लोकोक्ति ।

१६—उत्प्रेक्षा ।

१७—उत्प्रेक्षा ।

१९—हेतूत्प्रेक्षा ।

२०—हेतूत्प्रेक्षा ।

२३—वस्तूत्प्रेक्षा ।

२५—व्यतिरेक : 'व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययो : ।'—कुवलय

२७—वस्तूत्प्रेक्षा : श्लेष और उपमा से परिपुष्ट ।

२८—श्लेष और अवज्ञा ।

२९—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया ।

३१—अभेद रूपक, लोकोक्ति ।

३२—विभावना—पंचमी ।

३५—यथासंख्य ।

३६—वृत्त्यनुप्रास ।

३७—रूपक, गम्योत्प्रेक्षा, लोकोक्ति ।

३८—उत्प्रेक्षा ।

४०—वृत्त्यनुप्रास ।

४१—रूपक और असंगति ।

४२—रूपक ।

४३—उत्प्रेक्षा । अनुप्रास—वृत्ति ।

४५—उत्प्रेक्षा ।

४६—परंपरित रूपक ।

४८—भेदकातिशयोक्ति ।

५०—मिथ्याध्यवसित ।

५१—गम्योत्प्रेक्षा ।

५२—उत्प्रेक्षा ।

५४—विभावना—द्वितीय ।

५५—अर्थांतरन्यास ।

५८—निरुक्ति ।

६०—गम्योत्प्रेक्षा; श्लेष ।

६१—विभावना—पंचमी ।

६४—गम्योत्प्रेक्षा ।

६५—श्लेष, भेदकातिशयोक्ति; निरुक्ति ।

६७—यमक ।

७१—गम्योत्प्रेक्षा; निरंग रूपक ।

७३—७४—उत्प्रेक्षा ।

७५—उदाहरण ।

७७—उत्प्रेक्षा ।

७८—उपमा ।

८०—संदेह ।

८२—अत्युक्ति ।

८३—श्लेष ।

८४—हेतूत्प्रेक्षा ।

८६—उत्प्रेक्षा—वस्तु ।

८७—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

९१—श्लेष से पुष्ट शुद्धापह्नुति ।

९३—उत्प्रेक्षा ।

९५—हेतूत्प्रेक्षा—गम्य ।

९८—उत्प्रेक्षा ।

९९—१००—उत्प्रेक्षा ।

१०४—उत्प्रेक्षा ।

१०८—यमक ।

११०—उत्प्रेक्षा ।

११२—उत्प्रेक्षा ।

११४—उदाहरण ।

११८—निषेधाक्षेप ।

११९—उत्प्रेक्षा ।

१२२—वस्तूत्प्रेक्षा ।

१२३—वृत्त्युनुप्रास ।

१२४—अर्थापत्ति : 'कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते ।'—कुवलय

१२६—उत्प्रेक्षा से परिपुष्ट काव्यलिंग ।

१२८—काव्यलिंग; छेकोक्ति : 'छेकोक्तिर्यत्र लोकोक्तेः स्यादर्थान्तरगर्भिता ।' —कुवलय

१२९—अभेद रूपक ।

१३०—काव्यलिंग; अर्थांतरन्यास ।

१३१—सहोक्ति; भेदकातिशयोक्ति ('कठिन' भेदक पद है); व्यतिरेक; छेकोक्ति; काव्यलिंग आदि ।

१३२—काव्यलिंग; प्रथम पर्याय : 'पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेकसंश्रयः ।'

१३३—वस्तूत्प्रेक्षा ।

१३४—वस्तूत्प्रेक्षा ।

१३७—तद्गुण : स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रह : ।'—कुवलय

१४१—वस्तूत्प्रेक्षा ।

१४३—गम्य हेतूत्प्रेक्षा ।

१४४—द्वितीय समुच्चय : 'अहं प्राथमिकाभाजामेककार्यान्वयेऽपि सः ।'—कुवलय
(२) अधिक—द्वितीय ।

१४७—उत्प्रेक्षा ।

१५४—काव्यलिंग।
१५६—वस्तूत्प्रेक्षा।
१५८—उत्प्रेक्षा; विशेषोक्ति।
१६२—अत्युक्ति; तद्गुण।
१६३—श्लेष; उपमा; पर्यायोक्त प्रथम।
१६४—अत्युक्ति।
१६७—वृत्त्यनुप्रास।
१६८—वस्तूत्प्रेक्षा।
१७०—वृत्त्यनुप्रास; पूर्णोपमा (यहाँ 'ज्यों' उपमा का वाचक है)।
१७३—वस्तूत्प्रेक्षा—उक्तविषया।
१७४—मालोपमा : 'मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते।'—साहित्यदर्पण
१७६—मालोपमा।
१७९—पूर्णोपमा।

———

फुटकल कवित्त

अलंकारनिर्णय

१—उपमालकार।

३—रूपक (नाम को अमृत); लोकोक्ति; अर्थांतरन्यास।

४—अर्थांतरन्यास

६—रूपक।

७—एकदेशविवर्त्ति रूपक।

८—विशेषोक्ति प्रथम, हेतु।

१३—संबंधातिशयोक्ति (जाके दर दरमादे होइ जात शाहजादे)।

१४—रूपक निरंग।

१६—संदेहालंकार।

१८—रूपक।

२०—असंबंधातिशयोक्ति : 'योगेऽप्ययोगोऽसम्बन्धातिशयोक्तिरितीर्यते।'-कुवलय

'आनद उछाह लाह, भूलि जात मुक्ति चाह,
देखे दरगाह यह साह बरकात के।'

२१—तृतीय विशेष :

'किञ्चिदारम्भतोऽशक्यवस्त्वन्तरकृतिश्च सः।
त्वां पश्यता मया लब्धं कल्पवृक्षनिरीक्षणम्।' —कुवलय

२२—हेतूत्प्रेक्षा।

२३—(१) प्रथम पर्याय : 'पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेकसंश्रयः।'—कुवलय

(२) तद्गुण।

२४—उपमा; रूपक।

२५—संदेह।

२६—मालोपमा।

२८—उपमा।

२९—संबंधातिशयोक्ति।

३०—विशेषोक्ति; रूपक।

३१—रूपक; अर्थांतरन्यास ।

३३—पर्यायोक्त ।

३५—(१) उपमा । (२) द्वितीय पर्याय : 'एकस्मिन् यद्यनेकं वा पर्यायः सोऽपि सम्मतः ।'—कुवलय

३६—वस्तूप्रेक्षा ।

३७—पर्यायोक्त ।

३८—अतद्गुण : 'सङ्गतान्यगुणानङ्गीकारमाहुरतद्गुणम् ।'—कुवलय

३९—उपमा; वृत्त्यनुप्रास ।

४०—विशेषोक्ति ।

४१—गम्योत्प्रेक्षा ।

४२—सम प्रथम ।

४३—रूपक; उपमा ।

४४—विषादन (लाल लखें सुख होत है त्यों लखि, लाल को आन भयो दुख ती को ।)
—'इष्यमाणविरुद्धार्थसम्प्राप्तिस्तु विषादनम् ।'—कुवलय

४५—(१) श्लेष । (२) मुद्रा (सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः) । (३) उपमा (दीपक लौं) । (४) पंचमविभावना : विरुद्धात्कार्य-सम्पत्तिः । —(आनन सरस बेधे पाहन ते प्रान घने)

४६—गम्योत्प्रेक्षा ।

४८—मालोपमा से संपुष्ट उत्प्रेक्षा ।

५१—निरुक्ति ।

५२—(१) रूपक अभेद (बिरह कसाई) (२) द्वितीयसमुच्चय (अहं प्राथमिकाभाजामेककार्यान्वयेऽपि सः ।—कुवलय)

५३—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा ।

५५—व्यतिरेक (सशोक और अशोक) ।

५६—विषादन से पुष्ट प्रहर्षण ।

५९—उपमा-पूर्णा ।

६०—परंपरित रूपक ।

६१—काव्यलिंग-रूपक से परिपुष्ट ।

६२—यमक; परंपरित रूपक।

६४—श्लेष से पुष्ट रूपक।

६६—मुद्रालंकार—'सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः।'—कुवलय

६७—अर्थापत्ति।

६८—सावयव रूपक।

७०—सांगरूपक।

७१—रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा (यहाँ 'सी' उत्प्रेक्षा का वाचक है।)

७२—साग रूपक

७३—हेतूत्प्रेक्षा।

७४—संदेह से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

७५—अपह्नुति।

७६—(१) पंचम विभावना। (२) लेश : 'लेशः स्याद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्व-कल्पनम्।'—कुवलय

७७—सावयव रूपक।

७६—परिवृत्ति : 'परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः।'—कुवलय

८०—अवज्ञालंकार।

८१—अवज्ञालंकार।

८२—यमक।

८३—उत्प्रेक्षा (यहाँ 'सी' उत्प्रेक्षा का वाचक है)। (२) उपमा।

८४—(१) उत्प्रेक्षा (पाती जबै दुखकाती सी आई)। (२) प्रहर्षण प्रथम। (३) रूपक (हियो सुख भौन भयो) (४) रूपक से पुष्ट उत्प्रेक्षा (आखर दंड को कागद पै बिरहा गज को मनो साकर आई)।

स्फुट दोहे

२—उपमालंकार।

६—रूपक।

१५—काव्यलिंग।

१८—प्रथम पर्यायोक्त।

२६—यमक।

२८—वस्तूत्प्रेक्षा।

शब्दानुक्रम

रसप्रबोध

(शब्दों के आगे छंदसंख्याएँ दी गई हैं)

ह

———

अंगदर्पण

———

फुटकल कवित्त

स्फुट दोहे

परिशिष्ट

खोजविवरण सन् १९०५

संख्या १५ अंगदर्पण वा शिखनख रसलीन

वर्स—सब्सटेंस—प्रिंटिंग पेपर। लीव्स—१४। साइज—१०×६३ ईंचेज। लाइंस—१२ आन ए पेज। एक्सटेंट—२१० श्लोकाज। अपिअरेंस—न्यू। कंप्लीट। कैरेक्टर—देवनागरी। प्लेस आफ डिपाजिट—बाबू जगन्नाथ प्रसाद, अकाउंटेंट, छतरपुर।

अंगदर्पन आर सिखनख रसलीन।—ए डिस्क्रिप्शन आफ राधा फ्राम टाप टु टो बाइ द पोएट गुलामनबी एलियास रसलीन। ही रोट दिस बुक इन संवत् १७९४ (१७३७ ए० डी०) (सी १९)।

बिगिनिंग—श्री गनेशाय नमः॥ अथ सिखनख गुलामनबी रसलीन कृत लिक्खते॥

दोहा

सो पावै या जगत मैं सरस नेह के भाइ॥
जो तन तैं तिलन लो बाल न हाथ बिकाइ॥

बार बरनन

मोर पच्छ जो सिर चढ़ै बारन तैं अधिकाइ॥
सहस चखन लखि तुव कचन परे मान छिन पाइ॥
बेनी बंध एक ठौर ह्वै अति सम राखत ठौर॥
बिथुर चौर से करत है मन बिथोर घर चौर॥

एंड

सिखनख पूर्णता बर्नन॥

ब्रजबानी सिखनख रची यह रसलीन रसाल॥
गुन सुबरन नग अरथ लहि हिये धरौ ज्यौं माल॥
अंग अंग कौ रूप सब यातें परत लखाइ॥
नाम अंग दरपन धरो याही गुन तैं ल्याइ॥
सत्रह सै चौरानबे संवत् में अभिराम॥
यह सिख नख पूरन करी लै मुख प्रभु को नाम॥
इति सिखनख गुलाम नबी रसलीन बिलगरामी कृत॥
समाप्तः राम राम राम राम राम राम॥

खोज विवरण १९२३, १४० ए

नं० १४० (ए)। नखसिख बाई रसलीन (सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी)। सब्सटेंस—कंट्री-मेड पेपर। लीव्स—६। साइज—१२×८ इंचेज। लाइंस पर पेज—७०। एक्सटेंट—२६३ अनुष्टुप् श्लोकाज। अपियरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डेट आफ कंपोजिशन—संवत् १७९४ आर ए० डी० १७३७। डेट आफ मैनुस्क्रिप्ट—सं० १९३५ आर ए० डी० १८७८। प्लेस आफ डिपाजिट—ठाकुर त्रिभुवन सिंह, विलेज—सैयदपुर, पोस्ट आफिस—नीलगाँव, डिस्ट्रिक्ट—सीतापुर (अवध)।

बिगिनिंग—श्री गणेशायनमः। अथ नखसिख लिष्यते।

॥ दोहा ॥

सो पावे या जगत में सर सनेह के भाय।
जो तन मन ते तिलन लौं बालन हाथ बिकाय॥
बार बरनन॥
मोर पच्छ यों सिर चढ़े बारन ते अधिकाय।
सहस चषन लषि तुव कचन परे मान छिन पाइ॥

बेनी बरनन॥

भनत न कैसेऊ बनै या बेनी के दाय।
तू पीछे गहि जगत के पीछे परी बनाय॥
जे हरि रहे त्रिलोक मो कालीनाथ कहाइ।
ते तुव बेनी के डसे सब जगु हंसतु बनाइ॥

॥ मैंमद बरनन॥

मानिक मनि पैं नहीं जडी मैंमद झबियन लाइ।
मनि तजि फनि पीछे लगी तुव बेनी के आइ॥
मैंमद झबियन मुकुत लषि यह जिव आई जागि॥
ससि हित पीछे राहु के नषत रहे हैं लागि॥

॥ जूरो बरनन॥

चंदमुषी जूरो चितै चित लीन्हों पहिचान।
सीस उठावैं हैं तिमिर ससि को पीछो जानि॥
यों बाँधति जूरा तिया पटिवन को चिकनाइ॥
पाग चिकनियाँ सीस की जाते रही लजाइ॥

अथ गति बरनन ॥

दो० तुव गति लषि गज षेह सिर डारै कौन लोभाइ।
जा सीषत ही हंस के लोहू उतरत पाइ ॥

संपूर्ण बरनन ॥

नवला अमला कनक सी चपला सी चल चार।
चंदकला सी सेत कर कमला सी सुकुमार ॥
मुष ससि निरषि चकोर अरु तन पानिप लषि मीन।
पद पंकज देषत भवर होतिं नैंन रसलीन ॥

हाव बरनन ॥

हाव भाव अति अंग लपि छवि की छलक निसंग।
भूलत ज्ञान तरंग सब ज्यों करछाल कुरंग ॥

बसन बरनन ॥

लाल पीत पट स्याम सित जो पहिरैं दिन राति।
लगत गात छबि छाइ कै नैनन मो चुभि जात ॥

अथ नष सिष बरनन ॥

ब्रज बानी नप सिष रच्यो यह रसलीन रसाल।
गुन सुबरनन गुन अर्थ लहि हिये धरौ ज्यो माल ॥
अंग अंग के रूप सब यामें परत लषाइ।
नाम अंग दरपन धरो याही गुन ते लाइ ॥
सत्रह सै चौरानबे संबत मैं अभिराम।
या सिष नष पूरन कियौ लै मुष प्रभु को नाम ॥

इति श्री हुसेनी वासती अंग दर्पण सैयद गुलाम नबी रसलीन बाकर पुत्र बिलग्रामी भाद्रमासे शुक्ल पक्षे तिथौ चतुर्थ्यां सनिवासरे श्री संवत १६३५ श्री ठाकुर हिमंचल हेत ॥

खोज विवरण सन् १६०५

नं० १६, रस प्रबोध, वर्स—सब्सटेंस—कंट्रीमेड पेपर। लीव्स—१०६। साइज—६ × ६ इंचेस। लाइंस—७ आन ए पेज। एक्सटेंट—१,७८५ श्लोकाज। अपियरेंस—आर्डिनरी। कंप्लीट। करेक्ट। कैरेक्टर—देवनागरी। प्लेस आफ डिपाजिट—बाबू जगन्नाथ प्रसाद, हेड अकाउंटेंट, छतरपुर।

रस प्रबोध—ए ट्रिटाइज आन हिंदी रेटोरिक बाइ दि पोएट गुलाम

नबी, एलिआज रसलीन, सन आफ सैयद बाकर आफ बिलग्राम (डिस्ट्रिक्ट हरदोई)। ही रोट दिस बुक इन् संवत् १७६८ (१७४१ ए० डी०)। दि मैनुस्क्रिप्ट इज डेटेड संवत् १६०६ (१८५० ए० डी०) (सी नं० १५)।

बिगिनिंग—श्री गणेशाय नमः अथ सरसुतीनमः ॥
अथ रसप्रबोध ग्रंथ लिष्यते ॥

॥ दोहा ॥

अलह नाम छबि देत यौं ग्रंथन के सिर आइ।
ज्यौ राजन की मुकु (ट) तै अति सोभा सरसाय ॥ १ ॥
अलष अनाद अनंत नित पावन प्रभु करतार।
······सिरजनहार अरु दाता दुषद अपार ॥ २ ॥
रमो सबन मै अरु रहौ न्यारो आप··इ।
याते छकित भऐ सबै लहौ न काहू जाइ ॥ ३ ॥
सत्रह सै अठानबे मधु सुदि छठ बुधवार।
बिगलराम में आइ कै भयौ ग्रंथ अवतार ॥ २५ ॥
एंड—ग्रंथ रसप्रबोध की पूरनता।
पूरन कीन्हौ ग्रंथ मै लै मुष प्रभु को नाम।
जा प्रसाद तै होत है सकल जगत को काम ॥४३॥
सुधरयौ बरन बिगार है कुमत कुदूषन लाइ।
ठौर ठौर लषि रीझ है सुमति सरस रस पाइ ॥४४॥
लिषौ ग्रंथ ऐ आगहू लोगन करहि अुद्धि।
पै अब यासों सोध कै ताहि कीयो सुद्धि ॥ ४५ ॥
ग्यारह सै चौवन सकल हिजरी संवत् पाइ।
सब ग्यारह सै चौवनै दोहा राषे ल्याइ ॥४६॥

इति श्री रसप्रबोध ग्रंथ सपूर्ण सैयद हुसैनी वस्ती बिलगरामी सैयद बाकर सुत सैयद गुलाम नबी रसलीन विरच्चिताया रस प्रबोध संपूर्न। फागुन सुदी ६ संवत् १६०७ मुकाम रसधान लिषत लाल जुगल किसोर काइथ बैद हमीरपुर के ॥ राम ॥

खोज विवरण सन् १६०६—८, सं० १६६

नं० १६६ (ए) रसप्रबोध बाई गुलाम नबी। वर्स। सब्सटेंस—कंट्री-

मेड पेपर। लीव्स—६६। साइज—१० × ६½ इंचेज। लाइंस—१७ आन ए पेज। एक्सटेंट—१७३४ श्लोकाज। अपियरेंस—आर्डिनरी। कैरेक्टर-देवनागरी। प्लेस आफ डिपाजिट—लाला कुंदन लाल, बिजावर।

बिगिनिंग—

खोज विवरण सन् १६२३-२५, सं० १४० बी०

न० १४० (बी)। रसप्रबोध बाई गुलाम नबी (रसलीन) आफ बिलग्राम (हरदोई)। सब्सटेंस—कंट्री मेड पेपर। लीव्स—७५। साइज—६¾ × ७ इंचेज, लाइंस पर पेज—१८। एक्सटेंट—१६०० अनुष्टुप श्लोकाज। अपिअरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डेट आफ कंपोजीशन—सन् ११५४ हिजरी = ए० डी० १७४१। डेट आफ मैनुस्क्रिप्ट—सन् १२४४ = संवत् १८६१ = ए० डी० १८३६। प्लेस आफ डिपाजिट—राजा पुस्तकालय भिनगा (बहराइच)।

बिगिनिंग—श्री गणेशायनमः॥ अथ रसप्रबोध लिख्यते॥ ध्यानात्मक मंगल चरण।

॥ दोहा ॥

अलह नाम छवि देत यों ग्रंथन के सिर आइ।
ज्यों राजन के मुकुट तें अति शोभा सरसाइ॥
अलष अनादि अनंत नित पावन प्रभु करतार।
जग को सिरजनहार अरु दाता सुखद अपार॥
रम्यौ सबन में अउ रह्यौ न्यारो आपु बनाइ।
याते थकित भए सब लह्यौ न काहू जाइ॥
जब काहूँ नहिं लहि परयो कीन्हे कोटि विचार।
तब याही गुनतें परयौ अलह नाम संसार॥
लहि न परत ता गुण कह्यौं वरनि सकत है कौन।
याते नामहिं सुमिरि कै गहि रहिये चित मौन॥

अथ नबी की स्तुति।

अति पवित्र रसना करौ मेघन जल ते धोइ।
तऊ नबी गुन कथन के जोग्य न कबहूँ होइ॥

जिनके पायन ते भई पावन भूमि बनाइ।
तिनको सुमिरन जो करै सो पावन होइ जाइ॥

एंड—निर्माणकाल—

ग्यारह सै चौअन सफल संवत हिजरी पाइ।
ग्यारह सै सब चौअने दोहा राखे ल्याइ॥

इति श्री हुशेनी वास्ती बेलग्रामी सैयद बाकर सुत गुलाम नबी (रसलीन) कृतो रसप्रबोध समाप्तम्। कार्तिक सुदि सप्तिमी ७ सन् १२४४ साल शाके १८९३ भौमवारे।

दोहा

गोंडा सहर ते पूर्व दिसि वेद कोश प्रमान।
ग्राम नाम वीरपुर जन्म भूमि अस्थान॥
दुशखत नौरंग सिंह के श्रीकृष्ण राधा जी सहाइ।

सब्जेक्ट—मंगलाचरण, नबी की स्तुति, कवि कुल वर्णन, रस वर्णन व लक्षण, रसरूप भाव, विभाव, नवरस, श्रृंगार रस कथन, स्थायी भाव, नायिका भेद, नवलवधू, नवोढा, मुग्धा, सभेद, मध्या प्रगल्भा, विचित्रा, मध्या, सुरत प्रौढ़ा, सभेद, पति दुखिता, खंडिता, धीरादि भेद, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, स्वकीया, असाध्या—पृष्ठ—१–१६।

सुरत गोपना। क्रिया विदग्धा। परकीया, लक्षिता। मुदिता। सुरत वर्णन। प्रेमासक्त। स्वतत्र, जननी अधीना, सामान्या, प्रेम, दुखित, गर्विता मानिनी। दुःखिता। अष्ट नायिका। गच्छत पतिकादि। पृ० १७–३२।

उत्तमा, मध्यमा और चित्रणी आदि भेद, नायिका की गणना भरत मत से, पति के चतुर्विधि भेद, वैसिक भेद। नायिका भेद। मिलन भेद। स्थायी भाव। सखी भेद। परिहास भेद। दूती भेद। नायिका स्तुति आदि, दूत भेद। पृ० ३३–४५।

षट्ऋतु वर्णन, उद्दीपनादि हाव, संशयात्मक उदाहरण, अवहित्थादि वर्णन, श्रृंगार रस भेद। मान छूटने के भेद, गुण कथन, १२ मास वर्णन, हास्य रसादि नवों रसों का वर्णन। रसजननी, सठ शत्रु, प्रस्तावक समाप्ति। पृ० ४६–७५।

नोट—ग्रंथकार सं० १७९८ मे वर्तमान थे। ये मुसलमान होते हुए भी

हिंदी के बड़े प्रेमी थे। ये अरबी फारसी के अच्छे विद्वान थे। इनका अंग-दर्पण नामक ग्रंथ और भी है। ये बिलग्राम (हरदोई) निवासी थे।

कविकुल वर्णन—

प्रगटे हुसैनी वास्ती वंशजु सकल जहान।
तामें सय्यद अबुल्ल फरह आए मधि हिंद्वान।
तिनके अबुल्ल फरास सुत जग जानत यह बात।
पुनि सय्यद अबुल्ल फरह भए तिनके सुत अवदात।
पुनि भे सयद हुसैन सुत तिनके सबल सरूप।
तिनके सुत सय्यद अली विदित भए जग भूप॥
सय्यद महद प्रगट भे तिनके अति बलवान।
ब्यलगराम श्रीनगर में जिन कीनो निज थान।
तिनके सयद-उमर भे तिन सुत सयद हुसैन।
तिनते सयद नसीरुदी ऐ सब जान।
अगेन॥ पुनि भए सयद हुसैन अरु पुनि सैयद सालार।
लुतफुल्लाल ह्वा भये तिनके विद्य अपार॥
पुनि सैअद दादन भये खुदादाद जिन्ह नाम॥
पुनि सैअद महमूद यो भये सिद्ध अभिराम॥
सय्यद जान मोहम्मद भे तिनके सुत आइ।
बहुरि अबुल कासिम भये तिनके अति सुखदाइ॥
सय्यद बुल कादर भए पुनि नबीव सुरजान।
तिनके सयद हमीद सुत जानत सकल जहान॥
पुनि सयद बाकर भए तिनके तनुज प्रसिद्ध।
सब लोगन में सिद्धता जिनकी प्रगटी सिद्ध॥
भयो गुलाम नबी प्रगट तिनके सुत जग आइ।
नाम करौ रसलीन जिन कबिताई में लाइ॥

ग्रंथनिर्माण काल—सत्रह सै अठानवे मधु सुदि छटि बुधवार।
ब्यलगराम में आइ कै भयौ ग्रंथ अवतारु॥

खोज विवरण सन् १९२३-२५, सं० १४० सी

रस प्रवोध बाई गुलाम नबी (रसलीन) आफ बिलग्राम। सब्सटेंस—कंट्री मेड पेपर। लीव्स—३५। साइज—१०×८

इंचेज। लाइंस पर पेज—७०। एक्सटेंट—१५३१ अनुष्टुप् श्लोकाज। अपियरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डेट आफ कंपोजीशन—संवत् १७९८ आर ए० डी० १७४१। डेट आफ मैनुस्क्रिप्ट—संवत् १९३५ आर ए० डी० १८७८। प्लेस आफ डिपाजिट—ठाकुर त्रिभुवन सिंह, विलेज—सैदपुर, पो० आ०—नीलगाँव, तहसील—सिधौली, डिस्ट्रिक्ट-सीतापुर (अवध)।

बिगिनिंग—श्री गणेशायनमः॥ अथ रस प्रबोध लिख्यते॥ दोहा॥

अलह नाम छवि देति यौं ग्रंथन के सिर आइ।
ज्यों राजन के मुकुट ते अति सोभा सरसाइ॥
अलष अनादि अनंत नित पावन प्रभु करतार।
जग को सिरजनहार अरु दाता सुषद अपार॥
रमौ सबुन मे अरु रहौ न्यारो आपु बनाइ।
याते थकित भए सबै लहौ न काहू न जाइ॥
जब काहू नहि लहि परी कीन्हें कोटि विचार।
तब याही गुन ते धरो अलह नाम संसार॥
लहि न परत ता गुन कहौ बरनि सकत है कौन।
याते नामहिं सुमिरि के गहि रहिए चित मौन॥

अथ नबी की अस्तुति॥

अति पवित्र रसना करौ मेघन जल सों धोइ।
तऊ नबी गुण कथन के जोग्य न कबहूँ होय॥
जिनके पावन ते भई पावन भूमि बनाइ।
तिनको सुमिरन जो करै सो पावैन ह्वै जाइ॥
नबी हते जग मूल पुनि पीछे प्रगटे सोइ।
ज्यो तरु उपजै बीज तै बीज अंत फिर होइ॥
जाको गहि सुरलोक जग चलो नरक पथ छोरि।
ऐसी बाँधि नबी दई संत धर्म की डोरि॥

एंड—सांत रस की प्रस्तावना॥

ससिन हरत निज देत सो रंग अनेक प्रबेस।
त्यो अब आये भये प्रभु देत जगत को भेस॥
यो आयो प्रभु जगत मैं जग प्रभु जानो नाह।
जिमि रवि को जानत तउन रवि आवत उन माह॥

फैलि रह्यो प्रभु जगत में देषि सकत नहीं कोय।
रवि देषाय अंधरेन को को अब झूठो होय॥
ऐसी बिधि या जगत में प्रभु की शक्ति लषाय।
ज्यों दिनकर प्रतिबिंब गुन दरपन देत जराय॥
जे पावत गुर ज्ञान ते तजि सब जग की बात।
नारायण को नाम लै नारायन ह्वै जात।
भले बुरे सब तेरिये सुनि लीजै यह नाथ।
रचे आपने हाथ के लाज तिहारे हाथ॥

अथ ग्रंथ पूरनता॥

पूरन कीन्हें ग्रंथ मैं लैं मुष प्रभु को नाम।
जा प्रसाद ते होत है सकल जगत को काम॥

सुधरो वरण बिगारिहै कुमिति कुदूषन लाइ।
ठौर ठौर लषि रीझिहै सुमति सरस रस पाय॥
लिषो ग्रंथ यह आगेहू लोगन हित कर बुद्ध।
पै अब यासो सोधि कै ताहि कीजिये सुद्ध॥
ग्यारह सैं चौवन सकल सवत हिजरी पाय।
ग्यारह सै सव चौवनैं दोहा राषे लाइ॥

इति श्री पोथी रसप्रबोध गुलाम नबी रसलीन कृत समाप्त भाद्रमासे कृष्ण पक्ष तिथौ पंचम्यां सनिवासरे श्री सवत १६३५ श्री पवार बंस ठाकुर हेमचल सिंह के हेत दरबारी कायस्थ ने लिषा।

सब्जेक्ट—नायक नायिका भेद आदि रस सहित।

खोज विवरण संवत् २००४-६ वि०

सं० ७३, रसप्रबोध, रचयिता—गुलाम नबी (रसलीन), बिलग्राम (हरदोई) निवासी। कागज देशी, पत्र—६०, आकार—६×५½" इंच, पंक्ति (प्रति पृष्ठ)—२१, परिमाण (अनुष्टुप्)—१७३२, पूर्ण, रूप—प्राचीन, पद्य, लिपि—नागरी, रचनाकाल—सं० १७६८ वि०, प्राप्तिस्थान श्रीयुत लाल श्री कंठनाथ सिंह जी, घेनुगावाँ, बस्ती।

आदि—श्री गणेशायनमः।

अथ रसप्रबोध लिख्यते॥

॥ दोहा ॥

मैं यह ग्रंथ कौ कीनो तिहि रसलीन।
अपने मन की उक्ति सों रचि रचि जुगुति नवीन ॥ १ ॥
नवहू रस को जब भयो यामैं बोध बनाइ।
रस प्रबोध या ग्रंथ को नाम धरचौ तब लाइ ॥ २ ॥
सत्रह सैं अट्ठानबे मधु सुदि छठि बुधवार।
बिलगराम मै आइकै भयो ग्रंथ अवतार ॥ ३ ॥
बोधि आदि तैं अंत लौं यह समुझै जो कोय।
ताहि और रसग्रंथ की फेरि चाह नहि होय ॥ ४ ॥
कवि जन सो 'रसलीन' यह बिनती करत पुकार।
भूलि निहारि बिचारि कैं दीजैं ताहि संवारि ॥ ५ ॥

॥ दोहा ॥

(प्रथम पत्र का अंत भाग फट चुका है)

अंत—लिख्यौ ग्रंथ यह आगेहूँ लोकन करि हित बुद्धि।
पै अब यासों सोधिकै ताहि कीजिये सुद्धि ॥११५४॥
ग्यारहं सै चौवन सकल हिजरी संवत पाइ।
सब ग्यारह सैं चौवने दोहा राषे ल्याइ ॥११५५॥

इति श्री हुसैनी वासती बिलगरामी सैयद बाकर सुत सैयद गुलामनबी विरचितायां रस प्रबोध ग्रंथ समाप्तम्। बनारस लाइट छापेखाने मे गोपीनाथ पाठक ने छापा।

विशेष ज्ञातव्य—

ग्रंथ पूर्ण है। रचनाकाल संवत् १७९८ वि०, मुद्रणकाल अज्ञात। रचयिता 'गुलाम नबी' उपनाम 'रसलीन'। ये बिलग्राम (हरदोई) निवासी सैयद बाकर के पुत्र थे। ग्यारह सै चौवन हिजरी मे प्रस्तुत ग्रंथ रचा गया और समस्त ग्यारह से चौवन छंदों मे समाप्त भी किया गया। ग्रंथ दोहा छंद में लिखा गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ मे नवरस का वर्णन किया गया है, इसी से इस ग्रंथ का नाम 'रसप्रबोध' रखा गया। विषय की दृष्टि से ग्रथ महत्वपूर्ण है।

———

छंद विमर्श

रसलीन ग्रंथावली मे समागत रचनाओं में दोहा, सवैया, कवित्त और गीत छंदों का व्यवहार हुआ है। रसलीन का सर्वप्रिय छंद दोहा है। रस-प्रबोध और अंगदर्पण--दोनों प्रमुख काव्यों की रचना दोहों मे हुई है। अतः इनमे उन्होंने अनेक प्रकार के दोहों का व्यवहार किया है। दोहा एक मात्रिक अर्धसम छद है, जिसके विषम चरणों में १३ और सम चरणों में ११ मात्राएँ होती हैं। इसके आदि में जगण नहीं होना चाहिए। दोहा समकलात्मक और विषम कलात्मक दो प्रकार का होता है। रसलीन के काव्य मे ये दोनों प्रकार प्रयुक्त हुए हैं। यथाः

> हिए मटुकिया माहि मथि, डीठि रई सों ग्वारि।
> मो मन माखन ले गई, देह दही सो डारि॥
>
> —र० प्र०, ६५८

इसके आदि में 'लघु गुरु' वर्ण हैं अतः यह विषम कलात्मक दोहा हुआ।

> पहिरि दुपहरी अरुन पट, चली सोचि जिय नाहिं।
> नैकु न जानी परति तिय फूली किंसुक माहिं॥
>
> —र० प्र०, ६१८

> अनपाए प्रिय बचन को, ध्यान माहि चितु जाइ।
> सो चिंता जहँ ताप अरु, आँसू स्वाँस लखाइ॥
>
> —र० प्र०, ८६४

इन दोनों दोहों के आदि मे क्रम से चार लघु और दो लघु एक गुरु हैं अतः ये दोनों समकलात्मक दोहे हुए। कला से मात्रा समझना चाहिए।

लघु और गुरु वर्णों के व्यवहारानुसार आचार्यों ने इसके विभिन्न प्रकारों का नामकरण किया है। यद्यपि भावलोक-विहारी कवि रचना के समय इन प्रकारों को ध्यान मे रखकर रचना नहीं करता तथापि अनजाने कोई न-कोई प्रकार विरचित हो ही जाता है। रसलीन के दोहों मे इनमें से बहुत से प्रकार मिलते हैं। कतिपय यहाँ दिए जा रहे हैं।

१. हंस दोहा

रा[१]धा[२]पद [३]बाधा[४]हरन [५]साधा[६] करि रसली[७]न ।
[८]अंग अगा[९]धा[१०] लखन को[११], [१२]कीन्हों[१३] मुकुर नवी[१४]न ॥

—अं० द०, १

यहाँ यह देखना होगा कि इसमे कितने वर्ण दीर्घ (द्विकल) हैं । चौदह वर्णों के द्विकल होने से 'हस' नामक दोहा होता है । अतः यह हंस दोहा हुआ ।

२. मदुकल दोहा

तेरह गुरु वर्णों या द्विकल वर्णों से मदुकल या गयंद दोहा होता है ।
यथा :

बा[१]न बें[२]धि सब बधें[३] को[४], खो[५]ज करत हैं[६] घा[७]य ।
अद्[८]भुत बा[९]न कटा[१०]च्छ जिहि, बिध्यौ[११] लगे[१२] सँग [१३]जाय ॥

—अं० द०, ४८

३. मच्छ दोहा

सात द्विकल या गुरु वर्णों से मच्छ दोहा होता है ।
यथा:

पिय बिछुरन दुख नवल तिय, मुख सो कहत लजाय ।
बदन मुँदे नल नीर के, जल सम रुके बनाथ ॥

—र० प्र०, ४१६

४. त्रिकल दोहा

नव द्विकल या गुरु वर्णों से त्रिकल दोहा बनता है ।
यथा :

स्याम मधुप निसि दिन बसैं, हिए तामरस माहि ।
गुरजन डर दुरजन भए, देखन देत न छाहि ॥

—र० प्र०, २२५

५. पयोधर दोहा—

इसमें बारह द्विकल व्यवहृत होते हैं। रसलीन ने एक ऐसे स्थल पर इसका व्यवहार किया है जहाँ इसके नाम की चरितार्थता स्पष्ट दिखाई पड़ती है ।

यथा :

कत न बोलियत, निठुर के यौं पूछत गहि हाथ।
धन अँसुआ घन बूँद लौं, झरे बात के साथ॥

—र० प्र०, १९६

६. कच्छप दोहा

इसमें कुल आठ द्विकल या गुरु वर्ण होते हैं।

यथा :

दुरकि परी[1] कहुँ उरबसी[2], नख कुच सी[3]स सुहा[4]इ।
तरनि छप्यौ[5] मनु गिरिसिखर [6]द्वैज कला[7] दरसा[8]इ॥

—र० प्र० १६१

७. चल दोहा

ग्यारह गुरु वर्णों का चल दोहा होता है। शेष लघु वर्ण होते हैं।

यथा :

कहुँ [1]लावति बिकसत कुसुम, कहुँ[2] डोला[3]वति बा[4]इ।
कहुँ[5] बिछा[6]वति [7]चाँदनी[8], मधुरितु [9]दासी[10] आ[11]इ॥

—र० प्र० ६७३

८. नर दोहा

इस दोहे में १५ वर्ण गुरु या द्विकल होते हैं।

यथा :

यौं भीजत कोऊ लला, अबलन अंग बनाइ।
भले पुहुप की बासु लौं, साँसु न पाई जाइ॥

—र० प्र०, ११५

९. शार्दूल दोहा

यदि दोहे में कुल छह ही द्विकल या गुरु वर्ण हों तो वह शार्दूल दोहा कहलाता है।

यथा :

[1]मोहन [2]सोषन बसिकरन, उनमा[3]दब उचटा[4]य।
मदन सरन गुन तरुनि कर, अँगुरिन लयो[5] छिना[6]य॥

—अं० द०, ११०

अथवा

[1]मोहन लखि यह सखनि ते[2], है[3] उदा[4]स दिन रा[5]ति ।
उमहति हँसति बकति डरति, बिगरति बिलखि रिसा[6]ति ॥

—र० प्र०, ६४

१०. मच्छ दोहा

यदि सात वर्ण दीर्घ या द्विकल प्रयुक्त हुए हैं तो दोहा मच्छ कहलाता है। यथा :

मुख ससि निरखि च[1]कोर अरु तन [2]पानिप लखि [3]मीन ।
पद [4]पंकज [5]देखत भँवर, [6]होत नयन रस [7]लीन ॥

—र० प्र०, ७६

११. करभ दोहा

यदि दोहे मे सोलह द्विकल या दीर्घ वर्ण और केवल सोलह वर्ण लघु हों तो दोहा करभ कहलाता है।

यथा :

फूल माल मो कर चितै, तू कत भई उदास।
कहा भयो तू सासुरे, जो फुलबारी पास॥

—र० प्र०, २८८

तथा

रूखे होतेहु बास लौं, चोरी देति जनाइ।
बिना चढ़े सिर नेह ज्यौं, चढ़्यौ नेह सिर आइ॥

—र० प्र०, २१६

१२. मर्कट दोहा

इसमे १४ वर्ण लघु तथा १७ वर्ण द्विकल या गुरु होते हैं।

यथा :

बात होइ सो दूरि सों, दीज मोहि सुनाइ ।
कारे हाथनि जनि गहौ, लाल चूनरी आइ॥

—र० प्र०, ७२७

१३. बिडाल दोहा

इसमें ४२ वर्ण एकल, शेष तीन वर्ण द्विकल होते हैं।

यथा :

खिनि कुच मसकति खिनि लजति, खिनि मुख लखति बि[१]सेखि।
छकित भयो[२] पिय तिय हँसति, उचकति ससकति [३]देखि ॥

—र० प्र०, ७३४

१४. मंडूक दोहा

बारह एकल तथा अठारह द्विकल या गुरु वर्णों से मंडूक दोहा बन जाता है।

यथा :

[१]लाए[२] [३]पायल है[४] भली[५] परी[६] रहै[७]गी[८] [९]पाइ।
[१०]लाल [११] दीजिए[१२] [१३]माल जो[१४] [१५]राखौं[१६] हिय सों[१७] [१८]लाइ ॥

—र० प्र०, ३११

१५. श्येन दोहा

श्येन नामक दोहे मे उन्नीस द्विकल वर्ण होते हैं और केवल दस वर्ण एकल होते हैं।

यथा :

बडो[१] अनो[२]खो[३] छो[४]हरो[५] दे[६]खौ[७] री[८] यह[९] आ[१०]नि।
[१] मेरी[१२] [१३]नीबी[१४] [१५]पाँति जिन [१६]तोरी[१७] गें[१८]दा जा[१९]नि ॥

—र० प्र०, २१५७

सवैया

रसलीन के फुटकल काव्य मे कुछ सवैये भी मिलते हैं। ये दो प्रकार के हैं।

१. मत्तगयंद सवैया

जिसमे सात भगण (ऽ।।) और अंत मे दो गुरु होते हैं, उसे मत्तगयंद सवैया कहते हैं।

यथा :

कान्ह चले बन को तब बाल को सास ने काज कह्यो घर ही के।
बेग ही बेग तिन्हैं करि कै जब जान लगी मिस कै ढिग पी के।

ता छन आइ गए रसलीन गहे जिय में अभिलाष जो जी के।
लाल लखें सुख होत है त्यों लखि लाल को आन भयो दुख ती के॥

— फु० क०, ४४

सवैया छंदों मे मत्तगयंद का ही आधिक्य है।

२. दुर्मिल सवैया

आठ सगणों का समाहार दुर्मिल सवैया होता है।

यथा :

हरि कौतुक देखहु आनि इतै जग माँह कहावत हौ रसिआ।
तुम-से ठहराव की नेक नहीं यह कान्हर कान्ह करौ बतिआ।
पग सेवत ही नित ही रहिहौ तजि के अभिमान भरौ जो हिआ।
तिहि बैठि झरोखहि मैं झमकै जिमि कातिक मास अकास दिआ॥

— फु० क०, ५६

कवित्त

घनाक्षरी मे कबित्त या मनहर का ही व्यवहार रसलीन ने सर्वत्र किया है। इसके प्रत्येक चरण मे ३१ वर्ण होते हैं और सोलहवें, फिर इकतीसवे वर्ण पर विराम होता है।

यथा :

भोर उठि आए झूठी बातन बनाए, दोऊ
हाथ सिर ल्याइ परि पाय मोहि छरिगो।
साँझ गए रसलीन यातें सब भूलि, काहू
कुलटा कलंकिनि के जाय पग परिगो।
औरौ तो परेखो कछु आवत न मोको, एक
भय अद्भुत आनि मेरे हिए भरिगो।
अब ही तो माथे को महावर न छूटो हू है,
एरी इन्ही पायन को परिबो बिसरिगो॥

— फु० क०, ५८

सरसी छंद

सरसी मात्रिक छंद है। इसके प्रत्येक चरण में ३१ मात्राएँ होती हैं। फुटकल कवित्तों मे एक छंद सरसी भी है।

यथा :

नूरानी दरबार शाह को नित चित देत अनंद।
दिन निस देखत पंथ तहाँ को जहाँ न सूरज चंद।
बिनय करत रसलीन दुवारे काटे जग के फंद।
दुख दंदन के तिमिर हरन को दीजे जोति अमंद॥

—फु० क०, १८

रसलीन काव्य में वर्णित कुछ महापुरुषों का

परिचय

पंजतन--(१) मुहम्मद (२) अली (३) फातमा (४) हसन (५) हुसैन ।

उपरोक्त पाँच महापुरुषों को पंजतन पाक कहा गया है। उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

(१) **हजरत मुहम्मद**--आप ईश्वर के अंतिम रसूल थे। आपका जन्म पवित्र भूमि मक्का मे ५७० ई० मे हुआ। आपके पिता का नाम अब्दुल्ला तथा माता का नाम आमिना था। ईश्वर की अंतिम किताब 'कुरान मजीद' आप ही पर उतारी गई थी। आप ने अपना पूरा जीवन लोगों को बुराई से रोकने तथा अच्छे मार्ग पर चलने के आदेश देने मे गुजार दिया। मुहम्मद साहब जिस धर्म को लेकर आए थे उसका नाम इस्लाम है। आपने देश के कोने कोने मे इस्लाम का प्रचार किया। लोगों ने आप पर तरह तरह के अत्याचार किए परंतु आपने इस्लाम प्रचार का कार्य न छोड़ा। आपकी पूरी जिंदगी आदमी की पूर्णता का नमूना है। आपके बताए हुए रास्ते पर चलनेवालों को मुसलमान कहते हैं। आप १० साल मक्के मे तथा १३ साल मदीना में रहे। ६३ साल की उम्र मे शहर मदीना मे आपका स्वर्गवास हुआ।

(२) **हजरत अली**--बच्चों में सर्वप्रथम इस्लाम लाने वालों में हजरत अली का ही नाम आता है। आप मुहम्मद के चचाजाद भाई थे। मुहम्मद की सबसे छोटी लड़की, फातमा का विवाह आपही के साथ हुआ। इस तरह आप खुदा के रसूल मुहम्मद के दामाद होते हैं। हजरत अली बड़े ही साहसी तथा बहादुर व्यक्ति थे। आप ही को फातेहे खैबर अर्थात् खैबर का विजयी माना जाता है। आप मुहम्मद के चतुर्थ खलीफा (प्रतिनिधि) थे। खैबर अरब के अंतर्गत, यहूदियों का एक गढ़ था, दर्रा नहीं।

(३) **हजरत फातमा जहरा**--आप हजरत मुहम्मद की चौथी

तथा अपनी तीनों बहनों, हजरत जैनब, रुकैया, और उम्मे कुलसुम से छोटी मुन्नी थी। आप मुहम्मद साहब की पहली बीवी हजरत खदीजा के पेट से पैदा हुई थीं। जब आपकी उम्र अठारह साल साढे पाँच महीने की हुई तो आप के अब्बा जान ने आप का विवाह अपने चचेरे भाई हजरत अली से कर दिया। अपनी चहेती बेटी हजरत फातमा को जो जहेज दिया वह आजकल के मुसलमानों के लिये एक उत्तम शिक्षा है। खातूने जन्नत हजरत फातमा की सारी जिंदगी ऐशो आराम से अलग रही। घर के कामों में मेहनत तथा परिश्रम का यह हाल था कि चक्की पीसते पीसते हाथों में छाले और घट्टे पड़ गए थे। दरिद्रता का यह हाल था कि कई कई दिन तक घर में कुछ न पकता था। आपकी जिंदगी शौहर परस्ती, माता पिता से प्रेम तथा शर्म व हया (लज्जा) का उत्तम उदाहरण है। २९ वर्ष की उम्र में आपका स्वर्गवास हुआ।

(४) हजरत हसन (५) हजरत हुसैन- यह दोनों हसनैन कहलाते हैं। यह मुहम्मद साहब की चहेती बेटी हजरत फातमा से थे। इस प्रकार यह दोनों मुहम्मद के नवासे होते हैं। आप दोनों ने इस्लाम की बड़ी खिदमत की। हजरत हसन को जहर दे दिया गया था जिससे आपका स्वर्गवास हो गया। हजरत हुसैन कर्बला में शहीद किए गए। इस प्रकार दोनों महापुरुषों ने इस्लाम की खातिर अपनी जान दे दी।

शेख अब्दुल कादिर—जीलान के रहने वाले थे। यतीम थे, माता की आज्ञा से पढने के लिये निकले। बचपन में ही अपने चरित्र बल से डाकुओं को मुसलमान बनाया। तत् पश्चात् उस समय के इस्लामी विद्या-केंद्रों में विद्या अध्ययन किया तथा आध्यात्मिक पिपासा शांत की। प्रथम श्रेणी के पहले आध्यात्मिक गुरुओं मे आपका स्थान है। चौथी सदी हिजरी आपका समय है, आपके प्रमुख शिष्यों में मोइनुद्दीन चिश्ती अजमेरी हैं। इनका मजार जीलान में है। ये बडे पीर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी—आप का जन्म ५३७ हिजरी में संजरिस्तान में हुआ। आपके पिता का नाम गयासुद्दीन हसन था। आपने अपना देश छोड़ दिया और खुरासान में जा बसे। ख्वाजा

मोईनुद्दीन चिश्ती—यहीं पले बढ़े और शिक्षा प्राप्त की। पिता की मृत्यु के पश्चात् आप बुखारा आ गए और मौलाना हुसामुद्दीन से विद्या प्राप्त कर बगदाद पहुँचे। वहाँ से हजरत ख्वाजा उस्मान हारूनी के साथ मक्का पहुँचे फिर खानाए काबा की जियारत के बाद मदीना पहुँचे। कहा जाता है कि जब आपने मुहम्मद (साहब) के रौजए मुबारक के पास जाकर सलाम किया तो जवाब मे सलाम के साथ साथ यह आदेश मिला कि आप हिंदुस्तान पहुँच कर इस्लाम का प्रचार करें। आपने अनेक स्थानों का सफर किया और गजनी होते हुए हिंदुस्तान आए। फिर दिल्ली होते हुए अजमेर आए। आपने अनेकों को मुसलमान बनाया। इस प्रकार अजमेर में मुसलमानों की संख्या बहुत हो गई। कहा जाता है कि राजपूताना सेंट्रल इंडिया मे इस्लाम आप ही की ज्ञात से फैला, न कि मुसलमान बादशाहों की तलवार के जोर से। ६० की उम्र मे आपका स्वर्गवास हुआ। आपका रौजा अजमेर मे है।

सुल्तानुल औलिया हजरत सैयद् निजामुद्दीन औलिया—आप के दादा और नाना बुखारा छोड़ कर हिंदुस्तान आ गए थे। आप का जन्म ६३४ हिजरी मे हुआ। आपका सबसे बड़ा कार्य इस्लाम का प्रचार था। रात दिन इबादत मे मशरूफ रहते। ६२ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ। आप के समय हिंदुस्तान पर अलाउद्दीन खिलजी शासन करते थे। आप के भक्त शिष्यों में अमीर खुसरो थे, जिनकी रचना हिंदी के प्रारंभिक काव्य का नमूना है।

द्वादश इमाम—शिया मुसलमानों को असना अशरी भी कहते हैं। शिया मुसलमान बारह इमामो को अपना पूर्वज तथा नेता मानते हैं, जिनमे से अंतिम इमाम (हजरत मेहदी) अभी आने वाले हैं। सभी भूतकालीन इमामों को बड़ी कठिनाइयों तथा कैदियों का सा जीवन तथाकथित खलीफाओं के शासन काल में बिताना पड़ा, जिनके नाम निम्नलिखित हैं:—

(१) हजरत अली—इब्न् मुलजिम ने शहीद किया। नजफ में कब्र है।
(२) ,, इमाम हसन—जहर देकर मारे गए।
(३) ,, ,, हुसैन—कर्बला में शहीद हुए।
(४) ,, ,, जैनुलआब्दीन

(५) ,, ,, बाकर
(६) ,, ,, जाफर सादिक
(७) ,, ,, मूसा काजिम
(८) ,, ,, अली बिन मूसा रज़ा
(९) ,, ,, मुहम्मद तक़ी
(१०) ,, ,, अली नक़ी
(११) ,, ,, हसन अस्करी
(१२) ,, ,, मुहम्मद मेंहदी—(हिंदुओं के कल्कि अवतार की तरह पर अंतिम इमाम होंगे) ।

चौदह मासूम—इन्हें मुक्त आत्मा कहा गया है। ऐसे लोग शियों में मासूम कहे जाते हैं।

द्वादश इमाम मासूम हैं। उनमें दो को और जोड़ दिया। इस तरह चौदह की संख्या हुई। वह दो, प्रथम मुहम्मद साहब तथा दूसरे उनकी पुत्री फातमा हैं।

शाहलद्धा बिलग्रामी—[१६४४ ई० १७३४] बिलग्राम के जाने-माने संत थे और रसलीन के वंश में पूर्व पुरुष भी थे जिनका मूल नाम लुतफुल्लाह था और शाहलद्धा के नाम से ये विख्यात थे। सर्व आजाद के अनुसार अहमदी नाम से ये फारसी मे काव्य रचना करते रहते थे और कालपी के सुप्रसिद्ध संत शाह सैयद अहमद के शिष्य १६६६ ई० में हुए और उसके पूर्व १ वर्ष तक नवाब निजाबत खां की सेना में सिपाही थे। रसलीन की रचनाओं से भी स्पष्ट है कि ये सादे जीवन और उच्च विचार के ऐसे संत थे जिनका प्रभाव रसलीन के जीवन पर बड़ा व्यापक था।

सैयद बरकत उल्लाह—(१६५९—१७२७ ई०)—सैयद बरकत उल्लाह भी कालपी के संत शाह सैयद अहमद के शिष्य तथा सुगरा वंश की ही विभूति थे। हिंदी मे प्रेमी और फारसी में इश्की उपनाम थे। ये सैयद ओवेस् के पुत्र थे। २६ वर्ष की उम्र में बिलग्राम से ये 'मारहरे' चले गए और वहां 'पेमी' नगर बसाया। वहीं इनकी मृत्यु हो गई। हिंदी, अरबी, फारसी, रेख्ता के विद्वान् ये और प्रायः सभी भाषाओं के रचनाकार थे। संस्कृत के भी ये अच्छे ज्ञाता थे तथा इनमें हिंदी के प्रति अटूट प्रेम

था। ये रसपूर्ण सूफी संत कवि थे। उनकी रचनाओं के नाम हैं :—मसनवी रियाजे 'इश्क', दीवाने इश्की, तारीखअबंद, पेय प्रकाश, चहार अनवाश्र, रिसाला सवालोजवाब, अबारिके हिंदी। इनके सभी ग्रंथ प्रकाशित हैं।

तुफैल मुहम्मद—(१६६६—१७४३)—रसलीन के विद्यागुरु सैयद तुफैल थे। अरबी, फारसी एवं हिंदी के अच्छे ज्ञाता तथा कवि थे। लोक प्रसिद्ध आजाद बिलग्रामी भी इनके शिष्य थे। आगरा के अतरौली नामक स्थान में १०७३ हि० में इनका जन्म हुआ था। वहां से लगभग १७१४ ई० में बिलग्राम आ गए और आजन्म यहीं रहे। इन्हें लोग आचार्य के रूप में प्रतिष्ठा देते थे। ये अरबी तथा फारसी के प्रसिद्ध लेखक एव कवि माने जाते हैं।

———

अनुक्रम

पशु, पक्षी, सरसृप, वनस्पतियाँ, आभूषण, नदियाँ, ऐतिहासिक और पौराणिक पुरुष, संगीत वाद्य शास्त्रास्त्र और वस्त्र ।

वनस्पतियाँ

रसप्रबोध

पंकज (६१ यह फूल अपने पर्यायों के रूप में अनेक स्थलों पर बार-बार उल्लिखित हुआ है)।

ऊख (१५०, २८५)।

रसाल (१६४, ३३७)।

चंदन (२०५, ८१५)

तमाल (२०५)।

बंस (२२४)।

कदली (२८४)।

बन (कपास–२८५)।

कुमुद (३८१–यह शब्द भी सभी ग्रंथों में बहुशः आया है)।

किंसुक (३९८)।

गुड़हर (४०३)।

मालती (४०३, ५३६, ६७०)।

गुंज (४२४)।

चंपक (६४५)।

पीपर (७२६)।

सुदरसन (७४४)।

जाती (७४४)।

गुलाब (७६१)।

केसर (७८१)।

नारियल (८१६)।

श्रीफल (१०१०)।

ढाक (१०२३)।

अंगदर्पण

रसाल १४)।

केसर (२४, १३६)।

तमोल (६९)।

फुटकल कबित्त

फुटकल दोहे

पशु, पक्षी, सरीसृप आदि

रसप्रबोध

चकोर (७६, ६८, १५४, ६१४, ६६०, ६६४, ६६६)।
मीन (७६, १०१५)
भँवर (७६ यह शब्द बहुशः आया है, पर्यायों से भी)।
तुरंग (६५)।
मोर (६८, १०२)।
सारंग (६८)।
पन्नगी (१०२)।
कुरंगिनी (१२२)।
गज (१४४, २७८)।
कुही (३१६)।
उरग (३६३, ६४५६)।
मजूरी (४२२)।
मृग (५६६)।
पतंग (६०६)।
चातिकी (६३५)।
धेनु (६६६)।
राजहंस (६७७)।
इन्द्रबधू (६८३)।
खंजन (६८८, ६४३)।
कोक (६६०)।
बानर (८३६)।
पिक (८७७)।
चकई (६७४)।
कपोत (१०६६)।

अंगदर्पण

उरग (२१)।
तुरंग (३७)।

आभूषण

रस प्रबोध

चूड़ी (१३५)। नेवर (२२६, ६२१)। उरबसी (२६६)। नूपुर (२६६, ६४२,। छुद्रावली (६२२)। बिरी (२२६) मुकुट (६५७, ६०७)। बेंदुली (७५१)। वनमाल (७६२)। बैजयंती माल (८०६)। पायल (८५६)। बेसरि (८६६)। मुकुत (८६६)। माल (६०६, ६१५)। रसना (६४२)। मोरपंख (१०१४)।

अंगदर्पण

मोरपच्छ (३)। मोती (५२ आदि)। विद्रुम (६६, ७१) हमेल (१०३) । पहुँची (१०८) । बाजूबंद (११६, ११७) । चूरी (११६)। छला (१२१)। पायल (१७०)। अनवट (१७१)। किंकिनी (१४६)।

फुटकल कबित्त

चूरी (२६)। बेंदुली (२६)। हार (२६)। नूपुर (४६, ४७)। मिसी (८८)। नथुनी (२५)।'

फुटकल दोहे—मुँदरी (२२)। महावर (२६)।

धातुएँ

रसप्रबोध

सुबरन (६४ यह अनेक स्थानों पर उल्लिखित है)।
पारा (१०३)।

नदियाँ

रसप्रबोध

गंगा, यमुना, सरस्वती (१७६)। यमुना (११६ गंग (१४७)।

फुटकल कबित्त

गंगा (२३)

ऐतिहासिक और पौराणिक व्यक्ति

रसप्रबोध

मंदोदरी (१०६६)। दसमुख (१०६६, १०७५, १०६२, १०६३)। जम (१०६६,१०६१)। रुद्रदेवता (१०७२)। इंद्र (१०७७) हैदर (हजरत अली–१०७८, १०८०, १०८३, १०८५, १०८६, १०८६) धर्मतनय (१०७६)। शिव या शिवाजी (१०७६)। राम (१०७६)। बलि (१०७६, ११०४)। सुलेमान (१०८४)।

महाकाल (१०६५)। सदना (१०६८)। ब्रह्मा (११००) कुश-लव (११८३)। श्रीनारायण (११०६, ११४८)। सतर्षि (७८३)। हनुमान, पवनसुत (११०१, १११८)।

अंगदर्पण

सुरगुरु (१६)। ससि (२०)। सुक्र (२०)। कर्ण (२८०)। इंद्रपुत्र (१००)। रावन (१५५)।

फुटकल कवित्त

मुहम्मद (२)। अली (५)। फातिमा (५)। पजतन (६, १०)। द्वादस इमाम (११) चौदह मासूम (१२)। हसन, हुसैन (१३)। अब्दुल कादिर जीलानी (१४)। मुईनुद्दीन चिश्ती (१५)। शाह लद्धा बिलग्रामी (१६, १७, १८, १६)। शाह यासीन बिलग्रामी (२१)। मीर तुफैल मुहम्मद (२२)। सीता (२५, जानकी-२६)। मेनका (४७)।

संगीत वाद्य और राग रागिनियाँ

रसप्रबोध

स्वर (११४)। तार (११४)।

वंशी (२२४)। बीन (३४६)

मलार राग (४६१)।

अंगदर्पण

नगारा (१५६)। तमूरा (१५७)। सतसुर (८०)।

फुटकल कवित्त

भैरौं, गोरी, सोहनी, मेघ, बहार दीपक, गुनकरी, सारंग, धनासरी ललित, हिंडोल, प्रभाती, सुगराई, रागकरी (६३)

मृदंग (४६)। दुंदुभी (७२)। फाग (७६)।

फुटकल दोहे—बंशी (३२)।

शस्त्रास्त्र

रसप्रबोध

कृपान (७६३ । बान (७६३)। गुर्ज (७६३)। फाँसी (७६३)। धनुष (९६०, १०११, १०२६, १०३०)। कृपान (९६०)। बाण (१०२१)। चक्र (१०२८)। तलवार (१०२९)।

अंगदर्पण

तरवारि (१२)। चंद्रहास (७८)। कामदेव के बाण (मोहन, सोषन, बसिकरन, उन्मादन, उचटाय—११०)।

फुटकल कवित्त

कृपाणी (२५)। धनुष (७२)।

फुटकल दोहे—

कमान (४३)। बान (४३)।

वस्त्र

रसप्रबोध

अँगिया (१३१)। कंचुकी (२०२)
पिछौरी (४३५।) काछनी (६५२)।

अंगदर्पण

डारिया (९२)। अँगिया (१४०)।